ALOCHNA HINDI

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GKV

P R
२८
दि 3७आ
आर-२१

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

49430
49431
079554

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या R 84
पुस्तक संख्या वि 36 आ
आगत पंजिका संख्या अं-21

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

49430
49431

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

GULZAR BOOK BINDING HOUSE
PHARI BAZAR ROORKEE

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

[illegible] ११८४-११८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

सम्पादक : नन्ददुलारे वाजपेयी

079554
1973
079554

# आलोचना

R
८४
३७ आ
अं-२८

...यिक परिवेश : सम्पादकीय
...ना के स्तर : डॉ० देवराज
...कृत काव्य-शास्त्र और शृंगार-रस : डॉ० सत्यदेव चौधरी शास्त्री
कवि की विशेषता : रमाशंकर तिवारी
यशपाल के उपन्यास : प्रकाशचन्द्र गुप्त
प्रतिबिम्बवाद : मनोहर वर्मा
'नई कविता' : प्रवादों की परीक्षा : गंगाधर झा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

राजकमल प्रकाशन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
विषय संख्या R 28
पुस्तक संख्या दि3 (7)आ अं-21
आगत पंजिका संख्या 84830
पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

जनवरी, १६५७

एक अंक का ४)


—'नई कविता': प्रवादों की परीक्षा :
गंगाधर झा --- ६

—आधुनिक पश्चिमी काव्य :
रामरतन भटनागर --- २२

—प्रतिबिम्बवाद :
मनोहर वर्मा --- ४२

—संस्कृत-काव्य-शास्त्र और शृङ्गार-रस :
डॉ० सत्यदेव चौधरी शास्त्री --- ५०

—कवि की विशेषता :
रमाशंकर तिवारी --- ५६

—चरित्र-चित्रण :
देवेन्द्र इस्सर --- ७१

—प्रौढ़ता के स्तर :
डॉ० देवराज --- ७८

अध्ययन : भारतीय लेखक

—यशपाल के उपन्यास :
प्रकाशचन्द्र गुप्त --- ८३

...हित्य :
रामसिंह तोमर --- ८६

—उखड़े हुए लोग :
भानुदेव शुक्ल --- ६१

—गीतफ़रोश, नई चेतना और सूर्य का स्वागत :
त्रिलोचन --- ६५

—बाँसरी बज रही :
देवेन्द्र सत्यार्थी --- १०१

—राजनीति और दर्शन :
महादेवप्रसाद शर्मा --- १११

—राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त :
महादेवप्रसाद शर्मा --- ११४

—भारतीय कविता : १६५३ :
प्रेमशंकर --- ११५

—'काव्य निर्णय' और 'आचार्य भिखारीदास' :
डॉ० भगीरथ मिश्र --- १२५


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

# आलोचना

## सम्पादकीय

### सामयिक परिवेश

सन् '४७ में राजनीतिक स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् अपने देश की परिस्थिति में शीघ्रता के साथ बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। समग्र रूप से ये परिवर्तन देश को उन्नति की दिशा में ले गए हैं, यद्यपि इनके साथ ही नई समस्याएँ और प्रश्न भी उठ खड़े हुए हैं। सामूहिक रूप से ये राष्ट्रीय परिवर्तन एक नई चेतना और नई रचनात्मक दृष्टि का उन्मेष और निर्माण कर सकते थे। साथ ही जो नई समस्याएँ उपस्थित हुई हैं, उन पर गम्भीरता के साथ विचार करके साहित्यिक सृष्टियों द्वारा उनके समाधान का प्रयत्न किया जा सकता था। अपने देश की अन्तर्राष्ट्रीय नीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी ऐसे रहे हैं कि जो नये साहित्यिकों में नई उद्भावना और नई सक्रिय कल्पना की योजना कर सकते थे। कुल मिलाकर हमारा राष्ट्रीय परिवेश साहित्य में एक नये और मूल्यवान युग की सम्भावना लेकर आया था। परन्तु हम देखते हैं कि इस नये परिवेश के अनुरूप विशिष्ट स्तर की साहित्य-सृष्टि कम हो रही है और बहुत-से लेखक और कवि नये राष्ट्रीय परिवेश से लगाव छोड़कर व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं और उद्गारों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। हमें यह देखना है कि ऐसी अनाकांक्षित स्थिति क्यों उत्पन्न हो गई है?

कुछ नये लेखक जो मध्यवित्त के हैं और जिनमें राष्ट्रीय चेतना का समुचित विकास नहीं हुआ है, अपनी निजी समस्याओं में मशगूल हैं। आज से पच्चीस वर्ष पहले हमारे अनेक लेखक विदेशी सरकार के आक्रोश और अपनी पारिवारिक दुरवस्था का एक-साथ सामना करते हुए निष्ठा और संकल्प-पूर्ण साहित्य-रचना कर रहे थे। आज की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है। मध्यवित्त के लेखक निर्वाह के योग्य रोज़ी भी पा गए हैं, पर उनकी भाव-धारा एक दूसरी दिशा में दौड़ने लगी है। कदाचित् वे सोचते हैं कि जितना वेतन उन्हें मिलता है, वह उनकी योग्यता से कम है। वे उससे कहीं अधिक के अधिकारी हैं। उन्होंने अपनी आवश्यकताएँ और अपना जीवन-स्तर भी बढ़ा लिया है, जिसके कारण उन्हें अर्थ-कष्ट रहा करता है। ऐसे लेखक न तो समाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मौलिक वैषम्य के विरोध में ही ईमानदारी के साथ सोच और लिख सकते हैं और न वे अपने विश्वासों के लिए किसी प्रकार का त्याग करने को तैयार हैं। सच तो यह है कि ये मध्यवित्तीय नये लेखक अपनी ही कोटि के पिछली पीढ़ी के लेखकों से बिलकुल भिन्न मनोरचना के हो गए हैं। इनकी कृतियाँ राष्ट्रीय उपयोग से दूर होती जा रही हैं।

हमारे वर्तमान समाज का नया मध्य-वर्ग अपने परिवार की मर्यादा और स्तर कायम रखने तथा रोज़ी कमाने में ही सारी शक्ति लगा रहा है। इस वर्ग की राष्ट्रीय चेतना के ह्रास के साथ उसकी नैतिक शक्तिमत्ता भी बहुत-कुछ क्षीण होने लगी है। लोग अपने से ऊँचे स्तर के व्यक्तियों को देखते हैं और उनमें किसी प्रकार का चारित्रिक उत्कर्ष, त्याग की भावना अथवा अन्य उच्चादर्श न पाकर स्वयं भी उसी जीवन-शैली को अपनाने को प्रेरित हो रहे हैं। अपने से भिन्न और अभावग्रस्त वर्ग की जीवन-दशा उनका ध्यान आकृष्ट नहीं करती और इस प्रकार वे समाज से विच्छिन्न होकर अपनी इकाई अलग ही बनाते जा रहे हैं। अपने निजी परिवेश को ही सब-कुछ मानकर वे उसीमें रम रहे हैं। अपनी सीमित जीवन-चर्या के पाश में बँधकर राष्ट्रीय जीवन के प्रति उपेक्षाशील हो गए हैं। प्रदर्शन की वृत्ति और महत्त्वाकांक्षा के मोह में पड़कर वे देश-विदेश की नई साहित्य-सृष्टियों को अपना लेते हैं और थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ उन्हें अपने कर्तृत्व के रूप में प्रचारित करते हैं। पश्चिम की नई कृतियों के अनुवाद किये जायँ इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं, परन्तु उनमें अनुवादक का नाम होना आवश्यक है। पर पश्चिमी कृतियों को अल्प-परिवर्तन के साथ अपनी रचना का रूप देने में ये लेखक दुहरा अन्याय करते हैं। एक तो भारतीय स्थिति का उनसे कोई लगाव नहीं रहता और दूसरे अपने देश के लिए एक तथ्यहीन और निरर्थक, किन्तु चकाचौंध से भरे जीवन-चित्र देकर ये मिथ्या-आकर्षण भी उत्पन्न करते हैं। हिन्दी के पाठक समाज को न केवल उनके परिवेश के बाहर की वस्तु देते हैं, बल्कि एक कृत्रिम और बे-पहचान जीवन का आकर्षण उत्पन्न करके उनको स्पष्टतः गुमराह भी बनाते हैं।

आश्चर्य यह है कि इस प्रकार की स्वनिष्ठ और कृत्रिम रचना के समर्थन में एक सामूहिक और साहित्यिक दर्शन का उपयोग भी किया जाता है। सामूहिक स्तर पर यह वर्ग अपनी विवशता का एलान करते हुए और समाज और राज्य को दोषी ठहराकर अपने प्रति कृत्रिम सहानुभूति की याचना करता है। ये लेखक अपने को निरीह और निस्सम्बल करार देते हैं, परन्तु वास्तव में उनकी दैनिक जीवन-चर्या उतनी निरीह नहीं होती। अवसर मिलते ही इस वर्ग के लेखक विदेश और विशेषकर अमरीका-यात्रा के लिए तैयार हो जाते हैं और लौटने पर वहाँ की शतमुख से प्रशंसा करने में दत्तचित्त रहते हैं। यही नहीं, विदेशी पूँजी अथवा अन्य प्रकार की सहायता से ये लेखक अपने तथाकथित नई शैलियों के साहित्य का प्रकाशन करने में नहीं हिचकते। मध्यवर्गीय विवशता के साथ यह आर्थिक प्रवञ्चना कैसे विचित्र सम्बन्ध से जुड़ी हुई है, यह अपने में एक रोचक तथ्य है। साहित्यिक स्तर पर ये रचनाएँ प्रकृतिवाद का आवरण देकर विज्ञापित की जाती हैं। समीक्षक-वर्ग इन्हें युग की अनिवार्य कृति कहकर इनके लिए बिक्री का बाज़ार खोलने की चेष्टा करते हैं। गुप्त स्वार्थ की इस विलक्षण स्थिति से पिछली पीढ़ी के साहित्य-सृजन की संघर्षमयी स्थितियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तुलना करने पर दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। पिछली पीढ़ी के लेखक और समीक्षक साहित्य में थोड़ी-सी अनर्गलता अथवा अश्लीलता भी सहन नहीं करते थे। प्रकृतिवाद के नाम पर यही अश्लीलताएँ खुले-आम फैलाई जाती हैं। ये नए लेखक इसे समाज का यथार्थ और व्यंग्यात्मक चित्रण कहकर सामने रखते हैं, परन्तु इनमें से अधिकांश लेखक अश्लीलता के लिए ही अश्लीलता का उपयोग करते हैं। इनमें हृदय की कचोट और व्यंग्यमयता नाम को ही होती है।

यह तो नये लेखकों के एक वर्ग की बात है। इनसे अपेक्षाकृत पुराने लेखक जो इस समय साहित्य-रचना कर रहे हैं, प्रायः सरकारी नौकरियों अथवा अन्य सम्पन्न स्थानों से सम्बद्ध हैं। सरकार के विभिन्न विभागों और विशेषकर रेडियो और प्रकाशन-विभाग में हिन्दी के बहुत-से प्रौढ़ लेखक स्थान पा गए हैं। इन लेखकों की नई रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि इनके अनुभवों और रचना-शिल्प में उन्नति हुई है, पर इनकी वक्तव्य-वस्तु पहले-जैसी निश्छल, मार्मिक और प्रखर प्रभाव-शक्ति नहीं रखती। ऐसा प्रतीत होता है कि खाली समय में बिना किसी तीव्र सृजनेच्छा के ये लेखक विविध भाव-भंगियों से पूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत करते रहते हैं। यदि इन्हीं लेखकों की स्वतन्त्रता-पूर्व की रचनाओं से इनकी आज की रचनाओं की तुलना की जाय, तो प्रायः सर्वत्र यह अन्तर दिखाई देगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन लेखकों का सरकारी क्षेत्रों में जाना और आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त हो जाना इनके निजी जीवन के लिए भले ही हितकर रहा हो, साहित्य की उच्चतर सृष्टि में सहायक नहीं हुआ। सम्भवतः सरकारी क्षेत्रों में अब तक ऐसी राष्ट्रीय चेतना और तत्परता नहीं आ पाई है, जिससे लेखकों को सम्यक् और उपयोगी प्रेरणा मिल सके। लेखकों की आर्थिक निश्चिन्तता श्रेष्ठ साहित्य-सृष्टि में बाधक हो यह आवश्यक नहीं है, पर प्रस्तुत उदाहरणों में प्रायः यही देखा जाता है।

इन नये और पुराने लेखकों के आज के साहित्य-सृजन की तुलना करना किसी वांछित उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकेगा। नये लेखकों को अपनी तुलना के लिए पुराने लेखकों की आज की कृतियाँ देखने से कोई लाभ न होगा। यदि उन्हें तुलना करनी है तो वे आज के प्रौढ़ लेखकों की आज की कृतियों की अपेक्षा उनकी पूर्ववर्ती कृतियों से तुलना करें। साहित्य-समीक्षकों को भी अपनी समीक्षा में तुलनात्मक मूल्य और विशिष्टता की खोज करते हुए, आज की नई साहित्य-सृष्टि की समक्षता में सन् २५ से ३५ तक की साहित्य-कृतियों को ही रखकर देखना होगा, क्योंकि उसी समय आज के प्रौढ़ लेखक अपनी साहित्य-साधना का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत कर सके थे।

हिन्दी-लेखकों की उपर्युक्त दोनों पीढ़ियों के उल्लेख के साथ सामयिक साहित्यिक परिवेश की समाप्ति नहीं हो जाती। नये और पुराने लेखकों का एक और बड़ा समूह है, जो वास्तविक राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक कर्तव्य के भाव से सम्पन्न रहा है और अब भी प्रचुर मात्रा में है। आश्चर्य और खेद की बात यह है कि ये लेखक जो 'प्रगतिशील साहित्य' के उन्नायक और निर्माता थे और जिन्होंने साहित्य को नई सामाजिक चेतना और नया शिल्प दिया था, आज उतने सक्रिय नहीं रह गए। इसका कारण या तो इन लेखकों का जीवन के वास्तविक तथ्यों और अनुभवों से दूर जाकर वादों का आश्रय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ले लेना है अथवा नई परिस्थिति में इनकी सृजन-शक्तियाँ अपने-आप ही शिथिल और क्षीण हो गई हैं। एक तीसरा कारण यह भी है कि परस्पर छोटे-बड़े मतभेद होने से इनकी संगठित शक्ति कम पड़ गई है। जो भी कारण हो, इस वर्ग के लेखक हिन्दी साहित्य के निर्माण-कार्य में ऐतिहासिक योग-दान कर चुके हैं और अब भी कर सकते हैं। इस धारा के नये और पुराने लेखकों में कुछ प्रवृत्तियाँ सामूहिक रूप से पाई जाती हैं। एक तो ये लेखक वर्गवादी होने के कारण मनुष्य की सामान्य इच्छाओं और मनोभावों के प्रति सर्वत्र न्याय नहीं कर पाते। साहित्य को सामाजिक क्रान्ति का अस्त्र बनाकर चलने के कारण अनेक राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों की अवमानना हो जाती है। फिर ये लेखक अपनी यथार्थवादी धारणा के अनुसार मनुष्य को हाड़-मांस का पुतला ही मान लेते हैं। मानव के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास से उपलब्ध वह मूल्यवान सम्पत्ति, जो राष्ट्रीय चेतना का अंग बन गई है, इन लेखकों के लिए नगण्यप्रायः ही है। स्थान-स्थान पर नारी के नैतिक पतन का चित्र खींचते हुए ये लेखक प्रबुद्ध पाठकों को अपने प्रति उदासीन बना देते हैं और इस प्रकार साहित्य की सार्वजनिकता पर अपने हाथों ही प्रहार करते हैं। परन्तु इन विलक्षणताओं के रहते हुए भी वे नई प्रतिभा की परिचायक उपयोगी और उच्च-कोटि की कृतियाँ प्रस्तुत करते रहे हैं। यदि अतिरिक्त वाद-निष्ठता और बौद्धिकता को सन्तुलित रूप देकर ये लेखक राष्ट्रीय परिवेश में अपने अनुभवों का अधिक व्यापक दृष्टि से प्रसार करते, तो हमारे साहित्य की वर्तमान पीढ़ी उनसे बहुत अधिक लाभान्वित हो सकती थी।

सामयिक परिवेश में स्वतन्त्र लेखकों और कवियों का एक ऐसा बड़ा वर्ग भी है जो उपर्युक्त किसी सम्प्रदाय में सम्मिलित नहीं है और स्वच्छन्द निर्माण में लगा हुआ है, परन्तु ये निर्लिप्त लेखक और कवि उचित मूल्यांकन द्वारा पुरस्कृत नहीं हो रहे। एक तो इस वर्ग के लेखकों में कोई चमत्कारी नवीनता नहीं है और दूसरे इनमें प्रदर्शन की या विशिष्ट विचार-धारा के प्रचार-प्रसार की रुचि नहीं है। आज के युग में जब साहित्यिक क्षेत्र छोटे-छोटे दलों और गिरोहों में बँटता जा रहा है और जब प्रत्येक गिरोह आत्मविज्ञप्ति के पीछे दौड़ रहा है, तब इस प्रकार के मुद्रा और छाप-रहित लेखकों की उपेक्षा की जाय, तो आश्चर्य नहीं। नये और कर्तव्य-निष्ठ समीक्षकों के लिए इन रचनाओं को नये साहित्यिक परिवेश में उचित मूल्य और महत्त्व देने का ध्यान रखना होगा अन्यथा हमारा वर्तमान युग उच्च-कोटि के साहित्यिक मूल्यों की स्थापना से वंचित ही रहेगा। सम्प्रति साहित्यिकों का यह वर्ग संख्या में अधिक होता हुआ भी बहुत-कुछ असंगठित भी है। इस वर्ग के लेखक और कवि किसी विशेष सामाजिक या राजनीतिक सिद्धान्त से बँधे हुए तो हैं ही नहीं, इनमें परस्पर विचार और लेखन-सम्बन्धी पर्याप्त भिन्नताएँ भी हैं। आवश्यकता यह है कि लेखकों का यह निर्लिप्त समूह हिन्दी के समीक्षकों का अधिकाधिक सौहार्द्र पा सके।

ऊपर हमने हिन्दी-साहित्य के नये परिवेश में रचनात्मक कार्य करने वाले लेखकों और कवियों की ही चर्चा की है। इसके साथ ही हमें समीक्षा, विचार और चिन्तना के क्षेत्र में कार्य करने वाले साहित्यिकों का भी आकलन करना है। इस समय हिन्दी में शोध-कार्य और प्राचीन अनुशीलन का इतना बाहुल्य हो गया है कि साहित्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सामयिक गतिविधि और साहित्यिक विचार और चिन्तन का पक्ष बहुत-कुछ दुर्बल हो रहा है। प्राचीन शोध में भी यद्यपि साहित्यिक विवेक और विचार की आवश्यकता होती है, पर अधिकांश में यह शोध-कार्य संग्रहात्मक और परिचयात्मक ही होता जा रहा है। कदाचित् यही कारण है कि साहित्य के सैद्धान्तिक और वैचारिक पक्षों पर बहुत कम काम हो पाया है। सैद्धान्तिक समीक्षा-सम्बन्धी जो नये तथ्य पश्चिम में उद्घाटित हो रहे हैं, हम प्रायः उन्हींकी आवृत्ति किया करते हैं। प्राचीन साहित्य-शास्त्र के सम्यक् विश्लेषण और उसके आधार पर नवीन साहित्यिक विचारणाओं का राष्ट्रीय भूमिका पर निर्माण नहीं हो रहा है। कुल मिलाकर आज का अनुशीलन सूचनाओं के आधिक्य से पीड़ित है। व्यावहारिक समीक्षा की दिशा में हिन्दी के गण्यमान्य समीक्षक जो-कुछ कार्य करते रहे हैं, उसमें भी इस समय शिथिलता आ गई है। जान पड़ता है कि हमारे ये समीक्षक साहित्य की नई सृष्टियों के सम्बन्ध में 'कौन झमेले में पड़े' की नीति बरतने लगे हैं। वे अन्य किसी विषय पर चाहे जितना लिखें, पर सामयिक साहित्य के सम्बन्ध में मौन ही रहते हैं। परिणाम यह हुआ है कि नये समीक्षकों ने साहित्य की स्वदेशी परम्परा से क्रमशः सम्बन्ध-विच्छेद करके एक-मात्र पश्चिम की नई विवेचना को ही अपना लिया है। इस प्रकार नया साहित्य और नई समीक्षा दोनों ही बहुत-कुछ विदेशी अनुकृति की दिशा में बढ़ते जा रहे हैं। भूले-भटके ही नये साहित्य पर कोई प्रौढ़ समीक्षा निकल पाती है।

विचार और चिन्तन के क्षेत्र में एक ओर प्राचीन संस्कृति और साहित्य की आध्यात्मिक ऊँचाइयों का अनवरत आलेख किया जाता है, तो दूसरी ओर समस्त प्राचीन जीवन का बहुत ही कुरूप चित्र तथ्य और यथार्थ के नाम पर खींचा जाता है। ये अतिवादी चिन्तन हिन्दी-पाठकों के लिए विस्मयकारक बन गए हैं। दोनों ही प्रकार की चिन्तना में बड़े योग्य और अध्यवसायी लेखकों का हाथ है, परन्तु दोनों ही एकांगिता से ग्रस्त हैं। कला और साहित्य की समीक्षा में इस प्रकार की आतिशयिक दृष्टियों का होना केवल असमंजस और दिग्भ्रम की ही सृष्टि कर सकता है। सार्वजनिक जीवन में ऐसी कृतियाँ कोई गहरा और मूल्यवान प्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकतीं। इस विषमता का प्रमुख कारण यह है कि ये लेखक केवल पण्डित हैं और व्यावहारिक जीवन तथा सन्तुलित कला-समीक्षा के तथ्यों से अवगत नहीं हैं।

ऊपर के रेखाचित्र को समग्र रूप से देखने पर एक बड़ी कमी सामयिक परिवेश में यह दिखाई देती है कि पुराने और नये लेखकों के बीच सम्पर्क की कमी है, जिसके कारण हिन्दी-साहित्य का समन्वित क्रम-विकास बाधित हो रहा है। कदाचित् इसी के कारण नये साहित्य में नई-नई शैलियाँ और छुट-पुट हुई भाव-धाराएँ इतनी अधिकता से उत्पन्न हो रही हैं। हिन्दी-साहित्य आज अपने को एक इकाई के रूप में देखने में असमर्थ है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि किसी युग का साहित्य किसी एक ही प्रेरणा-केन्द्र से सम्बद्ध हो, परन्तु यह आवश्यक है कि अनेक केन्द्रों के रहते हुए भी युग-साहित्य में एक विशिष्ट प्रकार की भावात्मक और चिन्तनात्मक गहराई हो। ऐसा दायित्व हो जो राष्ट्र को एक मूल्यवान सत्ता मानने पर ही आविर्भूत होता है। हमारे सामयिक परिवेश में एक समन्वित श्रृङ्खला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और दायित्व की कमी है। नया साहित्य अपनी नवीनता की दौड़ में अपने राष्ट्र की नैतिक चेतना को भी रौंदता चला जा रहा है। यहाँ हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कि प्रचलित नैतिक मानों का तिरस्कार करना नये साहित्य के लिए किस सीमा तक उचित या अनुचित है। पर उच्च-कोटि की कला और साहित्य में कुछ बातें तो आवश्यक होती हैं। एक यह कि हम किसी नैतिक मान का उच्छेद करें, तो उसके स्थान पर उससे श्रेष्ठतर मान की योजना भी करें। दूसरी यह कि नये मान की योजना में हमारी दृष्टि राष्ट्रीय दायित्व से सम्पन्न हो तथा उसमें तल-स्पर्शी गम्भीरता और संवेदना हो। तीसरी, यह कि किसी वाद या विचार-धारा की पुष्टि के लिए हम स्वीकृत राष्ट्रीय मानों का उन्मूलन न करें।

ऊपर के तथ्य हमारे निष्कर्ष को जिस दिशा में परिचालित करते हैं, वह यह है कि हमारा वर्तमान साहित्य एक विशिष्ट समग्रता और गाम्भीर्य की कमी से छिछला और छिन्न-मूल बन रहा है। समग्रता लेखकों के दायित्व से सम्बन्ध रखती है और गम्भीरता इनके व्यक्तित्व और चारित्रिक दृष्टिकोण का परिणाम होती है। आज के परिवेश में दोनों की दयनीय दशा है, परन्तु मध्य-वर्ग के लेखक और साहित्यिक अनेक अवसरों पर राष्ट्रीय प्रगति के अग्रगामी दस्ते में रहे हैं और संकटकालीन परिस्थिति में उनका चरित्र कसौटी पर कसा जाकर खरा उतरा है। मध्य-वर्ग के लेखक ही वर्गहीन समाज और वर्ग-हीन संस्कृति की नींव डालते आए हैं। वर्गीय संस्कारों को छोड़कर मानवतावादी आदर्शों और जीवन-विधियों को अपनाने का श्रेय भी इस वर्ग के लेखकों और कवियों को प्राप्त हुआ है। सम्पूर्ण राष्ट्रीय साहित्य और कला को इतिहास के धरातल पर रखकर उसकी समन्वित व्याख्या करना राष्ट्रीय संस्कृति की पुष्टि के लिए अत्यावश्यक है। सामयिक परिवेश में इन लक्ष्यों के प्रति अन्यमनस्कता बड़ी मात्रा में दिखाई दे रही है। वर्तमान लेखकों और कवियों के लिए उपर्युक्त तथ्यों की उपेक्षा करना और राष्ट्रीय सन्तुलन में योग न देना अपवाद की बात है।

व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि के सम्बन्ध में बहुत-से तर्क दिए जाते हैं। व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता की रक्षा नये युग का एक आवश्यक लक्ष्य है। समाज में फैली हुई हीनताओं के विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह का अर्थ हम समझ सकते हैं। विस्तारित अन्धकार के बीच अकेली दीप-शिखा का मूल्य हम जानते हैं, पर जब व्यक्तिवादी प्रवृत्ति अपना लक्ष्य स्वयं ही बन जाती है और जब यह राष्ट्रीय और मानवीय उत्थान के साधनों का दुर्लक्ष्य करने लगती है, तब वह व्यक्तिवादिता साहित्य और समाज के लिए शंकास्पद हो उठती है। विचारों की विविधता और शैलियों की अनेकता साहित्य का श्रृङ्गार होती है, पर तब जब उस विविधता और अनेकता में कोई समन्वित चेतना और जीवन-दृष्टि हो। किन्तु वर्तमान परिवेश की साहित्यिक विविधताएँ क्या ऐसी ही चेतना और जीवन-दृष्टि का नियोजन करती हैं?

एक अन्य बात, जो साधारणतः हमारी समझ के परे रही है, यह है कि नये साहित्य में नये लेखकों की मनोदशा की छाप पड़ रही है और इस प्रकार ऐसे साहित्य का निर्माण हो रहा है, जो एक ऐतिहासिक सत्य से सम्बन्धित है और जिसके बिना भारतीय समाज और साहित्य के विकास की एक कड़ी छूटी रहेगी। मार्क्सवादी विचारकों द्वारा प्रचारित इस तथ्य को स्वीकार करने में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सदैव असमर्थ रहे हैं और अब भी हैं। ऐसा साहित्य, जो किसी व्यक्ति या वर्ग-विशेष की हीन दशा का परिचायक हो, कौन-सा सार्वजनिक उद्देश्य पूरा करेगा? ऐसा साहित्य लिखने के लिए बाध्यता क्या है? और इसके अभाव में किसकी हानि होने वाली है?

योरुप की पिछली शताब्दी की साहित्य-सृष्टि के विकास-क्रम को देखने पर यह भासित होता है कि प्रत्येक नई पीढ़ी के कवि और लेखक एक सार्थक और विद्रोही नवीनता लेकर आये थे और जब कभी इस नवीनता में वस्तु-तथ्य की कमी हुई है, तब-तब साहित्य अपने कलात्मक मूल्य और महत्त्व को खो बैठा है। यूरोपीय जातियों ने अपनी साहित्यिक चेतना और संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्न में उच्च-कोटि की साधनाएँ और बलिदान किए हैं। जब वे राष्ट्र अपनी प्रादेशिक सीमा में नई सृष्टि की सम्भावना नहीं देख पाये, तब उनके कवि और लेखक राष्ट्रीय चेतना के उन्नयन के लिए विदेशों में गये। ग्रामों और अन्य भूमियों में पहुँचे। असभ्य जातियों की जीवन-चर्या का निरीक्षण किया और उनसे कई प्रेरणाएँ प्राप्त कीं। पर यह तब की बात है, जब उनका राष्ट्रीय विकास नितान्त अवरुद्ध हो गया था और जब प्रगति की सारी दिशाएँ रुद्ध हो गई थीं। अपने देश में अभी न तो ऐसी कोई स्थिति है और न हमारी प्रगतिशील संस्कृति पर किसी प्रकार का संकट। बल्कि हमें अवसर मिला है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् हम सार्वत्रिक स्वतन्त्रता का शिलान्यास करें और सामाजिक जीवन को उस दिशा में ले जाने की प्रेरणा दें। हम यहाँ किसी प्रचारात्मक साहित्य-सृष्टि का संकेत नहीं कर रहे। हमारा आशय उन नवीन भावना-भूमियों पर दृष्टिपात करने का है, जो अब तक बहुत अंशों में अछूती पड़ी हुई हैं और जिनकी ओर नई रचनात्मक प्रतिभा का आकर्षित होना स्वाभाविक और अनिवार्य था। पर यह तो तब होता, जब हम साहित्य की राष्ट्रीय विकास-दिशा को उचित महत्त्व देते। पर हमने तो राष्ट्रीय साहित्य की अपेक्षा साहित्य की विदेशी गतिविधियों को प्रमुखता दे रखी है—हम राष्ट्रीय बनने के पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय बन गए हैं! किसी देश की अथवा समाज की स्वाभाविक विकास-दिशा क्रमशः छोटी सीमा से बड़ी सीमा की ओर जाने की होती है और वह भी छोटी सीमाओं को पुष्ट कर लेने पर। पर हमारे ये साहित्यिक तो समीप की वस्तु को छोड़कर दूर की दौड़ लगा रहे हैं।

विनोद के लिए, हास्य और व्यंग्य के लिए, दिलबहलाव और मनोरंजन के लिए भी साहित्य होता है, पर इस प्रकार के साहित्य को युगप्रतिनिधि नहीं कहा जाता। आज हमारे बीच साहित्यिक मूल्यों के सम्बन्ध में ऐसी अव्यवस्थित धारणाएँ फैली हुई हैं कि कृतियों के सापेक्षिक मूल्य और उपयोग के सम्बन्ध में भी हम अनिश्चय में पड़ गए हैं। यह ऐसी भ्रान्ति है, जो किसी युग की साहित्यिक चेतना के लिए लाञ्छन ही कही जायगी। हम यह नहीं मानते कि जिस सामयिक परिवेश का हमने यहाँ उल्लेख किया है वह अपरिवर्तनीय है, बदला नहीं जा सकता। हम ऐसे नियतिवादी नहीं हैं, जो किसी सामयिक गतिविधि को अकाट्य और अवश्यम्भावी मान लें। हमारी यह धारणा और विश्वास है कि थोड़े विवेक और प्रयत्न से स्थिति में वांछित परिवर्तन हो सकता है। इसके लिए नये और पुराने सभी लेखकों को आत्मशोध करने की आवश्यकता है। हम यह भी मानते हैं कि हमारे नवयुवक लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और कवि जिन नई सरणियों पर चल रहे हैं, आगे चलकर उनमें साहित्यिक प्रौढ़ता और विशिष्टता भी आवेगी, परन्तु सामूहिक और राष्ट्रीय स्थितियों, अभावों और अपूर्णताओं को ध्यान में रखने पर ही यह परिवर्तन अधिक शीघ्र और सफल रीति से सम्पन्न हो सकेगा।

अनेक देशों में लेखकों के अपने राष्ट्रीय संगठन हैं। प्रतिवर्ष अथवा वर्ष में एक से अधिक बार उनके अधिवेशन में वे अपने पिछले वर्ष के कार्यों का लेखा-जोखा लगाते और आगे की रूप-रेखा बनाते हैं। हिन्दी-साहित्य में लेखकों का कोई राष्ट्रव्यापी संगठन नहीं है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पिछले सम्पूर्ण दशक से विघटित दशा में है। अपने कार्य-काल में भी उसका झुकाव साहित्य के राष्ट्रीय प्रश्नों और गतिविधियों पर कम ही रहा है। उसकी अधिकांश शक्ति भाषा-सम्बन्धी झगड़ों और राजनीति पर खर्च होती रही है। हिन्दी में इस समय लेखकों के अपने राष्ट्रीय स्तर के संगठन की बड़ी आवश्यकता है। आज कोई भी लेखक हिन्दी-साहित्य का प्रतिनिधि बनाकर चीन भेज दिया जाता है—रूस और अमेरिका चला जाता है। भेजने वाली संस्था यह जानती ही नहीं कि किसे भेजें, किसे न भेजें। उसके सामने चुनाव का कोई आधार ही नहीं होता। अभी पिछले दिनों एशियायी लेखकों का अधिवेशन दिल्ली में हुआ था। ऐसे अधिवेशन को हिन्दी अथवा भारतीय लेखकों के राष्ट्रीय संगठन के माध्यम से और उसीके तत्त्वावधान में बुलाना था, पर वह बुलाया गया तीन-तिलंगों के आपसी गठबन्धन से। दिल्ली में जो लेखक पहुँच जाते या रहने लगते हैं, वे अपने को हिन्दी-साहित्य का धुरीण मान लेते हैं। पाँच-सात आदमी मिलकर लेखकों के राष्ट्रीय संगठन के स्थानापन्न बन जाते हैं और रहनुमा बनकर उनके भाग्य का निपटारा करने लगते हैं। इससे अधिक दयनीय और गिरी हुई स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। दिल्ली और लखनऊ से नई प्रकाशित पुस्तकों पर सरकारी पुरस्कार दिए जाते हैं। पुरस्कारों के वितरण की कोई नीति, पद्धति या उद्देश्य नहीं है। हमारा प्रस्ताव है कि ये पुरस्कार सीधे सरकारी माध्यम से न दिये जाकर लेखकों की अपनी संस्था और संगठन द्वारा दिये जायँ। लेखक अपने-आप ही निर्णय करें कि वर्ष-भर में या दो वर्षों में किसने कैसा काम किया है, किसकी क्या आवश्यकताएँ हैं, किसे क्या पुरस्कार दिया जाय। हम तो यह भी कहना चाहते हैं कि पाँच सौ रुपये प्रतिमास वेतन या आय के रूप में पाने वाले लेखकों को ये पुरस्कार दिए ही न जायँ और यह द्रव्य नई प्रतिभा की सूचना देने वाले नव-युवक लेखकों में वितरित किया जाय। हम आशा करते हैं कि हिन्दी-लेखकों का यह सक्रिय संगठन सामयिक परिवेश में अप्रत्याशित परिवर्तन ला सकेगा और नई संजीवनी शक्ति द्वारा उन अनेक प्रश्नों और समस्याओं का निराकरण कर सकेगा, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। जहाँ तक सम्भव हो, यह संगठन अधिक-से-अधिक अनौपचारिक रहे। प्रवेश-शुल्क, उद्देश्य, विधेय, वार्षिक-निर्वाचन या चुनाव आदि की विधि-व्यवस्था को गौण स्थान देकर साहित्यिक कृतियों, गतिविधियों और अन्य सम्बन्धित प्रश्नों के विचार-विवेचन को एक-मात्र प्रमुखता दी जाय। राष्ट्रीय संगठन और क्या-क्या करे, यह वह अपने-आप ही सोचे और निर्णय करे। हमने तो केवल एक सुझाव प्रस्तुत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निबन्ध

*गंगाधर झा*

## 'नई कविता' : प्रवादों की परीक्षा

छायावाद की परिणति १९३५ के आसपास सम्पन्न हो चुकी थी और उसके पश्चात् हिन्दी-काव्य-धारा नई दिशाओं की ओर मुड़ी। इस परवर्ती काल में काव्य के लक्ष्य अनेकात्मक हो गए और विभिन्न प्रेरणाओं के सामंजस्य द्वारा काव्य के क्षेत्र में एक उच्चतर धरातल की सिद्धि नहीं हो पाई। यह बहुमुखता बहुत अंशों में स्वाभाविक है और उसके कारण भी स्पष्टता से समझे जा सकते हैं। इस प्रकार की परिस्थिति में एक या दो या तीन ऐसे कवियों की खोज करना व्यर्थ है, जिन्हें युग की समग्रमूलक चेतना का अथवा उसके व्यापक चित्रपट का प्रतिनिधि कहा जा सके। अभी वह समय नहीं आया जब युग की आत्मा निरूपित होकर कुछ चुने हुए कवियों की वाणी में उसी प्रकार आत्म-प्रकाशन कर सके, जिस प्रकार छायावाद-युग की आत्मा प्रसाद, निराला और आरम्भिक पंत की वाणी में अभिव्यक्त हुई। यह नहीं कि उस काव्य में विविधता न थी, किन्तु यह विविधता एक विशालतर एकता में अनुस्यूत और अंगीकृत होकर एक विशेष और स्वयंप्रभ व्यक्तित्व प्राप्त कर सकी थी। यदि आधुनिक उत्साही उस युग के काव्य और आदर्शों पर सर्वेन्तीज़ के अदम्य नायक की भाँति अपना भाला तानें तो उन्हें कोई मना नहीं करेगा। गौरव का कारवाँ आया और अपनी विभा से दिगंत को दीप्त करता हुआ चला गया। अब कोई भावुक उसके अवसान से वज्राहत हो अधीर विलाप करे, अथवा अन्य ऊर्जस्वित क्रोध से लड़खड़ाते हुए उस विगत गौरव को ललकारे, तो उसका आस्फालन सहृदयों को अरुचिकर न होगा। मानवीय प्रतिक्रिया के रूप अनंत हैं और फिर क्या यह 'विभक्त चेतना' और 'उलझी हुई संवेदना' का युग नहीं है ? 'हम नदी के द्वीप हैं'—अतएव व्यक्तित्व ही तो हमारा सर्वस्व है, द्वीपों की मूल मानवीयता है। किन्तु सब न तो इतने भावुक हैं और न बुद्धि-रस के आचमन में अगस्त्य की क्षमता ही वे रखते हैं। इन गुणों से वंचित मनुष्य जो कुछ देखता, सोचता और समझता है, उसकी एक अपनी स्थिति है। उसे अनुभव है कि छायावाद आया और चला गया, न तो वह अकारण आया था और न अकारण गया ही, जाने के पूर्व वह हमें कुछ दे गया किन्तु महत्त्वपूर्ण होते हुए भी वह 'कुछ' हमारे परितोष के लिए आज पर्याप्त नहीं; इस अभाव की पूर्ति के लिए वह काव्य के एक नये उत्थान की अभिलाषा



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रखता है और इसके लिए भी प्रस्तुत है कि नये काव्य की अनेक भंगिमाएं अपने नयेपन के कारण संभवतः उसे एकाएक चौंकाने वाली भी लग सकती हैं; इसे वह स्वाभाविक समझता है; वह यह भी देखता है कि वर्तमान काल में हिंदी-काव्य की रचना करने वाले कवियों की संख्या कम नहीं है, और उनके कृतित्व के मूल्य के विषय में चाहे जो मतभेद हो, किंतु उसकी बहुरूपिणी 'नवीनता' के विषय में कोई मतभेद नहीं। किंतु यह बहुरूपिणी नवीनता नये हिन्दी-काव्य की है तथा कथित 'नई कविता' की नहीं जो एक फिरके के भीतर पनप रही है।

प्रथम प्रश्न स्वयं नामकरण से उठता है। 'नई कविता' किस कविता का नाम है? उसकी परिभाषा से संबद्ध एक निश्चित तथ्य यह है कि वह छायावाद-युग की परवर्ती है। क्या इस काल में विरचित उन कविताओं को भी 'नई कविता' में सम्मिलित किया जा सकता है जो उपकरण, भाव-वस्तु और अभिव्यंजना-शैली में पूर्णतया तथाकथित व्यतीत युग का अनुगमन करती हैं? स्पष्टतया नहीं, क्योंकि ऐसा करने से मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी-युग के ही कवि न रहकर छायावादी और 'नई कविता' के कवि भी बन जायँगे। तब नई कविता क्या है? वह समस्त कविता नई है जो उपर्युक्त परिसीमन से कम या अधिक मुक्त होते हुए नये विकासों की सूचना देती है। नये विकास बौद्धिक चेतना, भाव-वस्तु और अभिव्यंजना-शैली, प्रत्येक क्षेत्र में देखे जा सकते हैं। किंतु इस काव्य में एक से अधिक दिशाओं, और यहाँ तक कि दिग्भ्रम, के भी दर्शन होते हैं। समीक्षक का कार्य दिग्भ्रम की स्थितियों और अपेक्षातर स्पष्ट दिखने वाली दिशाओं और गतियों का अनुशीलन करना है। इस अर्थ में नई कविता एक व्यापक वस्तु है जिसमें अनेक प्रेरणाओं और दृष्टि-कोणों का सह-अस्तित्व है। एक ओर बच्चन जैसे कवि हैं, जिनमें छायावाद की गीत-शैली व्यक्तिवाद का अग्रिम विकास और काव्य-भाषा में सरल सौन्दर्य का विन्यास मिलता है; दूसरी ओर वे कवि हैं जिन्होंने 'यथार्थवाद' की मांग स्वीकार की और जिनमें से कुछ मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक मान्यताओं को अपना आधार बनाकर चले। नई शैली और नई उपमाओं का आग्रह सबमें एकसा नहीं है; कुछ भाव-निरूपण को प्रधान मानकर चलते हैं तथा अन्य शैली-निरूपण को। काव्य के कलात्मक, वैयक्तिक और सामाजिक पक्षों तथा उनके महत्व के न्यूनाधिक्य के विषय में मतभेद है। व्यक्तिवादिता जिनमें विशेष है वे मानसिक उलझनों, अंतश्चेतन और अंतर्द्वन्द्व की ओर अग्रसर हो जाते हैं और जिनमें सामाजिकता विशेष है वे नीति, राजनीति और वर्ग-संघर्ष की ओर। कुछ ऐसे भी हैं जो इन दो सीमान्तों में से किसी के कट्टर अनुयायी अथवा हामी नहीं हैं, किंतु जिनके काव्य में यत्र-तत्र दोनों प्रकार की चेतनाओं के प्रभाव लक्षित होते हैं। सैद्धान्तिक कट्टरता अथवा उसके अभाव से ऐसी स्थितियाँ निर्मित होती हैं।

किंतु उपर्युक्त आधार पर चलकर हम उस 'नई कविता' और उसकी मान्यताओं के विवेचन से बहुत दूर तक वंचित हो जायँगे, जिसकी परिधि सीमित है और जो स्वयं के विषय में बहुत मुखर है। उसकी बानगियाँ 'नई कविता' नाम से प्रकाशित होने वाले व्याख्या-समन्वित संकलनों में प्राप्त होती हैं। नीरज और नागार्जुन यहाँ बहिष्कृत हैं अथवा स्वेच्छा से वे इस मंडली में भरती होना स्वीकार नहीं करते; और हंसकुमार तिवारी तथा विद्यावती 'कोकिल' संभवतः 'इष्टं इष्टेन योजयेत्' के अनुसार अन्य नये कवियों के साथ नियोजित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं। इस प्रकार 'नई कविता' का क्षेत्र एक साथ सीमित और असीम है। अब कोई समीक्षक उँगली उठाकर बच नहीं सकता। यदि वह नई कविता को सीमित (संकीर्ण के अर्थ में) कहता है तो हंसकुमार तिवारी को हथियार बनाकर उसे उड़ाया जा सकता है, और यदि वह उसे सीमाहीन (रूपहीन) के अर्थ में कहता है तो नीरज और नागार्जुन के उदाहरण का उपयोग उसे भू-लुंठित करने के लिए पर्याप्त होगा।

नई कविता के व्याख्याता उसके स्वरूप के विषय में जो कुछ कहते हैं उसमें स्वाभाविक बहुरूपता के साथ यदि कोई एक निश्चित तथ्य है, तो वह है छायावाद का विरोध। सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं—"**नई कविता ने मानव-भावना को छायावादी सौन्दर्य के धड़कते हुए पलने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन-समुद्र की उत्ताल लहरों में पेंग भरने को छोड़ दिया है; जहाँ वह साहस के साथ सुख-दुःख, आशा-निराशा के घात-प्रतिघातों में बढ़ती हुई युग जीवन के आँधी-तूफानों का सामना कर सके, अंतर्वेदना से मुक्त होकर सामाजिक व्यथा के अनुभवों से परिपक्व बन सके। नई कविता विश्ववर्चस्व से प्रेरणा ग्रहण करके तथा आज के प्रत्येक पल बदलते हुए युग-पट को अपने मुक्त छन्दों के संकेत की तीव्र-मन्द गति-लय में अभिव्यक्त कर युग-मानव के लिए नवीन भाव-भूमि प्रस्तुत कर रही है।**" यदि हम 'पलने के धड़कने' पर न भी ध्यान दें तो भी इस वक्तव्य में दो पक्ष उल्लेखनीय हैं—एक तो यह कि छायावाद स्वप्न और कल्पना की वस्तु थी और अन्य यह कि 'नई कविता' वास्तविक जीवन के अनुभवों से निर्मित होने वाली वस्तु है। यही नहीं, 'नई कविता' का एक महान् निर्माणात्मक लक्ष्य भी है, और वह है 'युग-मानव' के लिए 'नई भाव-भूमि' प्रस्तुत करना।

'नई कविता' की दूसरी परिभाषा गिरिजाकुमार माथुर से प्राप्त होती है—"**मौजूदा कविता के अंतर्गत वह दोनों ही प्रकार की कविताएँ कही जाती रही हैं जिनमें एक ओर या तो शैली, शिल्प और माध्यमों के प्रयोग होते रहे हैं या दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जाता रहा है। लेकिन नई कविता हम उसे मानते हैं जिसमें इन दोनों के स्वस्थ तत्त्वों का संतुलन और समन्वय है। यह नई कविता नये शिल्प और उपमानों के प्रयोग के साथ समाजोन्मुखता और मानवता को एक साथ अंजलि में भरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है। उसकी नज़र अतीत की श्यामलता और वर्तमान के संघर्ष से आगे भविष्य पर टिकी है। जीवन की संघर्षजन्य कटुता के बीच भारतीय आदर्शानुसार उसकी आशा की लौ निष्कंप है, क्योंकि उसे विश्वास है कि आज चाहे जो स्थिति हो मानवता का भविष्य कल्याणमय है और वह हर अमंगल शक्ति पर निश्चित रूप से विजय प्राप्त करेगी। इसीलिए नई कविता पलायन, पस्ती और पराजय की कविता नहीं हो सकती।**"

'नई कविता' की उपर्युक्त परिभाषा में संभवतः ऐसी कोई बात नहीं छूट पाई है जिसकी मांग समीक्षक समय-समय पर उठाते हैं। ये कतिपय अच्छे लगने वाले किन्तु सामान्य निर्देश हैं। इनके आधार पर यदि 'कामायनी' को परखा जाय तो उसकी भी गणना नई कविता के अंतर्गत हो जायगी। उसमें शिल्प और समाजोन्मुखता का समन्वय है, महाकाव्य की पुरानी मान्यताओं से भिन्न वह एक नये प्रकार का महाकाव्य है, नये उपमानों के प्रयोग उसमें हुए हैं, अतीत और वर्तमान का समाहार और अतिक्रमण करते हुए भविष्य के प्रति गतिमानता उसमें है, मानवता उसमें प्रतिष्ठित है और भारतीय आदर्शानुसार आशा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लौ भी उसमें निष्कंप है। स्पष्ट है कि ऐसी परिभाषा 'नई कविता' की किसी विशेषता का परिचय नहीं देती।

'नई कविता' वास्तव में उस कविता का ही दूसरा नाम है, जिसे हिंदी में 'प्रयोगवाद' अभिधान मिला है और 'तारसप्तक' जिसका आदि-स्रोत है। 'प्रयोगवाद' शब्द को लेकर होनेवाले घात-प्रतिघातों के विषय में हम कुछ नहीं कहना चाहते, कुछ विषयों पर तो हम 'तारसप्तक' के संपादक की सत्यवादिता पर मुग्ध हैं। उनकी जो बातें सहज स्वीकार-योग्य प्रतीत होती हैं वे इस प्रकार हैं—"[**'तारसप्तक' के कवियों में] मतैक्य नहीं है, सभी महत्त्व-पूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है—...काव्य-वस्तु और शैली के, छन्द और तुक के कवि के दायित्वों के—प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है।" "प्रयोगों का महत्त्व कर्ता के लिए चाहे जितना हो, सत्य की खोज, लगन, उसमें चाहे जितनी उत्कट हो, सहृदय के निकट वह सब अप्रासंगिक है। पारखी मोती परखता है, गोताखोर के असफल उद्योग नहीं। ......इस प्रकार 'प्रयोग' का 'वाद' और भी बेमानी हो जाता है।**" समीक्षक को आपत्ति यह है कि 'तारसप्तक' की कविताओं में उसे मोती नहीं मिले। प्रयोग के नाम पर नये उपमानों की योजना और नई लय की साधना का जो रूप वहाँ प्रस्तुत है वह किसी प्रकार के उत्कर्ष का द्योतक नहीं है। यदि ढूँढ़-ढाँढ़कर दो-चार ऐसी नई उपमाएँ पा भी ली गईं जो काव्यात्मक प्रभाव रखती हैं, तो केवल उनकी स्वीकृति न तो समीक्षक को तोष दे सकती है और न नये काव्य का कोई महत्त्व ही उनके द्वारा द्योतित होता है। विचार के क्षेत्र में 'तारसप्तक' के कवि परस्पर इतने भिन्न हैं कि उन्हें ध्यान में रखकर नई कविता की किसी प्रकार की रूपरेखा की धारणा निर्मित करना संभव नहीं। उनमें से कोई भी कवि इतना शक्तिमान नहीं कि केवल उसे और उसके काव्य को महत्त्व देकर आगे बढ़ा जा सके। इस प्रकार वह संकलन न तो सामूहिक प्रयास के रूप में चर्चा करने का अवसर देता है और न व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के आधार पर। कुछ चर्चा यदि संभव है तो वह उसमें प्रस्तुत व्याख्याओं और वक्तव्यों के आधार पर। संभवतः अज्ञेय का दावा इससे अधिक है भी नहीं, और उस स्थिति में हम उनसे पूर्णतया सहमत हैं।

अज्ञेय के अधिकारी वक्तव्य के अनुसार प्रथम सप्तक के कवि यदि राहों के अन्वेषी थे तो द्वितीय सप्तक के कवियों में से कुछ अवश्य गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, बच्चन, दिनकर—इस सूची को आगे बढ़ाने पर उसमें उल्लेख योग्य हैं, अर्थात् वे राहों के अन्वेषी नहीं बल्कि पहुँचे हुए हैं। इसमें संदेह नहीं कि काव्य की दृष्टि से दूसरा सप्तक बहुत आसानी से प्रथम सप्तक से ऊँचा है। उसमें संकलित कुछ कवि दूसरों से अधिक महत्त्व रखते हैं और व्यक्तिगत रूप से उनकी कविताएँ विचार-योग्य हो सकती हैं; किन्तु सामूहिक रूप में यहाँ भी नये काव्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। कवियों के वक्तव्य और उनके कृतित्व में परस्पर इतनी विभिन्नता है कि उनके बलात् समाहार द्वारा नई कविता की कतिपय प्रवृत्तियों का आकलन करना इसका उदाहरण होगा कि जहाँ एकता नहीं है वहाँ उसे कैसे खोजा जा सकता है। वैचित्र्य और असम्बद्धता की दृष्टि से हरिनारायण व्यास का वक्तव्य एक अनुपमेय वस्तु है। वहाँ छायावाद का व्यक्तिवाद "**पतनोन्मुखी मन की विवशता का परिचायक है, जिसमें व्यक्ति ने अपनी मानसिक दासता के लिए अपनी एक मौलिक एवं मधुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दार्शनिक वृत्ति को अपना लिया था," इस वक्तव्य के साथ यह भी पढ़ने को मिलता है कि "शेखर एक व्यक्तिवादी पात्र है। किन्तु उसका व्यक्तिवाद एक दास मन का रुदन नहीं है।··· उसे विद्रोह द्वारा अपनी माँगों का महत्त्व समझाना आता है; वह 'रिरियाता' नहीं और न भीख ही माँगता है ।" यही नहीं, हम सीखते हैं कि "तारसप्तक का व्यक्तिवाद वस्तुतः शेखर की वैयक्तिकता का ही काव्यात्मक रूप था," फासिज़्म जब दूसरा महायुद्ध लेकर सिर पर आ सवार हुआ तब व्यक्तिवादी बातों में आस्था के लिए स्थान लब्ध होना कठिन था, निदान कवि "इकाई को खण्ड-खण्ड होता हुआ देखकर शंकित हो उठता है और आत्मा विस्मृत। और पूछने लगता है, 'कौनसा पथ है?' वह घोर अन्तर्मुखी हो जाता है और उसके कण्ठ से चीत्कारें फूट पड़ती हैं।·········तारसप्तक में इन्हीं चीत्कारों का प्राधान्य है।" इसके पहले कि पाठक 'तार सप्तक' की न रिरियाने वाली विद्रोहिता के साथ उसमें उपस्थित चीत्कारों के प्राधान्य का संबंध स्थापित कर सके, यह नया कवि उसे नई कविता के उस उत्थान पर ले जाता है जहाँ "कविता अपनी विशाल अमूर्तता के कारण समाज की व्यापक अनुभूतियों को स्पर्श करने की, उन्हें प्रेरित करने की क्षमता रखती है।" जब तक बुद्धि 'विशाल अमूर्तता' से उबर पाये, उसके पूर्व ही वक्तव्यकार को अपनी मौलिकता का स्मरण हो आता है। लोग उसे मात्र एक अनुगामी ही न समझ लें, इस भय से वह इन शब्दों में अपनी स्वतंत्र स्थिति को स्पष्ट करता है—"तारसप्तक के कवि की सामाजिक स्थिति और उसके बुद्धिवाद ने उसको अन्तःसंघर्ष दिया और मुझे उस बुद्धिवादिता से बाह्य संघर्ष के लिए प्रेरणा मिली। तारसप्तक के कवि की जिस विचारधारा ने अपनी ही आलोचना सिखाई, जिससे वह नकारात्मक बन गया, मुझे उस विचारधारा ने प्रगतिशील शक्तियों से सामंजस्य करने के लिए उन्मुख किया। तार सप्तक के कवि के लिए निसर्ग एक आत्म-भर्त्सना का स्थान बना, मेरे लिए प्रेरणा-भूमि। क्योंकि निसर्ग की गोदी में सर्वहारा-वर्ग के कर्मक्षेत्र एक गाँव में मेरा जन्म हुआ······।" यही कवि उपसंहार में हमें बतलाता है कि 'कविता एक सपनों का संसार है। और यह संसार यदि नये जीवन के क्रीड़ास्थल नये जगत् की रंगीनी से सिक्त हो तो कवि का कर्म और उसका सामाजिक दायित्व सार्थक हो जाते हैं।" चिंतन के क्षेत्र में कैसा सुन्दर 'प्रयोग' है! अब हमारे लिए यही रह जाता है कि अनमेल और अनर्गल वक्तव्यों में कोई नया रूप और नई सार्थकता देखें, अथवा स्वयं को 'मध्ययुगीन चेतना' से ग्रस्त और पिछड़ा हुआ मानकर चुप रह जायँ।

प्रश्न यह है कि जो कविता केवल प्रयोगशीलता के नाम पर एक जगह संकलित है उसका विवेचन किन आधारों पर किया जाय? यदि केवल प्रयोग पर ध्यान रखा जाय तो केवल गति, लय, शब्द-योजना, अलंकार-विधान और शिल्प—अर्थात् कलापक्ष—का अनुशीलन सम्भव है। किन्तु क्या कलापक्ष भावपक्ष से पूर्णतया विच्छिन्न करके देखा जा सकता है? विशुद्ध शास्त्रीय जिज्ञासा की तृप्ति इससे अवश्य सम्भव है, परन्तु वह भी तब उपादेय है जब उसमें अभिव्यक्त काव्य स्वयं महत्त्वपूर्ण है और सचमुच नई लय और नवीन शिल्प वहाँ सिद्ध और लक्षणीय हैं। इस पर भी नई कविता को एक संश्लिष्ट इकाई नहीं माना जा सकता। अज्ञेय कहते हैं कि "···आत्म-सत्य के अन्वेषी कवि को, अन्वेषण के प्रयोग-रूपी माध्यम का उपयोग करते समय उस माध्यम की विशेषताओं को परखने का भी अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**है। इतना ही नहीं, बिना माध्यम की विशेषता, उसकी शक्ति और उसकी सीमा को परखे और आत्मसात् किये उस माध्यम का श्रेष्ठ उपयोग हो ही नहीं सकता।"** किन्तु परखे और आत्मसात् किये जाने की इस प्रक्रिया में माध्यम का पुनर्निर्माण न होकर उसकी दुर्गति ही हुई है।

'नई कविता' के अंकों में इसी परम्परा का विस्तार मिलता है। वहाँ भी कविता के साथ व्याख्याएँ प्रस्तुत हैं। सामान्यतः कवियों और उनके काव्य-सहयोगियों को यह अधिकार है कि अपने उद्देश्यों और विधियों की चर्चा करें; किन्तु इस प्रकार की जो चर्चा यहाँ मिलती है वह वचन-बहुल और रूपहीन है। पश्चिम के सिद्धान्त-सम्पन्न क्षेत्रों पर आक्रमण करके जो भी हाथ लग गया और जो भी अवसरोपयोगी प्रतीत हुआ, वही नई कविता का आधार बताया जा रहा है। टी० एस० इलियट और आई० ए० रिचर्ड्स, हॉप्किन्स और हर्बर्ट रीड का उल्लेख यहाँ स्वयं उनके लिए नहीं, किसी मूलभूत सिद्धान्त के लिए नहीं, प्रत्युत् केवल उस तिनके के रूप में किया गया है जो डूबते हुए का सहारा बन सके। यूरोपीय काव्य और समीक्षा के इन महामहिमों से हमारा कोई झगड़ा नहीं, उनसे कुछ ऐसी बातें सीखने में हम गर्व का अनुभव करेंगे जिनमें वे निश्चय ही हमसे आगे हैं। किन्तु उनका अध्ययन एक व्यवस्थित और गम्भीर प्रयत्न के रूप में होना चाहिए। इस कार्य में उनके इतिहास और उनकी साहित्यिक विरासत को सदा ध्यान में रखना होगा। इसी प्रकार उन्हें 'आत्मसात्' करते समय हम अपने इतिहास और अपनी साहित्यिक विरासत को भूल नहीं सकते। भारत का इतिहास वही नहीं है जो यूरोप का है और इस तथ्य की उपेक्षा करके हम कुछ नहीं पा सकते।

पश्चिम की मदद से चीजें कितनी आसान हो जाती हैं! हॉप्किन्स ने लय में प्रयोग किये और उस नई लय का निर्माण किया जो 'Sprung rhythm' के नाम से विख्यात हुई। देखिए, हम भी तो वही कर रहे हैं—प्रयोग; और हॉप्किन्स की सफलता तत्काल हमें सिद्ध करती है! भुलाया कुल इतना ही गया है कि हॉप्किन्स ने अपने प्रयोगों को चरम उपलब्धि से मंडित किया था। मृत्यु के पूर्व उनकी कविताएँ न छप पाईं। प्रतिरोध पाकर वे धँस पड़ने के लिए आकुल नहीं हो गए, वरन् उससे दृढ़ता प्राप्त करते हुए उन्होंने एकान्त में अपनी साधना सम्पन्न की। ऐसी लगन उनमें इसलिए थी कि वे एक गहरी आस्था से सम्पन्न थे। उन्होंने वह उपलब्ध किया जिसे अन्य असार और असम्भव समझे हुए थे। क्या हिन्दी के समीक्षक उतने ही अन्ध और रूढ़िग्रस्त हैं जितने इंगलैंड के वे समीक्षक थे जिन्होंने काव्य के मंदिर से हॉप्किन्स का सफल निष्कासन कर दिया था? यदि यह सच है तो नैसर्गिक प्रतिशोध एक दिन अवश्य उनसे हिसाब चुकता करेगा। किन्तु यह तभी संभव है जब हिन्दी में उसका अपना हॉप्किन्स उत्पन्न हो जाय, और तब, भय है कि समीक्षक उसे पहचान जायँगे। अभी तो यही दिखाई देता है कि हॉप्किन्स का उदाहरण देकर 'नई कविता' की लयहीनता को नूतन लयशीलता सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है। कभी-कभी दीवार से सिर टकराकर भी तारे दिखाए जा सकते हैं।

टी० एस० इलियट का दृष्टान्त और उनके वक्तव्य सामने रखे जाते हैं। विशेषतः उनकी उस उपलब्धि का उल्लेख किया जाता है जिसे आई० ए० रिचर्ड्स ने 'Music of

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Ideas' कहा है और बतलाया जाता है कि कवि-विशेष हिन्दी में उसी पथ का अनुसरण करना चाहते हैं। अवश्य करें, किन्तु यहाँ भी विशेष सतर्कता वांछित होगी। टी० एस० इलियट के प्रयोगों और तर्कों ने उन्हें सिद्ध नहीं किया, उनका जीवन्त प्रमाण स्वयं उनका काव्य है। उन्होंने बीते युगों की उपेक्षा नहीं की, प्रत्युत सच्ची मनस्विता के साथ उसके अध्ययन और विश्लेषण का भार उन्होंने उठाया। एक नये प्रकार की काव्य-कला की उन्होंने सृष्टि की, किन्तु अपनी विरासत का उन्होंने पूर्णतम उपयोग किया। यह कार्य वे एक मौलिक ढंग से कर सके, क्योंकि शिल्प के पूर्व उनके पास एक आस्था थी। इस आस्था ने ही उनके प्रयोगों को एक निश्चित दिशा में अग्रसर किया। किन्तु उनकी उपलब्धि इतनी व्यक्ति-विशेष है कि उनका अनुसरण या अनुकरण करने वाले अनिवार्यतः विफल हुए। इससे उनका सिद्धान्त उतना प्रमाणित नहीं होता, जितनी प्रमाणित उनकी प्रतिभा की महानता होती है। उन्होंने कुछ ऐसा किया, जिसे केवल उन्होंने किया है। विशुद्ध विचार की दृष्टि से यह इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस या उस भूमि में पुनः ऐसी प्रतिभा का उदय सम्भव है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि उनके लिए एक अनुपेक्षणीय चेतावनी है जिनके लिए टी० एस० इलियट का सिद्धान्त उनके व्यक्तित्व से अधिक भारी है। इन विधियों का प्रयोग हिन्दी में करने से कोई किसी को रोकेगा नहीं, किन्तु यदि कोई उदीयमान इलियट है तो समीक्षक उसके काव्य के आगमन की बाट जोहेंगे। वे यह लक्ष्य करेंगे कि इस प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं, और यदि उनमें स्वल्पतम सफलता के संकेत मिलते हैं तो उन पर भी ध्यान दिया जायगा। इलियट के आगे कोई दृष्टान्त नहीं था, हिन्दी के इलियट का सौभाग्य है कि इलियट के रूप में उसे एक अनिंद्य आदर्श प्राप्त है।

यह नहीं भूलना चाहिए कि भाव-विनियोग में सक्षम पाठक-वर्ग के अभाव की अनुभूति इलियट में अत्यन्त प्रखर थी। उन्होंने निर्णय किया कि उसके लिए लिखने का प्रयत्न ही वे नहीं करेंगे। भाव-विनियोग को ध्यान से हटाकर उन्होंने अपनी समस्त शक्ति एक नव्य और स्वयं-संपूर्ण शिल्प तथा अभिव्यंजना-शैली की उद्भावना और निर्माण में लगा दी। जन-जीवन से दूर हटकर उन्होंने एकान्त में कार्य किया और जब सिद्ध होकर वे सामने आये तब विद्वानों का एक भावक-वर्ग उनके स्वागत के लिए तैयार था। अनेक महान् कवि प्रसिद्ध हो जाते हैं, किन्तु जनता के कवि नहीं बनते। मिल्टन और निराला ऐसे ही उदाहरण हैं। वे हिमालय के समान ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं, जो जन-साधारण के लिए अगम्य होती है। वे सचमुच महान् कवि बने रहते हैं क्योंकि उनकी उपलब्धि का विस्तार विशाल होता है और उनकी सफलता का गुम्बद गगनचुम्बी। जन-साधारण के लिए उनकी सफलता की कहानी विद्वानों के माध्यम से छनकर पहुँचती है। वे उनके अध्ययन का कष्ट इसलिए सहन करते हैं कि उसका पारितोषिक असीम होता है। संभवतः यह उनके युग-दर्शन की आवश्यकता है जो उन्हें इस प्रकार एकान्त में भेज देती है। टी० एस० इलियट ने अपने जगत् को अत्यन्त कुरूप और किसी प्रकार के सौन्दर्य के जन्म के लिए बंजर पाया। ऐसी स्थिति में कवि या तो अंतर्जगत् के दर्शन के लिए अग्रसर होता है, अथवा कुरूप को वह स्वीकार करता है और उसे ही काव्यात्मक रूप में मंडित करता है। इतिहास चाहे अन्य आदर्शों की ओर बढ़कर उसकी प्रतिक्रियाओं को ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रगतिशील और अनुप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



युक्त सिद्ध कर दे, किंतु वे उच्च और सशक्त बने रहते हैं—कुछ ऐसी वस्तु के प्रतीक जिसे इतिहास की गतिमानता ने यद्यपि त्याग दिया है तथापि जो एक समय इतिहास का बहुत सप्राण और महत्त्वपूर्ण भाग थी तथा जिसने इतिहास द्वारा इसी उद्देश्य के लिए चुने हुए व्यक्तियों में स्वर प्राप्त किए—ऐसे व्यक्तियों में जिन्होंने अन्तिम सीमा तक उसका अनुभव किया था। 'वेस्टलैंड' की प्रशस्ति और शक्ति केवल उसके अभिनव शिल्प और नये उपमानों के कारण नहीं है, वह अपने जीवन-दर्शन और पश्चिम की सभ्यता की विगलनशीलता और बंजरपन पर एक व्यापक और सशक्त निर्णय के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है। वह निराशा नहीं प्रत्युत एक कटु यथार्थ की चरम स्वीकृति है। इस स्वीकृति में कवि लिप्त नहीं, वह पूर्णतया वस्तुपरक और तटस्थ है। कुरूप की यह स्वीकृति एक ऐसी वस्तु के अभाव की भी स्वीकृति है जिसे कवि मानव-सत्ता के लिए अनिवार्य मानता है। यह वस्तु उसकी आत्मा का एक शक्तिमान किन्तु मौन आदर्श है। उसका संकेत उस नैतिक तथ्य में मिलता है जिसे कवि ने दान, दया और दम के समावेश द्वारा सूचित किया है। अपने जगत् से वह निराश है, किन्तु अपनी आत्मा के अनुरूप एक नये जगत् का आकांक्षी भी है। ऐसे एक सुनिश्चित और व्यापक जीवन-दर्शन के अभाव में प्रयोग कभी विशुद्ध प्रयोग की स्थिति से उठकर कविता नहीं बन सकते। प्रयोग उद्देश्यहीन नहीं हो सकता और उसका निरूपण वह चेतना करती है जिसकी अभिव्यंजना के लिए कवि स्वयं को विवश पाता है।

प्रश्न यह उठता है कि पश्चिम के कवियों में इस प्रकार का जीवन-दर्शन क्यों आया ? इसका कारण पश्चिमी संस्कृति और उसके विकास के इतिहास में मिलता है। रिनेसां की प्रेरणाओं से जिस जीवन को गढ़ना पश्चिम ने आरम्भ किया था वह अपनी चरम परिणति पर पहुँचकर आज क्रमिक विगलन की स्थिति में है। उन्होंने इस उत्थान में कुछ मूल्य स्थापित किये जिन्हें आज वे मिटता हुआ पाते हैं। वह संस्कृति सदोष सिद्ध हो गई और कोई दूसरा पथ सूझता नहीं। साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हामी पश्चिम को प्रिय नहीं, अमेरिका की विशुद्ध औद्योगिक और व्यापारिक सभ्यता अपनी सांस्कृतिक परम्परा के गर्वित इन देशों को असह्य लगती है और कोई नई प्रेरणा स्वयं उनके अन्दर से उठ नहीं पाती। यह एक विचित्र गंभीर और अत्यंत उत्पीड़क अनुभूति है। वे संस्कृति चाहते हैं, किन्तु वह कैसी होगी और कहाँ मिलेगी इस विषय में कुछ नहीं जानते। परिणामतः उनकी वेदना एक अमूर्त किन्तु शक्तिमान आकांक्षा से समन्वित है। विक्टोरियन युग की समाप्ति के साथ अपनी सभ्यता के खोखलेपन का अनुभव पश्चिम को होने लगा। इसे वर्लेन ने कर्म और स्वप्न का विच्छेद कहकर प्रस्तुत किया। कवियों के विषय में वे कहते हैं—"**वह जगत्, जिसे उनके गंभीर शब्दों ने पीड़ित किया है, उन्हें निष्कासित करता है। वे इसके उत्तर में जगत् को निष्कासित करते हैं।**" अर्थात् कवि जगत् को भूलकर आत्मलीन होना और अपने अन्तर्जगत् की ओर बढ़ना स्वीकार करता है। संसार की गति अविभिन्न है और कवियों के आदर्श भिन्न हैं।

काव्य में 'सिम्बोलिज़्म' और 'इमेजिज़्म' का जन्म होता है तथा चित्रकला में 'इम्प्रेशनिज़्म' का। कलाकार मनोजगत् के अभिदर्शन के लिए अभियान करते हैं। इसके बाद वादों का ताँता लग जाता है जिसमें वास्तव में अभाव की अनुभूति और उसकी पूर्ति की अनेक चेष्टाएँ परिलक्षित होती हैं। आज वे स्वीकार करते हैं कि जिस पथ पर वे चले उसने उन्हें एक गतिरोध की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्थिति में पहुँचा दिया। अब अपनी संस्कृति के आधारों का पूर्ण विश्लेषण किये बिना और नव-निर्माण किये बिना कोई पथ नहीं है। एडिथ सिटवैल के काव्य में नई आशा और मानवता के भविष्य में एक नई आस्था के स्वर गूँजने लगे। इस अवधि में विभिन्न कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से अपने विभक्त व्यक्तित्व को एकान्वित किया। स्वयं टी० एस० इलियट ने १६२८ ई० में अपने सामान्य दृष्टिकोण को साहित्य में 'क्लीसीसिस्ट', राजनीति में 'रॉयलिस्ट' और धर्म में 'ऐंग्लो-कैथॉलिक' घोषित किया। अनास्था की परिस्थितियों में कवियों ने आस्था की खोज की। ऑल्डस हक्सले जैसे उपन्यासकार विशुद्ध शरीरवाद की स्थिति से आरम्भ करके वेदान्त के सुरक्षित कक्ष में प्रविष्ट हुए। हिन्दी की 'नई कविता' में विविध अन्य सामग्री के साथ पश्चिमी काव्य की इस समस्त अवधि की चेतना के उच्छिन्न कण प्राप्त होते हैं, इसीलिए वह कविता बुद्धिजीवियों के ऐसे वर्ग की चेतना को अभिव्यक्त करती है जिसने पश्चिम का क्रमहीन, असंबद्ध और अधूरा अध्ययन किया है।

जिस काल में पश्चिम का विकास उक्त दिशा में हुआ उसी काल में हिन्दी-काव्य एक दूसरी दिशा में प्रवाहित हुआ। वह बृहत्तर यथार्थ एक था जिसमें पूर्व और पश्चिम अनुस्यूत थे। वह यथार्थ पृथ्वी पर पश्चिम की विजय और आधिपत्य से निर्मित था। किन्तु उसके दो पक्ष दो नितान्त भिन्न चेतनाओं के जन्म-दाता बने। पश्चिम में जब रुडयार्ड किपलिंग ने साम्राज्य, यंत्र-युग और वीरता के गीत गाए, तब हिन्दी-कविता राजभक्ति से मुक्त होती हुई प्राचीन गौरव के स्मरण पर आश्रित करुणापूर्ण देशभक्ति के उद्गार व्यक्त कर रही थी। युद्ध-क्षेत्र के कवियों (Trench Poets) ने १६१७-१८ में जब देशभक्ति को पर्याप्त नहीं पाया और युद्ध के निष्करुण, विनाशक, अमानवीय और अर्थहीन रूप को काव्य में अंकित किया, उस समय हिन्दी में 'भारत-भारती' के ही स्वर गूँज रहे थे और आदर्शनिष्ठ 'बलि-पंथी' की अवतारणा हो रही थी। 'कामायनी' तक पहुँचकर हिंदी-काव्य भारत में एक नये और पूर्ण आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा को मुखरित कर सका। यह आत्मविश्वास उस मनुष्य की अवतारणा में निरूपित है जो प्रकृति की शक्तियों में सामंजस्य स्थापित करते हुए, घोरतम संकटों के विरुद्ध अभ्युदय का उपाय करते हुए, भावना और बुद्धि के साथ आस्था और तर्क, ज्ञान और विज्ञान तथा पूर्व और पश्चिम में समन्वय स्थापित करते हुए सृष्टि को उसके चरम मंगलमय लक्ष्य तक ले जायगा। जब पश्चिम एक कटु यथार्थ में छटपटा रहा था, तब भारत की आत्मा नये स्वप्नों और नये आदर्शों के सूर्य जगा रही थी। इन स्वप्नों को काल्पनिक कहकर टालना काव्य को बहीखाते के समान पढ़ना है। इसके बाद भी अवसाद और विभक्त व्यक्तित्व का कोई कारण दिखाई नहीं देता। पश्चिम में रिनेसाँ ने जो स्वप्न देखा था उसे यथार्थ में निर्मित किया और तब विगलन की स्थिति वहाँ आरम्भ हुई। हमारा अभ्युदय का स्वप्न आज भी स्वप्न ही है, उसकी उपलब्धि से हम बहुत दूर हैं और उसकी प्राप्ति के प्रयासी हैं। अतएव पश्चिम की और हमारी मनोदशा एकसी नहीं हो सकती। हिन्दी-काव्य को जबरन पश्चिमी काव्य का अनुगामी बनाना उसके साथ बलात्कार है।

यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि यन्त्र-युग के साधनों ने सम्पूर्ण पृथ्वी को एक इकाई में बदल दिया है, अतएव दूसरों से अलग होकर हम नहीं रह सकते। यह सत्य है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस इकाई के अन्तर्गत समस्त गतियाँ एक-सी हैं। यह इकाई और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अणुयुद्ध की सम्भावना हमारी राष्ट्रीय गति को एक निश्चित परिस्थिति से बाँध देती है, जिसकी अवहेलना करना सम्भव नहीं है। किन्तु एकता लाने वाली इस शर्त का यह अर्थ नहीं कि पश्चिम और भारत की गतियाँ एक हो गई हैं। हिन्दी-काव्य न तो अज्ञता से पुरस्सर हो सकता है और न अन्धानुगामिता से। दूसरे शब्दों में हम उस जीवन-दर्शन को नहीं स्वीकार करते और न सत्य ही मानते हैं जिसे 'नई कविता' के नाम पर सिद्ध करने की चेष्टा की जा रही है।

'नई कविता' को प्रतिष्ठित करने के लिए जो प्रयास किये जा रहे हैं वे बहुत विलक्षण हैं। कभी-कभी स्वयं-सिद्ध तथ्यों को प्रमाणित करने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया जाता है। हमें बतलाया जाता है कि काव्य केवल पुनरावृत्ति नहीं, सृजन है; सृजन सदा मौलिक होता है; एक नये युग को नये काव्य की आवश्यकता होती है; नये युग के काव्य के लिए नई लयों, नई उपमाओं और नई शब्द-योजनाओं की आवश्यकता होती है। इन अत्यन्त स्वाभाविक बातों का विरोध करता कौन है ! डॉ० देवराज ने केवल यह सिद्ध करने के लिए स्वयं को अनावश्यक रूप से निपीड़ित किया है कि प्रयोग सदा होते आये हैं। इसमें भला कोई सन्देह भी है, फिर पहाड़ खोदने की क्या जरूरत थी ? यह एक ऐसी वस्तु है जिसे किसी भी साहित्य के इतिहास का साधारण विद्यार्थी भी भली भाँति जानता है। साँसें कीमती होती हैं और कोई उन्हें इस निर्दयता से खर्च करे इसके पूर्व ही हम अनावश्यक को अतिरिक्त श्रम के साथ करने की क्षमता के समक्ष प्रणत हैं। बतलाया जाता है कि नये काव्य की आवश्यकता है, किन्तु प्रश्न आज स्वयं इस नये काव्य तथा उसकी उपलब्धि अथवा उपलब्धि के अभाव के विषय में उठाया जा रहा है।

जगदीश गुप्त यह सिद्ध करने में व्यस्त रहे कि लय केवल स्वर या शब्द की वस्तु नहीं है, वह अर्थ-संघटन की आत्मा में प्रविष्ट होने वाली वस्तु है। इसके लिए आई० ए० रिचर्ड्स, हर्बर्ट रीड, इत्यादि के उद्धरण समाहृत हैं, लेकिन ये उद्धरण सिद्ध क्या करते हैं ? यही कि लय अन्ततः भाव या चेतना की गति से उत्पन्न होती है और केवल शाब्दिक लय विशेषतः रूढ़ हो जाने पर अपनी प्राण-शक्ति खो देती है। नई चेतना से सम्पन्न कवि अपनी चेतना के अनुकूल नई लयों की सृष्टि करता है। इस वक्तव्य का एक सैद्धान्तिक महत्त्व स्पष्ट है, किन्तु नई कविता के समर्थन में उसका उल्लेख कुछ सन्देह उत्पन्न करता है। लय की यह विशेषता क्या केवल 'नई कविता' में प्राप्त होती है ? यदि ऐसा नहीं है तो उसके साथ ही उसे युक्त करने के प्रयत्न का क्या अर्थ हो सकता है ? सम्भवतः यह कि 'नई कविता' की लयहीनता को छिपाने के लिए वह एक सम्भव छद्मवेश है। पुरानी और नई होने से भी अधिक लय के लिए यह आवश्यक है कि शाब्दिक लय और चेतना की गति में पूर्ण सामंजस्य हो। ऐसा न होने पर नई लय भी नई चेतना का गला घोंट सकती है। शाब्दिक लय तथा-कथित अर्थ की लय का ही प्रत्यक्ष रूप है। सुकवि अपनी चेतना को बने-बनाये साँचे में नहीं ढालता, किन्तु उसकी प्रकृति के अनुकूल नया रूप विधान करता है। पाठक या श्रोता पहले इस रूप-विधान को देखते हैं और तब उसके सहारे कवि की चेतना की गति को पकड़ते हैं। इस प्रकार शब्द और अर्थ की लय में पूर्ण सामंजस्य की आवश्यकता के कारण शाब्दिक लय की अवहेलना नहीं की जा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



'भारतीय भाषाओं में नई कविता : कुछ नोट्स' के रचयिता प्रभाकर माचवे निवेदन करते हैं कि **"हिन्दी में यह नई कविता का आन्दोलन अन्य सभी वादों की भाँति बहुत विलम्ब से आया है···।"** उसके आगमन का उपयुक्त समय क्या होता इसका निर्णय वे ही करें। अन्य भारतीय भाषाओं में इस आन्दोलन की स्थिति का परिचय देना उनके 'नोट्स' का उद्देश्य है। सारांश यह है कि पुराने-नये का यह संघर्ष सभी भारतीय भाषाओं के काव्य में दृष्टिगोचर होता है। इसी के साथ विभिन्न प्रान्तों के कुछ कवियों के नामों की सूची मिलती है। नई कविता के विषय में जो कुछ तथ्य उन्होंने संचित किये हैं, उनका एक उदाहरण विशेष लक्षणीय है। उड़ीसा के कवि गोपालचन्द्र मिश्र ने माचवेजी को बतलाया कि जब उनकी कविता में एटम बम की उपमा प्रेयसी की आँखों से दी गई तो पाठक सहसा चकित हो गए। चकित न होकर माचवेजी ने स्पष्टीकरण चाहा। कवि बोले—"पुराने खेवे के आलोचक अपने दृष्टिकोण को बदलने की असमर्थता के समर्थन में ऐसा ही कहते हैं। वस्तुतः नये विज्ञानाविष्कारों ने हमारे—रचनाशील सृजनशील कलाकारों के सामने एक चुनौती फेंकी है। भाषा अब बचकानी नहीं रही। बच्चा भी अब समझता है कि कमल-लोचन कहने से केवल देवालय के देवता की मूर्ति का बोध होता है। मनुष्य के लिए यह प्रयुक्त करना उसे पत्थर बना देना है। क्या कर-कमल और पद-कमल हम केवल ध्वनि-शून्य परम्परित शब्दावली की तरह प्रयुक्त नहीं करते ?'[8] इसके बाद माचवेजी लिखते हैं—**"इसी प्रकार कई नये उड़िया कवियों से मिलने से मैं समझ सका।"** वे क्या समझे यह शायद हमारी समझ पर छोड़ दिया गया है। अब रास्ता यही है कि या तो आप एटम बम की उपमा प्रेयसी की आँखों से देखकर सृजनशील काव्य की अनुभूति कीजिए अथवा 'पुराने खेवे के आलोचक' और 'बचकाने' बनने के लिए तैयार हो जाइए। अन्त में माचवेजी निर्णय करते हैं कि **"अब इन सूचनाओं के बाद···हिन्दी के बारे में कहने को क्या रह जाता है ? 'लोगा मति के भोरा रे'** मसीहा बोल गया, अब चुप्पी में ही भलाई है।

'नई कविता' के समर्थन में नये-नये तर्क खोजकर निकाले जाते हैं। बालकृष्णराव ने इस विषय पर कुछ सन्तुलन के साथ कहने का प्रयास किया है—**"स्पष्टता, दुरूहता, दीक्षागम्यता के आरोप नई कविता पर लगाये जाते हैं···। आरोप सर्वथा अनुचित भी नहीं हैं और न इस पर आश्चर्य करना चाहिए कि जिस भावक-वर्ग की दृष्टि निराकार को साकार मान सकी वह नई कविता में नयेपन के सिवा कुछ क्यों नहीं देख पाती ? दोष दोनों का है। अँधेरे से रोशनी में आने पर दृष्टि को अभ्यस्त होने में कुछ देर लगती ही है। यह भी सत्य है कि नई कविता के नाम पर इतनी बेमतलब और बेसिर-पैर की चीजें धड़ाधड़ सामने आती रही हैं कि देखने वाला इतना चकित हो गया है कि वह निश्चयपूर्वक अपने-आप से भी यह कहने से हिचकता है कि उसे कुछ मिला या नहीं।···यदि नक्कालों की संख्या बहुत हो गई है···।"** पहला लक्षणीय तथ्य यह है कि छायावाद और 'नई कविता' की तुलना क्रमशः अँधेरे और रोशनी से की गई है। क्या यह साधार है ? इसी प्रकार 'नई कविता' की पहचान को एक विशेष कला में बदल दिया गया है। नक्काल-बहुल स्थिति में सत्य की पहचान पारखी ही तो कर सकते हैं। निष्कर्ष निकाला गया है कि ज़िस चीज के इतने नक्काल पैदा हो रहे हैं उसकी जड़ जमती जा रही है। अच्छा होता यदि बालकृष्णराव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नक्कालों की एक सूची भी दे देते, जिससे जो स्वयं बड़े पारखी बनने की शक्ति नहीं रखते वे सतर्क हो जायँ और असल और नकल की तुलना करके असल को पहचानने की योग्यता क्रमशः प्राप्त कर सकें।

किन्तु प्रतीत होता है कि बीमारी बहुत गहरी उतर गई है और नये कवियों में परिगणित वर्ग में कुछ सचेत तत्त्व उठने लगे हैं। 'नई कविता' अंक ३ में नरेश मेहता ने स्वतंत्र और स्वस्थ विचारणा की ओर कदम बढ़ाया है। उनकी यह व्याख्या 'दूसरे सप्तक' में प्रस्तुत उनके वक्तव्य से मिलाकर देखने योग्य है। वहाँ वे राजनीति और साहित्य को पर्यायवाची मानते हैं, अपनी पिछली छायावादी एवं रहस्यवादी कविताओं को कविता मानने से इनकार करते हैं। हिन्दी में नये प्रयोगों की आवश्यकता दिन-पर-दिन बढ़ती हुई बतलाते हैं और द्वितीय वाली बात पसन्द न करके अपनी मौलिकता और व्यक्तित्व का आग्रह करते हैं। 'नई कविता' में उनका प्रथम वक्तव्य है कि **"अनास्था और किसी वस्तु को भले ही जन्म दे सके किन्तु कला एवं साहित्य को नहीं। अस्वीकार, सभी श्रेष्ठ पूर्व स्वीकृतियों के अशुभ अपंगत्व पर अट्टहास करता हुआ गिद्ध है।······साहित्य, स्वीकारोक्ति है।·········अनास्था, आत्महत्या है। आत्महत्या, राजनीति की स्थिति तो हो भी सकती है, किन्तु साहित्य की वह नियति नहीं।"** इसके पश्चात् आधुनिकता, विज्ञान और प्रगतिशीलता के नाम पर कवियों से जिस अनुगामिता की अपेक्षा की जाती है उसके विरुद्ध वे कहते हैं कि **"राजनीति ने हमें क्रीत दासत्व दिया है।"**

दूसरी पंगु बनाने वाली वस्तु विलायती क्षयिष्णु वैयक्तिकता है—**"हम जीनियस के रोग से पीड़ित रहने लगे। हमने वैयक्तिक संकट के नाम पर जिस बीमार व्यक्तित्व को साहित्य में व्यक्त होने दिया वह था अनुत्तरदायित्वपूर्ण आत्मरति भाव। इस काल में या तो राजनीति के क्रीत दासों ने प्रणयन किया या फिर इन बीमार आधुनिकों ने। राजनीति के पास देने के नाम पर दासता थी और इस विलायती वैयक्तिकता के पास देने के नाम 'द्वीप-भाव' था।"**

'नई कविता' के संकट और प्रयोग के विषय में जो कुछ उन्होंने लिखा है वह और भी ध्यान देने योग्य है—**"······नवीनता अपने में कोई साध्य नहीं। इधर अनेक नई कविता के सामूहिक संकलन मिले हैं जिन्हें देख बोध हो जाना चाहिए कि प्रयोग एवं प्रचार में एक सीमा होती है। जीवन-भर कोई प्रयोग तथा प्रचार की दुहाई दे सकता है। इस नई कविता को साहित्य में आये आज १५ वर्ष होने आए। इतने दिनों के उपरान्त भी यदि हमारी कविताओं की यही दशा है तो निश्चय ही यह कोई श्रेष्ठ स्थिति हो सो नहीं। वस्तुतः हम अपनी कविताओं के खोखलेपन को जानते हैं।······दुःख तो यह है कि हम······उसे छुपाने की कला में निष्णात् भी हैं।······इधर के संकलनों को देखकर स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कविता में आज अज्ञानता, उच्छृङ्खलता आदि बातें मौलिकता मानी जा रही हैं। परम्परा से हीन होने को आधुनिकता की संज्ञा दी जा रही है। हम नये कवियों की सबसे बड़ी कमजोरी है कि काव्य की रचना से भी अधिक आवश्यक यह है कि हमारा कवि का व्यक्तित्व ही नहीं है।······दूसरी ओर भावना की अपेक्षा जिस तर्क-चातुर्य को प्रश्रय दिया गया, यह भी ठीक नहीं हुआ। आज की हमारी कविता तथा हमारे व्यक्तित्वों के बौनेपन को गम्भीर संकट**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**के रूप में अनुभव करना होगा नहीं तो नई कविता अपनी सारी चमक-दमक से भी कोई महत्त्वपूर्ण कृतित्व एवं कृतिकार नहीं दे पायेगी।"**

उपर्युक्त वक्तव्य यह सिद्ध करते हैं कि वे समीक्षक, जिन्हें 'नई कविता' प्रिय नहीं लग पाई, अनिवार्यतः विद्वेषी नहीं हैं। उनके निर्णय के पीछे तथ्य हैं। यह विश्वास भी दृढ़ होता है कि सच्चा कवि बहुत समय तक अपने कर्तव्य को न पहचानने की भूल नहीं कर सकता। नरेश मेहता एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने विश्वास को दृढ़ता के साथ कहने का सदा साहस किया है। इसकी उन्होंने चिन्ता नहीं की कि दूसरे उनसे सहमत हैं या नहीं। अतएव यदि 'नई कविता' के पुरस्कर्ता उनके प्रति वक्र होने लगते हैं तो इससे उनकी बातों की साधारणता और सत्यता में कोई बाधा नहीं होगी।

प्रस्तुत निबन्ध में हमने उन तर्कों पर विचार किया है जो 'नई कविता' के नाम पर सामने लाये गए हैं। हमने यह निरूपित करने का प्रयत्न किया है कि जिस अर्थ में 'नई कविता' को आगे ठेला जा रहा है वह संकीर्ण है और आधुनिक युग की समस्त कविता उसके कुछ अच्छे अंशों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। उसकी सीमा के अन्तर्गत होने वाली चर्चा अनिवार्यतः सीमित हो जाती है। 'नई कविता' के नाम पर प्रस्तुत किये गए मत और निर्णय वर्तमान हिन्दी-काव्य की समष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उन्हें हम मुरारि के 'तृतीय पंथ' (मुरारेस्तु तृतीयः पंथाः) से अधिक और कुछ नहीं कह सकते।

पुस्तकालय 079554 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*रामरतन भटनागर*

# आधुनिक पश्चिमी काव्य

: १ :

आधुनिक काव्य को हम एक प्रकार से १७६८-१८२० ई० तक के रोमांटिक काव्य का परवर्त्ती विकास मान सकते हैं। वास्तव में यूरोप में रोमांटिक काव्य का पहला उच्छ्वास १८२० ई० तक समाप्त हो जाता है और १८६० ई० के लगभग टेनीसन, ब्राउनिंग, प्रीरेफलाइट वर्ग, स्विनबर्न और बोदलेर के काव्य में हमें उसका दूसरा चरण मिलता है। इस दूसरे उच्छ्वास के कवियों की बहुत सी मान्यताओं और काव्य-प्रक्रियाओं ने नये काव्य को जन्म दिया और पो, रिम्बो, मेलार्मे, वर्ले और पाल वेलरे को हम इस नये काव्य का प्रवर्तक कह सकते हैं। वास्तव में काव्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण में बराबर परिवर्तन होता गया है, परन्तु मूलाधार नहीं बदले हैं। काव्य की प्रकृति अब भी स्वच्छन्दतावादी या रोमांटिक है, यद्यपि उसने नियमनिष्ठ ( क्लासिकल ) शैली और सामाजिक बोध से भी बहुत-कुछ नया ग्रहण किया है। कुछ अन्य कारणों से हम उसे रोमांटिक काव्य के भीतर एक स्वतन्त्र धारा के रूप में देखते हैं। नई काव्यधारा और रोमांटिक काव्यधारा के अनन्य सम्बन्ध पर विचार करता हुआ 'एक्ज़िल्स केसिल' का लेखक एडमंड विलसन कहता है—"**उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रोमांटिक आन्दोलन ने जो समस्याएँ उठाई थीं, आज हम उनसे भली भाँति परिचित हैं। हम आज भी नियमनिष्ठता (क्लासिसिज़्म) और स्वच्छन्दता को लेकर तर्कवाद उपस्थित करते हैं और समसामयिक साहित्य को इन्हीं शब्दों की परिधि में बाँधना चाहते हैं। फिर भी हमारे अपने युग का काव्यान्दोलन न तो केवल स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का पतन है, न उसका प्रसार। उसे हम उसका पूरक ही अधिक कह सकते हैं। वह उसी ज्वार की दूसरी लहरी है। और ज्वार का यह रूपक भी उस पर पूर्णरूपेण लागू नहीं होता। आज जो हमारे सामने प्रस्तुत है, वह पूर्णतः स्वतन्त्र आन्दोलन है जिसका जन्म भिन्न परिवेश से हुआ है और जिसकी व्याख्या के लिए हमें भिन्न परिभाषा गढ़नी होगी।**" जो हो, यह स्पष्ट है कि नये काव्य की प्रवृत्ति भिन्न होने पर भी रोमांटिक काव्यधारा के परिवेश में उसे समझाने में सरलता हो सकेगी।

रोमांटिक काव्यधारा के कारण काव्य और समाज में एवं कल्पना और व्यवहार के जगत् में बहुत गहरी खाई पड़ गई थी, यद्यपि रोमांटिक कवियों की काव्यानुभूति के कारण यह बात अधिक असुविधाजनक सिद्ध नहीं हुई। रोमांटिक आन्दोलन व्यक्ति का विद्रोह था। जिस परम्परावाद के विरुद्ध यह विद्रोह उठा था, उसकी अपनी कुछ विशेषताएँ थीं। उसमें राजनीति और नैतिकता के क्षेत्रों में समाज की समूहगत चेतना का प्रसार था और कला के क्षेत्र में निर्वैयक्तिकता उसका आदर्श थी। क्लासिकल कलाकार अपने चित्र के केन्द्र में उस



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रकार प्रतिष्ठित नहीं होता था जिस प्रकार रोमांटिक कलाकार। वह अपने नायक की सत्ता में विलीन नहीं हो जाता और कथा के बीच-बीच में अपने व्यक्तिगत भावोच्छ्वास को स्थान देना कदाचित् उसके लिए कलाच्युति थी। परन्तु रोमांटिक कृतियों में या तो लेखक (या कवि) ही नायक है या वह अपने नायक से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेता है और इस तरह लेखक का व्यक्तित्व और उसका भावोच्छ्वास पाठक के लिए अदम्य रूप से आकर्षक बन जाता है। ये कलाकार समाज के समष्टिगत अधिकार के समकक्ष व्यक्ति के अधिकार को उभारते हैं। परम्पराओं, रूढ़ियों, नैतिक प्रतिबन्धों, धर्म और शासन की जड़ीभूत संस्थाओं और प्रवृत्तियों के प्रति वे खड्गहस्त हैं। वास्तव में रोमांटिक कलाकार मूलतः विद्रोही है, परन्तु इस विद्रोह का एक दूसरा रूप भी है और वह विशेषतः ऐतिहासिक है। श्री ए० एन० व्हॉइटहेड ने अपनी पुस्तक 'साइंस एण्ड द माडर्न वर्ल्ड' में इस दूसरे रूप का विशदता से उद्घाटन किया है। ह्वाइटहेड के अनुसार रोमांटिक धारा वस्तुतः वैज्ञानिक विचारधारा अथवा विश्व को यांत्रिक संगठन मानने वाली विचारधारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। यूरोप की सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियाँ जहाँ कलापक्ष में क्लासिक्स के प्रभाव को सूचित करती हैं, वहाँ विचार-क्षेत्र में डेकार्टे और न्यूटन का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस युग में कवि प्रकृति और विश्व को स्वचालित यंत्र मानने लगे थे और उनके लिए मानव प्रकृति भी उसी प्रकार पूर्वनिर्दिष्ट, जड़-वत् और यांत्रिक थी। रोमांटिक कलाकारों की प्रकृति-चेतना अत्यन्त सूक्ष्म और कोमल थी। उनके लिए विश्व महान् यंत्र न होकर एक रहस्यमय सत्ता थी। उनके मत में मानव-प्रकृति को किन्हीं दो-चार सूत्रों में बाँधना असम्भव बात थी। वर्ड्सवर्थ के काव्य में वैयक्तिक अनुभूति और बाइरन के काव्य में वैयक्तिक धारणा की प्रधानता है और इन कवियों को अपने भीतर के रहस्यानुभवों, द्वन्द्वों और संघर्षों को वाणी देने के लिए एक नई ही भाषा का निर्माण करना पड़ा है। एक प्रकार से यह मनुष्य की चेतना में क्रांति का सूचक है। जहाँ सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक विश्व-प्रपंच को मशीन मानते थे और मनुष्य को प्रकृति से अलग स्वतंत्र और बाहरी वस्तु, वहाँ वर्ड्सवर्थ जैसे रोमांटिक कवियों ने विश्व-प्रपंच को मूलगत चेतना का रूप माना और पर्वतों-नदियों के साथ मनुष्य को भी रखा। उनका कहना था कि विभिन्न इन्द्रियों के कार्य-व्यापार और उनसे प्राप्त बहिरानुभूतियाँ अखण्ड और अवि-च्छिन्न हैं और उन सबको लेकर ही उस इकाई की सृष्टि होती है जो परम सत्य है। इस विचारधारा के अनुसार मनुष्य और जड़ प्रकृति में कोई द्वन्द्व नहीं है। मानव की अनुभूति और जड़ प्रकृति अन्तर्सम्बन्धित हैं और विकासमान हैं, यद्यपि हम अपने परम्परागत कार्य-कारण-सम्बन्धी अथवा जड़-चेतन-सम्बन्धी विचारों के कारण इस अनन्य सम्बन्ध की आत्मानु-भूति नहीं कर पाते। इस प्रकार रोमांटिक काव्य प्रकृति के प्रति नई अंतर्दृष्टि का प्रचारक है। वह अपने चारों ओर के परिवेश में डूब जाता है और वस्तुओं का अन्तरंगी एवं तथागत वर्णन करता है। उसकी भाषा प्रतीकों और कल्पना-चित्रों के क्षेत्र में नई चेष्टाएँ लाती है, भले ही वह इसमें पूर्णतः सफल नहीं हो, और उसका भावोच्छ्वास इस नई भूमि पर हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है। वास्तव में मूर्तिमत्ता के क्षेत्र में क्रांति, दर्शन के क्षेत्र में क्रांति की सूचक है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में विज्ञान ने मनुष्य, प्रकृति और विश्व-प्रपंच की भौतिक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वादी और यांत्रिक व्याख्या के स्थान पर नई विकासवादी व्याख्या को जन्म दिया, जिसने मनुष्य के अहं पर प्रहार किया और उसे एक बार फिर रोमांटिक कवियों की महत् कल्पना से नीचे उतारकर क्षुद्र और नगण्य प्राणी बना दिया जो पशु के स्तर पर चेतनावान है। वंशानुक्रम और परिवेश, ये दो तत्त्व ही मानव-विकास के मूल तत्त्व माने जाने लगे और साहित्य में भी प्रकृतिवाद के नाम से इन दोनों की पूजा होनी लगी। ज़ोला के उपन्यासों में इस विचारधारा का पूर्ण उत्कर्ष दिखलाई देता है। प्रकृतिवाद के विकास में स्वच्छन्दतावाद की अतिभावुकता और शिथिलता की भी प्रतिक्रिया समन्वित थी और उसने क्लासिकल काव्य की तटस्थता और रूपात्मकता को भी एक सीमा तक अपना लिया था। फ्रांस में इस प्रतिक्रिया ने प्रचुर साहित्य को जन्म दिया। अंग्रेजी साहित्य में प्रकृतिवाद की स्पष्ट रूपरेखा नहीं दिखलाई पड़ती, परन्तु रोमांस के विरुद्ध यथार्थ की भावना का बराबर विकास होता गया है। ब्राउनिंग और टेनीसन के काव्य में शिल्प की जड़ता और वर्णन की तथ्यवादिता काफ़ी मिलती है और रूपात्मक परिपूर्णता एवं सूक्ष्म चित्रण का उसी प्रकार प्राधान्य है जिस प्रकार पोप के काव्य में प्रकृतिवाद का विशेष विकास काव्य के क्षेत्र में न होकर नाटक और उपन्यास के क्षेत्र में हुआ और इब्सन तथा फ्लाबेर की रचनाओं में उसका बड़ा प्रभावशाली रूप हमें मिलता है। रोमांटिक काव्य के परवर्ती विकास के लिए हमें फ्रांस के कुछ कवियों को लेना होगा।

: २ :

नई कविता का पहला स्पन्दन हमें फ्रांस के जेरार्द द नर्वल के काव्य में मिलता है। इस कवि का विचार था कि दृश्यमान जगत् हमारे मनःचिन्तन से, जितना गहरा हम समझते हैं, उससे कहीं अधिक सम्बन्धित है और हमारे स्वप्न और भ्रम भी किसी प्रकार यथार्थ से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। इस विचारधारा के कारण उसके काव्य में प्रकृति का अत्यन्त संवेदनाशील, व्यक्तित्वनिष्ठ चित्रण हुआ है और उसमें भीतर-बाहर मिलकर एक हो गए हैं।

परन्तु वास्तव में इस काव्यधारा को स्थायित्व देने का श्रेय एडगर ऐलेन पो को प्राप्त है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में अमरीकी रोमांटिक लेखक पो, हाथर्न, मेलविले, विटमेन और इमर्सन प्रतीकवाद की ओर अग्रसर होने लगे थे और फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन का इतिहास बोदलेर द्वारा पो की खोज से शुरू होता है। बोदलेर ने पो को १८४७ ई० में पढ़ा और १८५३ ई० में उसने पो की कुछ कहानियों का अनुवाद प्रकाशित कराया। इसके बाद से पो का प्रभाव फ्रांसीसी-साहित्य में बढ़ता ही गया। बोदलेर पो की समीक्षात्मक रचनाओं से भी परिचित हुआ और ये रचनाएँ प्रतीकवादी आन्दोलन का परिपत्र बन गईं। पो के काव्य में बहुत-कुछ ऐसा था जो उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक काव्य की पुनर्ध्वनि था, जैसे कॉलरिज की रचना 'कुबलाखाँ' और उसके गद्य को भी हम डिक्येन्सी के गद्य के सामने रख सकते हैं, परन्तु उसने कॉलरिज के बाद पहली बार निश्चित सिद्धान्त खड़े किये और स्वच्छन्दतावाद के कुछ पहलुओं पर विशेष बल देकर एक नई काव्यधारा को जन्म दिया। यह धारा रोमांटिक धारा की शिथिलता और भाषा के क्षेत्र में उसकी अतिवादिता की विरोधिनी थी। काव्य के सम्बन्ध में उसकी कुछ निश्चित-धारणाएँ थीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NOT TO BE ISSUED



(१) **"मैं जानता हूँ कि अनिश्चितता सच्चे काव्य (और संगीत) का अंग है, यदि वह काव्य या संगीत सचमुच में उत्कृष्ट है। यह अनिश्चितता व्यंजनात्मक ढंग से अस्फुट और फलतः आध्यात्मिक प्रभाव संपन्न हो।"** (पो) इस अनिश्चितता का आभास देना प्रतीकवाद का प्रधान लक्ष्य या। इसके लिए कई साधन थे, जैसे (क) वस्तुजगत् और कल्पना के जगत् को भावना में अत्यन्त निकट ले आना। (ख) विभिन्न इंद्रियानुभूतियों को समीकृत रूप में अनुभव करना, जिससे जीवनानुभूति की एकता का आभास हो।

(२) उसका विश्वास था कि काव्य का मूल स्रोत मानवता की उन गहराइयों, उन परछाइयों और खामोशियों में खोजना चाहिए जहाँ मनुष्य और उसके भवितव्य का संघर्ष चलता है, परन्तु ये गहराइयाँ लुकी-छिपी रहती हैं, चेतन मन की पहुँच उन तक नहीं है। उन साहसी व्यक्तियों को छोड़कर, जो उन गहराइयों की खोज़ का व्रत ले लेते हैं, शेष मानवों के लिए वे अनियंत्रित और आकारहीन हैं।

(३) पो के विचार में अंतरात्मा की गहराइयों की खोज कला और शिल्प के उन सूत्रों द्वारा सम्भव है जिन पर कलाकार का विशेष अधिकार है। उसके मतानुसार कलाकृति का निर्माण उसी तरह सूक्ष्म पद्धतियों पर विकसित हो सकता है जिस तरह विज्ञान की किसी कृति का अथवा किसी व्यावहारिक संस्था का। उसके पहले कदाचित् किसी का भी ध्यान इस ओर नहीं गया था कि कविता का प्रभाव इस सीमा तक शिल्प पर आधारित है। पो न होता तो बोदलेर अपने को 'स्वप्न-देश का स्थापति' नहीं कहता, न मेलार्मे निश्चित शब्द के माध्यम से शाश्वत सत्य की खोज में अपना जीवन बिताने का साहस करता। पॉल वेलेरे ने कविता के जादू की जो इतनी पद्धतिबद्ध खोज की, तो उसके पीछे पो के विचारों की ही प्रेरणा थी। यह स्पष्ट है कि नई कविता का सैद्धान्तिक पर्दा पो की मान्यताओं और उसकी कृतियों से अनिवार्यतः प्रभावित है और उसे हम प्रतीकवाद का जनक कह सकते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बुद्धि पर संवेदनाओं का आलेखन कोई नई बात नहीं थी और हमें अनेक रचनाएँ ऐसी प्राप्त हुई जिनमें काव्य का संगीतात्मक, अतर्कित और स्वप्नवत् रूप प्रतिष्ठित था। ये तत्त्व अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य में प्रचुर मात्रा में प्रतिष्ठित थे। इसीलिए अंग्रेजी पाठकों को फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन में कोई विचित्रता दिखलाई नहीं पड़ी। काव्य में जिन नये तत्त्वों का उपयोग हुआ, वे अंग्रेजी काव्य के लिए एकदम नये नहीं थे। वास्तव में एलिज़ेबेथ युग (सोलहवीं शताब्दी) के काव्य में ये उपकरण विद्यमान थे। ये नये तत्त्व थे कल्पना-चित्रों का प्रचुर उपयोग, रूपक-संकर, भाव की तीव्रता और बौद्धिकता का एक साथ निर्वाह, बौद्धिक और आध्यात्मिक भावस्तरों का एकीकरण, शैली के क्षेत्र में वैचित्र्य की दृष्टि। गद्यात्मक उपकरणों के साथ अतिशयात्मक भाव-शैली का उपयोग उसी युग में दिखलाई देता है। सच तो यह है कि एलिज़ेबेथ-युग के काव्य में वे सभी उपकरण थे जिनके द्वारा रोमांटिक काव्य-शैली का सृजन हुआ। इन्हीं के विरोध में अठारहवीं शताब्दी में नये काव्य का जन्म हुआ। प्रतीकवादी इन्हीं उपकरणों की ओर लौटे।

फ्रांस के इस प्रतीकवाद ने समस्त छन्दशास्त्र को उलट-पुलट कर दिया। उसके निर्माण में जर्मन, फ्लेमिश, ग्रीक और अंग्रेजी स्रोतों से बहुत-कुछ लिया गया है, अधिकतः अंग्रेजी से। वर्लें, मेलार्मे और बोदलेर, तीनों अंग्रेजी साहित्य से पूर्णतः परिचित थे। बोदलेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

REFERENCE BOOK

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर पो के प्रभाव की बात हम पहले कह चुके हैं। दो अन्य प्रारम्भिक प्रतीकवादी कवि स्टुअर्ट मेरिल और फ्रेन्सिस वेले ग्रिफिन अमरीकन थे, परन्तु पेरिस को उन्होंने अपना निवासस्थान बना लिया था और फ्रांसीसी में रचना शुरू कर दी थी। इनकी रचना का सबसे बड़ा और क्रांतिकारी कदम यह था कि इन्होंने फ्रांसीसी काव्य के मूलाधार 'अलेक्जेण्ड्रीन' छन्द के साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया था और उस तरह के अंग्रेजी स्वच्छन्द छन्द (इर्रेगुलर मीटर) प्रचलित किये थे जैसे आर्नाल्ड और ब्राउनिंग की रचनाओं में पाये जाते थे। इस तरह फ्रांसीसी काव्य-भूमि छन्दों की जड़ता से मुक्त हुई।

परन्तु इस नई काव्यधारा की सबसे बड़ी विशेषता थी इसकी सैद्धान्तिक भूमि। वास्तव में एक नये सौन्दर्य-शास्त्र का ही निर्माण हो गया। इस सौन्दर्य-शास्त्र का जन्मदाता मेलार्मे है। स्टेफेन मेलार्मे (१८४२–६८) को प्रतीकवादी आन्दोलन में वही स्थान प्राप्त है जो रोमांटिकों में कॉलरिज को प्राप्त है। वही प्रतीकवादियों का मंत्रगुरु था। उसकी अपनी मान्यताओं में से कुछ तो पो से ली गई थीं, जैसे, (१) यह मान्यता कि विभिन्न इन्द्रियों के संवेदन परस्पर रूपांतरित हो सकते हैं; और (२) काव्य संगीत से अभिन्न है और इसलिए उसमें संगीत के तत्त्वों और प्रभावों की योजना आवश्यक है। प्रतीकवाद काल्पनिक और वस्तु-जागतिक संवेदनाओं और अनुभूतियों को एक मानकर चलता है!

हमारी संवेदनाओं और कल्पनाओं, हमारी संकल्पात्मक अनुभूति और हमारे कृतित्व में बड़ा विरोध है, यह प्रतीकवादी मानते हैं। वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक आन्दोलन की भांति यह भी विरोधमूलक आन्दोलन है। प्रकृति के यांत्रिक रूप की कल्पना और मनुष्य की सामाजिक धारणा के विरोध में नये (प्रतीकवादी) कवियों ने काव्य को व्यक्ति की भावनाओं और संवेदनाओं का प्रतिरूप बना दिया। इस तरह से वह स्वच्छन्दतावाद से एक विशेष दिशा में आगे बढ़ा हुआ कदम था। फलतः काव्य नितान्त व्यक्तिगत वस्तु बन गया और कवि पाठक के प्रति निवेदित होने की जिम्मेदारी से छुटकारा पा गया।

प्रतीकवादियों के प्रतीक सामान्य ढंग के प्रतीक नहीं थे जिनसे हम दांते के धार्मिक काव्य से या अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य से परिचित थे। दांते और रोमांटिकों के प्रतीक परम्परागत, निर्विशिष्ट और वैयक्तिक थे। नये प्रतीकवादी कवियों के प्रतीक पूर्णतः व्यक्तिगत थे। कवि बहुधा अपनी अन्यतम गोपनीय अनुभूतियों के लिए विशेष प्रतीक चुन लेता है और जब तक हम इस प्रतीकयोजना से परिचित नहीं हो जाते, तब तक हम उसकी अनुभूति के मूल स्रोत तक नहीं पहुँच पाते। नये प्रतीकवादी कवियों की प्रतीक-सम्बन्धी मान्यता मेलार्मे के इन शब्दों में ध्वनित होती है—"**पर्नासी कवि वस्तुओं को तथ्यगत ग्रहण करता है और उसी रूप में उन्हें हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इसी का फल यह होता है कि उनमें रहस्य का अंग शेष नहीं रह जाता। वे मन को सृजनशीलता अथवा कर्तृत्व के आनन्द से वंचित रखते हैं। वस्तुओं को नाम देकर हम कविता का तीन-चौथाई आनन्द नष्ट कर देते हैं। इससे अनुमान और शनैः-शनैः अनावृत्ति का आनन्द जाता रहता है। कल्पना का आनन्द है वस्तु की व्यंजना, उसका भाव-निर्माण।**" (विलसन के 'एक्ज़िल्स केसिल' में उद्धृत) प्रतीकवादी अनुभूति या काव्यवस्तु को वर्णित या सूचित करना नहीं चाहते, वे उस अनुभूति या वस्तु को ही पाठक को देना चाहते हैं। उन्होंने काव्य-प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुछ बड़ी उलझी और सूक्ष्म धाराएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बना ली हैं। उनका कहना है कि हमारी चेतना का प्रत्येक क्षण दूसरे क्षण से भिन्न है और इसीलिए हमारी भाव-संवेदनाएँ और रसात्मक प्रतिक्रियाएँ सतत परिवर्तित और प्रवहमान हैं। फलतः काव्यभाषा-शैली के परम्परागत रूपों में उन्हें बाँधना कठिन है। प्रत्येक कवि अपने काव्य में अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है और श्रेष्ठ काव्य में उसके व्यक्तित्व का यह निजी रूप ही उभरना चाहिए। कवि का लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह अपने अन्यतम व्यक्तित्व और संवेदना के अन्यत मक्षणों का अनुभव पाठक को दे सके। इसके लिए विशिष्ट भाषा का निर्माण अनिवार्य है। यह भाषा प्रतीक भाषा होगी। विशिष्ट प्रवहमान, अस्पष्ट और रहस्यमय चेतना और भाव-संवेदन को तथ्य-कथन अथवा वर्णन-शैली द्वारा ग्रहीत नहीं बनाया जा सकता। केवल कल्पना-चित्रों और व्यंजनात्मक शब्दों एवं प्रतीकों द्वारा कवि इस क्षेत्र में सफल हो सकता है। ये कल्पना-चित्र और प्रतीक संगीत के सुरों की तरह सूक्ष्म, निर्विशेष और मार्मिक होंगे। अपने भावोन्मेष में प्रतीकवादी कवि यह भूल गया कि शब्द केवल नाद और रंग-रूप की ही व्यंजना पर समाप्त नहीं हो जाते, उनकी एक अर्थात्मक सत्ता भी है। वास्तव में प्रतीक-वादियों के प्रतीक सन्दर्भविहीन रूपक-मात्र थे और कवियों ने जान-बूझकर चेष्टित रूप से काव्य में उनका प्रयोग किया था। इस प्रयत्न में कलात्मक जागरूकता अधिक थी, कवि की आत्यंतिक भावविभोरता का अभाव था। फलस्वरूप कम प्रतिभावान कवियों के हाथ में यह आन्दोलन कलाकारिता का आन्दोलन बन गया, परन्तु श्रेष्ठतम कवियों में भी प्रतीकों के निजी और रहस्यमय चुनाव के कारण दुर्बोधता आ गई और अस्पष्टता का आग्रह रहा। विशिष्ट व्यक्तिगत संवेदनाओं और अंतर्जगत् के निगूढ़ आलोड़न-विलोड़न को काव्य-विषय बनाने के कारण ऐसा होना अनिवार्य था।

इस प्रकार प्रतीकवादी आन्दोलन का जन्म फ्रांस के काव्यक्षेत्र में हुआ, परन्तु बाद में यह आन्दोलन यूरोपव्यापी बन गया। कालान्तर में इसने सभी साहित्यकोटियों को अपना लिया। इस धारा का सबसे प्रमुख समीक्षक रेमे द गोरमां है। इलियट ने इसके प्रभाव को स्वीकार किया है। उन्नीसवीं शताब्दी का अंत होते-होते यह सबसे प्रमुख आन्दोलन बन गया। यीट्स के इस कथन में निश्चय ही बड़ा सार है—"**अट्ठारहवीं शताब्दी के बुद्धिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया उन्नीसवीं शताब्दी के भौतिकवाद से मिल-जुलकर एक हो गई है और प्रतीकवादी आन्दोलन, जो जर्मनी में वेगनर में, इंगलैंड में प्री-रेफिलाइट वर्ग में और फ़्रांस में वेलेर द ले आइल आदम्स, मेलार्मे और मेटरलिंक में पूर्णता को प्राप्त हुआ है और जिसने इब्सन और द एननजियो के भाव-जगत् को आन्दोलित किया है एकमात्र ऐसा आन्दोलन है जो कुछ नई बात कह रहा है।**" (१८९७) यीट्स ने इस कथन में जिन लेखकों का उल्लेख किया है वे सब-के-सब आज प्रतीकवादी धारा में नहीं गिने जाते, परन्तु यह निश्चय है कि मेलार्मे और परवर्ती फ्रांसीसी कवियों का यूरोपीय काव्यधारा पर विशेष प्रभाव पड़ा और इस प्रभाव को समझे बिना अमरीका और इंगलैंड के अनेक नये कवियों के काव्य से रस ग्रहण करना कठिन होगा। प्रतीकवादी धारा के तत्त्व अंग्रेजी काव्य के लिए नये न होकर भी नये सन्दर्भ में अद्भुत बन गए और अंग्रेजी काव्य-परम्परा में बद्ध आलोचक नये काव्य के साथ न्याय नहीं कर सके। इसीलिए इलियट के काव्य और ज्वॉइस के उपन्यासों के प्रति अंग्रेज समीक्षकों का दृष्टिकोण बहुत-कुछ कठोर, भ्रामक और असन्तुलित रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



: ३ :

प्रतीकवादी नई काव्यधारा के कुछ मूल सिद्धान्त हमें रिम्बो (१८५४-९१) के एक पत्र में मिल जाते हैं जो उसने सत्रह वर्ष की आयु में अपने एक मित्र को लिखा था। पॉल वेलेरे की यह मान्यता थी कि रोमांटिक कवियों का पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित है और इस पत्र में उसने इस पर विचार करते हुए कविता की एक नई परिभाषा ही उपस्थित की है जो प्रतीकवाद पर पूर्णतः लागू होती है।

"मेरी धारणा है कि कवि को द्रष्टा होना चाहिए, उसे अपने को 'द्रष्टा' बनाना होगा।" "कवि अपने को द्रष्टा इस प्रकार बनाता है कि वह निरन्तर साधना द्वारा अपनी समस्त इन्द्रियों को अनन्य गहराइयों तक और तर्कसाधित रूप में अस्तव्यस्त एवं विशृंखलित बना देता है। प्रेम, पीड़ा और पागलपन के सभी आवेगों को वह आहूत करता है। इनका गरल वह स्वयं पान कर लेता है और इनका सार-मात्र रह जाता है। उसके अपने पल्ले पड़ता है अवर्णनीय आत्मवेदन, जिसके सहन के लिए उसे सम्पूर्ण आस्था और अतिमानवीय शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इस चेष्टा में वह महारोगी, महापापी, महाभिशापित और महापंडित बन जाता है, क्योंकि इस तरह वह अज्ञात तक पहुँच जाता है, इसलिए कि वह इस प्रकार अपनी आत्मा को अन्य किसी भी व्यक्ति की आत्मा से अधिक सुसंस्कृत बना लेता है। वह अपरिमेय को आत्मसात् कर लेता है। फिर वह पागल भी हो जाय अथवा अश्रुत एवं नामहीन वस्तुओं द्वारा त्रस्त होकर अपने स्वप्न की पकड़ को भी ढीली कर दे, तो भी यह निश्चित है कि उसके बाद दूसरे कवि-साधक आएँगे और उन क्षितिजों से अपना कार्य आरम्भ करेंगे जहाँ पूर्ववर्ती कवि-साधक विफल हो गए हैं।" "कवि ने सत्य ही सर्जन की आदिम आग की चोरी की है।" "समस्त मानवता से वह (कवि) अन्तरंगी हो जाता है, यहाँ तक कि पशुओं से भी उसे तादात्म्य की प्राप्ति होती है। वह चाहता है उसने जो जाना है, लोग उसका अनुसरण करें, उसे अपनाएँ, उसे कान दें। उस पार से यदि वह 'रूप' लाता है तो 'रूप' देता है, 'अरूप' लाता है तो 'अरूप'। यही रूप या अरूप वह साहित्य को दे सकता है। नई भाषा का निर्माण उसका धर्म हो जाता है। भाषा अन्ततोगत्वा विचार ही है, इसलिए सार्वभौम भाषा का युग कभी अवश्य आएगा। किसी भी भाषा के कोश की रचना करते समय सम्पादक को भाषाशास्त्री होना पड़ता है—पुरावशेषों की तरह जड़ होना पड़ता है। दुर्बल धारणा वाले व्यक्ति बारहखड़ी के पहले वर्ण से ही उलझ बैठेंगे और पागल हो जायँगे।" "यह भाषा आत्मा के लिए आत्मवत् होगी। उसमें सब-कुछ समाहृत होगा—गन्ध, रंग, ध्वनि। उसमें विचार, विचार को उभारेगा और उसे तल पर लाएगा। कवि अपने राग में जगी अज्ञात वास्तविकता द्वारा विश्वात्मा का नक्शा देगा। वह अपने विचार के 'सूत्र' मात्र से कुछ अधिक हमें देगा। उसमें प्रगति की टीका-मात्र नहीं होगी। जब वह अपनी विपुलता में सब-कुछ सिमेटकर उसे एक 'मान' बनाने में सफल हो जायगा, तभी वह प्रगतिशील बन सकेगा।"

आगे चलकर उसने लिखा है—"मैंने दिवास्वप्न की आदत डाली। मैंने फैक्टरी के स्थान पर मस्जिदों, आकाश के इन्द्रधनुषी मार्गों अथवा झील के तल के ऐश्वर्य-कक्ष की अनुभूतियों को जन्म दिया। मैं अद्भुत विद्रूपों और रहस्यों से भर गया। कभी तो किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**'संगीत' की बात सुनकर ही मेरे सामने प्रेत नाचने लगते।" "तब मैंने अपनी जादुई अनुभूतियों को शब्दों के जादू का रूप दिया।" "अन्त में मुझे ज्ञात हुआ कि मेरा बुद्धि-विपर्यय पुण्यमय और पवित्र है।"[1]**

रिम्बो का बहुत अधिक काव्य हमें प्राप्त नहीं है, परन्तु जो है, उसमें वह मेलार्मे से अधिक सुन्दर कलाकार जान पड़ता है और उसने अपने मित्र वर्ले के माध्यम से भी फ्रांसीसी काव्य को प्रभावित किया है। वास्तव में सिद्धान्त के क्षेत्र में मेलार्मे और काव्य के क्षेत्र में रिम्बो नये आन्दोलन के दो अग्रदूत थे।

फ्रांसीसी प्रतीकवादी कवियों में मेलार्मे और रिम्बो के बाद पॉल वेलेरे (१८७१-१९४५) का नाम आता है। पॉल वेलेरे का प्रचुर काव्य हमें प्राप्त है। उसके काव्य-सिद्धान्त हमें 'इण्ट्रॉडक्शन टु द मेथड ऑव ल्यूनारडो द विंसी' (१८९४) और 'चार्म्स' की अलेन-कृत टीका की भूमिका में मिल जाते हैं। वेलेरे के अनुसार कला (या कविता)

(१) एक ऐसा यंत्र है जिससे विशेष कोटि के मस्तिष्कों को संवेदित किया जा सकता है।

(२) कविता एक उलझी हुई बौद्धिक समस्या है जिसके द्वारा कवि स्वयंनिर्मित सीमाओं से संघर्ष करता है, अर्थात् सबके ऊपर वह 'निर्माण' है, 'गढ़न्त' है।

(३) काव्य-प्रक्रिया में भावोत्तेजना को स्थान नहीं मिलना चाहिए।

(४) काव्य दैवी नहीं, जागरूक मानवीय चेष्टा है। विशेष दृष्टिकोण से वस्तु को देखने से ही रूपक की सृष्टि होती है। उसने इस बात पर अविश्वास प्रकट किया है कि काव्य-प्रतीकों और रूपकों का जन्म दैवी प्रेरणा से होता है और वे स्वर्गीय वस्तुएँ हैं। उसका कहना है कि जब वस्तुओं को एक विशेष प्रकार से देखते हैं तो काव्य-प्रतीकों और रूपकों की सृष्टि होती है, जैसे सूरज की ओर देखने से चकाचौंध लगती ही है। जब कोई वस्तुओं की ओर इस दृष्टि से देखता है तो कुछ ऐसा ही लगता है और किसी दिन इस 'कुछ ऐसे' को निश्चित परिभाषा में बाँधना सम्भव भी हो सकेगा। तब हम कह सकेंगे कि 'ऐसे-ऐसे' और संसार के सारे रूपक, प्रतीक हमें उपलब्ध हो सकेंगे।

(५) वास्तव में वेलेरे की काव्य-सम्बन्धी धारणा बहुत-कुछ साधनात्मक और गुह्य है। वह भी टी० एस० इलियट की भाँति कवि को रासायनिक प्रक्रिया में सहायक तत्त्व (केटेलिटिक एजेण्ट) मानता है जिसकी प्रक्रिया रहस्यमय है। गद्य का लक्ष्य है अर्थबोध, परन्तु काव्य का लक्ष्य कुछ अधिक रहस्यमय है।

(६) कविता में यह प्रश्न ही नहीं है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति अपनी मनःप्रक्रिया को पूरी समझ-बूझ के साथ निवेदित कर दे। प्रश्न है पाठक या श्रोता में ऐसी मनःस्थिति के निर्माण का, जिसकी अभिव्यक्ति निश्चयात्मक ढंग से और विचित्र रूप से वही हो जो कवि के भीतर प्रथम उन्मेष के समय रही होगी। जो भी प्रतिमान या भावोद्रेक काव्य-रसिक में निर्मित होता है, वह प्रामाणिक और यथेष्ट है, यदि वह उसके भीतर कारण-शब्द और कार्य-शब्द के बीच के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्माण कर सके। फल यह होता है कि पाठक विचारों के सम्बन्ध में सर्वरूपेण स्वतंत्र है। ऐसी स्वतंत्रता संगीतरसिक को भी प्राप्त है,

१. 'एक्ज़िल्स केसिल', पृ० २७०-२ पर उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



परन्तु वह उतनी आभ्यंतरिक नहीं है।

यह स्पष्ट है कि पॉल वेलेरे की इन मान्यताओं के कारण काव्य एक अत्यन्त दुस्साध्य कला हो जाता है और स्वयं वेलेरे ने इसे स्वीकार भी किया है। इन्द्रियानुभूतियों से परे वस्तु-सत्य की सूक्ष्म कल्पना और उसकी प्राप्ति का विधान कविता को गुह्य साधना बना देता है और उसे धर्म और दर्शन की अस्पृष्ट तथा तरल रेखाओं में बाँध देता है। फलतः काव्य प्रत्यक्ष दर्शन बन जाता है और कवि मर्मी का स्थान ग्रहण कर लेता है। इसमें सन्देह नहीं कि काव्य का यह नया आदर्श अन्ततः रोमांटिक ही है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस आदर्श ने काव्य की सीमाओं का विस्तार किया और रोमांटिक काव्य को बन्द गलियों में से बाहर निकाला। बाद में वह स्वयं बन्द गली में जा पहुँचा, परन्तु इससे आदर्श की सूक्ष्मता का ही पता चलता है। इसमें लांछा की बात कहाँ है?

: ४ :

मेलार्मे, रिम्बो और पॉल वेलेरे के बाद फ्रांस में प्रतीकवादी काव्यधारा ने एक नया मोड़ लिया और एक नई परम्परा स्थापित की। इस नई परम्परा के प्रमुख कवि त्रिस्तां कार्बी और जुले लफ़ार्गे थे। दोनों के काव्य-व्यक्तित्व का विकास अत्यन्त क्षिप्र गति से हुआ और दोनों ही कीट्स की भाँति तरुणाई में मृत्यु को प्राप्त कर अपनी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में अनेक अनुमान छोड़ गए। त्रिस्तां कार्बी की प्रमुख रचना है 'ले अमोर जोन्स, १८७३' (Le Amors Jaunes)। वर्लें ने १८८३ ई० में उस पर एक लेखमाला प्रकाशित की जिसे प्रतीकवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वर्लें की काव्य-कला पर इस तरुण कवि का काफ़ी प्रभाव पड़ा है। लफ़ार्गे का काव्य कार्बी के काव्य से अधिक आत्मचेतन, सचेष्ट और कलात्मक है। लफ़ार्गे ने जर्मन-दर्शन का भी अध्ययन किया था और उसकी पारिभाषिक शब्दावली द्वारा प्रतीकवाद में अस्पष्टता का प्रवेश हो गया, परन्तु फिर भी लफ़ार्गे प्रतीकवादी कवियों में सर्वविशिष्ट है। कार्बी और लफ़ार्गे ने फ्रेंच काव्य में एक नई कोटि की भाषा और नई भावना-धाराओं का समावेश किया। मेलार्मे के काव्य में हमें नई मूर्तिमत्ता मिलती है, परन्तु भावना का अभाव है। उसमें भाषा-शैली का अभिजात्य हमें मिलता है, परन्तु इन दोनों कवियों ने साधारण बोलचाल की भाषा और व्यंगात्मक शैली को प्रश्रय दिया। अंग्रेज़ी कवियों में टी० एस० इलियट के प्रारम्भिक काव्य में हम विशेष रूप से इन दोनों कवियों की प्रतिध्वनियाँ पाते हैं।

परन्तु इलियट से पहले हमें विलियम बटलर ईट्स पर विचार कर लेना है, जिसके प्रारम्भिक काव्य में हम रोमांटिक, प्री-रेफ़िलाइट और प्रतीकवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखते हैं। रोमांटिक और प्री-रेफ़िलाइट प्रभाव हमें विशेषतः 'द वांडरिंग आफ़ ओसिन' १८८६ में मिलता है। कुछ ही वर्षों बाद पेरिस में यीट्स की भेंट मेलार्मे से हुई और अपने मित्र आर्थर सिमन्स द्वारा वह प्रतीकवाद के सिद्धान्तों से परिचित हुआ। आर्थर सिमन्स ने मेलार्मे की कुछ रचनाओं का अनुवाद भी किया था और यीट्स के परवर्ती काव्य 'द विंड अमंग द रीड्स' से 'शेडोई वाटर्स' तक में हम प्रतीकवाद की छाया पाते हैं। उन दिनों यीट्स साहित्यिक क्षेत्र में प्रतीकवाद को ही एकमात्र आन्दोलन मानता था। १६०० ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के बाद यीट्स के काव्य में प्रतीकवादी तत्त्व कम होते गए और उसने आयरलैण्ड की लोकगाथाओं और पुराण-प्रतीकों को लेकर एक नई जातीय काव्यधारा का निर्माण किया, जिसका अपना विशिष्ट स्वरूप था।

अंग्रेज़ी प्रतीकवादी धारा को कोई सशक्त व्याख्याता नहीं मिला, यद्यपि हम वाल्टर पेटर को वह श्रेय दे सकते हैं जो फ्रांसीसी प्रतीकवादी काव्य-धारा के व्याख्याता के रूप में मेलार्मे को प्राप्त है। वाल्टर पेटर की विचारधारा भी बहुत-कुछ मेलार्मे से मिलती-जुलती है। उसका कहना है कि अनुभवों द्वारा हमें सत्य की शाश्वत रूपरेखाएँ प्राप्त नहीं होतीं जो अपरिवर्तनशील और नित्य हों, बल्कि हमें सत्य के विभिन्न सूक्ष्म धरातल मिलते हैं जो हमारे भीतर के अथवा हमारे दृष्टिकोण के परिवर्तन के साथ सूक्ष्म रूप से अनिवार्यतः बदल जाते हैं। **"समस्त वस्तुओं और उनकी सारभूत वास्तविकता को अनिश्चित पद्धति अथवा फ़ैशन मानना आधुनिक विचारधारा का चलन हो गया है।······मानवात्मा के प्रति दर्शन अथवा चिन्तामूलक संस्कृति की प्रमुख देन यह है कि उसके द्वारा मानवात्मा अनवरत और आकुल निरीक्षण के जीवन के लिए जाग्रत रहती है। प्रत्येक क्षण कोई आकार किसी-न-किसी अंग में परिपूर्णता प्राप्त करता है, प्रत्येक क्षण पर्वत या सागर पर अन्य से भिन्न कोई रंग झलक उठता है। संवेदना, अन्तर्दृष्टि अथवा बौद्धिक हलचल का कोई भाव अप्रतिहत रूप से यथार्थ और आकर्षक हो उठता है। केवल एक क्षण के लिए ही सही, परन्तु यही सार्थक क्षण है। अनुभूति का फल नहीं, अनुभूति ही चरम लक्ष्य है। वैविध्यपूर्ण और नाटकीय जीवन में से कुछ गिने-चुने स्पन्दन ही हमें मिलते हैं। उन कुछ क्षणों में हम वह सब-कुछ कैसे देख लें, जो सूक्ष्मतम इन्द्रियों द्वारा हम देखने में समर्थ हैं।"[1]**

: ५ :

आधुनिक अंग्रेज़ी काव्य की नूतनतम प्रवृत्तियाँ हमें हॉपकिन्स (जेरर्ड मेनले हॉपकिन्स, १८४४-८९) के काव्य में मिलती हैं। हॉपकिन्स का काव्य बहुत बाद को सामने आया। उसकी मृत्यु के बहुत बाद १९१६ ई० में उसके मित्र रॉबर्ट ब्रिज़ेज़ ने 'द स्पिरिट ऑव मेन' नाम के कविता-संकलन में हॉपकिन्स की छः रचनाएँ प्रकाशित कराईं और १९१८ ई० में उन्हीं के सम्पादन में हॉपकिन्स की रचनाओं का पहला संकलन प्रकाशित हुआ। रचनाओं की संख्या कम होने पर भी हॉपकिन्स के नये प्रयोगों ने काव्य-जगत् में हलचल पैदा कर दी। शब्द-प्रयोग, वाक्य-विन्यास, लय आदि के क्षेत्र में हापकिन्स की रचनाएँ नई विशिष्टता लेकर आई और 'इमेजिज़्म' (चित्रवादी) काव्यधारा में, जो उस समय प्रमुखता प्राप्त कर चुकी थी, हॉपकिन्स की काव्य-प्रवृत्तियों की ही प्रतिध्वनियाँ थीं। हॉपकिन्स का जगत् शैली के काव्य-जगत् की तरह काल्पनिक नहीं है, वह भाव-जगत् है। कवि अपने भाव-जगत् में एकदम डूब गया है। इस भाव-जगत् के रूप-रंग, छाया-प्रकाश और उसकी गतिविधियाँ उसके लिए आकर्षक हैं। वह प्रत्येक वस्तु को चित्रकार की दृष्टि से देखता है, न चिन्तनशील दार्शनिक की दृष्टि से, न कलाकार की रूपसज्जात्मक दृष्टि से। परन्तु उसके भाव-जगत् में जो सबसे महत्तम वस्तु है, वह है उसकी आत्यंतिकता। उसके भावान्दोलन इतने विशद और

**१. टु रिनेसां : 'एक्ज़िल्स केसिल' में पृ० ३३ पर उद्धृत।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सर्वग्राही हैं कि ऐसा जान पड़ता है कि उनमें उसका सारा व्यक्तित्व ही समा गया है। हॉपकिन्स के व्यक्तित्व का एक नीतिवादी अंग भी है जो उसे देह के आकर्षण के प्रति विरक्त बनाए रखता है। वास्तव में कलाकार और नीतिवादी का द्वन्द्व ही हॉपकिन्स के व्यक्तित्व का द्वन्द्व है और यह द्वन्द्व उसके काव्य में पूर्णतया उभर आया है।

हॉपकिन्स के काव्य की दो विशेषताएँ हैं—

(१) वह ऐसी लय का उपयोग करता है जो प्रचलित काव्य और छन्द-शास्त्र के विरुद्ध पड़ता है। वास्तव में आधुनिक अंग्रेज़ी काव्य में लोक-संगीत और प्राचीन वीर-गीत-काव्य (बेलेड पोइट्री) की लयों का प्रयोग पहली बार इसी कवि में दिखलाई देता है। अंग्रेज़ी का छन्द-शास्त्र स्वराघात पर आधारित है, परन्तु यह कदाचित् यूरोपीय काव्य का प्रभाव है जो चासर के समय से बराबर दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हॉपकिन्स ने ऐंग्लो-सेक्सन जाति की काव्य-पद्धति का पुनरुत्थान किया। अपने काव्य की लय-पद्धति को हॉपकिन्स ने 'स्प्रंग रिद्म' कहा है। इसे हम गणात्मक और अक्षरात्मक गीत-पद्धति कह सकते हैं।

(२) हॉपकिंस की दूसरी विशेषता यह है कि वह शब्दों का प्रयोग इतनी विशिष्टता और स्वच्छन्दता से करता है कि प्रथम दृष्टि में शब्दों के व्याकरण-सम्बन्ध स्थापित करना कठिन हो जाता है। वास्तव में हॉपकिंस के ये दोनों ही प्रयोग उसे नये काव्य का अग्रगण्य नेता बना देते हैं, क्योंकि आधुनिक काव्य परम्परागत लयों, छंदों और रूढ़िगत काव्यभाषा से सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न हो जाता है। भाषा-शैली के नवीन और भावव्यंजक प्रयोगों में हॉपकिंस की तुलना पूर्ववर्तियों में केवल शेक्सपियर से की जा सकती है।

परन्तु हॉपकिंस के प्रकाश में आने (१९१९) से बहुत पहले इमेजिज़्म (१९०८–१९१७) नाम का एक साहित्यिक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। इस आन्दोलन को एक ओर पो के माध्यम से कॉलरिज से जोड़ा जा सकता है और दूसरी ओर फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन से। इस प्रकार इसे हम अंग्रेजी रोमांटिसिज़्म की ही पुनरावृत्ति कह सकते हैं। विक्टोरियन और जॉर्जियन साहित्य की अतिनैतिक, इतिवृत्तात्मक और तथ्यवादी साहित्यिक प्रवृत्तियों के विरोध में यह नया आन्दोलन सामने आया था। इमेजिज़्म स्कूल के कवियों में अमरीकी कवि वाल्टर डि ला मेर और फ्रेंच कवि जुले लफार्ग का प्रभाव प्रमुख है। प्रतीकवाद में ध्वनि या व्यंजना की प्रधानता थी। मेलार्मे ने स्पष्ट कहा था—"**मेरा लक्ष्य नाजुक छाया-प्रकाश उभारकर वस्तु का भाव-निर्माण है। उसका नाम न लेकर, सीधे अभिधात्मक शब्दों को छोड़कर दुर्ग्राह्य शब्दों में उसे बांधना है।**" यह व्यंजना संगीत का प्रमुख अंग था और इसी से प्रतीकवादी कवि काव्य को संगीत के अत्यंत निकट लाने में प्रयत्नशील थे। कॉलरिज ने भी काव्य में नादात्मक ध्वन्यात्मकता को महत्त्वपूर्ण बतलाया था और पो का कहना था कि काव्य में संगीत जैसे आरोह-अवरोह और नाद-तत्त्व ही नहीं होने चाहिए, संगीत में जैसी निर्वैयक्तिकता और रहस्यमयता रहती है, वह भी होनी चाहिए। काव्य 'कहे नहीं', अर्थ नहीं दे, 'बोध' दे। कवि के पास संगीतज्ञ जैसे स्वर नहीं हैं, परन्तु उनके स्थान पर भाव और स्पन्दन हैं। स्वरों की भांति ये भी निर्वैयक्तिक और सार्वभौमिक तत्त्व हैं। यह सम्भव है कि केवल कुछ भाव-संवेदनों से अन्य बहुत से भाव-संवेदनों की व्यंजना की जा सके, विशेष रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से जब उन भाव-संवेदनों का कोई गहनतम पारस्परिक सम्बन्ध हो।

इमेजिज़्म (चित्रवाद) में कवि इतनी दूर नहीं जाता। वह अपने अंतर्जगत् की ऐसी सूक्ष्म भावनाओं का उद्बोधन (एवोकेशन) करता है जो तथ्य-कथन में जकड़ी नहीं जा सकतीं। न वह आधुनिक जगत् के घात-प्रतिघातों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं का उद्घाटन करना चाहता है। वह जॉर्जियन कवि की इतिवृत्तात्मकता के विपरीत काव्य को सरल, सुष्ठ और सूक्ष्म बनाना चाहता है। फलतः वह अपनी काव्यगत संवेदना को किसी निश्चित स्थूल चित्र (इमेज) में बांध देने का प्रयत्न करता है। यह स्पष्ट है कि इस श्रेणी का कवि भी अपने भाव-संवेदन को सूक्ष्म रूप देगा। उसके पास भी प्रतीकवादी कवि के सामरस्य (एसोसिएशन) और व्यंजना (सजेशन) के दो तत्त्व हैं। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अर्थ देना कवि का लक्ष्य था।

इसमें संदेह नहीं कि इमेजिस्ट कवियों ने अंग्रेजी काव्यधारा को संकीर्णता के गह्वर से निकाला और यूरोप को अत्यन्त सशक्त प्रतीकवादी धारा से उसका सम्बन्ध स्थापित किया। परन्तु धीरे-धीरे कवियों को यह ज्ञात हुआ कि वे स्वयं रूढ़ियों में बँध गए हैं और उनकी अतिवादी मान्यताएँ काव्य-विकास में बाधक हैं। फलस्वरूप कुछ साहसी कवि प्रयोगों के नये क्षेत्र में उतरे। युग बदल गया था। नये युग के वैज्ञानिक विकास और तेजी से बदलते हुए नागरिक जीवन को काव्य-क्षेत्र से बहिष्कृत करना असम्भव था। काव्य में वे नये संस्कार आने अनिवार्य थे जो जीवन के अभिन्न अंग बन गए थे। काव्य-भाषा की विशिष्टता का जो आग्रह रोमांटिक, विक्टोरियन और जॉर्जियन युग के कवियों का था, वह समाप्त हो रहा था। नये कवि ने आधुनिक जीवन के सभी आनुषंगिक अंगों को स्वीकार कर लिया और इन्हीं तत्त्वों को लेकर काव्य का निर्माण करना चाहा। उसकी कविता में नागरिक कल्पना-चित्रों और मशीनों-राजनीतिज्ञों-कर्मकरों की भाषा का प्रवेश हुआ और ज्ञान-विज्ञान के नये क्षेत्रों से उसने अपने उपमान बटोरे। इस नवीनतम धारा का पहला पुष्प इलियट की रचना 'लव-साँग आव जे० एलफ्रड पुफ्राक' (१९१४) है। आलोचकों का कहना है कि इलियट की इस रचना ने आधुनिक काव्य-जगत् में महान् विस्फोट का कार्य किया। इस रचना की प्रारम्भिक पंक्तियाँ ही नई काव्य-चेतना की सूचक हैं।

Let us go then, you and I,
When the evening is spread out against the sky
Like a patient etherised upon a table,
Let us go, through certain half-desrrted streets,
The muttering retreats
Of restless nights in one-night cheap hotels
And saw-dust restaurants with oyster-shells,
Streets that follow like a tedious argument
Of insidious intent
To lead you to an overwhelming question......
Oh, so not ask, 'what is it'?
Let us go & make our visit.

इस रचना के प्रकाशन के दो वर्ष बाद ही प्रथम महायुद्ध का आरम्भ हुआ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अगले चार वर्षों (१६१४-१८) में जिस काव्य का निर्माण हुआ, वह नये काव्य की परम्परा में नहीं जाता। वास्तव में नया काव्य जन-भाषा और प्रयोगों का काव्य था और युद्ध-काव्य में विक्टोरियन आत्मविश्वास, नैतिकता और ललकार की प्रधानता थी। युद्ध-काव्य की अपनी कोटि है और आधुनिक यूरोपीय काव्य का वह एक प्रमुख अंग है, परन्तु नये काव्य के विश्वास और संदेह के स्वरों के लिए हमें युद्धोत्तर काल की कविता को सामने रखना होगा, क्योंकि उसी में युग का स्वप्न-भंग मुखरित है। इस असार्थकता और संदेह को सबसे चेतन वाणी टी० एस० इलियट के काव्य में मिली। इलियट का 'द वेस्ट लैण्ड' (१६२२) युद्धोत्तर यूरोप के आभ्यंतर ध्वंस का प्रतीक बन गया। युद्धोत्तर काव्य में हमें यीट्स की 'द लेक ऑव इनिसफ्री' जैसी दो-चार रचनाएँ भी मिल जाती हैं, जिनमें कवि सामयिक जीवन की कटुता से भागकर एक काल्पनिक स्वर्ग में आश्रय ग्रहण करता है, परन्तु उसमें युद्धोत्तर जीवन की विश्रांति और तज्जन्य स्वप्न-भंग ही अधिक है।

वास्तव में स्वप्न-भंग से कहीं अधिक बलवती भावना विशृङ्खलता की थी। मनुष्य के विश्वासों के महल ढह गए थे। यह प्रक्रिया १६१२ के लगभग ही शुरू हो गई थी, परन्तु युद्ध में जातीय गौरव की भावना के विकास और राष्ट्रीय आत्मविश्वास के पुनर्जन्म के कारण व्यक्तिगत जीवन में थोड़ी स्थिरता आ गई थी। महायुद्ध के बाद यह स्थिरता जाती रही और अविश्वास तथा अनास्था की ओर प्रत्यावर्तन आरम्भ हुआ। यह विचारधारा इतनी तीव्रता लेकर आई कि उसके पथ में जो पड़ा बह गया। आशा, विश्वास, प्रेम और सौहार्द का संसार ही विनष्ट हो गया। उस संसार के देवता सिंहासनच्युत हुए और उनके ध्वज भूलुण्ठित। उनके स्थान पर नये विश्वासों और नई आशाओं की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी और चारों ओर 'क्या', 'क्यों' और 'कैसे' की जिज्ञासा, संदेह और निराशा की वाणी गूँजने लगी। जीवन की भांति काव्यक्षेत्र में भी उच्छृङ्खलता और अराजकता का राज्य हो गया। युद्ध-क्षेत्र में कवियों ने एक नये ढंग की स्वतन्त्रता सीख ली थी। वे जीवन से खेल कर चुके थे। केवल-मात्र आत्मविश्वास का संबल लेकर निकल पड़ना उनका स्वभाव बन गया था।

काव्य-दृष्टि में महान् परिवर्तन स्पष्ट था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में प्रतीकवाद के रूप में जो आन्दोलन काव्य-क्षेत्र में उठ खड़ा हुआ था, उसका मूल सिद्धान्त यह था कि कला अभिव्यक्ति है। परन्तु लगभग उसी समय एक नई विचारधारा भी उठ खड़ी हुई कि कला पुनर्निर्माण या अभिव्यक्ति नहीं, निवेदन है। धीरे-धीरे यह मान्यता बल प्राप्त करती गई और आज काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अप्रतिम रूप से इसे अधिकार प्राप्त है। प्राचीन दृष्टिकोण के समर्थक कला का महत्त्व इसमें समझते थे कि उसमें मानव-जीवन और मानव-प्रकृति को सच्चाई के साथ वाणी मिले। कलाकार के दर्पण में हम अपना ही मुख देखना चाहते थे, अथवा बाहरी जगत् का ऐसा बिंब जिसे हम पहचान सकें, परन्तु आधुनिकों का कहना है कि यह दृष्टिकोण भ्रामक है। इसमें उन्हें कवि की प्रकृतिगत मौलिकता के लिए कोई भी स्थान नहीं मिलता। उनका कहना है कि कलाकार प्रत्येक वस्तु को अपने विशिष्ट और व्यक्तिगत दृष्टिकोण से देखता है। फलस्वरूप वह सामान्य जन से कहीं अधिक स्पष्ट और दूर तक देखता है। कला उस विशिष्ट अंतर्दृष्टि का निवेदन-मात्र है। कलाकार का महत्त्व यही है कि उसका पाठक या श्रोता भी उसके दृष्टिकोण को आत्मानुभूत कर सके। इस दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देखने से आत्माभिव्यंजना उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती जितना निवेदन। एक हद तक यह मान्यता गलत भी नहीं है, यद्यपि कला को केवल संवेदन तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। उसके कुछ अन्य उपकरण भी हैं।

नये कवियों ने अपने को काव्य-परम्परा में स्थान देना चाहा तो उन्होंने नये काव्य की प्रवृत्तियों को डॉने और ड्राइडन में देखना आरम्भ किया। इन प्राचीन कवियों के काव्य में भी कला-जागरूकता और निवेदन महत्त्वपूर्ण थे। वे भी नये कवि की भांति निर्वैयक्तिक थे। इलियट ने पहली बार नये काव्य को परम्परा की भूमि दी। अपने एक अत्यंत प्रसिद्ध निबन्ध में उसने स्पष्ट रूप से कहा है—**"किसी भी कवि अथवा कलाकार की कला केवलमात्र अपने बल पर अर्थमती नहीं होती। उसकी विशिष्टता, उसकी मूल्यता पूर्ववर्ती कवियों और कलाकारों को लेकर साक्षेप है। केवल उसे ही लेकर उसका मूल्य निर्धारण असम्भव बात है...हमें उसे अनिवार्यतः पिछले युगों के मान-दण्डों पर आँकना होगा। यह नहीं कि हम यह देखें कि वह परलोकगत कवियों जैसा है या उनसे अच्छा-बुरा है। हमें उसे पिछले समीक्षकों के सिद्धान्तों पर तोलना नहीं है। यह ऐसा मूल्य है, ऐसी समतोल है जिसमें दोनों एक-दूसरे की तुलना पर तुलते हैं। किसी पुरातन कृति से समक्षता प्राप्त करना वास्तव में अक्षमता का चिह्न है। वह किसी भी अर्थ में समकक्षता प्राप्त करना नहीं है। कृति यदि नई नहीं है तो वह कला की चीज भी नहीं होगी।"**[1] इलियट के इस सिद्धान्त को लेकर उन्हें परम्परावादी कहा जाता है। यह स्पष्ट है कि इलियट ने काव्य-क्षेत्र में बढ़ती हुई उच्छृङ्खलता को रोका और अराजकता को काव्य मानने वाले नई पीढ़ी के कवियों के सामने परम्परा, संयम और साधना का नया आदर्श उपस्थित किया। कला को निवेदन-मात्र मानने से कवि का अहं इतना बढ़ गया था कि वह समझता था कि जब वह अपने मन के अनुसार अपनी अनुभूति का प्रकाशन कर देता था तो बस उसका कर्तव्य पूरा हो जाता था। फलतः युद्धोत्तर-काव्य का एक बहुत बड़ा अंश अराजक है। परम्परा के उत्तरदायित्व से मुक्त कवियों ने अपने ही काव्य को मानदण्ड मान लिया और काव्यभूमि प्रयोगों से भर गई—प्रयोग, प्रयोग, सतत प्रयोग। नयेपन की इस अदम्य आकांक्षा ने विडम्बना-काव्य ही उपस्थित किया, श्रेष्ठ काव्य हमें नहीं मिला। परन्तु नये शब्द, नये रूप, नये लय-छन्द के सहस्रशः विधान और मिश्रण इस काव्य ने दिये। गद्य-पद्य की सीमाएँ ही टूट गई। काव्य-क्षेत्र से विराम-चिह्न बहिष्कृत होने लगे और कविता विचित्र आकृतियों, चित्रों और रूप-रेखाओं का आश्चर्य बन गई। छपे हुए पृष्ठ के लिए ही काव्य की सृष्टि होने लगी। प्रयोगों की इस बाढ़ में अर्थ, संकेत, प्रतीक, लय, छन्द, अभिजात शब्द सब बह गये। इसमें संदेह नहीं कि ये प्रयोग आज भी हमें आश्चर्यजनक और आकर्षक लग सकते हैं, कुछ सीमा तक उत्तेजक बन सकते हैं, परन्तु नये काव्य को इस अराजकता से शीघ्र ही उभरना पड़ा। संयम और ज्ञान की वाणी हमें पहले-पहल इलियट में सुनाई पड़ी।

: ६ :

इलियट का समीक्षक और कवि-रूप बहुत-कुछ भिन्न है। समीक्षा के क्षेत्र में वे आरनाल्ड की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं और उनके दृष्टिकोण में परम्परा प्रयोग से कहीं अधिक

१. **'इंडिवीजुअल टेलंट : सेलेक्टेड ऐसेज़'—टी० एस० इलियट।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महत्त्वपूर्ण हो जाती है, परन्तु काव्य के क्षेत्र में इलियट अदम्य साहसी और प्रयोगी हैं। इस दिशा में वे पूर्णतः मौलिक हैं। 'द लव-साँग आव जे० एल्फ्रेड पुकफ्राक' (१६१२) में इलियट ने पहली बार आधुनिक काव्य को नई काव्यभूमि दी। सामान्य की ओर संक्रमण आधुनिक युग के यथार्थवादी दृष्टिकोण की विशेषता है और इस रचना में हम एक अमहत्त्वपूर्ण सामान्य व्यक्ति के मन में उठे हुए संघर्षों और भावान्दोलनों की एक अत्यन्त विशद और सूक्ष्म झाँकी देखते हैं। इस कविता को हम अंग्रेजी की पहली मनोवैज्ञानिक कविता कह सकते हैं। इस रचना में बाह्य चित्रण महत्त्वपूर्ण नहीं है। नायक के मन का अंतर्विस्फोट ही महत्त्वपूर्ण है। एक ही मस्तिष्क में विभिन्न विचारधाराओं और किंकर्तव्यों का कैसा भावान्दोलन उठा करता है, इसका आकर्षक चित्रण यहाँ हमें मिलता है। दूसरी कविता 'द वेस्ट लैण्ड' (१६२२) में कवि ने व्यक्ति के मन को छोड़कर सामूहिक मन की अभिव्यक्ति करनी चाही है। इस कविता का नायक यूरोप का युद्धोत्तर समाज है। पहली कविता से इस नई कविता का दृष्टिकोण अधिक विशद है, अधिक परिपक्व और विकसित कला का उपयोग कवि करता है। कवि वर्णन या चित्रण की पुरानी शैली को प्रतीकवादियों द्वारा ग्रहीत नई व्यंजनात्मक शैली से मिलाकर उपयोग में लाता है। युद्धोत्तर-काल की व्यर्थता और निराशा की ऐन्द्रजालिक छटा हमें इस काव्य में मिलती है और युग के भावात्मक, बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक विशृङ्खलन का अवसादजनक चित्र उभर आता है। कविता की केवल ४३० पंक्तियों में इलियट ने समस्त यूरोपीय युद्धोत्तर भाव-जगत् का आलोड़न-विलोड़न अंकित कर दिया है। इलियट की इस रचना का अपना अलग सौंदर्य है। उसकी विरूपात्मकता ही उसका सौंदर्य है। यह सौंदर्य विक्टोरियन और जॉर्जियन काव्य के सौंदर्य से भिन्न है। कवि ने ग्रीक और लेटिन काव्यों, पुराण-गाथाओं, जनश्रुतियों और प्रागैतिहासिक रीति-रिवाजों की सारी दुनिया से पग-पग पर सहारा लिया है और नये भाव-संघात को पुराने जाने-पहचाने मूल्यों द्वारा उभारते हुए उन मूल्यों को भी नये अर्थ दिये हैं। यह कहा जा सकता है कि अध्ययनप्रसूत रूपकों और सन्दर्भों के कारण यह काव्य बौद्धिक बनकर विशिष्ट वर्गमात्र तक सीमित रह गया है, परन्तु कवि का यह आग्रह भी नहीं है कि वह सबके लिए लिख रहा है। कवि का अपना संसार है, परन्तु यह भी निश्चय है कि वह अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुँचना चाहता है। इलियट के काव्य का काठिन्य वस्तुतः उसका भाव-वैशिष्ट्य है। उसके प्रयोग भाव-गोपन के लिए नहीं, भाव-प्रकाशन के लिए ही हैं और धीरे-धीरे उसका पाठक-समाज निवेदन की कठिनाइयाँ पार कर व्यापक होता गया है। इसमें संदेह नहीं कि इलियट का 'द वेस्ट लैंड' सार्वयुगीन काव्य नहीं है। उसमें बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक की मनःस्थिति ही उभर सकी है, पर उसकी सीमाओं को स्वीकार करना उसको छोटा करना नहीं है। नई काव्यधारा के विवेचक को इस रचना को अग्रस्तंभ मानकर ही चलना होगा। युग-मन का जैसा चित्र इस काव्य में है वैसा सारे आधुनिक काव्य में नहीं मिलेगा। उसमें सम्पूर्ण युग-चेतना सन्निहित है। उसमें घटनाओं का विवरण नहीं है, युद्धोत्तर जन-मन की असार्थकता और कुण्ठा लिपिबद्ध है। इलियट की इस रचना का परवर्ती काव्य पर बड़ा व्यापक और गम्भीर प्रभाव पड़ा है। आधुनिक जीवन की उलझनों को विवरणात्मक ढंग से उपस्थित करना असम्भव बात है। उसके लिए ऐसी मनोवैज्ञानिक काव्य-शैली के आविष्कार की आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



थी जो अन्तर्मन को पुनर्जीवित कर सके। इलियट की नाटकीय, मनोविश्लेषण-प्रधान, सतर्क, कला-जागरूक शैली नागरिक संस्कारों के उद्घाटन के लिए नये उपकरण देने में समर्थ रही है। एक तरह से इलियट ने एज़रा पाउण्ड और इमेजिज़्म, (चित्रवादी) स्कूल को आत्मसात् कर अपने काव्य-जगत् में प्रवेश किया है और इन स्रोतों का पूरा उपयोग उसके काव्य में हुआ है। इलियट पर पाउण्ड का प्रभाव इसीसे स्पष्ट है कि उसने 'द वेस्ट लैंड' को पाउण्ड को ही इन शब्दों में समर्पित किया है—

For Ezra Pound
il miglior fabro
(कुशल कलाकार एज़रा पाउण्ड को)

हम यह स्थापित कर चुके हैं कि अंग्रेजी काव्य की नव्यतम धारा पर फ्रांसीसी प्रतीकवादियों का प्रभाव रहा है और रूढ़िवादी तथा परम्परागत विचारधाराओं और काव्य-परिपाटियों से पुष्ट होने के कारण यह प्रभाव काफ़ी दूर तक महत्त्वपूर्ण रहा है। वास्तव में पाउण्ड और इलियट नई काव्यधारा के आदि कवि हैं। पाउण्ड की एक रचना 'ह्यू सेलविन माबर्ले' में हमें इलियट के 'द वेस्ट लैण्ड' का बीज मिल जाता है। इस लम्बी रचना में हम १८९० से १९१८ तक के विस्तृत काल का चित्र एक कल्पित माध्यम से पाते हैं। एक समस्त युग की कुण्ठा और आत्म-प्रताड़ना इस रचना में झलक उठी है। तृतीय पुरुष में नाटकीय ढंग से युग-चित्रण की एक नई शैली ही इलियट और परवर्ती कवियों में बाद में लोकप्रिय हुई है।

नव्यतम काव्यधारा के प्रवर्त्तकों में हमें विलियम बटलर यीट्स (१८६८-१९४५) का नाम भी लेना आवश्यक है। परन्तु यीट्स किसी काव्यधारा या काव्यशैली के उन्नायक नहीं हैं, यद्यपि उन्होंने अनेक काव्यधाराओं और काव्यशैलियों को प्रभावित किया है। अनेक महत्त्वपूर्ण आधुनिक कवियों ने यीट्स के प्रभाव को स्वीकार किया है। स्वयं यीट्स में रवीन्द्रनाथ की भाँति अनेक काव्य-व्यक्तित्व सन्निहित हैं। १८९० ई० के लगभग नवयुवक यीट्स की पेरिस में मेलार्मे से भेंट हुई और सन्देह नहीं कि यीट्स के प्रारम्भिक काव्य में प्रतीकवाद का बहुत-कुछ है, यद्यपि प्रतीकवाद के अनेक तत्त्व कवि की बहुत पहले की रचनाओं में भी मिल जाते हैं। बाद में आइरिश लोकगाथा और पुराण-कथा के तत्त्वों ने यीट्स के काव्य को एक अलग विशिष्टता दे दी और यीट्स आइरलैण्ड के राष्ट्रीय पुनरुत्थान के अग्रदूत बन गए। कल्पना और रोमांस के एक नये संसार का उन्होंने निर्माण किया और उनकी इस समय की मनःस्थिति को पलायनवाद ही कहा जा सकता है। परन्तु १९१० तक यीट्स की मनःस्थिति में महान् परिवर्तन हो गया था और अब उनके काव्य में सौन्दर्य ही नहीं, शक्ति के भी दर्शन होते हैं। काल्पनिक जगत् के भाव-विलास से उतरकर कवि यथार्थ जीवन में ही सौन्दर्य ढूँढ़ने लगा है। कवि की प्रौढ़ कृतियों में हमें उसकी इस कोटि की कला का सर्वोच्च विकास दिखलाई देता है। उदाहरण के लिए, हम 'द टावर' नाम की रचना को ले सकते हैं। इस रचना में कलात्मक सौन्दर्य-सृष्टि की कोई जागरूक चेष्टा हमें जान नहीं पड़ती। कवि की सत्यान्वेषी अन्तर्दृष्टि और उसकी ईमानदारी ही हमें प्रभावित करने में यथेष्ट है। संयम और मिताचार इस काव्य की सबसे बड़ी शक्तियाँ हैं। दृश्यमान जगत् की अवास्तविकता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पीछे की सचाई को कवि ने साहस से पकड़ा है। इस परवर्त्ती काव्य में निर्वैयक्तिकता की साधना स्पष्ट है जो अधुनातन काव्य की विशेषता है। रोमांटिक काव्य ने जीवन से सम्पर्क तोड़ दिया था, नये काव्य ने वैज्ञानिकता को आश्रय देकर, निर्वैयक्तिक बनकर, जीवन के सत्य को अपनाया। रोमांटिकों के इन्द्रधनुषी कल्पना-जगत् के प्रति यह नये काव्य का विद्रोह था। यीट्स के इस परवर्त्ती काव्य में हमें स्वप्न-भंग का काव्य ही अधिक मिलता है। परन्तु यह समस्त आधुनिक काव्य की विशेषता है। सतत प्रवाह और परिवर्तन के इस युग में जीवन का स्थायीपन नष्ट हो चुका है, पुरातन ध्वज गिर गए हैं और नये अभी खुल नहीं पाए हैं। ऐसे अनास्था के युग में कवि की वाणी में अवसाद और कुण्ठा की प्रधानता होना अनिवार्य है। वह एकदम नये, सब प्रकार से अरक्षित और अचिह्नित समुद्रों में सन्तरण कर रहा है।

: ७ :

नये कवियों में से इलियट के बाद जिन्हें सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई, वे सिटवेल-परिवार के कवि थे। मिस एडिथ सिटवेल और उसके दो भाई सेचेवेरेल सिटवेल और आज्बर्ट सिटवेल इस कवि-परिवार के सदस्य हैं। 'द आॅक्सफोर्ड बुक आव माडर्न वर्स' नाम के संचयन में यीट्स ने सेचेवेरेल सिटवेल के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से लिखा है कि कालान्तर में यह कवि अधिक प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। इस कवि ने हॉपकिन्स के 'स्प्रंग रिद्म' का बड़ा सुन्दर और व्यापक उपयोग किया है और उसके काव्य में हमें व्यक्तिगत कल्पना-चित्रों का चमत्कार दिखलाई देता है। एडिथ में भावना कम है, कला-जागरूकता अधिक है। उसकी पंक्तियाँ कठिन और गद्यात्मक हैं और भाषा-शैली भी जटिल है, यद्यपि मूर्ति-विधान का एक बड़ा सुन्दर और ऐश्वर्यशाली रूप उसके काव्य में दिखलाई देता है। एडिथ की प्रारम्भिक रचनाओं में नारी के विविध रूप हमें मिलते हैं जिनमें करुणा और कोमलता का सर्वोच्च विकास है। परवर्त्ती काव्य में कारुण्य का और भी प्रसार दिखलाई देता है और अधिकांश रचनाएँ दुःखांत हैं। कवयित्री की विशेषता है संगीत और प्रतिमान। उसमें इलियट जैसी गम्भीर दार्शनिकता नहीं है, फिर भी काव्यात्मक संवेदनाओं के प्राचुर्य के कारण उसका काव्य उत्कृष्ट कोटि का काव्य है।

अन्य आधुनिक कवियों में वाल्टर डि ला मेर, डब्ल्यू० एच० डेविस, ए० ई० हाउसमेन, ऑडेन, स्पेंडर, डे लेविस आदि का नाम ले सकते हैं। डि ला मेर के काव्य में परोक्ष और बालक के कल्पना-जगत् का सम्पूर्ण ऐश्वर्य हमें मिलता है। जीवन की दैनन्दिन वास्तविकता से दूर एक विचित्र छायालोक की उसने सृष्टि की है। इसके विपरीत ऑडेन अपने चारों ओर के संसार तक ही सीमित है, परन्तु उसके काव्य में प्रतिदिन का अनुभव कुछ अधिक विशिष्ट, बहुमूल्य और गम्भीर बनकर हमारे सामने आता है। इन दोनों कवियों की भाषा बीसवीं शती की बहुसूत्री और गूढ़ भंगिमायुक्त भाषा है। सामयिक जीवन के प्रत्येक अनुभव को ये कवि भाषा में बाँधते हैं। कोई भी अनुभव उनके लिए हीन और असार नहीं है। फिर भी ये कवि आत्मनिष्ठ और व्यक्ति-मुखी हैं। उनमें बीसवीं शताब्दी के अन्य कवियों जैसा प्रयोग का बल नहीं है। ए० ई० हाउसमेन के काव्य में हमें ऐसी ही निर्विशेषता मिलती है। वास्तव में इन तीनों को आधुनिक काव्य का प्रतिनिधित्व नहीं दिया जा सकता। नूतनतम काव्य का प्रतिनिधित्व ऑडेन, स्पेंडर और डे लेविस के काव्य में मिलता है। ये कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



काव्य-विषय अथवा काव्य-पद्धति में सौन्दर्य की गवेषणा नहीं करते। उनका विश्वास है कि आधुनिक कवि की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी सामयिक संसार के प्रति है। उसे अपने चारों ओर के संसार में से खोज-खोजकर सुन्दर दृश्य नहीं दिखाना है, उसे वस्तुगत सत्य को सम्पूर्णता में देना है। उनके लिए कला सत्य का निवेदन-मात्र अर्थात् केवल तथ्यगत सत्य ही नहीं है, उससे आगे बढ़कर वे कल्पनाजन्य सत्य तक जाते हैं। इन तीनों कवियों को हम आधुनिक काव्य की त्रिमूर्ति न कहकर त्रिधारा कह सकते हैं, क्योंकि मूल विचारों में समानता होते हुए भी वे काव्य-प्रक्रिया में असमान और विभिन्न हैं। इन कवियों ने उपमानों, रूपकों और प्रतीकों के रूप में आधुनिक वैज्ञानिक-भौतिक जगत् का बड़ा व्यापक उपयोग किया है और काव्य-विषय एवं भाषा का अपरिसीम विस्तार हमें इनके काव्य में मिलता है।

: ८ :

१९३० तक के काव्य में हमें सामाजिक अथवा राजनीतिक चेतना नहीं मिलती। कवि विशुद्ध काव्य के समर्थक जान पड़ते हैं। वास्तव में इलियट के काव्य की सबसे बड़ी लांछा ही यह है कि वह सामाजिक क्रांति के प्रति तटस्थ है और उसके साहित्य में एक प्रकार की पलायन-वृत्ति है। इलियट ने स्वयं अपने लेखों में कहा है कि कवि का समाज के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं है। 'मेन ऑव लैटर्स एंड द फ्यूचर ऑव यूरोप' निबन्ध में उसने स्पष्ट रूप से यह मंतव्य स्पष्ट किया है कि साहित्यकार का केवल एकमात्र उत्तरदायित्व है, कृति के प्रति। अवकाश के समय में ही वह समाज के प्रति उत्तरदायी होता है। यह स्पष्ट है कि इलियट का यह दृष्टिकोण फ्रांस के इलुअर्ड और अरागों जैसे लेखकों से भिन्न है, जो काव्य के समाजोन्मुख कर्तव्य के कट्टर समर्थक हैं। १९३० के बाद जो कवि हमारे सामने आते हैं, उनके दो वर्ग किये जा सकते हैं। पहले वर्ग के कवि ऑडेन, डे लेविस, मेकनीस, स्पेंडर, लेहमान आदि हैं जिनमें ऑडेन प्रमुख हैं। इन कवियों में हमें सामाजिक या राजनीतिक जागरूकता भी मिलती है, यद्यपि वे सामाजिक और राजनीतिक द्वन्द्वों में अपने कवि-व्यक्तित्व को एकदम नहीं खो पाते। इन कवियों में 'आधुनिक' बनने का प्रयास स्पष्ट है और इसी से इन्होंने मशीनों, अस्पतालों, कटरों और अपने चारों ओर की सामाजिक स्थिति से प्रतिमानों को इकट्ठा किया है। वे उस जगत् से पूर्ण रूप से आश्वस्त हैं जिसमें उनका जन्म हुआ है। वे अपने युग की रोगग्रस्त सामूहिक चेतना से भी पूर्ण रूप से परिचित हैं और मनोविज्ञान तथा मार्क्सवादी राजनीति में उन्होंने अपने युग की समस्याओं का समाधान प्राप्त कर लिया है। इन कवियों में हमें व्यक्तिगत भावोद्रेक भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है, परन्तु वे आधुनिक जीवन की विषमताओं से संत्रस्त रहने के लिए व्यक्तिनिष्ठ नहीं बने रह पाते। यौन के प्रति उनका आकर्षण अपरिसीम है, परन्तु संभवतः ऐन्द्रियता की मात्रा अधिक नहीं है। इसका कारण यह है कि उनका दृष्टिकोण बराबर बौद्धिक है। उनके प्रीत यह लांछा भी उपस्थित की जा सकती है कि वे अपने व्यक्तित्वों से चिपटे रहने के कारण मानवता के व्यापक प्रश्नों में अपने को डुबो नहीं पाते। उनका काव्य बहुत दूर तक कम्युनिस्ट भावनाओं से प्रभावित है, परन्तु सच तो यह है कि हमें उसमें एक द्वैध व्यक्तित्व ही मिलता है जो वैयक्तिक विकास और सामाजिक चेतना के उभय पक्षों में कोई संतुलन स्थापित नहीं कर सका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऑडेन को छोड़कर लगभग सभी अन्य किसी-न-किसी रूप में दूसरे महायुद्ध ( १६३६-४६ ) के अवसर पर युद्ध-कार्य से सम्बन्धित रहे और उन्होंने युद्ध-काल की चेतना के अनेक स्पन्दनों को काव्य का रूप दिया। इन कवियों की राजनीतिक चेतना का सबसे जाग्रत रूप हमें स्पेन के गृह-युद्ध से सम्बन्धित रचनाओं में मिलता है, जिसमें इन्होंने मानव-मुक्ति का महामंत्र पढ़ा था। ऑडेन, मेकनीस और स्पेंडर युद्ध के बीच में स्पेन गये और रेल्फ़ फ़ॉक्स, जूलियन बेल, क्रिस्टोफ़र कॉडवेल और जॉन कार्नफ़ोर्ड ने अन्तर्राष्ट्रीय ब्रिगेड में भरती होकर युद्ध में भाग लिया। फ़ॉक्स, बेल, कॉडवेल और कॉर्नफ़ोर्ड इस युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए। यह जनयुद्ध का पहला मोर्चा था और इन साहित्यकारों के लिए प्रजातंत्र से अमूल्य सिद्धान्तों की सुरक्षा का प्रश्न स्पेन के गृह-युद्ध से अभिन्न था।

इस वर्ग के कवियों में बौद्धिकता का आग्रह विशेष है और बाद के कवियों में, जिनमें विलियम एम्पसन प्रधान है, यह आग्रह बढ़ता गया है। एम्पसन ने जहाँ आधुनिक वैज्ञानिक चिंताधाराओं से काव्य-भाषा को समृद्ध किया और उसे इतना 'कूट' बना दिया कि आधी दर्जन विज्ञान की शाखाओं का विशेषज्ञ हुए बिना उसके काव्य में पूर्ण रूप से रस लेना असम्भव है, वहाँ साथ ही वह भाषा का एक अत्यंत व्यक्तिगत और विशिष्ट उपयोग करता है। ऑडेन के काव्य की तरलता के विपरीत एम्पसन के काव्य में विशेष प्रकार की कठोरता है। इस धारा के दूसरे कवि हैं माइकेल राबर्ट्स, रेनाल्ड बाटराल, कैथलीन रैन, जॉन लेहमान, जूलियन बेल, और चार्ल्स मेज। युद्ध के बीच में कवियों ने यूरोपीय और पूर्वीय काव्यों से परिचय प्राप्त किया है और उनसे प्रभाव ग्रहण किया है। यह हमें होल्डरलिन, रिल्के, फ्रेड मार्ना, रिम्बो, नेसवाल्ड, लोर्का, अरागों और रूसी, चीनी तथा जापानी कवियों के अनुवादों से ज्ञात होता है। कुछ यूरोपीय कवियों ने भी अंग्रेजी में लिखा है जिनमें ग्रीक कवि दिमित्रियास केपेतनकीस प्रधान हैं।

दूसरा वर्ग उन कवियों का है जिन्होंने काव्य के चेतन और बौद्धिक पक्ष के प्रति विद्रोह किया है और अचेतन, रहस्यमय, रोमांटिक, केल्टिक और शब्द-चेतनामूलक काव्य-प्रक्रियाओं को काव्य में उभारा है। इन कवियों में डाइलन टामस प्रमुख हैं। इन कवियों का काव्य अंतश्चेतनाप्रधान, उपचेतनामूलक और सौन्दर्यनिष्ठ है एवं इनमें हमें प्रतीकवादी काव्यधारा का ही विकास मिलता है। इलियट ने जिस बौद्धिकता को जन्म दिया था उससे हटकर ये कवि काव्य को एक बार फिर नादात्मक और चित्रात्मक सौन्दर्य की ओर लिये जा रहे हैं। जॉर्ज बारकर और डेविड गेसकोन इस धारा के अन्य कवि हैं। वास्तव में इन कवियों को हम अंग्रेजी के सुररियलिस्ट कवि कह सकते हैं।

पिछले दिनों के अंग्रेजी काव्य में हम कुछ नई प्रवृत्तियों का विकास देखते हैं। इनमें से एक प्रवृत्ति बोलियों के काव्य की अथवा बोलियों से प्रभावित काव्य की है। इसे हम आंचलिक काव्य कह सकते हैं। वेल्स के अनेक तरुण कवियों ने स्थानीय शब्दों और मुहावरों के प्रयोग से अँग्रेजी काव्य-भाषा में नवीनता लाने का प्रयत्न किया है, जैसे वर्नन वेटकिंस, केडरे रिहस और एलन लेविस ने। इसमें संदेह नहीं कि काव्य-भाषा को स्थानिक और प्रादेशिक रंग देने की प्रवृत्ति साहित्य के इतिहास में बराबर मिलती है, परन्तु यह कहना कठिन है कि जनपदीय भाषाओं का काव्य काव्य-विकास के इतिहास में कुछ सहायक हो सकेगा या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं। फिर भी प्रयोग का अपना महत्त्व है ही।

दूसरी प्रवृत्ति है राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों से हटकर व्यक्तिगत भावों में सिमटने की। सम्भवतः आज का कवि यह जान गया है कि वह अपनी अभिरुचि, आशा-कांक्षा, मानवीयता और अपने व्यक्तित्व को किसी भी राजनीतिक-सामाजिक संगठन में विलीयमान नहीं कर सकेगा। फलतः उसने राजनीति के सम्बन्ध में सोचना ही छोड़ दिया है और वह अपने ही भीतर केन्द्रित हो गया है। कहने को अनेक कवि कम्युनिस्ट हैं, परन्तु उनकी वाममार्गीयता बहुत-कुछ कुण्ठाजन्य और निरीह है। डाइलन टामस की रचना 'वेलेड ऑव मेरी लियुड' (१९४१), लारी ली की रचना 'द सन माई मानुमेण्ट' (१९४४), एफ० टी० प्रिंस का संचयन 'पोयम्स' (१९३८), हेनरी रीड की रचना 'ए मेप ऑव वेरोना' (१९४६), टेरेंस टिलर का संकलन 'सेलेक्टेड पोयम्स' (१९४१) और जी० एस० फ्रेजर की 'होम' आदि कई रचनाएँ काव्य की नव्यतम प्रवृत्तियों की सूचक हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ कवि हैं, जैसे निकोलस मूर, जो किन्हीं धाराओं से सम्बन्धित नहीं हैं। इन कवियों में हम प्रयोगों की ऐसी नई दिशाएँ पाते हैं जो इलियट और ऑडेन के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयत्न सूचित करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोहर वर्मा

# प्रतिबिम्बवाद

प्रतिबिम्बवादी आन्दोलन (Imagist movement) का सूत्रपात सन् १९०९ में ह्ल्मे के नेतृत्व में हुआ। सन् १९१२ में इजरा पाउंड ने 'रिपोस्टे' की भूमिका में उसका यह नामकरण किया। सन् १९१४ में 'दि इगोइस्ट' के रूप में उन्हें अपना मुखपत्र प्राप्त हुआ। सन् १९१४ में ही इजरा पाउंड ने प्रतिबिम्बवादी कवियों का एक संग्रह प्रकाशित किया, जिसमें ११ कवियों को प्रतिनिधित्व मिला। इसके पश्चात् आन्दोलन का नेतृत्व एमी पॉवेल की पूँजी एवं व्यक्तित्व से संचालित हुआ, जिसने सन् १९१५-१६-१७ में 'सम इमेजिस्ट पोयट्स' के नाम से प्रतिबिम्बवादी काव्य को संग्रहीत किया। प्रतिबिम्बवादी काव्य का अन्तिम संग्रह सन् १९३० में निकला, क्योंकि इस आन्दोलन को साहित्यिक क्षेत्रों में बहुत विरोध मिला और प्रथम महायुद्ध के अंत तक आन्दोलन समाप्त हो चुका था। इस प्रकार प्रतिबिम्बवादी इस आन्दोलन का जीवन केवल दस वर्ष का है। प्रतिबिम्बवादी सिद्धांतों में कुछ ऐसी त्रुटियाँ थीं जिनके कारण वह अधिक समय तक समाज की काव्य-चेतना को संतुष्ट नहीं कर सकता था। किंतु यह मानना पड़ेगा कि प्रतिबिम्बवाद के कुछ कलात्मक निष्कर्षों का पूरा-पूरा उपयोग हुआ और कई साहित्यिक आज भी कुशलता से उनका निर्वाह करने में समर्थ हैं। लेकिन प्रतिबिम्बवादी आन्दोलन-जैसी वस्तु अब इतिहास के पृष्ठों तक ही सीमित रह गई है। हमारे हिन्दी-साहित्य के 'नई कविता' की ध्वजा उठाकर चलने वाले पश्चिमी विचारों के अनुवादक कवियों को आंग्ल-साहित्य की यह ऐतिहासिक घटना महत्त्वपूर्ण चेतावनी देती है।

प्रतिबिम्बवाद के प्रेरणा-सूत्रों के लिए मुख्य रूप से फ्रेंच प्रभाववादी चित्र-कला को समझ लेना होगा। वैसे प्रतिबिम्बवाद फ्रेंच क्लासिकल एवं ओरिएण्टल की मिली-जुली प्रेरणा है, किन्तु उसका प्रत्यक्ष जन्म प्रभाववादी चित्र-शैली से ही हुआ। अतः प्रभाववादी चित्र-कला को पृष्ठभूमि में रखते हुए प्रतिबिम्बवाद का अध्ययन करना तार्किक आवश्यकता है।

प्रभाववाद (Impressionism) का सूत्रपात फ्रेंच चित्र-कला द्वारा हुआ। 'प्रभाव' (Impression) शब्द कला-जगत् को क्लॉड मेनेट की एक चित्र-कृति द्वारा मिला, जिसमें उसने सूर्यास्त का दृश्य अंकित किया था। फ्रांस के रूढ़िवादी कला-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध इस चित्र का लेखन हुआ था, अतः आलोचकों द्वारा इसकी तीव्र समीक्षा हुई। किन्तु नवीन क्रांतिकारी विचारों वाले कलाकारों में इस नवीन कला-शैली का स्वागत हुआ और पिसेरो रेनॉयर डेगॉ-गॉगिन इत्यादि चित्रकारों ने उसका प्रयोग उत्साह के साथ आरम्भ किया। आंग्ल प्री-रेफे लाइट चित्रकारों और इन प्रभाववादी फ्रेंच चित्रकारों में यह मुख्य अन्तर था कि



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जब आंग्ल चित्रकार अपने सिद्धांतों की स्थापना एवं विरोधी शिविरों के आक्रमणों के लिए एक दृढ़ संगठन और मुखपत्र के साथ सुसज्जित थे तब ये प्रभाववादी चित्रकार असंगठित वैयक्तिक रूप से अपना कार्य कर रहे थे।

चित्रकला में प्रभाववादी शैली की प्रमुख विशेषता यही है कि वह वस्तु-जगत् के शाश्वत सत्यों की अपेक्षा क्षणिक परिवर्तनशील झलक को अधिक महत्त्व देती है। वह वस्तुओं को ठीक वैसा ही चित्रित करने के पक्ष में है जैसी कि वे प्रेरणा-क्षणों में दिखाई देती हैं। पूर्व-निश्चित धारणाओं के आधार पर उनकी मानी हुई रेखा-कृति और रंगों के उपयोग में उनकी रुचि नहीं। इन दो दृष्टियों में बहुत अन्तर है। दूर से घने हरे पेड़ की पत्तियाँ नीली दिखाई पड़ती हैं और छाया-प्रदेश भूरा-काला-सा न होकर अपने आस-पास उपस्थित पदार्थों के रंग का मिश्रित रूप होता है। इस विशेष दृष्टि से प्रभाववादी चित्रकार यथार्थ के आग्रही अधिक हैं, यद्यपि उनकी प्रेरणा-निर्देशन का सूत्र 'एपियरेंस' है। वे अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों के शुद्ध प्रकाशक हैं और पूर्व-निश्चित मूल्यों तथा परम्परागत मान्यताओं के भ्रम से अपनी कला को बचाने की चेष्टा करते हैं। प्रभाववाद वस्तुतः 'प्री-रेफेलीटिज़्म' की अधोमुखी सन्तुलित स्थिति है। 'प्री-रेफेलीटिज़्म' में दूर से दृष्टिगोचर न होने वाले अंगों को विस्तार दिया जाता है।

चित्र-कला का 'प्री-रेफेलीटिज़्म' से प्रभाववाद की ओर अग्रसर होने का अर्थ है (ऐतिहासिक दृष्टि से, तार्किक दृष्टि से नहीं) मध्ययुगीन कला-विधान का आधुनिक कला-विधान में परिणत होना—स्वच्छन्दतावाद से यन्त्र-संस्कृति की ओर—अति कल्पनाशील छायाभासों के भव्य चित्रांकन से उपयोगितावादी मूल्यों की ओर—शस्त्रों की खनक से कार-खाने की चिमनी के धुएँ की ओर। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रभाववादी रेखांकन में शौर्य या राजसी गौरव स्वीकृत नहीं, किन्तु यंत्र-युग में जन्म लेने के कारण वह शुद्ध यथार्थ की भूमि पर आधारित है।

प्रभाववादी चित्र-शैली का प्रभाव काव्य पर पड़ने का कारण कवि एवं चित्रकार दोनों के एक व्यक्तित्व में मिश्रित होना नहीं है (जैसा रोज़ेटी एवं मॉरिस के काव्य में हुआ था), किन्तु इसका कारण दोनों पक्षों की कला-वस्तु-विषयक समान विचार-दृष्टि थी। प्रभाव-वादी काव्य में साधारणतः स्पष्ट बाह्याकृतियों, अनुपात एवं रंगों की ताज़गी नहीं मिलती। इसके स्थान पर बहुधा उड़े हुए-से रंग, धुँधले आकार एवं अस्पष्ट छायाकृतियों का सम्मिलित रूप मिलता है।

आर्थर सिमन्स और अर्नेस्ट डेविडसन को ह्रासोन्मुख (decadent) कवि कहा जाता है। आर्थर सिमन्स में डेविडसन-जैसी उच्चकोटि की प्रतिभा नहीं थी, किन्तु उसमें प्रभाव-वादी शैली की अनुप्रेरणा मिलती है। 'डेज़ एण्ड नाइट्स' (पेटर को समर्पित एवं रोज़ेटी से प्रभावित) में स्पष्ट स्वाभाविक 'प्रभाव' मिलते हैं, हेनले के 'प्रभाव'पूर्ण शब्द-चित्र यथेष्ट आकर्षक हैं। 'लंडन वॉलेण्टियर्स' में प्रभाववादी चित्रकारों की प्रेरणा स्पष्ट है। प्रकाश एवं छाया का आनुपातिक सन्तुलन, रेखाकृतियों के पुष्ट सबल उभार उसकी विशेषता हैं। डेविडसन की 'ऑल हालोज़ ईव' प्रभाववाद का श्रेष्ठ उदाहरण है। दूर से देखी जाने वाली वस्तुओं की अस्पष्ट धुँधली चित्रात्मकता एडिथ सिटवैल की इन पंक्तियों में देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Outside the dust of all the dead
Thick on the ground is spread
Covering the tinsel flowers
And pretty dove-quick hours,
And the round leaves, Cupid-small
Upon the trees so wise and tall.
O dust of all the dead, my heart has known
That terrible Gehenna of the love
Deserted by the flesh with death alone !

(The Hambone and the Heart)

किन्तु एडिथ सिटवैल का काव्य बहुधा चमकदार रंगीन-आकृतियों से सुसज्जित मिलता है। वह एक वस्तुपूर्ण संवेदनात्मक जगत् है, विचारपूर्ण नहीं। ए० सी० वार्ड ने लिखा है—

"Objects and scenes are often robbed of their visual quality, in order that they may be given a sensation quality. The reader is expected to receive an impression of objects not through descriptions that enable him to recognize them as things known by sight but by an application of epithets designed to revive the sensations previously experienced in contact with similar objects, or in similar circumstances."

(Twentieth Century Literature, P. 192.)

जब दृश्यात्मक गुण की उपेक्षा होती है तो काव्य में अधिक चित्रात्मकता नहीं रह जाती। तब वह जिस प्रभाव का प्रकाशन करती है वह बहुत साधारण कोटि का और कला-दृष्टि से असन्तोषजनक होता है। प्रभाववादी चित्रात्मकता का उल्लेखनीय रूप आसबर्ट सिटवेल के काव्य में मिलता है। इलियट के 'प्रिल्यूड्स' में उसकी चित्रांकन प्रतिभा का परिचय मिलता है।

प्रतिबिम्बवादी आन्दोलन द्वारा प्रभाववादियों का कार्य सुचारु रूप से आगे बढ़ा। प्रतिबिम्बवाद ने स्वच्छन्दतावाद की अपेक्षा शास्त्रीय पद्धति को मान्यता दी, बल्कि उन्हें स्वच्छन्दतावाद के विरोधी शिविर में रखना कहीं अधिक उचित होगा। उन्होंने काव्य में दृश्यात्मक प्रतिबिम्ब की संक्षिप्त एवं अनुशासित स्पष्ट अभिव्यक्ति का आग्रह करते हुए शास्त्रीय सिद्धान्तों का पक्ष लिया। इस आन्दोलन में सामान्य शब्दों को भी अर्थशुद्धता का आवश्यकता से अधिक ध्यान रखने को कहा गया, विषय-वस्तु के चुनाव की पूर्ण स्वतंत्रता मिली, कवि को अपनी भाव-विशेष की संवेदनाशील अवस्था को ध्वनित करने के लिए उपयुक्त नादात्मकता लाने का आदेश दिया गया, प्रतिबिम्बों के प्रकाशन में रूढ़ि से प्रभावित न होकर पूर्ण वैयक्तिकता का निर्वाह सुझाया गया। शब्द-चित्रों के शिल्प में शुष्क कठोरता द्वारा एकाग्र यथार्थ अंकन का उपदेश मिला और इस प्रकार एक शुद्ध वस्तुगत आकृति-सौन्दर्य के वैयक्तिक प्रकाशन को कड़े अनुशासन से सिखाया गया। उन्होंने मूल्यवादी जगत् से अपना नाता तोड़ लिया और टूटते हुए आदर्श एवं खण्डहर होती हुई रूढ़ियों के युग में पलायन को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग समझा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रतिबिम्बवाद द्वारा कला के आत्मपरक तत्त्व एवं उसके भावात्मक पक्ष की बहुत उपेक्षा हुई। प्रतिबिम्बवाद के प्रवर्त्तक ह्ल्मे ने लिखा—

"Romantics cannot see that accurate description is a legitimate object of verse...............Poetry is no more nor less than a music of words, so great exactness is required for each one." (Speculation)

ह्ल्मे काव्य में स्थूल पदार्थ चित्रण से ही संतुष्ट नहीं हुआ उसने विचारों के इंद्रिय-जनक, दृश्यात्मक रूप को प्रस्तुत करने का सुझाव दिया। वह लिखता है—

All emotions depend on real solid vision or sound. It is physical."

इजरा पाउंड ने एक कदम और आगे जाकर प्रतिबिम्बवादी कवियों को दार्शनिक या वर्णनात्मक काव्य लिखने से रोका तथा सूक्ष्म भाव-चित्रण के स्थान पर कठोर, दृढ़ और ठोस प्रतिबिम्ब को शब्दबद्ध करने को कहा। ह्ल्मे के अनुसार काव्य-सृजन का एक महत्त्व-पूर्ण उपकरण यह भी है कि कवि अपनी कृति में कुछ असाधारण—अनोखा दृष्टिकोण प्रस्तुत करे, जो ठीक वैसे ही अभी तक प्रकाशित न हुआ हो। कवि को अपने 'प्रभाव' को इस भाँति अभिव्यक्त करना चाहिए कि पाठक को कवि की मौलिक भौतिक संवेदना की अनुभूति सुलभ हो सके। निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रत्येक कवि वैयक्तिक भावनाओं एवं अनुभूतियों के साँचे में अपनी स्वतंत्र भाषा का निर्माण करता है।

प्रतिबिम्बवादी सिद्धांत के अनुसार साधारणतः इंद्रिय-गोचर हुई वस्तु और उसके साथ उत्पन्न हुई भावनात्मक प्रतिक्रिया दोनों ही तथ्य उपेक्षणीय हैं। महत्त्व तो 'एक्यूरेट परसेप्शन' या शुद्ध आकृति-ज्ञान का है, जो क्षण-भर के लिए कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपने में केन्द्रीभूत करता है और फिर जिसका प्रकाशन यथातथ्य बिना गुणा-भाग या जोड़-घटाए जैसा-का-तैसा होना आवश्यक है। अभिव्यक्ति में आकृति को पूरी सचाई के साथ चित्रित होना प्रतिबिम्बवादियों की सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त है, जिसके सम्भव होने पर उनके सिद्धांतों के अनुसार कवि को उसकी मौलिक कला-शैली और काव्य-भाषा मिल जाती है।

सभी 'प्रभाव', विशेषकर वे जो कि कवि की आत्मा को काव्य की संकल्पात्मक अनुभूति के ऊँचे धरातल पर उठाते हैं, क्षणिक होते हैं। उत्तेजित प्रेरणा के क्षणों का अल्पायु होना एक निर्विवाद सत्य है, अतः प्रतिबिम्बवादी व्याख्या के अनुसार लम्बी कविताएँ असम्भव हैं। इस प्रकार वर्णनात्मक, उपदेशात्मक, कथात्मक और व्याख्यात्मक काव्य को प्रतिबिम्बवादी स्वीकार ही नहीं करते। लघु कविताओं को ही काव्य मानते हैं। उनकी धारणा है कि होमर और मिल्टन ने लघु कविताओं को श्रृंखलाबद्ध रूप में लिखा है, जिसकी कड़ियाँ बीच-बीच में गद्य से जुड़ी हुई हैं। इस आश्चर्यजनक मौलिक निष्कर्ष की प्रबल सूझ की दाद देनी ही पड़ेगी। मुश्किल यह हुई कि बार-बार एलडिंग्टन रीड एवं इलियट ने जब उच्चकोटि की लम्बी कविताएँ लिखीं तो प्रतिबिम्बवादियों को अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी। 'लम्बी कविताएँ असम्भव' के जोशीले नारे को रोककर उन्होंने इस नियम की कठोरता को शिथिल किया।

इजरा पाउंड की दो पंक्तियों को प्रतिबिम्बवाद का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है—

"The apparition of these faces in the crowd
Petals on a wet black bough."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पंक्तियों के प्रेरणा-सूत्र स्पष्ट करते हुए इजरा पाउंड ने ला कांकर्ड स्टेशन पर देखे हुए कई व्यक्तियों के मुखों का उल्लेख किया है। क्रमशः एक सुन्दर मुख, फिर दूसरा, फिर तीसरा, ............फिर सुन्दर शिशु का मुख और फिर अन्त में एक सुन्दर युवती का मुख। वह दिन-भर इस विषय पर सोचता रहा कि किस भाँति अपने भीतर उमड़ रहे 'प्रभाव' को अर्थ दे, किन्तु उसे वे शब्द ढूँढ़े न मिले जो उस आकस्मिक भावोद्रेक को उपयुक्त वाणी दे सकते। अन्त में सन्ध्यासमय अचानक ही उसे रंग के माध्यम से अभिव्यक्ति मिल गई। उस रंगीन नमूने में एकाएक उसे अपनी पूर्वानुभूति की झाँकी मिल गई।

हल्मे की 'आटम' शीर्षक से लिखी गई कविता में विशुद्ध दृश्य-प्रभाव की क्षणिक अनुभूति का चित्रात्मक सौन्दर्य अपने पूर्ण उत्कर्ष पर है—

"A touch of cold in the autumn night
I walked abroad,
And saw the ruddy moon lean over the hedge
Like a red faced farmer.
I did not stop to speak, but nodded
And round about were the wistful stars
With white faces like town children."

हिल्डा डूलिटिल का काव्य प्रतिबिम्बवादी सिद्धान्तों को पूर्ण सन्तोष देता है। 'ईवनिंग' कविता में प्रकाश केन्द्रीभूत चित्र है, जिसके धुँधले होते हुए रंग धीमे-धीमे अन्धकार में घुलते जाते हैं। 'सी रोज़' में बाह्याकृति एवं आकार का शब्द-चित्र प्रशंसनीय हैं।

रिचर्ड एलडिंगटन प्रतिबिम्बवाद का कट्टर समर्थक कुछ ही दिनों रहा। अन्त में उसके कठोर अनुशासन से उसके स्वच्छन्द व्यक्तित्व का संघर्ष आरम्भ हो गया। उसके मन में ऐन्द्रिक एवं कल्पनात्मक संवेदनाओं में अन्तर्द्वन्द्व होने लगा। 'इमेजेज़' (१६१०-१५) में उपस्थित चिन्तन-धारा से यह स्पष्ट हो गया कि ऐन्द्रिक संवेदना के कलात्मक आकलन-मात्र से वह सन्तुष्ट नहीं। उसने प्रतिबिम्बवादी शैली के स्थूल पदार्थों की क्षणिक दृश्यात्मक अनुभूति का उपयोग लघु कविताओं के सृजन का मार्ग त्याग दिया। 'ऐपी ग्रेप्स' में ठोस पदार्थ-जगत् की 'प्रभाव'पूर्ण रेखाकृतियाँ नहीं हैं, फिर भी वह उसकी पहली कविताओं की अपेक्षा अधिक आकर्षक, चित्रात्मक गुणों से सुसज्जित है। विस्तृत प्रतिबिम्बों का शिष्ट संयोजित रूप उसकी विशेषता है।

एलडिंगटन को 'टिपीकल डिसइल्यूज़ एड रोमैंटिक' कहा जाता है। 'प्रतिबिम्ब' पर उसकी अनुरक्ति उसके रोमेण्टिक पद्धति से विद्रोह के कारण है। यद्यपि वह मध्ययुगीन अथवा प्राचीन दृष्टिकोण का समर्थक नहीं था, फिर भी वह बौद्धिक शंकाओं से लदी हुई यथार्थ-वादी पद्धति का प्रयोग प्रतिबिम्बवादी टेकनीक द्वारा सफलता से न कर सका। इन्द्रिय-जगत्, आकृति एवं रंगलेखन में उसे अपना काव्यादर्श न मिला। अपने बाद के शब्द-चित्र और स्केचों में, अपनी पूर्वरचित प्रतिबिम्बवादी कृतियों में उपेक्षित काव्य के आवश्यक तत्त्वों को उसने कुशलता से पकड़ा है।

सेसिल डे लेविस ने प्रतिबिम्बों (Images) को शब्द-चित्र कहा। ऐसे शब्द-चित्र; जिनका सौन्दर्यांकन कवि की कल्पना-शक्ति द्वारा होता है। चित्रण-पद्धति की स्पष्ट अभिव्यक्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कारण पाठकों की कल्पनात्मक दृष्टि उससे शीघ्र ही तादात्म्य स्थापित कर लेती है। कवि के अपने वैयक्तिक भाव-रंगों में डूबकर प्रेरणा-पदार्थ पाठक तक पहुँचता है। इस दृष्टि से यह प्रक्रिया त्रिपदीय है—(सबजेक्ट+ऑबजेक्ट+कला)। प्लेटो के अनुकृतिवादी सिद्धान्त का स्मरण इस स्थान पर हो आता है, जिसने साहित्य को दृश्य-जगत् की अनुकृति माना था।

प्रतिबिम्ब कितना भी सौन्दर्य-सम्पन्न क्यों न हो जब तक वह कविता के भावपक्ष को अभिव्यक्ति देने में सहायक नहीं होता और दूसरे प्रतिबिम्बों के साथ अनुभूतिमूलक सम्पर्क स्थापित नहीं करता तब तक वह कवि के लिए व्यर्थ हैं।

सिटवैल की कृतियों की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक अवसाद हैं, क्योंकि प्रचलित मान्यताएँ उनके विश्वास को बाँधकर नहीं रख सकीं और बाह्य जगत् से पलायन करके उनकी घोर निराशा अपने कल्पना-प्रसूत कला-जगत् में शरणार्थी बनी। जी० बुतो ने उनके विषय में लिखा है—

"Edith and Sacheverell Sitwell took refuse when war broke through in the phantastic manipulation of childhood recollections and warm untroubled images of art."

(Trend of Modern Poetry. P. 125)

सिटवैल अद्भुत रूप से वैयक्तिक दृश्यानुभूति और संवेदनाओं में लिप्त रहे, किन्तु यह कल्पना-प्रसूत पलायन-कक्ष स्पेंसर की भाँति मध्ययुगीन नहीं था, अपितु आधुनिक था, जिसमें 'कैथोलिसिज़्म एण्ड पेगेनिज़्म', यन्त्र-सभ्यता और वायवीय परी-गाथा, सूक्ष्म चाइनीज़ रंग-सज्जा एवं ट्रॉपीकल भड़कीले रंग-लेखन की विचित्र अव्यवस्था थी। उनकी अभिव्यक्ति में प्रवाहयुक्त चित्र, खाके और ध्वन्यात्मकता का प्रयोग मिलता है, किन्तु वे किसी निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचने में असमर्थ हैं।

एडिथ सिटवैल के प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष एवं तत्क्षण प्रभाव का लक्ष्य लेकर चलते हैं, अतः वे सबल, पुष्ट एवं संक्षिप्त हैं और लम्बे तुलनात्मक अथवा समानान्तर विचारों के प्रकाशन में अपनी शक्ति व्यय नहीं करते। यहीं उसका स्वच्छन्दतावाद-विद्रोही चारित्रिक गुण मिलता है। स्वच्छन्दतावाद मूर्तिमत्तात्मक सौन्दर्य-चित्रों में उपमा एवं अलंकारों द्वारा विचारों को विस्तार का अवकाश मिलता था जो शब्दचित्र को भावनात्मक गतिशीलता देते थे, किन्तु सिटवैल की आज की नवीन काव्य-कला-पद्धति स्थिरता को महत्त्व देती है और पक्ष-विशेष तक स्वयं को सीमित करके तुलनात्मक विकास को रोकती है। अतः हमें 'डाग फर्ड स्ट्राबेरी लीव्ज़', 'अब्राहम बियर्डेड सन' और 'रोज़ शेप्ड हार्ट'-जैसी विचित्र उक्तियाँ मिलती हैं।

यह अतिवादी विकास आश्चर्यजनक परिणामों को जन्म देता है। एडिथ काव्य पर क्यूबिज़्म और दादाइज़्म का प्रभाव दिखाई देने लगता है, जो कभी-कभी चेतनाशील विचारों से शून्य मूर्तिमत्तात्मक चित्रों का कोरा मानसिक विलास लगता है। ऐसी अवस्था में काव्य अर्थहीन हो जाता है।

क्यूबिस्ट चित्रकारों की भाँति एडिथ सिटवैल ने वस्तु के विभिन्न ऐन्द्रिक पक्ष आकृति-सौंदर्य एवं परिमाण का विचित्र कलात्मक मिश्रण आरम्भ किया। उदाहरण के लिए, भूरापन, लम्बाई, गोलाईदार उभार, शक्ति एवं लहरों के गर्जन का व्यंजनात्मक प्रतीक 'एलीफेंट ट्रन्क्स ऑफ द वाटर' द्वारा अभिव्यक्त हुआ। एडिथ की इस चित्र-काव्य-शैली में प्रतिबिम्बों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



परस्पर सह-संपर्क-स्थापन की आयाससिद्ध उपमाओं को सफलता नहीं मिली है। उनका स्वर कुछ व्यंगात्मक हो गया है, क्योंकि कई स्थानों पर प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन उसने मानव-निर्मित वस्तुओं के माध्यम से किया है, जबकि प्रतिबिम्बों के सह-सम्पर्क के लिए और अधिक उपयुक्त उपमा स्वच्छन्दतावादियों की भाँति प्राकृतिक वस्तुओं में ही खोजी जा सकती थी, लेकिन तब शायद नई कविता का लेबल उस पर न लग सकता, जो युग की माँग थी। ऐन्द्रिक एकीकरण की अतिवादिता के कारण संवेदना भ्रामक हो गई है। शब्द एवं स्पर्श से रूपात्मक इंद्रियानुभूति को जागरूक करने का प्रयास मिलता है एवं रूप से नादात्मकता का; उदाहरण के लिए, 'स्वाईनिश हेयरी ब्रेस्ट्स ऑफ़ द रफ विन्ड', 'ब्ल्यू विएड', 'ग्रीन एयर्स' इत्यादि।

रूप, गंध एवं स्वाद के मिश्रित प्रतिबिम्ब सेशैवरैल सिटवैल की कविताओं में हैं जो एक अतिवादी दृष्टि का परिचय देते हैं। शब्द + रूप + रस + स्पर्श + गंध के अनुपातों में मात्रा को अधिक या कम करके अद्भुत संवेदनात्मक मिश्रण तैयार करने तक ही कवि-प्रतिभा सीमित हो गई। ऐसी अवस्था में की अचानक मृत्यु पर आश्चर्य प्रकट नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसके आन्दोलन में ही प्रतिबिम्बवाद उसके विनाश के बीज छिपे थे।

इस प्रकार अपनी-अपनी विभिन्न विचार-धाराएँ लेकर प्रतिबिम्बवाद के समर्थक कवि धीरे-धीरे अलग हो गए। दल में उपदलों का जन्म हुआ। 'वॉरटीसिज़्म', 'क्यूबिज़्म', 'दादाइज़्म', 'अनएनीमिज़्म', 'फेएटॉसिज़्म', 'सुररियलिज़्म' इत्यादि मार्गों द्वारा कवियों ने अपनी वैयक्तिक सनकों को सन्तुष्ट किया।

गद्य की नियम-स्वतंत्रता को देखकर उन्होंने उसे काव्य में लाने का उपक्रम किया, किन्तु काव्य के पीछे शताब्दियों की परम्परा थी, जिसको एकबारगी वे नष्ट नहीं कर सकते थे; अतः गद्य-पद्य-संघर्ष का उन्होंने एक रास्ता निकाला। उन्होंने गद्य को पद्य में और पद्य को गद्य के क्षेत्र में स्वीकृत किया और स्वतंत्र छन्द का निर्माण किया। शब्दों पर उनका आग्रह इतना अधिक बढ़ गया कि उनका अस्तित्व सूक्ष्मता को व्यक्त करने वाले बीजगणित के संकेत-चिह्नों से अधिक कुछ न रहा।

Imagism was essentially a conservative movement, though like so many conservative movements it sailed under a revolutionary flag.

—David Daiches

(Poetry and the Modern World P. 80)

'प्रतिबिम्बवाद यद्यपि एक शास्त्रीय आन्दोलन था किन्तु वह अन्य शास्त्रीय आन्दोलनों की भाँति एक क्रान्तिकारी ध्वज के नीचे चला।' प्रतिबिम्बवाद का प्रबल आक्रमण स्वच्छन्दतावाद को नष्ट न कर सका, यद्यपि उसने उसे पर्याप्त हानि पहुँचाई। प्रतिबिम्बवाद की प्रचण्ड बौद्धिकता को देखकर लोगों को कविता के भविष्य के विषय में शंकाएँ होने लगी थीं, किन्तु प्रतिबिम्बवाद अपने ही अस्त्र से मारा गया। स्वच्छन्दतावाद के विषय में फ्रांसिस स्कार्फ ने लिखा है—

"Romantic movement is yet not over.........Romantic movement was the logical outcome of a breakdown in a social and intellectual structure. Since then no new synthesis has been achieved...........Romanticism did not die with the revolution, because its revolutionary fervour was atonce

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



turned against the injustice of the machine age. It identifies itself alternatively with the new socialism or Anglo-Catholicism or with the new aestheticism, branches of the same tree."

(Auden and After. P. 184)

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिबिम्बवादी आन्दोलन में यद्यपि कुछ निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण थे फिर भी वह युद्ध-काल में उत्पन्न विषम परिस्थितियों की प्रतिक्रिया-मात्र था और युद्ध के समाप्त होते-होते एकाएक नष्ट हो गया। उसकी बौद्धिक प्रपत्तियों ने काव्य-क्षेत्र को मानसिक शब्द-विलास का साधन बना दिया था। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि प्रतिबिम्बवाद ने साहित्यिक अनुशासन का पाठ भी सिखाया। दस वर्ष का उन्मुक्त वैयक्तिक बुद्धि-विलास देखते हुए केवल इस पाठ के कारण आन्दोलन के उन्नायकों एवं समर्थकों को क्षमा नहीं किया जा सकता। शब्द-शिल्प एवं स्वतंत्र छन्द के प्रयोगों का आरम्भ जितनी सुन्दरता से हुआ उसका अन्त उतनी ही कुरूपता से। फिर भी इस आन्दोलन का ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं है। वह काव्य की एक शैली-मात्र था, जिसे स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के अनुकरण पर काव्य-दर्शन के उच्च पद पर आसीन कराने का बलात् प्रयास किया। शैली कलाकारों को विभिन्न वैयक्तिक व्याख्याओं का अवकाश देती है, किन्तु काव्य-दर्शन के सिद्धान्त इतने स्पष्ट होते हैं कि उनको मनमाने तौर पर मोड़ा नहीं जा सकता। स्वच्छन्दतावाद एक काव्य-दर्शन था जो आज भी काव्य को प्रेरणा देने में समर्थ है।

आंग्ल-साहित्य की यह घटना आज हिन्दी-साहित्य में भी घट रही है। हमें देखना यह है कि साहित्यिक इतिहास का परिच्छेद दुहराया जाता है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० सत्यदेव चौधरी शास्त्री

# संस्कृत-काव्य-शास्त्र और शृङ्गार रस

: १ :

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने शृंगार को अन्य रसों की तुलना में स्पष्ट शब्दों में सर्वोत्कृष्ट रस स्वीकृत किया है,[१] यहाँ तक कि मतिराम ने शृंगार रस निरूपक अपने ग्रन्थ को 'रसराज' नाम से अभिहित किया है और केशवदास ने शृंगार रस में अन्य रसों का समावेश दिखाने के लिए उपहासजनक एवं अशास्त्रीय प्रयास किया है,[२] पर संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने शृंगार रस को यद्यपि 'रसपति' अथवा 'रसराज' की उपाधि से विभूषित नहीं किया[३], पर अन्य रसों की अपेक्षा इसे सर्वोत्कृष्ट रस के रूप में काव्य-शास्त्र-निर्माण के आरम्भिक युग से ही घोषित किया जाता रहा है। भरत मुनि के शब्दों में संसार में जो कुछ भी पवित्र, विशुद्ध, उज्ज्वल और दर्शनीय है, उसको शृंगार रस से उपमा दी जाती है।[४] रुद्रट के कथनानुसार शृंगार रस-जैसी रस्यता को कोई अन्य रस उत्पन्न नहीं कर सकता। इसी रस में ही आबाल-वृद्ध सभी मानव (केवल मानव ही क्यों, पशु, पक्षी, यहाँ तक कि लता-गुल्मादि भी) ओत-प्रोत हैं। इस रस के समावेश के बिना काव्य हीन कोटि का है। अतः इसके निरूपण में कवि के लिए विशेष प्रयत्न अपेक्षित है[५] और आनन्दवर्द्धन के शब्दों में शृंगार ही सर्वा-

---

१. उदाहरणार्थ—

केशवदास—सबको केसवदास कहि नायक है सिंगार। —रसिक प्रिया, १/१७

देव—भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल सिंगार। —भवानी विलास, १०

सोमनाथ—नव रस को पति सरस अति रस सिंगार पहिचानि। —रसपीयूष निधि ८/१

यशवन्तसिंह—नव रस में शृंगार रस लसत शिरोमणि रूप। —शृङ्गारशिरोमणि

पद्माकर—नवरस में सिंगार रस सिरे कहत कब कोय। —जगद्विनोद

२. रसिकप्रिया, १४वाँ प्रकाश।

३. हाँ, रूपगोस्वामी ने स्वसम्मत शान्त आदि पाँच भक्ति-रसों में से 'मधुर' रस को 'भक्ति-रसराज' अवश्य कहा है—

शान्तप्रीतिप्रेयोवत्सलोज्ज्वलनामसु उज्ज्वलापरपर्यायः भक्तिरसानां राजा मधुराख्यो रसः।—रसामृतसिन्धु

४. यत्किञ्चिल्लोके शुचि मेध्यं दर्शनीयं वा तच्छृङ्गारेणानुमीयते। ना० शा० ६/४५ वृत्ति

५. सर्वरसेभ्यः शृंगारस्य प्राधान्यं प्रविवक्षयिषुराह—

अनुसरति रसानां रस्यतामस्य नान्यः



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



धिक मधुर और परमाह्लादक रस है।[1]

उपर्युक्त स्थलों में शृंगार रस की अन्य रसों की अपेक्षा प्रमुखता घोषित की गई है। इधर आगे चलकर आचार्यों का सम्भवतः एक वर्ग ऐसा भी रहा होगा, जिसे अकेले 'शृंगार' रस को न केवल 'रस' का पर्याय मानना अभीष्ट होगा, अपितु इसे अन्य वीरादि रसों का आधार मानना भी स्वीकृत होगा। उपलब्ध स्रोतों के अनुसार केवल भोजराज और अग्नि-पुराणकार के ही एतत्सम्बन्धी मत को प्रमाणस्वरूप उपस्थित किया जा सकता है।

: २ :

भोज ने शृंगार, वीर आदि दस रसों के स्थान पर रस की संज्ञा केवल शृंगार को ही दी है।[2] शृंगार को इन्होंने अहंकार और अभिमान का पर्याय माना है—

**रसोऽभिमानोऽहंकार शृंगार इति गीयते। (स० क० म० ५।१)**

भोज द्वारा प्रयुक्त 'अहंकार' शब्द मिथ्यागर्व अथवा उत्तेजनाजन्य अभिमान का वाचक न होकर मनुष्य के अपने प्रति सहज अनुराग का द्योतक है। इसी अहंभाव, आत्मानुराग के कारण वह अपने व्यक्तित्व का आभास करने लगता है। उदाहरणार्थ किसी कोमलांगी द्वारा स्निग्ध दृष्टि से देखे जाने पर एक पुरुष में जो आत्मज्ञान, आत्मविश्वास और आत्मानुराग की भावना जाग्रत होकर उसे सहज सुख में आत्म-विभोर कर देती है, वही 'अहंकार' की स्थिति है; और तभी उस पुरुष का मन-मयूर नाच उठता है, वह अपने-आप को धन्य, कृतकृत्य और स्नेहभाजन मानने लग जाता है—

**अहो अहो नमो मह्यम यदहं वीक्षितोऽनया।**
**मुग्धया त्रस्तसारंगतरलायतनेत्रया। शृंगार० प्र० (राघवन-संस्करण), पृष्ठ ४६४**

बस इसी अहंकार को रस कहते हैं। भोज के अनुसार रस की परिभाषा है—मनोनुकूल दुःख आदि भावों में आत्मगत सुखद अभिमान की प्रतीति।[3] इसी अहंकार का अपर नाम शृंगार है, क्योंकि यही भाव सामाजिक को शृंग अर्थात् सुख की चोटी ( पराकाष्ठा ) तक पहुँचा

---

सकलमिदमनेन व्याप्तमाबालवृद्धम्।
तदिति विरचनीयः सम्यगेष प्रयत्नाद्
भवति विरसमेवानेन हीनं हि काव्यं॥ का० अ० १४/३८

१. शृंगार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः। ध्वन्या० २/७

२. शृंगार-वीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य—
बीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्न :।
आम्नासिषु दशरसान् सुधियो, वयं तु
शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः॥ ( शृं० प्र० (रा०), पृ० ४७०

३. मनोनुकूलेषु दुःखादिषु आत्मनः सुखाभिमानः रसः।
उदाहरणार्थ—
दुःखदातापि सुखं जनयति यो यस्य वल्लभो भवति।
दयितनखदूयमानयोः विवर्धते स्तनयोः रोमांचः॥ (शृं० प्र० (रा०) पृ० ४६६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देता है येन शृंग रीयते (गम्यते) सश्रृंगारः (शृं० प्र० पृ० ४७७)। अतः भोज को केवल अहंकार अथवा उसके पर्याय शृंगार को ही रस की संज्ञा देनी अभीष्ट है, अन्य तथाकथित रसों की नहीं।[१]

भोज के शब्दों में 'अहंकार' नामक एक मूल प्रवृत्ति प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ नहीं है। यह पुण्यात्माओं द्वारा पूर्व-जन्म के निर्मल कर्मों और अनुभवों से प्राप्त होती है। यही मनुष्य की आत्मा की सम्पत्ति है और श्रेष्ठ गुणों के उदय का कारण भी।[२] सहृदय, रसिक अथवा सामाजिक कहाने का अधिकारी भी केवल वही व्यक्ति है, जिसमें यही 'अहंकार' नामक प्रवृत्ति जाग्रत हो चुकी है। जिस व्यक्ति में अहंकार अथवा शृंगार का अस्तित्व है, वही रसिक कहाता है, अन्यथा वह व्यक्ति नीरस कहा जायगा।[३] अहंकारी, दूसरे शब्दों में शृंगारी, कवि अथवा सामाजिक ही जगत् को रसमय बना सकता है और काव्यानन्द प्राप्त कर सकता है।[४] अहंकारी अथवा शृंगारी व्यक्ति में ही रति, हास, उत्साहादि भावों का उदय होता है, न कि अनहंकारी, शृंगारी अथवा अरसिक व्यक्ति में। अतः भरतादि के अनुसार रत्यादि से रस की उत्पत्ति मानना उचित नहीं है; अपितु आत्मा के अहंकार-विशेष शृंगाराख्य रस से ही रत्यादि की उत्पत्ति मानना समुचित है।[५]

प्रस्तुत विषय की स्पष्टता के लिए इस प्रकरण में भोज-मतानुसार रत्यादि भावों, अहंकार (अथवा शृंगार) तथा रत्यादि के पारस्परिक सम्बन्ध और रसों की संख्या पर भी प्रकाश डालना अपेक्षित है।

भोज के मत में भरतादि के अनुसार रत्यादि आठ भावों को स्थायी, निर्वेदादि तेतीस

१. (क) स शृंगारः सोऽभिमानः स रसः।
(ख) रसः शृंगार एव एकः। (वही, पृ० ४७५)

२. सत्यात्मनाममलधर्म विशेषजन्मा
जन्मान्तरानुभवनिर्मितवासनोत्थः।
सर्वात्मसंपदुदयातिशयैकहेतुः
जागर्ति कोऽपि हृदि मानमयो विकारः॥ (वही, पृ ४६४)

३. शृंगारेति नाम ··· ··· ··· ··· आत्मनोऽहंकारविशेषः सचेतसा रस्यमानो रस इत्युच्यते, यदस्तित्वे रसिकोऽन्यथात्वे नीरस इति। (वही० पृ० ५१७)

४. तुलनार्थ—अग्निपुराणकार का 'शृंगारी' शब्द भी रसिक का ही वाचक है, न कि रतिप्रिय का—
शृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स चेत् कविर्वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत्॥ अ० पु० ३३९।८
(तुलनार्थ—ध्व० ३।४३ (वृत्ति), स० क० म० ५।३

५. 'न हि रत्यादिभूमा रसः' किं तर्हि शृंगारः। शृंगारो हि नाम············आत्मनोऽहंकारविशेषः ·········। रत्यादीनामयमेव प्रभवः इति। शृंगारिणो (अहंकारिणो) हि रत्यादयो जायन्ते, न अशृंगारिणः। शृंगारी हि रमते, रसयते, उत्सहते, स्निह्यतीति। (शृं० प्र० (रा०) पृ ४७०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भावों को संचारी[1] तथा स्तम्भादि आठ भावों को सात्विक नामों से पुकारना उचित नहीं है, क्योंकि ये सभी भाव परिस्थिति और समय के अनुसार स्थायी और संचारी भी बन जाते हैं तथा सत्त्व अर्थात् मन से प्रभूत होने के कारण ये सभी सात्त्विक भी कहलाते हैं।[2]

उपर्युक्त ४६ भाव मनुष्य के अहंकार तत्त्व से प्रकट होकर इसी अहंकार (अथवा शृंगार) ही को उस प्रकार प्रकाशित करते हैं, जिस प्रकार अग्नि से उत्पन्न ज्वालाएँ स्वयं अग्नि को ही चारों ओर से प्रकाशित करती हैं[3] अथवा, 'अहंकार' नृप के समान है और 'भाव' उसे सामन्तवर्ग के समान चारों ओर से घेरकर उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं।[4]

भोज के मत में उपर्युक्त सभी-के-सभी भाव न कि भरतादि के अनुसार केवल रत्यादि आठ (तथाकथित स्थायी) भाव, अहंकार के अनुप्रवेश के कारण विभावादि द्वारा प्रकृष्टावस्था को पहुँचकर आनन्दप्रद बन जाते हैं, और इन्हें यदि 'रस' नाम से पुकार भी लिया जाता है, तो केवल उपचार द्वारा ही। पर वस्तुतः ये प्रमुख रूप से 'भाव' ही हैं। इस मान्यता के दो कारण हैं—एक यह कि ये भाव भोज-सम्मत रस-परिभाषा—'मनोनुकूल दुःखादि में आत्मगत सुखाभिमान की प्रतीति'—की कसौटी पर खरे नहीं उतरते और दूसरा यह कि ये सब भाव अपने व्यापार द्वारा 'अहंकार' रूप रस को ही प्रकाशित करने के कारण 'रस' नहीं कहे जा सकते। भाव और रस में स्पष्ट अन्तर है—भाव भावना पथ पर आरूढ़ हैं, पर रस भावना पथ से अतीत है। इस प्रकार भोज को केवल एक ही अहंकार (शृंगार) रस स्वीकार्य है। हाँ यदि रत्यादि भावजन्य आनन्द-प्रदान को भी उपचार द्वारा 'रस' कहना है तो सभी भावों में आनन्द-प्रदान की क्षमता होने के कारण रसों की संख्या ४६ तक पहुँचनी चाहिए।[5]

---

१. भोज ने संचारी भावों की संख्या तो तेतीस मानी है, पर भरतादि सम्मत अपस्मार और मरण के स्थान पर उन्होंने ईर्ष्या और शम को गिनाया है। (वही, पृष्ठ ४५०, ५१७)

२. वही, पृष्ठ ४७१, ५१७।

३. रत्यादयोऽर्धशतमेकविवर्जिता हि
भावाः पृथग्विधविभावभुवो भवन्ति।
शृंगारतत्त्वमभितः परिवारयन्तः
सप्तार्चिषं द्युतिचया एव वर्धयन्ति॥ शृं० प्र० पृष्ठ ४६६

४. भावाः संचारिणो ये च स्थायिनो ये च सात्विकाः।
सविभावानुभावास्ते शृंगारस्य प्रकाशकः॥
प्रकृतिजमभिमानसंज्ञं सममनुभावविभाववर्गः।
स्वसमवसरमुपेयिवानुपास्ते नृपतिमिवाधिकृतेषु नीतिवर्गः॥ (वही, पृ० ४७१)

५. (क) यच्चोक्तं 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् स्थायिनो रसत्वम्' इति तदपि मन्दम्, हर्षादिष्वपि विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगस्य विद्यमानत्वात्। तस्माद् रत्यादयः सर्व एवैते भावाः। शृंगार एव एको रस इति। तैश्च सविभावानुभावैः प्रकाशमानः शृंगारः विशेषतः स्वदते। (वही, पृ० ५१७)
(ख) यद्यपि शृंगार एव एको रसः, तथापि तत्प्रभवा ये रत्यादयः तेऽप्युद्दीपनविभावैरुद्दीप्यमानाः, तदनुप्रवेशादेव, संचारिणाम् अनुभावानां च निमित्तभावमुपयन्तः रसव्यपदेशं लभन्ते। (वही, पृ० ४७२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भोज ने 'रस' को तीन कोटियों में विभक्त किया है—रूढ़ाहंकारता अर्थात् मानव में अहंकार की अवस्थिति रस की प्रथम कोटि है; रत्यादि ४६ भावों की परप्रकर्षता को (उपचार-द्वारा) रस नाम से व्यपदिष्ट करना, दूसरी कोटि है; तथा रति, हास, उत्साह आदि भावों की प्रेम रूप में परिणति रस की तीसरी (परम) कोटि है।[1] तीसरी कोटि को इन्होंने 'प्रेमन्' रस की भी संज्ञा दी है।[2] सम्भवतः यहीं से प्रेरणा प्राप्त करके कवि कर्णपूर ने भी 'प्रेमन्' रस में सब रसों का अन्तर्भाव स्वीकृत किया है;[3] और हिन्दी-आचार्यों में देव कवि ने भी यही धारणा प्रकट की है—

> भूलि कहत नवरस सुकवि सकल मूल सिंगार।
> तेहि उछाह निरवेद ले वीर सान्त संचार॥ (भवानी विलास, १०)

: ३ :

भोज-सम्मत उपर्युक्त विवेचना का निष्कर्ष यह है कि रत्यादि सभी (४६) भाव, जो मानव के 'अहंकार' की उपज हैं, काव्य-नाटकादि में वर्णित अथवा दर्शित होने पर विभावादि की सहायता से रसिक के अहंकार को जाग्रत और पुष्ट करते हैं। उनके मत में 'अहंकार' शब्द 'रस' का पर्यायवाची भी है और 'शृंगार' का भी। निस्सन्देह भोज रस को 'अहंकार' शब्द का पर्याय मानकर मानव-हृदय की अतल गहराई तक पहुँच गए हैं। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' बृहदारण्यक उपनिषद् (२-४-५) के इस कथन के अनुसार मानव-हृदय द्वारा किसी के प्रति प्रकटित स्नेह, शोक, उपहास, उत्साह, क्रोध, घृणा, विस्मय, भय, निर्वेद आदि भाव उसके अपने ही सन्तोष के लिए होते हैं—इसी सन्तोष अथवा आत्मानुराग का वाचक ही भोज का पारिभाषिक शब्द 'अहंकार' अथवा 'अभिमान' है। 'अहंकार'

---

(ग) आभावनोदयमनन्याधिया जनेन
यो भाव्यते मनसि भावनया स भावः।
यो भावना पथमतीत्य विवर्त्तमानः
साहंकृतौ हृदि परं स्वदते रसोऽसौ॥ (शृं० प्र०, पृ० ५२०)

ते (रत्यादयः) तु भाव्यमानत्वाद् भावा एव न रसाः। यावत्सम्भवं हि भावनया भाव्यमानो भाव एवोच्यते, भावनापथमतीतस्तु रसः। मनोऽनुकूलेषुदु:खादिषु आत्मनः सुखाभिमानो रसः। स तु पारम्पर्येण सुखहेतुत्वाद् रत्यादिभूमसु उपचारेण व्यह्रियते। अतो न रत्यादीनां रसत्वम्, अपितु भावनाविषयत्वाद् भावत्वमेव।
(शृं० प्र० (रा०), पृ० ५१७)

(घ) रत्यादीनामेकोनपंचाशतोऽपि विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् पर प्रकर्षाधिगमे रसव्यपदेशार्हता। (वही, पृ० ४५०)

१. शृं० प्र० (रा०), पृष्ठ ४६३; ५२७

२. रसन्त्विह प्रेमाणमेवामनन्ति सर्वेषामपि हि रत्यादिप्रकर्षाणां रतिप्रियो रणप्रियोऽमर्षप्रियः परिहासप्रियः इति प्रेम्ण्येव पर्यवसानात्। (वही, पृ० ४६३)

३. उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रेम्ण्यखण्डरसत्वतः।
सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ॥ (अलंकार कौस्तुभ, पृ० १४७-१४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रत्यादि भावों का जनक भी है और इनसे परिपोष्य भी। 'अहंकार' ही की जागृति और सुतृप्ति काव्य का चरम लक्ष्य है।

भोज का उपर्युक्त मौलिक चिन्तन काव्य-शास्त्र और मनोविज्ञान के लिए असन्दिग्ध रूप से एक अभूतपूर्व देन है—भरतादि का 'रस' अलौकिक आनन्द का वाचक था, पर भोज का 'सुखाभिमानः रसः' काव्यगत अलौकिक आनन्द (रस) के मूल कारण का भी द्योतक है। अतः प्रकारान्तर से 'अहंकार' को 'रस' का पर्याय मानना तो ठीक है, पर 'येन शृंगं रीयते (गम्यते)' इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'शृंगार' को चरमावस्थावाचक अहंकार और रस का पर्याय स्वीकार करना एक दृष्टि से समुचित होते हुए भी 'शृंगार' के परम्परागत रत्युत्कर्ष रूप अर्थ का उल्लंघक होने के कारण भ्रामक अवश्य है। वस्तुतः उस व्युत्पत्ति के मूल में पक्षपात की प्रवृत्ति कार्य कर रही है।

वस्तुतः भोज शृंगार को ही सर्वेसर्वा और सब रसों (भावों) का आधार मानने वाले आचार्यवर्ग से प्रभावित था। अतः एक ओर तो उसने इसे उपर्युक्त व्युत्पत्ति द्वारा व्यापक रूप से 'रस' का समानार्थक माना; और दूसरी ओर इसे 'प्रेमन्' का पर्याय मानकर सब रसों का आधार घोषित किया। उनके मत में रति ही भरतादि-सम्मत तथाकथित शृंगारादि रसों का मूल प्राण है। उदाहरणार्थ, रतिभावापन्न व्यक्ति रति-प्रिय है, तो युद्धोत्साह-सम्पन्न व्यक्ति रणप्रिय। इसी प्रकार क्रोध, हास आदि भावों से युक्त व्यक्ति क्रमशः अमर्ष-प्रिय और परिहासप्रिय हैं। स्पष्ट है कि शृंगार को सर्वभावाधार मानने के लिए ही वर्गगत पक्षपात के बल पर इसे इतना व्यापक रूप दे दिया गया है। इस प्रकार तो वीर रस का पक्षपाती भी कोई आचार्य रत्युत्साही, रणोत्साही, अमर्षोत्साही, परिहासोत्साही आलम्बनों की कल्पना कर सकता है। और फिर एक ही शृंगार शब्द को 'शृंगार : अहंकार : रस : प्रेमन् (रस की तीसरी कोटि)'—इन सबका समानार्थक मानना जितना मौलिक धारणा का सूचक है, उससे कहीं अधिक अव्यवस्था का उत्पादक और पक्षपात का द्योतक है।

भोज ने अहंकार रूप रस की तीन कोटियाँ मानी हैं—(क) रूढ़ाहंकारता; (ख) रत्यादि ४९ भावों की उपचार द्वारा रसव्यपदिष्टता; और (ग) भरतादि-सम्मत शृंगारादि रसों की प्रेमन् रस में अन्तर्भाविता। इन्होंने उक्त कोटियों में अन्य आचार्यों द्वारा प्रस्तुत रस-सम्बन्धी लगभग सम्पूर्ण विषय-सामग्री को अहंकाररूपक-प्रवृत्तिमूलक बनाकर यथासम्भव सीमित अवश्य कर दिया है, पर पहली दो कोटियों में 'अहंकार' तत्त्व के अतिरिक्त कोई विशेष नवीनता नहीं है। रूढ़ाहंकारता नामक प्रथम कोटि में 'रूढ़त्व' भाव भरतादि-सम्मत 'वासना' के ही समकक्ष ठहरता है। द्वितीय कोटि में विभावादि द्वारा प्रकृष्ट रत्यादि की 'भाव' रूप और उन भावों द्वारा जागृत अभिमान की 'रस' रूप स्वीकृति में लगभग वैसा ही पूर्वापर-सम्बन्ध है, जैसा कि भरतादि ने स्थायी भावों की व्यक्ति अर्थात् चर्वणा और चर्वणा के आस्वाद अर्थात् रस में माना है।[1] इसी दूसरी कोटि में भोज ने संचारी और सात्त्विक भावों की भी प्रकृष्टता को उपचार रूप से रस की संज्ञा दी है, पर उनकी यह धारणा भी नितान्त मौलिक नहीं है। भरतादि के मत में प्रधानता से व्यंजित संचारी भावों द्वारा प्राप्त

१. व्यक्त स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रस : स्मृतः। का० प्र० ४/२८
व्यक्तिरचर्वणेति पर्यायः। काव्यप्रदीप टीका ४/२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आस्वाद की भी स्वीकृति हुई है, जिसे विषय-स्पष्टता के लिए 'रस' के स्थान पर 'भाव' की संज्ञा दी गई है। हाँ, सात्त्विक भावों की प्रधान रूप से व्यंजना को यद्यपि भरतादि ने अलग नाम से नहीं पुकारा, पर केवल अनुभाव-वर्णनात्मक स्थलों में विभाव और संचारी भावों के अध्याहार द्वारा रसास्वाद की प्राप्ति इन्हें भी स्वीकार्य है। अब शेष रही भोज-सम्मत रस की अन्तिम कोटि—प्रेमन् (शृंगार) में सब रसों का अन्तर्भाव। पर यह कोटि, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वर्गगत पक्षपात की ही अधिक परिचायक है। इसकी स्वीकृति में तो फिर संसार के किसी भी आभ्यन्तर अथवा बाह्य व्यवहार और कार्य-कलाप का वर्गीकरण व्यर्थ सिद्ध हो जायगा।

निष्कर्ष यह कि—

(१) 'अहंकार' निस्सन्देह सब मानसिक भावों का मूल और सब भावों से पोष्य माना जा सकता है। उसकी परिपुष्ट जागृति को 'रस' भी कह सकते हैं। 'येन शृंगं रीयते' इस व्युत्पत्ति के आधार पर शृंगार को भी व्यापक अर्थ में 'रस' अथवा 'अहंकार' का पर्याय खींच-तानकर मान सकते हैं।

(२) पर भोज के अनुसार शृंगार को प्रेमन् का पर्याय मानकर सभी रसों (भावों) का शृंगार में अन्तर्भाव करके शृंगार (अथवा रति) को आधारभूत रस मानना हमें स्वीकार्य नहीं है।

अन्त में यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि भोज ने शृंगार रस को अन्य रसों की अपेक्षा उत्कृष्ट रस सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया।

: ४ :

भोज से ही लगभग मिलता-जुलता सिद्धान्त अग्निपुराणकार का है—'आनन्द' परम ब्रह्म का सहजात है। आनन्द की अभिव्यक्ति 'चैतन्य-चमत्कार' अथवा 'रस' कहाती है; और चमत्कार अथवा रस का विकार (अभिव्यक्ति) 'अहंकार' कहाता है। अहंकार से 'अभिमान' की उत्पत्ति होती है; और अभिमान से 'रति' की। रति व्यभिचारी भाव आदि के संयोग से 'शृंगार' नाम से पुकारी जाती है; और अपने-अपने स्थायी भावों से परिपुष्ट हास्य आदि इसी (रति अथवा शृंगार) के ही भेद हैं।[1] भरत के समान शृंगार, रौद्र, वीर और अद्भुत नामक चार मूल रसों को मानते हुए भी अग्निपुराणकार ने रति को ही इन चारों का मूल माना है—रति के चार रूप हैं—राग, तैक्ष्ण्य, अवष्टम्भ और संकोच। इनसे क्रमशः शृंगार आदि चार रसों की उत्पत्ति होती है; और इन चारों से क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक की।[2]

भोज ने 'अहंकार' से रत्यादि सभी (४६) भावों की उत्पत्ति मानी थी; पर अग्नि-पुराणकार ने एक शृङ्खला और मान ली है—अहंकार से रति की उत्पत्ति होती है; और रति से अन्य रसों की। अग्निपुराणकार ने अहंकार और अभिमान में; तथा अभिमान और रति में उत्पादकोत्पाद्य सम्बन्ध का स्पष्ट उल्लेख किया है, पर भोज ने अहंकार, अभिमान और शृङ्गार को पर्याय मानते हुए भी अहंकार और शृङ्गार में प्रकारान्तर से ही उत्पादकोत्पाद्य-सम्बन्ध माना है—

१. २. अ० पु० ३३६।१-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आत्मस्थितं गुणविशेषमहंकृतस्य
शृंगारमाहुरिह जीवितमात्मयोनेः ।। [1]

दोनों आचार्यों के सिद्धान्त में एक अन्तर और भी है। भोज के मत में 'शृंगार' व्यापक अर्थ में 'रस' का पर्याय है, पर अग्निपुराणकार के मत में यह रस का एक प्रमुख भेद है, जिसके हास्यादि अन्य भेद हैं। पर रतिभाव से सब रसों की उत्पत्ति भोज को भी स्वीकृत थी, तभी प्रेमन् रूप में रस (शृंगार) की तृतीय कोटि का भी इन्हें निर्माण करना पड़ा। निष्कर्ष यह कि निरूपण-प्रकार के थोड़े-बहुत अन्तर के साथ भोज और अग्निपुराणकार शृंगार को ही अन्य रसों का उत्पादक मानते हैं।

: ५ :

जैसा कि ऊपर कहा गया है, संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने शृंगार रस को 'रसराज' की उपाधि से स्पष्ट शब्दों में भूषित न करते हुए भी इसे सर्वोत्कृष्ट रस अवश्य स्वीकृत किया है। भरत, रुद्रट और आनन्दवर्द्धन के कथन प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किये जा चुके हैं। भोज और अग्निपुराणकार का विभिन्न दृष्टिकोण सर्वांश रूप में मनस्तोषक और चित्तग्राही न होते हुए भी प्रकारान्तर से शृंगार को सर्वोत्कृष्ट रस अवश्य स्वीकार्य करा लेता है। इधर आगे के आचार्यों ने शृंगार की सर्वोत्कृष्टता-सिद्धि के लिए कुछ अन्य कारण भी उपस्थित किए हैं। हेमचन्द्र विद्याधर, रामचन्द्र-गुणचन्द्र आदि ने शृंगार को प्रथम स्थान इस आधार पर दिया है, कि **"इसका सम्बन्ध न केवल मानव-जाति तक ही सीमित है, अपितु यह रस सकल-जाति-सामान्य, अत्यन्त परिचित, सकलमनोहारी है।** [2] विश्वनाथ ने शृंगार रस की व्यापकता का प्रमाण इस आधार पर दिया है कि केवल एक यही रस है, जिसमें उग्रता, मरण और आलस्य को छोड़कर शेष सभी संचारीभावों, तथा जुगुप्सा को छोड़कर शेष सभी संचारी-भावत्वापन्न स्थायीभावों का समय अथवा परिस्थिति के अनुसार सम्बन्ध रहता है। [3] वस्तुतः देखा जाय तो उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा का भी शृंगार रस के साथ किसी-न-किसी रूप में सम्बन्ध-स्थापन हो ही जाता है। शारदातनय सभी संचारीभावों का शृंगार रस से सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। [4] और फिर केवल स्थायी और संचारीभाव ही क्यों, अनुभाव और सात्त्विक भावों की सर्वाधिक स्थिति भी शृंगार रस के दोनों भेदों, संयोग और विप्रलम्भ, के साथ ही सम्भव है। विप्रलम्भ शृंगार के पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण और शाप-हेतुक—ये पाँच

१. शृं० प्र० (रा०) पृ० ५१३ भोज द्वारा 'अहंकार' और 'शृंगार' में उत्पादकोत्पाद्य सम्बन्ध की स्वीकृति करने पर भी इन दोनों शब्दों में समानार्थकता की स्थापना लाक्षणिक प्रयोग पर आधृत है।

२. तत्र कामस्य सकलजातिसुलभतयात्यन्तपरिचितत्वेन सर्वान्प्रति हृद्यतेति पूर्वं शृङ्गारः। (का० अ०, पृ० ८१; एकावली, पृष्ठ ६६, ना० द०, पृष्ठ १६३)

३. त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः। (सा० द० ३/१८६)

४. समग्रवर्णनाधारः शृंगारो वृद्धिमश्नुते। (भा० प्र०, पृष्ठ ६१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भेद; काम की चक्षुःप्रीति आदि बारह [1] तथा अभिलाष आदि दश अवस्थाएँ [2]; आलम्बन-विभाव के अन्तर्गत नायक, नायिका, सखी, दूती आदि का विस्तृत भेद-निरूपण; तथा नायक-नायिका के भाव, हाव, हेला आदि सत्त्वज अलंकार—ये सभी प्रकरण शृंगार रस की व्यापकता के साथ-साथ इसकी सर्वोत्कृष्टता भी घोषित करते हैं। रसों में केवल यही एक रस है जिसमें दोनों आलम्बनों ( तथाकथित आलम्बन और आश्रय ) की चेष्टाएँ एक-दूसरे को उद्दीप्त करती हैं। दूसरे शब्दों में अन्य रसों के आलम्बनयुगल परस्पर शत्रु अथवा उदासीन हैं, पर केवल इसी रस के ही आलम्बन परस्पर घनिष्ठ मित्र हैं। और फिर समय-समय पर विभिन्न आचार्यों द्वारा स्वीकृत सौहार्द, भक्ति, कार्पण्य आदि तथाकथित रसों का भी शृंगार रस की व्यापकता में अन्तर्भाव हो जाता है, अतः शृंगार रस की अन्य रसों की अपेक्षा सर्वोत्कृष्टता एवं रसराजता स्वतःसिद्ध है।

---

१. 'प्रतापरुद्रयशोभूषण', पृष्ठ २७१।
२. 'साहित्यदर्पण', ३/१९१।
३. 'रसतरंगिणी', पृष्ठ १२५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*रमाशंकर तिवारी*

# कवि की विशेषता

कविता 'सर्वाधिक आनन्दमयी घड़ियों की सर्वाधिक आनन्दमयी अभिव्यक्ति' कही गई है। मनुष्य अहर्निश अपने क्षुद्र प्रयोजनों की सिद्धि में व्यस्त रहता है। अतएव उसकी आनन्द-दृष्टि सीमित अथवा कुण्ठित हो गई होती है। जीवन की स्थूल आवश्यकताओं में ही उसे चरम सत्य एवं चरम सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। किसी कार्यालय-लिपिक के लिए सबसे बड़ा सत्य उसका कार्यालयाधीक्षक है, वही उसके लिए सबसे बड़ा सौन्दर्य भी है। किसी अध्यापक के लिए सबसे ज्वलन्त सत्य तथा सबसे आकर्षक सौन्दर्य उसके विद्यार्थी ही हैं। इसी प्रकार किसी श्रेष्ठ अधिकारी के लिए सबसे प्रबल सत्य एवं सबसे मोहक सौन्दर्य उसकी पत्रावलियाँ हैं। किसी राजमार्ग के कूल पर अवस्थित एक बुढ़िया भूरिशः विलाप कर रही है। लिपिक, अध्यापक और अधिकारी—तीनों त्वरापूर्वक उससे होकर निकल जाते हैं। उसके करुण-क्रन्दन में वह शक्ति नहीं है जो उनकी अन्तरात्मा को स्पर्श कर सके। उनका सत्य एवं सौन्दर्य उनके कार्यालयों अथवा कक्षभवनों में उपविष्ट है और उसमें इतनी कठोर, निर्मम वास्तविकता छिपी है कि वे उसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु या घटना की सत्ता से आकर्षित नहीं हो सकते। कदाचित् यह भी सही है कि उन्हें इतना अवकाश नहीं कि वे असम्बद्ध अथवा अनावश्यक एवं अनाकांछित वस्तुओं और तथ्यों की ओर दृष्टि-निक्षेप करें। लेकिन असली बात यह है कि उनकी चि वृत्तियों के ऊपर प्रयोजन के अनेक मोटे पर्दे पड़े हुए हैं, जिनसे उनकी चेतना की चिनगारी स्वार्थ की राख में आवृत तथा विलुप्त-प्राय हो गई है। रजस् और तमस् के बाहुल्य से सत्त्व का उद्रेक बन्द हो गया है। वर्ड्सवर्थ के शब्दों में कहा जा सकता है कि हम भौतिकता और सांसारिकता के कर्दम में अत्यधिक फँस गए हैं तथा हमें इस बात की अनुभूति नहीं होती कि हमारी परिचित दुनिया से आगे भी कोई दूसरी दुनिया है, हमारे ज्वलन्त तथ्यों के अतिरिक्त भी कोई अन्य ध्यातव्य तथ्य हैं, हमारे अपने कठोर सत्यों की परिधि के बाहर भी कोई अन्य मार्मिक सत्य है। एक शब्द में, हमारी अन्तश्चेतना हमारी अपनी आवश्यकताओं की संकीर्ण सीमाओं में ही बन्दिनी बन गई है, और सबसे बड़ी बात यह है कि उसे इस सीमा में ही आनन्द मिल रहा है। वह भूल गई है कि वह ससीम नहीं, असीम है; बन्दिनी नहीं स्वच्छन्द है। संकुचित स्वार्थों के मायावृत्त में नाचती हुई वह पर-दुःखकातरता, परानन्दविह्वलता तथा परानुभवसंवेद्यता से एकदम निर्लिप्त हो जाती है। कविता मानव-चेतना को प्रयोजन की इस कारा से उन्मुक्त करती है तथा उस धरातल पर उसे प्रतिष्ठित कर देती है, जहाँ उसकी संवेदना की विपंची के तार प्रत्येक संघात से झनझना उठते हैं और मनुष्य का प्रयोजन-जर्जर अन्तर्मन स्वर्गीय संगीत के माधुर्य से. ओत-प्रोत हो



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जाता है। इसी दृष्टि से भारतीय आचार्यों ने काव्य के 'रमणीयार्थ प्रतिपादकत्व' की स्थापना में 'चिदावरणभंग' की बात कही है।

उपर्युक्त कथन के प्रकाश में विचार करने से ज्ञात होता है कि कवि सामान्य मनुष्यता की कक्षा से कुछ ऊपर का जीव है। जीवन-प्रयोजनों की पूर्ति की चिन्ता से अधिग्रस्त होने पर भी उसकी चेतना उनकी कारा में बन्दी नहीं है। उसकी संवेदनाएँ तीव्र, सशक्त एवं व्यापक होती हैं। वह अपनी अनुभूतियों को कृपण की नाईं संचित करता है और कर्ण की नाईं मुक्तहस्त एवं मुक्तहृदय से लोक को लुटा देता है। वह दूसरे मनुष्यों के अनुभवों की गहराई में भी प्रवेश करता है और उन्हें अपना बनाकर, लोकार्थ व्यक्त एवं वितरित कर देता है। प्रकृति की सुषमाओं और भव्यताओं, प्रकोपों एवं प्रचण्डताओं—सभी स्वरूपों में उसकी चेतना समान भाव से रमती है। कदाचित् उसे समय का अभाव भी उतना नहीं सताता। वह मार्ग में खड़ा होकर नवकुसुमों की मुस्कान का रस ले सकता है, विटपस्थ विहगों के मधुर कलरव से अपने कर्णकुहरों को भर सकता है, नदी-स्रोतों के मर्मर संगीत में अपनी आत्मा का संगीत मिला सकता है। विलापमग्ना बुढ़िया की अश्रुधार में वह अपने आँसुओं की धारा निमज्जित कर देगा, अनुराग-विह्वल प्राणियों की प्रणयलीलाओं में आकंठ निमग्न हो जायगा और उनकी वियोगवेदनाओं की आँच में स्वयं झुलस जायगा। बालकों के नर्तन-कीर्तन में अपने को गला-मिलाकर बालक बन जायगा, शूर-वीरों के सान्निध्य में रण-भेरी फूँकने लग जायगा। 'चरित्र' की दृढ़ता एवं स्थिरता का नहीं, अपितु 'व्यक्तित्व' की गतिशीलता का वह उपासक है।[1] इसी कारण कभी-कभी उसके जीवन में असंगतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं और वह लोक द्वारा विक्षिप्त समझा जाता है। शेक्सपीयर ने तो कवि को प्रेमी और पागल की कक्षा में स्पष्ट रूप से सन्निविष्ट ही कर दिया है। कीट्स ने अपने एक पत्र में अत्यन्त सुन्दर ढंग से 'काव्यात्मक स्वभाव' की यों व्याख्या की है—"यह स्वयं कुछ नहीं है। इसकी अपनी कोई प्रकृति नहीं है। यह छाया एवं प्रकाश में आनन्द लेता है। उमंग अथवा मस्ती में वह निवास करता है, चाहे वह मस्ती सत् हो या असत्, श्रेष्ठ हो या हीन, निम्न हो या उदात्त, आयगो की दृष्टि में उसे उतना ही आनन्द मिलता है जितना इमोजेन की सृष्टि में। आचारशील दार्शनिक जिस वस्तु से स्तब्ध होता है उससे ही छिपकली के समान रंग बदलने वाला कवि प्रसन्न होता है। ××× कवि की अपनी कोई विशिष्टता नहीं होती। ××× जब मैं कभी किसी जनसंकुल भवन में रहता हूँ, जब कभी मैं अपनी मानसी सृष्टियों के ऊपर विचार में मग्न नहीं रहता हूँ, तब मैं अपने 'आत्म' को लेकर घर नहीं लौटता हूँ, अपितु भवन में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्टता से मैं अभिभावित हो जाता हूँ—इतना अधिक कि मेरा पूर्ण विनाश हो जाता है।[2] ("I am in a very little time annihilated.")

इस उद्धरण से कवि-व्यक्तित्व की संवेदनशीलता पर यथेष्ट आलोक पड़ता है। इसे ही कीट्स ने एक अन्य पत्र में 'निष्क्रिय क्षमता' (Negative capability) कहा है।[3] 'पूर्ण

१. देखिए—मई, सन् १९५६, के 'साहित्यकार' में प्रकाशित लेखक का 'काव्य और व्यक्तित्व' शीर्षक निबन्ध।

२. देखिए—'Poetry and Criticism of the Romantic Movement,' P. 625.

३. देखिए—वही, पृष्ठ ६१८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विनाश' की बात में अर्थवाद की गंध आ सकती है। स्वयं कीट्स के सम्बन्ध में उसका कथन सोलह आने सत्य ठहरता है। जिस अनुपात में कवि अपने कथ्य विषय के साथ तादात्म्य स्थापित करता है, उसी अनुपात में वह सारस्वत-मार्ग का अधिकारी समझा जाता है। लेकिन यह समझना भ्रम होगा कि कवि का 'आत्म' सर्वथा विनष्ट हो जाता है। असलियत यह है कि कवि अपने 'आत्म' को ही प्रतिफलित एवं प्रसारित करने के लिए अभिव्यक्ति का अवलम्ब ग्रहण करता है। कबीर अपने 'लाल' की 'लाली' का प्रसार सर्वत्र देखने के अभिलाषी थे। कवि अपने 'आत्म' का आलोक सर्वत्र विकीर्ण करने की अदम्य आकांक्षा से अनुप्राणित होता है। संसार के सम्पूर्ण व्यापारों को वह अपने अन्तस् के रंग में रंग देता है, कारण कि जीवन और जगत् की निष्प्रभ वास्तविकताओं से उसकी भीतरी भूख तृप्त नहीं होती। सामान्य मनुष्य धरती से धान्य उत्पन्न कर अपनी क्षुधा की शांति करते हैं और उसके पेट से जल निकालकर अपनी प्यास बुझाते हैं। कवि की भूख और प्यास निराली होती है। अतएव उनकी परितृप्ति के लिए वह अपने 'आत्म' की धरती को ही खोदता और खोजता है। सत्त्वोद्रेक की अवस्था में—और सच्चा कवि जीवन की अधिकांश घड़ियों में इस अवस्था का अनुभव करता है—उसे जो भीतरी खाद्य अथवा पेय प्राप्त होता है वही उसके लिए अमृत बन जाता है जिसकी चर्वणा में वह नक्तंदिवा व्यस्त होता है। 'कवित्व-रस' में जो 'सब अंग' डूबने की बात कही गई है, वह अधिक गहरे अर्थ में सटीक एवं साभिप्राय समझी जानी चाहिए। सत्त्वोद्रेक की बात भारतीय आचार्यों ने ही कही हो, ऐसी बात नहीं है। सुप्रसिद्ध आंग्ल-कवि वर्ड्सवर्थ ने ऐसे आलोक-क्षणों (Moments of illumination) की प्रशस्ति गाई है जिसमें वह 'अनात्म' से मुक्त होकर विशुद्ध 'आत्म' बन जाता है और जगत् के अन्तर्जीवन की झाँकी उपलब्ध करता है—

"………that blessed mood,
In which the burthen of the mystery,
In which the heavy and weary weight
Of all this unintelligible world,
Is lightened;—that serene and blessed mood,
In which the affections gently lead us on—
Until the breath of this corporal frame
And even the motion of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
And become a living soul.
× × ×
We see into the life of things."

—'Tintern Abbey'

कीट्स भी कुछ अधिक सरस शब्दावली में यही तथ्य यों व्यंजित करता है—"I am certain of nothing but of the holiness of the Heart's affections, and the truth of Imagination. What the Imagination seizes as Beauty must be truth."

**"मैं हृदय के नैसर्गिक रागों को ही सर्वाधिक असंदिग्ध मानता हूँ और कल्पना-गृहीत सत्य ही को सबसे अधिक निश्चित समझता हूँ। कल्पना जिसे सौन्दर्य समझकर पकड़ लेती है, उसे अवश्य ही सत्य होना चाहिए।"**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कीट्स ने सुन्दर एवं सत्य के तादात्म्य की जो बात कही है, उसकी परीक्षा अभी हमें इष्ट नहीं है। यहाँ हमारा अभिप्राय इस तथ्य का निरूपण है कि कवि अपनी संवेदना की जागृतावस्था में सत्त्वोद्रेक का अनुभव करता है और उस समय उसका 'आत्म' पूर्णतया सजग एवं क्रियाशील होता है। जो वस्तु या घटना उसे आकृष्ट करती है, उस पर उसकी अन्तरात्मा का रंग चढ़ जाता है और वह वस्तु नवीन दीप्ति, नवीन संकेत, नवीन अर्थवत्ता से गर्भित हो जाती है। वर्ड्सवर्थ ने अपनी सुपरिचित कविता 'The Daffodils' में जिन नर्तनशील स्वर्णाभ कुसुमों का सौन्दर्य-गान किया है, उनमें असली फूलों से कुछ अधिक सुषमा समा गई है। पन्त ने 'नौका-विहार' में तन्वंगी गंगा के गोरे अंगों पर लहराने वाले जिस 'चंचल अंचल' का कथन किया है, उसमें वही सौन्दर्य नहीं है जो 'नीलाम्बर' में प्रायः हमें दृष्टिगोचर होता है। दिनकर के 'हिमालय' में जिस 'मेरे नगपति! मेरे विशाल!' का आह्वान किया गया है, वह हमारा परिचित नगाधिराज हिमालय नहीं है। प्रसाद ने 'कामायनी' में जिस 'इन्द्रजाल-जननी' मुग्धा रजनी-बाला की मूर्ति अंकित की है, उसमें और सामान्य विभावरी में सहृदयों के लिए बड़ा अन्तर पड़ जाता है। ये पंक्तियाँ इतनी रमणीय हैं कि इन्हें थोड़ा उद्धृत करने का मोह मैं संवरण नहीं कर सकता—

> **"पगली! हाँ सम्हाल ले कैसे**
> **छूट पड़ा तेरा अंचल;**
> **देख बिखरती है मणिराजी**
> **अरी, उठी बेसुध चंचल।**
> **फटा हुआ था नील वसन क्या**
> **ओ यौवन की मतवाली!**
> **देख अकिंचन जगत लूटता**
> **तेरी छवि भोली-भाली।"** —'आशा'

कवि ने इन पंक्तियों में रजनी-रानी के यौवनागम का जो चित्र खींचा है, वह सामान्य मनुष्य की अनुभूति नहीं है। यह कवि की उस मनोदशा की प्रसूति है जिसमें वह 'आहार-निद्रा-भय-मैथुनं' के धरातल से ऊपर उठकर, अपने 'आत्म' की निर्बाध उपलब्धि करता है और सम्पूर्ण चराचर सत्ताओं के अन्तर्जीवन में सहज भाव से प्रवेश कर जाता है। जिसे हम 'आत्म' या 'अन्तरात्मा' कहते हैं, उसी की एक नैसर्गिक शक्ति 'कल्पना' है, जिसे पाश्चात्यों ने बड़ी प्रमुखता दी है। कवि अपने अन्तःकरण के माध्यम से दृश्य-जगत् के व्यापारों का ज्ञान प्राप्त करता है। यह ज्ञान निर्लिप्त अथवा ताटस्थ्य-जनित नहीं होता। इसमें कवि के 'आत्म' का अपना भीतरी रस सना हुआ होता है। पाश्चात्यों की भाषा में, उसमें कल्पना का आलोक मिला रहता है, जिससे पार्थिव वस्तु स्वर्गीय सुषमा से मंडित हो जाती है। आदि-कवि ने मैथुन-रत क्रौंच के युग्म में से एक के निर्मम वध पर जिस वाणी का निस्सरण किया, वह एक सामान्य घटना का सामान्य अनुलेख नहीं है। उसमें उसकी सत्त्वोद्रिक्त मनोदशा की तीव्र अभिव्यक्ति है, जब उसके अन्तश्चैतन्य पर से प्रयोजन का आवरण भंग हो गया है। कवि सूचना नहीं देता, वह काम किसी इतिहासवेत्ता अथवा राज्याधिकारी का है। कवि तथ्य का प्रतिअंकन नहीं करता, वह काम किसी गणना-शास्त्री का है। कवि वस्तुओं का विश्ले-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पण एवं सिद्धान्तों का स्थापन नहीं करता, वह काम किसी वैज्ञानिक का है। कवि विधियों का विधान एवं उपदेशों का व्याख्यान नहीं करता, वह काम किसी आचार-शास्त्री या धर्मशास्त्री का है। कवि वस्तुओं की हू-बहू नकल नहीं करता, वह काम किसी फोटोग्राफर का है। यह तो नहीं कह सकते कि इतिहासवेत्ता, दार्शनिक, वैज्ञानिक इत्यादि अपनी साधनाओं में तन्मय नहीं होते। अभीष्ट केवल इतना ही है कि वे सभी तथ्यों के प्रति तटस्थ रहने का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं और उनके परिश्रम की प्रसूतियों का महत्त्व उतने ही परिमाण में समझा जाता है जितने में वे इस ताटस्थ्य की रक्षा कर सकने में समर्थ हुए हैं। तटस्थ अथवा निर्लिप्त कवि की कल्पना नहीं की जा सकती।

ऊपर रजनी-वधू का जो चित्र उद्धृत किया गया है, उसे कोई कोरा तथ्यान्वेषी अंकित नहीं कर सकता। 'The Eve of St. Agnes' नामक प्रसिद्ध कविता में गहरी नींद में सोई प्रेमिका का कीट्स ने यों चित्रण किया है—

Soon, trembling in her soft and chilly nest,
In sort of wakeful dream, perplex'd she lay,
× × ×
Blinded alike from sunshine and from rain,
As though a rose should shut and be a bud again."

अन्तिम पंक्ति पर ध्यान दीजिए। प्रणय-स्वप्न में सोई हुई नवयुवती ऐसी शोभा दे रही है। मानो वह एक कुसुमित पाटल-प्रसून हो जो निमीलित होकर पुनः कलिका बन गया हो। खिला गुलाब का फूल बन्द हो जाय और फिर कली में परिणत हो जाय। वह नवयौवना प्रेमिका यौवन के समस्त मादक सौन्दर्य एवं मार्दव को जैसे समेटकर अर्धनग्न अवस्था में सोई पड़ी है। कवि की संवित् उसके प्राणों के मधु में निमज्जित हो उठती है, और यह सुन्दरी पाटल-प्रसूनों एवं मुकुलों से स्पर्धा करने लगती है। एक साधारण-सा तथ्य कवि-कल्पना की आँच में पिघल एवं परिष्कृत होकर विशुद्ध लोभनीय स्वर्ण बन गया है। 'विक्रमोर्वशीय' के प्रथम अंक में पुरुरवा रथ पर भय से आँखें बन्द कर पड़ी हुई उर्वशी से कहता है कि धीरज धरो, अब राक्षसों का भी भय जाता रहा, अतएव—

**"तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं निशावसाने नलिनीव पंकजम्"**

"तुम अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को वैसे ही खोलो जैसे रात बीतने पर कमलिनी अपना फूल खोल देती है।"

कीट्स और कालिदास के इन चित्रों पर विचार कीजिए। एक में गुलाब का खिला फूल कली बन गया है, दूसरे में कलिका फूल में परिणत हो रही है। 'इन्द्रियों के जीवन' से दोनों कवि-पुंगव समानरूपेण अभिभूत थे। और, इन्होंने जो सौन्दर्य-प्रतिमाएँ सृष्ट की हैं, वे कोरी 'निष्क्रियचक्षमता' की प्रसूति नहीं है, अपितु 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा' अथवा प्रतिभा से व्युत्पन्न हुई हैं। सत्त्वोद्रेक की अवस्था, कवि के सम्बन्ध में अत्यन्त क्रियाशील होती है और वह अनायास ऐसे चित्र अंकित कर देता है, जो उसकी भीतरी भूखों को परितृप्त करने के साथ-साथ, सहृदय भावकों के अन्तःकरण की भूख को भी जगाता और साथ ही तृप्त भी करता है।

ऊपर हमने कहा है कि कवि की भूख और प्यास निराली होती है तथा उसकी शांति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के लिए वह 'आत्म' की धरती को खोजता और खोदता है। इस कथन से यह अभिप्राय ग्रहण करना उचित न होगा कि मैं यह मानता हूँ कि कवि इस धरती का प्राणी नहीं है। वास्तविकता यह है कि कवि जीवन एवं जगत् के व्यापारों का अपनी संवेदना के माध्यम से अनुवचन करता है। यह संवेदना उसका जाग्रत 'आत्म' ही है जिस पर से प्रयोजन का पर्दा हट गया रहता है। कवि जीवन का अनुवक्ता एवं व्याख्याता है। उसके लिए उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं का वही महत्त्व है जो किसी अर्थशास्त्री के लिए उसके अंकों या आँकड़ों का है, अथवा किसी राजनीतिक नायक के लिए लोकमत का है। यह दूसरी बात है कि कवि के ढुलमुल मनोवेगों (Vague emotions) का परित्याग ही श्रेयस्कर है। कवि अपने समाज एवं युग की धरती से ही उत्पन्न होता है, जैसे गुलाब का फूल धरती का पेट चीरकर बाहर प्रकाश करता है। किन्तु फूल के उद्भव और विकास के अपने निसर्गज नियम हैं। पुनः चमकने तथा सौरभ-दान करने में वह पूर्ण स्वायत्त है, किसी बाह्य प्रतिबन्ध का नियमन स्वीकार नहीं करता। उसी प्रकार कवि युग की मिट्टी से उत्पन्न होते हुए भी आत्म-प्रकाश में स्वतंत्र है। सचाई तो यह है कि वह उतना ही आलोक संसार को प्रदान कर सकता है जितना उसकी अन्तरात्मा में प्रतिफलित हुआ है तथा जितनी गहराई तक उसने मनुष्य एवं प्रकृति के रहस्यों के भीतर अपनी संवित् को निमज्जित तथा प्रक्षालित किया है। वाल्मीकि और व्यास, कालिदास और भवभूति, सूर और तुलसी, होमर और वर्जिल, दाँते और गेटे, शेक्सपीयर और शा—इन सभी की रचनाओं में युग का प्रतिबिम्ब या प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। लेकिन जिस महान् सौन्दर्य एवं सत्य का उन्होंने उन्मीलन किया है, वह उनकी युगसीमाओं का अतिक्रमण कर गया है—जितनी दूर तक उनकी दृष्टि प्रयोजन-रज्जु से बँधी थी, उतनी दूर तक वे युग की प्रसूति थे और जितनी दूर तक उनकी चेतना प्रयोजन-परिधि को लाँघकर आगे निकल गई, उतनी दूर तक वे युग-युग की मानवता के पथनिर्देशक बन गए। आंग्ल-कवि शेली ने इसी अर्थ में कवियों को 'मानव-जाति के मौन विधायक' (लेजिस्लेटर्स) कहा है, "**कवि एक बुलबुल है जो अँधेरे में बैठकर अपने एकान्त को प्रसन्न करने के लिए गाती रहती है। उसके श्रोता ऐसे व्यक्ति हैं जो अदृश्य गायक की मधुर स्वरलहरियों से मुग्ध, द्रवित या दीप्त होते हैं, लेकिन यह नहीं जानते कि वे कहाँ से और क्यों आ रही हैं।**" इस कथन में शेली ने कवि के आत्म-तत्त्व के महत्त्व की ओर ही संकेत किया है। कवि को 'परिभूः' एवं 'स्वयंभूः' मानने में यही तथ्य व्यंजित है कि वह परिस्थितियों की प्रसूति होते हुए भी आत्म-प्रकाश में पूर्ण स्वायत्त है।

अब तक हमने कवि की एक प्रमुख विशिष्टता का विवेचन किया है। वह थी उसकी असाधारण संवित्, असामान्य संवेदना, जो जीवन एवं जगत् के शासक रहस्यों को विश्वसनीय ढंग से उन्मीलित कर देती है। लेकिन कवि की दूसरी प्रमुख विशेषता है वाणी का वरदान, इसीलिए वह 'सरस्वती-पुत्र' कहा गया है। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में 'काव्य-पुरुष' की उत्पत्ति का वर्णन किया है। सरस्वती की पुत्र-कामना-जन्य तपश्चर्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने पुत्रोत्पत्ति का वरदान दिया। कुछ समय के पश्चात् सरस्वती को पुत्र-रत्न लाभ हुआ। पुत्र ने जनमते ही माता के चरणों को स्पर्श कर छन्दोबद्ध भाषा में उनका अभिवादन किया। इस प्रकार की छन्दोबद्ध वाणी को 'लौकिक संस्कृत' में सुनकर सरस्वती अत्यंत प्रसन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हुई और बड़े प्यार से उसे अंक में लेकर बोलीं—पुत्र ! यद्यपि मैं समूचे वाङ्मय की माता हूँ तथापि तूने इस प्रकार की छन्दोबद्ध भाषा से आज मुझ पर भी विजय प्राप्त कर ली, यह अत्यन्त हर्ष की बात है। कहा जाता है कि पुत्र से पराजित होना द्वितीय पुत्र-जन्म के समान है। तुमसे पूर्वज विद्वानों ने गद्य की सृष्टि की है, पद्य की नहीं। इस छन्दोबद्ध वाणी के प्रथम आविष्कारक तुम ही हो। अतः तुम सचमुच प्रशंसनीय हो।[1]

प्रस्तुत प्रसंग में कवि को छन्दोवद्ध भाषा का आविष्कर्ता बताया गया है, अर्थात् कवि के लिए छन्द का परिधान आवश्यक है। कवि तथा अ-कवि क्रमशः पद्य और गद्य को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं। गद्य और पद्य की तुला पर कवि की वाग्देवी को तोलने का अनुष्ठान अनुचित अथवा असंगत प्रतीत हो सकता है। वह वाणी, जो हमारे भीतर भाव-रस का संचार करती है, गद्य की शैली भी अपना सकती है और पद्य-परिधान में प्रसूत वाणी हमारे अन्तस् के किसी कोने को भी स्पर्श करने में असमर्थ रह सकती है। लेकिन छन्दोमयी वाणी का अपना विशिष्ट महत्त्व है। हमारी आत्मा जब आनन्द अथवा किसी प्रकार की उमंग या भावोद्वेलन से भर जाती है, तो उसका प्रकाश गति एवं लय के मार्ग से ही सम्पन्न होता है। गद्य हमारे प्रयोजनों की भाषा है, सामान्य विचार-विनिमय का माध्यम है। उससे हम जीवन की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। किन्तु हृदय की मधुर एवं मार्मिक हलचलों तथा उद्वेजनाओं को उसके सहारे अभिव्यक्त नहीं कर सकते। आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है—"छन्द एक समूहगत शक्ति है, एक चित्त के अनुभव को अनेक चित्तों में अनायास संचारित करने वाला महान् साधन है। ××× छन्द भार-साम्य की रक्षा करता है, सन्तुलन नहीं बिगड़ने देता और नितान्त गद्यात्मक प्रयोजनों के भारीपन से भाव को मुक्त करता है। ××× समूची दृष्टि में ही एक प्रकार की छन्दोमयी गति है। काव्य का छन्द उस बृहत्तर सत्य के अनुरूप होने से ही महान् है। वह कलाबाजों द्वारा आरोपित काल्पनिक मुकुट पहनकर बड़ा नहीं हुआ है।"[2]

साधारण मनुष्य के जीवन में भी गहरे आनन्द तथा गहरे विषाद की घड़ियाँ उपस्थित होती हैं। सम्भवतः वह भी ऐसे अवसरों पर भावों की सान्द्र उमड़न का अनुभव करता है और उसे अभिव्यक्त करने के लिए लालायित हो उठता है। लेकिन वह मूक रह जाता है, क्योंकि वाग्देवी की कृपा उसे प्राप्त नहीं है। वह अवसर हमारे लिए अत्यन्त कष्टदायक होता है। इस सम्बन्ध में मुझे कीट्स की प्रेमिका मैडेलाइन की दशा का सहसा स्मरण हो आता है; जो अपने प्रेमी के दर्शन स्वप्न में प्राप्त करने की कामना से दिन-भर उपवास कर, रात में शय्या पर सोने जा रही है। उस व्रत का विधान था कि प्रेमिकाओं को शयन का उपक्रम करते समय कुछ भी बोलना नहीं चाहिए, क्योंकि तब उन्हें स्वप्न में प्रिय-दर्शन नहीं होगा। मैडेलाइन दीपक बुझाकर शयन-कक्ष में प्रवेश करती है। उसका हृदय भावों के उद्वेलन से अशान्त है, लेकिन—

"No uttered syllable, or, woe betide !
But to her heart, her heart was voluble,

१. 'भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा'—नगेन्द्र, पृष्ठ १६५।
२. 'साहित्य का मर्म,' पृष्ठ ४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Paining with eloquence her balmy side;
As though a tongueless nightingale should swell
Her throat in vain, and die, heart-stifled, in her dell."

—'the Eve of St. Agnes.'

**"वह एक शब्द भी बोल नहीं सकती थी। तब उस पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता। लेकिन उसका हृदय स्वयं अपने से वाचाल था। उसकी मूर्खता से उस बाला के कोमल पार्श्व में घनी पीड़ा हो रही थी। मानो कोई जिह्वाविहीन बुलबुल अपने भावों को व्यक्त करने के लिए अपना कण्ठ विस्फरित करती हो और अन्त में अवरुद्ध अन्तस् के कारण, अपनी उपत्यका में उसके प्राण-विहग उड़ जाते हों।"**

सामान्य मनुष्य जीवन के कुछ अवसरों पर, कुछ स्थितियों में, प्रस्तुत प्रेमिका की-सी विवशता और विह्वलता का अनुभव करता है। अभिव्यक्ति का प्रसाद उसे प्राप्त नहीं है, क्योंकि वह समझता है कि सामान्य घिसी-घिसाई भाषा उसके हृदयस्थ रागों के प्रकाश के लिए असमर्थ है। वह ऐसा मूक बन जाता है जैसे उसने बोलना सीखा ही नहीं। वह अन्यथा वार्तालाप में प्रवीण हो सकता है, किन्तु जीवन की दो महती आवश्यकताओं या अनुभूतियों, प्रेम और मृत्यु,[1] की उपस्थिति में वह गूँगा बन जाता है। **"उसकी दशा उस आदमी के समान बन जाती है जो राजा के यहाँ भोजन के निमन्त्रण पर आया है। किन्तु जो दूकान अथवा सेवकों के विश्रामालय की भाषा ही जानता है। प्रेम, धर्म, देशानुराग अथवा एक पूर्णतर संसार की कामना इत्यादि जीवन के गहरे रागों का अनुभव करना राजा का अतिथि बनना है और राजा की भाषा परिष्कृत अर्थों में कविता है।"[2]**

सामान्य भाषा, जिससे हम जीवन के प्रयोजनों की पूर्ति किया करते हैं, हमारे हृदय की, हमारे स्वप्नों एवं अभिलाषाओं की, भाषा नहीं बन सकती। यही कारण है कि साहित्य के इतिहास में भाषा के अनेक प्रयोग मिलते हैं; नव-नव पद-समूहों, प्रतीकों तथा छन्दों के दर्शन होते हैं। किसी भी नवीन भाव-धारा को अभिव्यक्त करने के लिए कवि अपनी भाषा स्वयं गढ़ता है। लेकिन जब उसमें गतानुगातिकता आ जाती है, जब सभी छोटे-बड़े कवि उन्हीं भाषा-भंगियों को अपनाने लग जाते हैं, तब वह भाषा अथवा भाषा-शैली अपनी विच्छित्ति, अपनी ताजगी खो देती है। नवीन प्रतिभाओं का प्रादुर्भाव होता है और फिर उनके द्वारा नई भाषा गढ़ी जाती है, नये प्रयोग रचे जाते हैं। छायावाद की नई अनुभूतियाँ पुरानी भाषा में अभिव्यक्त नहीं हो सकती थीं। प्रगतिवाद के अनुभव छायावादी भाषा की छटा में प्रकाश नहीं कर सकते थे। विद्रोह घटित हुआ। अलंकार-मोह के बन्धन घोषित किये गए, छन्द और संगीत के मोहक आच्छादन को व्यर्थ बताया गया। आज प्रयोगवाद जिस लचर और घिसघिस भाषा का अवलम्ब ले रहा है, वह अकारण नहीं। सचाई यह है कि उसके पास कुछ गहरी अनुभूतियाँ नहीं हैं, व्यक्त करने के लिए कुछ ऐसी सारपूर्ण वस्तुएँ नहीं हैं जिनसे मनुष्य जीता है और जागता है। ऐसी अवस्था में यदि प्रयोगवाद साधारण गद्य की

---

**१. फ्रायड के अनुसार मनुष्य में दो प्रवृत्तियाँ अन्तर्निहित हैं—पहली Eros अर्थात् प्रेम या प्रजननवृत्ति और दूसरी Arakne अर्थात् विनाश या मृत्युवृत्ति।** —लेखक

२. Robert Lynd : Introduction to Methuen's 'Anthology of Modern Verse.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाषा का अवलम्बन कर रहा है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भाव के उत्कृष्ट होने पर ही भाषा उत्कृष्ट बनती है, भीतर के समृद्ध होने पर ही बाहर समृद्धि का दर्शन होता है। **"तऊ प्रकास करै तितो, भरियै जितो सनेह।"**

तो, कवि की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह अपने भावों और विचारों को वाणी द्वारा व्यक्त कर सकता है। वह भावों का धनी तो है ही, वाणी का सम्राट् भी है उसकी वाग्धारा में निमज्जित हो, साधारण तथ्य भी चमक उठता है। प्रसिद्ध कवि-आलोचक पोप ने इसी कारण कविता की परिभाषा में कहा था कि कविता वह सुपरिचित विचार है जो सुन्दर और आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त किया गया हो। आचार्य कुन्तक ने भी शब्द और अर्थ के शोभाशाली सम्मिलन को काव्य माना है।[1] बाणभट्ट के विषय में कथा प्रसिद्ध है कि अपने ग्रन्थ की समाप्ति के लिए चिन्तित हो, उसने अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर पूछा कि सामने क्या दिखाई पड़ रहा है? पहले ने उत्तर दिया—**"शुष्को वृक्षः तिष्ठत्यग्रे।"** दूसरे ने कहा—**"नीरसः तरुरिव विलसति पुरतः।"** बाणभट्ट ने दूसरे पुत्र को ही ग्रन्थ-समाप्ति के भार-वहन के योग्य समझा। यायावरीय राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी का कथन है कि किसी वस्तु का स्वरूप या स्वभाव नियत नहीं है, अर्थात् न वह गुणयुक्त है, न दोष-पूर्ण। कवि की उक्ति से ही वह सगुण अथवा निर्गुण बनती है—जो चन्द्रमा की स्तुति करना चाहता है, वह उसे 'अमृतांशु' कहता है और जो कवि उसकी निन्दा करना चाहता है, वह उसे 'दोषाकर' कहता है।[2] 'कुमारसम्भव' में कालिदास ने शिव के तपःशिखर पर अचानक प्रस्फुटित वसन्त-श्री का वर्णन करते समय लताओं और वृक्षों के परस्पर झूमने-मिलने का यों चित्रण किया है—

**"पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्यः।**
**लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥"** (३-३९)

**"वृक्ष भी अपनी झुकी हुई डालियों को फैलाकर उन लतावधुओं से लिपटने लगे जिनके पुष्पों के गुच्छों के रूप में बड़े-बड़े स्तन लटके हुए थे और नवकिसलयों के रूप में जिनके मनोज्ञ ओंठ हिल रहे थे।"** प्रकृति के रमणीय चित्रांकन के साथ कितना मधुर आसव इस चित्र की कटोरी में भर गया है।

स्नान करने के उपरान्त नारियाँ आँचल से अपना मुँह पोंछती हैं। यह साधारण-सी बात है और हम प्रायः ऐसा देखते हैं। लेकिन विद्यापति जैसा कोई कवि ही इसके मर्म-स्पर्शी सौन्दर्य की विवृति कर सकता है—

**"बदन पोछल परचूरे, माँजि धएल जनि कनक-मुकुरे।"**

अंचल से पोंछे गए मुख में माँजे गए स्वर्ण-दर्पण की कान्ति की खोज करना किसी कवि के लिए ही सम्भव हो सकता है। किंग लियर की मरणोत्तर दशा का शेक्सपीयर एक वाक्य में यों निवेदन करता है—

---

१. **"शब्दार्थौ सहितौ वक्र कविव्यापारशालिनि।**
**बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥"** —**'वक्रोक्तिजीवित', १-७**

२. **"वस्तुस्वभावोऽत्र कवेरतन्त्रो गुणागुणावुक्तिवशेन काव्ये।**
**स्तुवन्निबध्नात्यमृतांशुमिन्दुं निन्दंस्तुदोषाकरमाह धूर्त्तः॥"** —**'काव्यमीमांसा'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"After life's fitful fever, he sleeps well."

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि कवि की वाणी जीवन तथा जगत् के प्रत्येक कोने में प्रवेश करती है और उसके मार्मिक अर्थ या संकेत का प्रभावशाली ढंग से अनावरण करती है। भारतीय आचार्यों ने कवि के लिए प्रतिभा के साथ-साथ जो व्युत्पत्ति और अभ्यास पर बल दिया है,[1] वह इसी कारण कि भावसृष्टि में तब तक रमणीयता नहीं आती जब तक कि विस्तृत ज्ञान और अभ्यास के आधार पर भाषा में, कथन के ढंग में, मर्मस्पर्शी चमत्कार नहीं उतर आता। सुप्रसिद्ध विचारक इमर्सन का कथन है कि विश्व में भिन्न-भिन्न अभिधान वाले तीन बालकों का एक साथ जन्म हुआ। वे हैं— ज्ञाता, कर्ता और वक्ता ( the Knower, the Doer and the Sayer )। इनमें से पहला सत्यं का अनुरागी है, दूसरा शिवं का और तीसरा सुन्दरं का। यही तीसरा कवि है जो 'वक्ता' और 'नामधायक' (Namer) है। अतएव, कवि का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह कहता है, बोलता है, वस्तुओं को नाम और अभिधान देता है। शेक्सपीयर ने भी कवि का महत्त्वमय गुण यही बताया है—

"Gives to airy nothing a local habitation and a name."

**"कवि वायवी शून्य को स्थिति और संज्ञा प्रदान करता है।"**

फ़िलिप सिडनी ने कविता को 'बोलने वाला चित्र' कहा है। उसमें भी कवि की कथन-शक्ति को परोक्ष स्वीकृति मिली है।

भारतीय वाङ्मय में 'कवि' शब्द को उत्कट महत्त्व दिया गया है। 'ऋग्वेद' में आत्मा के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग हुआ है[2], गीता में आत्मा के सूक्ष्मतम एवं अमूर्त्ततम रूप को 'कवि' कहा गया है।[3] वहाँ आत्मा के विश्वविधातृ, अणोरणीयान, अचिन्त्य एवं आदित्यवर्ण प्रकाश-स्वरूप का कथन किया गया है। शुक्ल 'यजुर्वेद' में (४०/८) परमेश्वर के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है— "**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।**" श्रीमद्भागवत में ( १/१/१ ) वेदों के प्रकाशक ब्रह्माजी को 'आदि कवि' माना गया है—'**तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवयो।**" कालिदास ने भी 'रघुवंश' में विष्णु को 'पुराना कवि' कहा है।[4] बाद को, ऋषि-महर्षियों तथा भिन्न-भिन्न शास्त्रों के रचयिताओं को भी 'कवि' की संज्ञा मिल गई थी। वैद्यों को आज भी 'कविराज' कहा जाता है। किन्तु जिस अर्थ में हम आज 'कवि' शब्द का प्रयोग करते हैं, उस अर्थ में सम्भवतः सर्वप्रथम वाल्मीकि के लिए 'आदिकवि' और श्री वेद-

---

१. **"नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥"—'काव्यादर्श'।
"मितयमिदं व्याप्तियते शक्तिव्युत्पत्तिरभ्यासः।" 'काव्यालंकार'।**

२. **"कवि केतु धासिं भानुमद्रे।" (७/६/२)
"कविं कवित्वा दिवि रूपमास।" (१०/१२४/७)**

३. **"कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥"
—गीता, अध्याय ८, श्लोक ९।**

४. **"पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरिता।
बभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती॥" —'रघुवंश', १०/३६।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



व्यास के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग किया गया है। रामायण को 'आदिकाव्य' तथा महाभारत को 'काव्य' का अभिधान स्वयं उनके प्रणेताओं द्वारा प्रदान किया गया है।

आत्मा के अमूर्त्त एवं अचिन्त्य स्वरूप के अतिरिक्त जिन अन्य प्रसंगों में 'कवि' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ उससे 'वर्णन करने वाला' का बोध ग्रहण किया गया है। 'कु' धातु के सम्प्रसरण 'कव्' का अर्थ है, वर्णन करना। अमरकोश में 'कवि' का अर्थ दिया गया है—"कवते श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा।" 'शब्दकल्पद्रुम' में 'वर्णन' के अतिरिक्त 'जानना' भी कवि का लक्षण बताया गया है—'**कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयतीति कविः।**" आप्टे ने अपनी प्रसिद्ध 'संस्कृत डिक्शनरी' में रूप, रंग इत्यादि की मूर्त्त अभिव्यक्ति को 'वर्णन' में गृहीत किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि कवि की प्रधान शक्ति के रूप में 'वर्णन करना' भारतीय वाङ्मय में स्वीकार किया गया है। उसे चौदह विद्याओं तथा चौसठ कलाओं का ज्ञाता माना गया है। कोशकार ने स्पष्टतया उसे सर्वज्ञ कहा ही है। लेकिन, यह बहुज्ञता अथवा सर्वज्ञता कवि का अतिरिक्त गुण है। प्रधान विशिष्टता यही है कि वह वर्णन करता है, कहता है, बोलता है, अज्ञात वस्तुओं को स्थिति और अभिधान की सीमा में लाकर उन्हें हमारे लिए गोचर तथा संवेद्य बना देता है। टाल्सटाय ने कविता का प्रमुख धर्म बताया है भावों एवं विचारों का सम्प्रेषण। उसका भी मन्तव्य कवि की कथन-क्षमता को ही महत्त्व देना है।

ऊपर हमने कहा है कि कवि के वर्णन में सामान्य कथन की अपेक्षा कुछ अधिक विच्छित्ति, कुछ अधिक चमत्कार—'तद्विदाह्लादकारित्व'—विद्यमान रहता है। लेकिन, जैसा पहले संकेतित है, स्पृहणीय आदर्श यही है कि अभिव्यक्ति को भाव की पीठिका से सम्बल प्राप्त होना चाहिए। किन्तु, विश्व के सम्पूर्ण साहित्यों के इतिहास में यह बात देखने में आती है कि अभिव्यक्तियों के रूप बदलते रहे हैं। आ० द्विवेदी ने 'कलाबाज़ों द्वारा आरोपित काल्पनिक मुकुट' की जो चर्चा की है, उससे कविता-कामिनी का शृंगार करने की भूयसी चेष्टा समय-समय पर सर्वत्र की गई है। **"चाहे जिस युग में, चाहे जिस जाति में, कविता के विकास का इतिहास एक ही रहा है। भाव की सरलतम अभिव्यक्ति से यह प्रारम्भ होता है और अन्य भावों को और भी अधिक सरलता से तथा कम लयात्मकता से, वह व्यक्त करती है। तब वह नाना प्रकार की कलाबाज़ियों का अवलम्ब लेती है, इतना अधिक कि उनकी अलंकृत छटाओं के भीतर काव्यसुलभ भाव लगभग विलुप्त हो जाता है। उसके बाद मानवता और कवि दोनों ही अचानक अत्यधिक समानता या गतानुगतिकता एवं कृत्रिमता से थक जाते हैं अथवा एक बार पुनः कविता सरलतर भावों की सरल अभिव्यक्ति बन जाती है।"**[1]

उपर्युक्त विवेचन में कई बार सत्य और सौन्दर्य का उल्लेख आ गया है। ये अर्थ-गर्भित शब्द हैं और इनकी विस्तृत परीक्षा के लिए प्रस्तुत स्थल उपयुक्त नहीं है। केवल एक बात निवेदनीय है, वह यह कि कवि की संवित् को जो आकृष्ट करे, वह उसके लिए सुन्दर है। कवि का मार्ग सुन्दरं का ही है, सत्यं का नहीं। सत्य के प्रबल दावेदार दार्शनिक, वैज्ञानिक और इतिहासवेत्ता हैं। प्लैटो ने सत्य के नाम पर ही अपने आदर्श जनतंत्र से कवियों को निष्कासित कर दिया था। वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा को उपग्रह बताकर उसका सौंदर्य तथा

१. सैंडाक्स फोर्ड—'The March of Literature'.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संकेत नष्ट कर दिया है। इतिहासवेत्ता राम और कृष्ण को लौकिक पुरुष बताकर, हमारे भावों के एक बहुत बड़े आधार को ध्वंस करने का उपक्रम कर चुके हैं। कवि तथ्य का अन्वेषक नहीं है, वह सौन्दर्य की 'सर्जरी' नहीं करता। वह अपनी संवेदना के माध्यम से जीवन का अध्ययन करता है और यह अध्ययन कभी मिथ्या अथवा अविश्वसनीय नहीं होता। विशुद्ध कवि कथमपि बुरा नहीं होता, यद्यपि उसकी उत्तमता में परिमाण का अन्तर हो सकता है। नैतिकता की तुला पर उसका अनुभव ग्राह्य हो या त्याज्य, किन्तु हमारे लिए वह एक जागरण है, एक नवीन चेतना है। हम अपने से एक अधिक 'गिफटेड' व्यक्तित्व के सम्पर्क में आते हैं और जीवन की हमारी अनुभूति पहले से अधिक समृद्ध तथा गहरी बन जाती है। **"जीवन और जगत् के विषय में कवि जो 'रिपोर्ट' प्रस्तुत करता है उसी की सत्यता पर संसार जहाँ तक वह सुन्दर और रहने योग्य है, अवलंबित रहता है। हमारे लिए और उसके लिए इस सत्यता का प्रमाण वह स्वयं है।"**—मिडलटन मरी।

अर्थात्, कवि-मानस द्वारा गृहीत सौंदर्य ही उसके लिए सत्य है, सत्य की वह पृथक् साधना नहीं करता, अपितु सौंदर्य के मार्ग से सत्य की उपलब्धि करता है। इस दृष्टि से कवि सौंदर्य का साधक और सत्य का प्रतिष्ठाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवेन्द्र इस्सर

# चरित्र-चित्रण

जब भी कोई कहानी के भविष्य से नैराश्य प्रकट करता है तो उसकी शिकायत प्रायः यह होती है कि कहानी के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व कथावस्तु और चरित्र धीरे-धीरे चेतना-प्रवाह में बहते जा रहे हैं इशरवुड एण्डर्सन ने तो कथावस्तु को कहानी का विषय ही घोषित कर दिया है। लेकिन चरित्र के सम्बन्ध में इतना निर्णयात्मक दृष्टिकोण अभी सामने नहीं आया। क्योंकि जब तक कहानीकार पुनः पशु-पक्षी और ईंट-पत्थर के सम्बन्ध में कथा-कहानी लिखना शुरू नहीं कर देता, बल्कि मनुष्य के गिर्द ही कहानी का ताना-बाना बुनता रहता है, चरित्र-चित्रण की प्रकृति और उसके महत्त्व पर विवाद अनिवार्य है। चाहे वह चरित्र 'दुश्चरित्र' व 'चरित्र-हीन' ही क्यों न हो जाय, या यूँग का 'आर्की टाइप' बन जाय। क्योंकि दुश्चरित्रता और चरित्रहीनता से भी चरित्र के अस्तित्व का परिणाम मिलता है।

कुछ कहानीकारों के लिए चरित्र कथावस्तु का ही एक अंग होता है और उसके विकास में सहायक सिद्ध होता है। लेकिन कुछ कहानीकार कथावस्तु को मूलाधार न स्वीकार करके चरित्र-चित्रण को ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व समझते हैं। जब भी उनके सामने किसी कहानी की रूप-रेखा आती है तो वह कथावस्तु के रूप में नहीं, बल्कि चरित्रों के पारस्परिक सम्बन्धों के रूप में होती है। इन चरित्रों में कोई-न-कोई विशिष्ट गुण (Idiocsyncrasy) होता है। इन कहानी-कारों के विचार में ऐसे चरित्र कोई-न-कोई ऐसी क्रिया अवश्य करेंगे जो दूसरों से भिन्न और दिलचस्प होगी। कहानीकार का उद्देश्य इसी क्रिया के महत्त्व को कहानी के रूप में प्रस्तुत करना है। इसी कारण चरित्र-चित्रण के एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर विवाद आरम्भ हो जाता है। क्या कहानीकार चरित्र के प्रतिनिधि पहलू का चित्रण करता है या विलक्षण वैयक्तिक पहलू का ? क्या प्रतिनिधि पहलू का चित्रण करते हुए उसके वैयक्तिक पहलू का चित्रण नहीं हो सकता ? इस दशा में क्या वह चरित्र अपने प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त दूसरों का प्रतिनिधित्व भी कर सकता है ? यदि वह दूसरों का प्रतिनिधित्व भी कर सकता है तो उसकी वैयक्तिक हैसियत कैसे कायम रह सकती है ? मूल बात तो यह है कि क्या चरित्र के विशिष्ट और सामान्य पक्षों में संघर्ष अनिवार्य है या इसका समन्वय हो सकता है ? विवाद चरित्र और व्यक्तित्व के भेद पर भी हो सकता है। कुछ आलोचक तो निश्चयात्मक चरित्र और 'नासत्या-त्मक चरित्र' प्रकार की परिभाषा का भी प्रयोग करते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि हमें निश्चयात्मक चरित्र प्रस्तुत करना चाहिए। इस विवाद को आगे बढ़ाने वाले आलोचक चरित्रों के कई टाइप निश्चित करते हैं। विवाद चरित्र के वस्तुगत और आन्तरिक पक्षों पर दोनों को पृथकत्व, संघर्ष, समानता और समन्वय पर भी हो सकता है। इस लेख में इन सब



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में से किसी एक पर भी विमर्श नहीं किया गया, बल्कि हमारे सम्मुख तो एक छोटी-सी बात उपस्थित है जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कथा-चरित्र-चित्रण से ही है। और वह बात यह है कि वास्तविक चरित्र और कथा-चरित्र पर प्रायः जो विचार-विमर्श होता रहता है उसकी प्रकृति और उसका महत्त्व क्या है। और यह प्रश्न यों भी आवश्यक है कि एक अच्छी-भली कहानी पर आपत्ति करते हुए तुरन्त कह दिया जाता है कि इसमें चरित्र वास्तविक नहीं (यद्यपि इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि वह अलौकिक है)।

यह बात तो हम सब स्वीकार करते ही हैं कि कहानी में जब भी कोई घटना होती है तो हम अवश्य पूछते हैं कि यह सब-कुछ किस पर बीत रहा है या किसके साथ यह घटना हुई है ? बुद्धिमान पाठक इस प्रश्न में एक और प्रश्न भी शामिल कर लेता है कि फिर इस सब-कुछ होने का महत्त्व क्या है ? वास्तव में वह उस चरित्र को इस विशिष्ट रूप में प्रस्तुत करने का महत्त्व मालूम करना चाहता है और फिर साधारणतया 'इस सब-कुछ का', जिसे जसे हम कहानी कहते हैं, मूल्य निश्चित करना चाहता है। मैंने यहाँ 'महत्त्व' की बात कही है, क्योंकि 'साहित्य' और 'असाहित्य' में इसी 'महत्त्व' का भेद है। अन्यथा कथावस्तु, चरित्र, कथा-निरूपण, घटनाएँ, विषयवस्तु, शब्द और वर्णन-शैली के तत्त्व तो प्रत्येक कहानी में शामिल होते ही हैं, चाहे वे साहित्यिक हों या असाहित्यिक।

यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि चरित्र-चित्रण का उल्लेख करते हुए 'मूल्य' की बात कहाँ से आ गई ? वास्तव में 'मूल्य' की इस बात से मुझे यह सुविधा हो जाती है कि मैं बिना किसी अधिक विवाद के यह वाक्य लिखने के योग्य हो जाता हूँ कि सड़क पर चलते-फिरते व्यक्तियों और कथा-चरित्रों में अन्तर होता है। इसलिए वहस साहित्यिक कहानी में चरित्र की प्रकृति और उसके मूल्य पर केन्द्रित हो जाती है और चरित्र से तात्पर्य कथा-चरित्र से हो जाता है। जब हम कथा-चरित्र की बात कहते हैं तो कुछ आलोचक इसे वास्तविक के मुकाबले में काल्पनिक या 'पंचतंत्रीय' समझ लेते हैं। इस समय मेरा अभिप्राय उन चरित्रों से है जो कहानी या उपन्यास में प्रस्तुत किए जाते हैं और जो नित्यप्रति के जीवन में प्रायः दृष्टिगोचर होने वाले चरित्रों से विभिन्न होते हैं, क्योंकि कहानीकार का उद्देश्य चरित्र के गुह्य जीवन को व्यक्त करना है। मानवीय चरित्र की यह विशिष्टता है कि वह कहानी में हो या जीवन में, आनन्द-लिप्सा की निरन्तर खोज उसके जीवन के तत्त्व को निश्चित करती है। सुख और दुख मनुष्य के गुह्य जीवन से सम्बद्ध हैं। कहानीकार का लक्ष्य इस गुह्य जीवन को अभिव्यक्त करना है। गुह्य जीवन से आनन्द की प्रक्रिया कैसे सम्बद्ध है इस पर भी विमर्श हो सकता है। हक्सले के विचारानुसार, आनन्द या तो पाशविक स्तर पर या अलौकिक स्तर पर ही सम्भव है। लेकिन यदि हम इस विचार को स्वीकार करके चरित्र का निर्माण करेंगे, तो सपाट चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त कुछ प्राप्त नहीं हो सकता (यद्यपि हक्सले के पात्र सपाट नहीं)। लेकिन इससे यह अभिप्राय नहीं कि हम रहस्य प्रगट करने बैठे हैं कि सदाचारी मनुष्य के हृदय में कितना कपट है और दुराचारी मनुष्य में भी कितनी सुनीति है और तब कहानी में गुह्य जीवन को प्रस्तुत करते हैं। इस सम्बन्ध में नीतिशास्त्र की अपेक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता है।

कहानी में चरित्र का गुह्य जीवन ही महत्त्वपूर्ण है। उसका प्रगट जीवन कम दिलचस्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और कम महत्त्वपूर्ण होता है। यह सम्भव है कि किसी चरित्र की एक हरकत या क्रिया या अदा उसके गुह्य जीवन को व्यक्त कर दे, जोकि उसके नित्यप्रति के कर्म-कलाप या उसके जीवन की कर्मशूरता और घटनाएँ प्रस्तुत न कर सकें। उसके नित्यप्रति के जीवन में उसकी साधारण क्रिया को बहुत कम महत्त्व दिया जाता है लेकिन उसके हाथों से हुई हत्या को जो महत्त्व प्राप्त है उससे कई व्यक्ति और समाज प्रभावित होते हैं। कहानीकार इस घटना की ओर कोई ध्यान नहीं देगा यदि यह घटना उसके गुह्य जीवन से हमें परिचित नहीं करती। ऐसी रोमांचकारी घटनाओं से सम्बद्ध चरित्र जासूसी उपन्यासों के चरित्र ही बन सकते हैं, साहित्यिक उपन्यासों के नहीं। इसलिए वे पाठक, जिनकी दृष्टि प्रकट पर है 'अन्तस्' पर नहीं, यह समझने में हमेशा असफल रहते हैं कि वास्तविक चरित्र और कथा-चरित्र में अन्तर है। इस प्रकार के यथार्थवादी पाठक की यह माँग प्रायः अनुचित होती है कि अमुक चरित्र अस्वाभाविक है। वैसे भी यदि आप कहानी में 'ज्यों-का-त्यों' चरित्र ही देखना चाहते हैं, जैसाकि आपने उसे वास्तविक जीवन में देखा है, उसकी उन अनुभूतियों और भावनाओं का चित्रण चाहते हैं जिनसे आपको नित्यप्रति वास्ता पड़ता है, तो फिर आप कहानी पढ़ने की अपेक्षा अपने इर्द-गिर्द दृष्टि डालें और पर्यवेक्षण करें। अनुभूतियाँ और भावनाएँ नई या अछूती नहीं होतीं बल्कि एक नये दृष्टिकोण में उनके मूल्य और महत्त्व को निश्चित करना ही कहानीकार की सफलता है।

कहानीकार का यह कर्त्तव्य है कि जिस चरित्र को आप वर्षों से जानते हैं, जिनके जीवन की घटनाओं से आप परिचित हैं उसके सम्बन्ध में ऐसी अन्तर्दृष्टि प्रकट करें जो उसके जीवन का वास्तविक तत्त्व व्यक्त कर देती है, लेकिन जो किसी मनोवैज्ञानिक या सामाजिक स्थिति के कारण व्यक्त नहीं होता। जिसे आप वास्तविक समझ रहे हैं, क्योंकि वह आपकी दृष्टि के सामने नित्यप्रति होता रहता है, वास्तव में कृत्रिम और अवास्तविक है। उनकी वास्तविकता इतनी है कि व्यक्ति प्राकृतिक अवस्था में जीवित नहीं रहता बल्कि सामाजिक बन्धनों में जकड़ा रहता है। इसलिए जब पाठक किसी कहानी के चरित्र को काल्पनिक और अस्वाभाविक घोषित कर देता है तो इसके दो कारण हो सकते हैं—

१—कि कहानीकार विश्वासात्मक विधि से चरित्र के तात्त्विक जीवन का चित्रण नहीं कर सका।

२—कि पाठक की अन्तःदृष्टि इतनी कमज़ोर है कि जिसे वह वास्तविक समझता है उसे वह अवास्तविक समझने के लिए तैयार नहीं।

कहानी-चरित्र के सम्बन्ध में आलोचक और पाठक हमेशा इस विवाद को जारी रखेंगे कि क्या यथार्थ है। जिसे कहानीकार यथार्थ समझता है वह पाठक की दृष्टि में अस्वाभाविक है और जिसे पाठक यथार्थ समझता है वह कहानीकार के लिए सत्य नहीं है। वैसे भी बेचारे लेखक से हर प्रकार की माँग की जाती है। कुछ माँगें तो अब लेखक को अपने पाठकों से भी करनी चाहिए। संगीत, नृत्य और ललित कला से आनन्दानुभूति के लिए कुछ बातों का ज्ञान अनिवार्य है। लेकिन साहित्य से आनन्दास्वादन के लिए केवल शब्दों का पढ़ लेना ही पर्याप्त समझ लिया गया है। यही कारण है कि साक्षर परन्तु अप्रशिक्षित पाठक की सन्तुष्टि के लिए कहानीकार कभी भी कोई चरित्र पूर्णरूपेण प्रस्तुत नहीं कर सकता। चरित्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चित्रण को सफल बनाने के लिए कहानीकार कुछ तो पाठक की यथार्थ दृष्टि को स्वीकार करेगा ताकि वह कहानी पढ़ सके और कुछ अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करेगा ताकि चरित्र में अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो। इस बात में खतरा यह है कि चरित्र विकृत न हो जाय और विकृत चरित्र वास्तव में अपूर्ण है तथा अपूर्ण चरित्र जीवन और कहानी दोनों के दृष्टिकोण में अवास्तविक है। सोमरसेट के विचारानुसार साहित्यकार यथार्थ की नकल नहीं करता। वह उससे जो ग्रहण करना चाहता है, कर लेता है। कुछ विशिष्ट बातें हैं जिन्होंने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। मानस का मोड़ है जिसने उसकी कल्पना को प्रेरित किया है। कहानीकार उनसे चरित्र का निर्णय करता है। इससे उसे कोई सरोकार नहीं कि चरित्र असल से सही समानता रखता है या नहीं। वह केवल अपने उद्देश्य को सहज तौर पर पूर्ण करने के लिए सम्भाव्य समानता पैदा करना चाहता है।

इस स्थान पर ऐलन के विचार भी स्मरणीय हैं—

**"प्रत्येक मनुष्य के दो पहलू होते हैं जो इतिहास और कहानी के लिए उचित होते हैं। वह सब-कुछ, जिसका कि व्यक्ति में पर्यवेक्षण किया जा सकता है, अर्थात् उसकी क्रियाएं और उसका आध्यात्मिक अस्तित्व, जोकि उसकी क्रियाओं से उद्धृत किया जा सकता है, इतिहास के क्षेत्र में सम्मिलित है। लेकिन उसका आध्यात्मिक पक्ष विशुद्ध भावनाओं पर आधारित है, अर्थात् स्वप्न, अतिवेदना और स्वगत, जिसका वर्णन लज्जा के कारण नहीं हो पाता। मानव-प्रकृति के इस पहलू को प्रस्तुत करना उपन्यासकार के महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों में से एक है। इतिहासकार लिपि-बद्ध करता है जबकि उपन्यासकार के लिए सृजन करना आवश्यक है।**

कथा-चरित्र नित्यप्रति के जीवन से सम्पूर्ण और व्यापक रूप से समानता नहीं रखता, बल्कि वह उनसे अन्तर रखता है। जिस तरह साधारण जीवन में व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध और संघर्ष होते हैं, इसी तरह कहानी और उपन्यास में चरित्रों का अपना संसार और जीवन जन्म ले चुका होता है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध और संघर्ष कथावस्तु, वातावरण और दूसरे चरित्रों के पारस्परिक लगाव-अलगाव से निश्चित होता है। इसलिए नित्यप्रति के जीवन में चलते-फिरते व्यक्ति की कसौटी पर कथा-चरित्र की वास्तविकता को परखना सही नहीं। फ़ारेस्टर ने 'होमियो सेपियन' और 'होमो फिक्टस' के अन्तर का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि 'होमो फ़िक्टस' अर्थात् कथा-चरित्र जन्म लेता है, वह मर सकता है, वह कुछ खुराक और नींद चाहता है, वह मानवीय सम्बन्धों में घिरा हुआ है। हम उसके सम्बन्ध में अपने किसी भी दूसरे व्यक्ति से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि उसका स्रष्टा और वर्णनकार एक ही हैं।

फारेस्टर ने एक महत्त्वपूर्ण विचार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि कहानी एक कला-कृति है जिसके नियम नित्यप्रति के जीवन की तरह नहीं होते। इसलिए यदि चरित्र यथार्थ है तो उसको परखने की कसौटी नित्यप्रति का जीवन नहीं हो सकती, बल्कि कहानी का वह संसार है जिसमें कि वह पैदा हुआ है और विकास पा रहा है। कहानी में चरित्र-चित्रण की सफलता कहानी के वातावरण की अनुकूलता से ही निश्चित की जा सकती है, जो उस नित्यप्रति के जीवन से भिन्न है जोकि हम साधारण तौर पर बसर करते हैं। इसलिए जब कहानी पर बहस होती है तो इस बात को नज़रन्दाज़ कर दिया जाता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सन्दर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

कहानी जीवन नहीं और न ही जीवन का स्थानापन्न है, अपितु जीवन की सत्यता पर एक नये जीवन का सर्जन है, एक नये संसार का निर्माण है, जिसके अपने भी कुछ नियम हैं जो चरित्र को प्रभावित करते हैं और जिनसे चरित्रों का जीवन नियमित होता है और उन नियमों के आधार पर ही यथार्थ की परख की जा सकती है। कहानी के चरित्र पर नित्यप्रति के जीवन के नियमों को लागू करके उसे अस्वाभाविक घोषित कर देना ज़ाहिर करता है कि पाठक को न तो जीवन की चेतना है और न ही कला का ज्ञान, अन्यथा वह इस चरित्र के यथार्थ को जानने में ग़लती न करता। जीवन के चरित्र और कहानी के चरित्र में कला की एक झिल्ली है जो चीन की दीवार नहीं लेकिन जीवन से सम्बद्ध होते हुए भी उसे जीवन के राज्य से कला के क्षेत्राधिकार में ले जाती है, जिसके कारण चरित्र, उसकी जीवन-विधि और नागरिकता के अधिकार बदल जाते हैं जबकि बहुत से मौलिक अधिकार समन्वित होते हैं। साधारणतया पाठक एक राज्य से दूसरे राज्य में अवैधानिक तौर पर प्रवेश करता रहता है जिसके कारण कला के लिए ज़ाविते की बहुत सी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। सम्भव है कि कोई चरित्र हमसे समानता रखता हो, लेकिन यदि वह समानता नहीं रखता तो इस बात पर उसका व्यक्तित्व छिन नहीं जाता। कहानीकार को अपने सृष्ट चरित्र के सम्पूर्ण जीवन की चेतना अनिवार्य है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह उसके जीवन के प्रत्येक पहलू का वर्णन करे। यदि कहानीकार अपने चरित्र के सम्पूर्ण जीवन के बारे में सचेत हुए बिना किसी एक पहलू को बयान करता है तो वह न केवल अपूर्ण होगा बल्कि उसके यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व भी नहीं कर सकेगा। चरित्र के विभक्त व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत करने के लिए यह आवश्यक है। तर्गनीफ़ के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह चरित्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसकी जीवनी तैयार करता था। प्रत्येक वह क्रिया, जो उसने की है और कहानी के शुरू होने तक उसके साथ घटी है, उसकी रूपरेखा तैयार करता था, उसी तरह जैसे किसी आदी अपराधी का रिकार्ड पुलिस तैयार करती है। इसलिए वह कहानीकार, जो अपने पात्र की सम्पूर्ण व्यापक चेतना रखता है, उसकी विशिष्टता का वर्णन कर सकता है जो प्रायः हमारी दृष्टि से ओझल रहती है। क्योंकि वह हमारे उस पर्यवेक्षण की परिधि से बाहर है जो आँख ने किया है इसलिए अवास्तविक है। कहानीकार की आँख में वह आँख तो शामिल है जो हम सबके पास है, लेकिन उसकी अन्तःदृष्टि में कल्पना की उड़ान और सहजप्रज्ञा की गहराई भी है। स्वाभाविक चरित्र पैदा होता है, खाना खाता है, सोता है, यौन-सन्तुष्टि प्राप्त करता है। हम यह देखते हैं और प्रस्तुत करके मौन हो जाते हैं। लेकिन ये समस्त क्रियाएँ किसी हद तक और कभी-कभी ही उसके यथार्थ जीवन को व्यक्त कर पाती हैं।

फ़ारेस्टर के विचारानुसार केवल पेचीदा चरित्र ही कुछ समय तक के लिए ट्रेजिक तौर पर चल सकते हैं और हमारी अनुभूतियों को प्रेरित कर सकते हैं, क्योंकि ऐसे चरित्र की यह कसौटी है कि वह हमें निश्चित रूप से विस्मित करने की क्षमता रखता है या नहीं। यदि वह कभी भी विस्मय उत्पन्न नहीं करता तो वह सपाट है। यदि वह निश्चित नहीं तो भी वह सपाट है जो पेचीदा बनने का भ्रम उत्पन्न कर रहा है।

चरित्र स्वाभाविक है या यथार्थ, वास्तविक है या काल्पनिक, निश्चयात्मक है या नासत्यात्मक, सपाट है या मिश्रित इत्यादि, कहानीकार के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चरित्र-चित्रण के लिए दृष्टिकोण बड़ा महत्त्व रखता है। दूसरा प्रश्न यह है कि कहानीकार उस चरित्र को कैसे प्रस्तुत करता है। कला के अतिरिक्त इसका आधार भी दृष्टिकोण पर है। कहानीकार चरित्र को निरपेक्ष वस्तुगत तरीके से उसके जीवन में अन्तःदृष्टि प्राप्त करके या अपने-आपको उसमें सम्मिलित करके प्रस्तुत करता है। चरित्र-चित्रण के इस पहलू पर विचार करने के लिए चरित्र के जीवन की चेतना आवश्यक है। चरित्र की सामाजिक पृष्ठभूमि क्या है? चरित्र की मनःस्थिति क्या है? इस चरित्र से सम्बद्ध तात्त्विक नैतिकता क्या है? कहानीकार का अपना व्यक्तित्व क्या है? चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में ये प्रश्न पर्याप्त महत्त्व रखते हैं।

कहानीकार के लिए आवश्यक है कि चरित्र की सामाजिक पृष्ठभूमि की चेतना प्राप्त करे। सामाजिक पृष्ठभूमि एक विशाल बात है जिसमें हम चरित्र के पालन-पोषण, उसके पारिवारिक जीवन, वातावरण और आर्थिक आधार को जानना आवश्यक समझते हैं। यह सम्भव है कि कहानी में इनमें से किसी बात का वर्णन न हो और प्रायः इनका वर्णन करना आवश्यक भी नहीं होता। लेकिन चरित्र से मिलते ही हम उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि से परिचित हो जाते हैं। सामाजिक पृष्ठभूमि की बात मैं किसी 'प्रगतिवादी' सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं कर रहा, बल्कि इसका अभिप्राय यह है कि चरित्र का कोई आधार अवश्य होता है जिस पर उसे निर्मित किया जाता है। कोई भी चरित्र शून्य से पैदा नहीं होता और उसे वायुलम्बित प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। सामाजिक पृष्ठभूमि को सामाजिक यथार्थवाद से गडमड नहीं करना चाहिए।

दूसरी बात चरित्र की मनःस्थिति है। इसमें उसकी गहन मनोवृत्ति का गहरा दख़ल है, यानी वह जीवन नहीं जो वह बसर करता नज़र आता है; वे हाव-भाव नहीं जो प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर होते हैं बल्कि उसका गुह्य जीवन, जिससे वह वेदना और आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है, जो व्यक्त होने के लिए हमारी बाह्य दृष्टि से परे अन्तर्दृष्टि की प्रतीक्षा में कहता है। हम कहानी में आकृति नहीं व्यक्तित्व चाहते हैं। हमें चरित्र की 'केस हिस्टरी' नहीं चाहिए और न ही उसकी चिकित्सा के लिए परामर्श की आवश्यकता है, बल्कि उसके तात्त्विक गुह्य जीवन में अन्तर्दृष्टि अनिवार्य है, जिसमें व्यक्ति व्यक्तित्व बनता है और एक व्यक्तित्व कथा-चरित्र बनता है। इसलिए इसे मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का स्थानापन्न नहीं समझ लेना चाहिए।

तीसरी बात उस चरित्र का मूल्य और महत्त्व है। इस मूल्य या महत्त्व का निर्णय किसी विशिष्ट परम्परावादी नैतिक नियम के अनुकूल नहीं बल्कि तात्त्विक नैतिकता से करना चाहिए, जो नैतिकता उसके चरित्र को पूर्ण करती है। इसलिए यह बहस कि चरित्र निश्चयात्मक है या नासत्यात्मक, ग़लत है। जिसे हम नासत्यात्मक कहते हैं यदि उसमें तात्त्विक नैतिकता का तत्त्व विद्यमान है तो वह चोर या लुटेरा होने के बावजूद निश्चयात्मक चरित्र है।

निश्चयात्मक से तात्पर्य प्रायः स्वस्थ चरित्र होता है। स्वस्थ किस दृष्टिकोण से— शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक? इस प्रकार की समीक्षा करने वालों के लिए यह बात समझना अत्यधिक कठिन है कि जिसे प्रायः नैतिक अपराधी कहा जाता है वह भी आध्यात्मिक रूप में स्वस्थ हो सकता है। अतः वह निश्चयात्मक चरित्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अन्तिम बात कहानीकार के अपने व्यक्तित्व की है, जो सामाजिक पृष्ठभूमि, मनोवृत्ति और तात्विक नैतिकता में तारतम्य और ऐक्य पैदा करता है। इसमें कहानीकार की कला और उसका स्वभाव शामिल हैं। इन समस्त वस्तुओं के सम्मिश्रण के बिना किसी उच्चकोटि की कहानी की रचना सम्भव नहीं। वस्तुगत चित्रण के भ्रम में हमें कहानीकार के व्यक्तित्व को दृष्टि से ओझल नहीं होने देना चाहिए। हेनरी जेम्स ने ठीक कहा है कि दूसरे व्यक्तियों के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अपने सम्बन्ध में हमारे ज्ञान से उद्धत होता है। फ्लावेयर ने क्या खूब कहा है कि मैं हर समय दूसरे व्यक्तियों के शरीर में शामिल हूँ जो मुझसे भिन्न हैं। कई बार कहानीकार या उपन्यासकार अपने व्यक्तित्व के विभिन्न अंशों को विभिन्न चरित्रों में शामिल कर देता है। इसलिए किसी एक चरित्र में कहानीकार के व्यक्तित्व की खोज करना निष्फल है। फ्लावेयर वास्तविक व्यक्तित्व है और उसके द्वारा सृष्ट चरित्र 'एम्मा' (मादामबोवेरी) कथा-चरित्र है, लेकिन फ्लावेयर ने लिखा है कि 'मैं एम्मा हूँ' और फ्लावेयर ने अपने शरीर में विष का असर महसूस किया, इसके बावजूद कि फ्लावेयर ने एम्मा की आत्महत्या की घटना वास्तविक जीवन से ली थी। तर्गनीफ का विचार था कि वह चरित्र निर्मित नहीं कर सकता जब तक कि वह अपनी कल्पना को किसी जीवित व्यक्ति पर केन्द्रित न कर दे। बिना किसी विशेष व्यक्ति के वह अपनी रचना को जीवन और विशिष्टता प्रदान नहीं कर सकता। बात वास्तव में यह है कि चरित्र-चित्रण में साहित्यकार का निजी व्यक्तित्व और कलात्मक व्यक्तित्व शामिल रहते हैं। बहुत से व्यक्ति एक चरित्र में सम्मिलित रहते हैं। चरित्र समन्वय है। हेनरी जेम्स ने लिखा है कि निजी परिस्थितियों के किसी चित्र की विषय-वस्तु अधिकतर उसके निर्माता के अपने मस्तिष्क की गहराइयों से उत्पन्न होती है।

एक वास्तविक चरित्र का कथा-चरित्र बनना और एक कथा-चरित्र का वास्तविक रूप धारण कर लेना ही चरित्र-चित्रण की कला का चमत्कार है। जीवन के वास्तविक चरित्रों को कला के कथाचित्रों में ढूँढ़ने की कोशिश में हम जीवन और कला दोनों खो बैठते हैं, परन्तु यथार्थ चरित्र की आत्मा को कहानी का रूप प्रदान करके उसे फिर वास्तविक चरित्र बना देने में हम जीवन और कला दोनों को ग्रहण कर लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० देवराज

# प्रौढ़ता के स्तर

जीवन का लक्ष्य क्या है, इसके बारे में विभिन्न युगों तथा देशों के दार्शनिकों ने अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। इनमें से कुछ सिद्धान्तों की अनुभव द्वारा परीक्षा सम्भव है, और कुछ की नहीं। उदाहरण के लिए, जहाँ स्थितप्रज्ञता के आदर्श को न्यूनाधिक मात्रा में बरता और उसी अनुपात में आँका जा सकता है, वहाँ भारतीय मोक्षवाद के कतिपय तत्त्व एकदम ही अपरीक्षणीय हैं जिन्हें आज की वैज्ञानिक बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती। मानववादी दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जीवन का लक्ष्य व्यक्तित्व का सम्पूर्ण परिष्कार अथवा उसका प्रौढ़तम धरातल पर विकास है, ताकि उसकी प्रतिक्रियाएँ पूर्णतया प्रौढ़ (Mature) हो सकें। इस प्रकार की प्रौढ़ता व्यक्तिगत तथा जातीय दोनों प्रकार के जीवन का लक्ष्य समझी जा सकती है।

उक्त प्रौढ़ता की प्राप्ति थोड़े समय एवं श्रम द्वारा साध्य नहीं है, वह जीवनव्यापी साधना द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। जब तक कोई व्यक्तित्व विकासमान रहता है, तब तक वह लगातार प्रौढ़ता की दिशा में प्रगति करता रहता है। प्रश्न है, प्रौढ़ता की उपलब्धि की प्रक्रिया इतनी जटिल एवं कठिन क्यों है? क्या एक-दो महापुरुषों के सिद्धान्त-सूत्रों अथवा उपदेशों को जान लेने से हमारा काम नहीं चल सकता? क्या नैतिक क्षेत्र में बुद्ध, ईसा तथा गांधी के उपदेशों पर चलना काफी नहीं है? और क्या साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में भरत, वामन, मम्मट आदि धुरन्धर विचारकों के सिद्धान्तों एवं पैमानों की अवगति पर्याप्त नहीं है?

उक्त प्रश्नों के उत्तर में हम जोर देकर कहेंगे—नहीं। सम्भवतः बुद्ध आदि के नैतिक उपदेश कुछ महीनों में पढ़ लिये जा सकते हैं और साहित्यशास्त्रियों के सूत्र भी थोड़े समय में रटे जा सकते हैं, यदि इतने मात्र से प्रौढ़ व्यक्तित्व की प्राप्ति हो जाय तो वह क्रिया जीवन-व्यापी साधना नहीं रह जायगी।

बात यह है कि किसी भी सिद्धान्त अथवा उपदेश का एक लम्बा-चौड़ा सन्दर्भ होता है। यह सन्दर्भ लम्बे-चौड़े जीवन एवं समस्याओं की अनुभूति होती है जो विशिष्ट सिद्धान्त या उपदेश की पोषक साक्षी (Evidence) का निर्माण करती है। इस साक्षी के ज्ञान के अभाव में हमारा किसी सूत्र का ज्ञान नितान्त अपूर्ण रहता है और इस साक्षी को सूत्र के रचयिता की व्यापक दृष्टि से देख सकने की क्षमता उत्पन्न कर सकना लम्बे परिश्रम की अपेक्षा करता है। उदाहरण के लिए बुद्धजी के किसी उपदेश को पूर्णतया हृदयंगम करने का अर्थ है—उस समस्त अनुभूति से परिचित होना जिसने बुद्धजी के उपदेश-सूत्र को प्रति-



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पादित कराया। बुद्धजी के समस्त अनुभव को आत्मसात् किये बिना हम उनके किसी सूत्र की पूर्ण शक्ति से परिचित नहीं हो सकते। यही बात आइन्सटाइन, रसेल आदि विचारकों के सिद्धान्त-सूत्रों के ग्रहण पर लागू है। किसी भी महापुरुष को ठीक से समझना लम्बी साधना की अपेक्षा करता है। इस साधना द्वारा हम धीरे-धीरे स्वयं महान् बनने लगते हैं। मौलिक रूप में महान् बनने के लिए यह भी जरूरी है कि हम अनेक महापुरुषों के निकटसम्पर्क में रहकर उनके अनुभवों की परिधियों से बाहर संक्रमण करें और इस प्रकार अनुयायियों की भूमिका से निकलकर अपनी निराली अनुभूतियों को महत्त्वपूर्ण बनाना तथा आँकना सीखें। जीवन तथा अनुभूति के विभिन्न क्षेत्रों में इस कोटि की प्रौढ़ता सम्पादित करना स्पष्ट ही एक जीवनव्यापी साधना का लक्ष्य एवं फल हो सकता है। व्यक्ति द्वारा ऐसी साधना प्रायः उसी देश में सम्भव हो सकती है जहाँ प्रौढ़ता का सामान्य वातावरण है। दूसरा तरीका यह है कि व्यक्ति अपने वातावरण की सीमाओं का अतिक्रमण करके अतीत के अथवा विदेशी विचारकों तथा शिक्षकों से प्रेरणा ले।

इतनी भूमिका के बाद अब हम प्रौढ़ता के विभिन्न स्तरों की चर्चा करेंगे जिसका सम्बन्ध मुख्यतः साहित्य से होगा। यहाँ याद रखना चाहिए कि किसी भी एक व्यक्तित्व में सर्वतोमुखी प्रौढ़ता का क्रियात्मक विकास सम्भव नहीं है। कोई भी एक व्यक्ति साहित्य, विज्ञान, इतिहास, दर्शन आदि भिन्न क्षेत्रों में समान रूप से प्रौढ़ दृष्टियाँ विकसित नहीं कर सकता। सर्वतोमुखी प्रौढ़ता एक सुसंस्कृत राष्ट्र के जीवन में ही प्रतिष्ठित हो सकती है—ऐसे राष्ट्र में जहाँ विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले बहुत से व्यक्ति मूल्यांकन अथवा विवेक के प्रौढ़तम पैमानों की चेतना एवं प्रयोग के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं।

अन्ततः प्रौढ़ता मानवीय जीवन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का धर्म है जिसकी अभिव्यक्ति ज्ञान-विज्ञान, समीक्षा, कला आदि में होती है। प्रौढ़ अनुभवात्मक प्रतिक्रिया एक खास अर्थ में सुगठित एवं सघन प्रतिक्रिया होती है। वह प्रतिक्रिया एक अकेले प्रयोजन से बँधी हुई और इसलिए पूर्ण रूप में संगत होती है। प्रौढ़-रचना की सर्वप्रथम पहचान यह है कि उसमें कहीं भी रचना की मूल प्रवृत्ति से असम्बद्ध ऐसे तत्त्वों का समावेश नहीं होता जो उस प्रवृत्ति को पल्लवित अथवा पुष्ट या प्रभावित करने वाले नहीं हैं। शब्दों तथा पद-समूहों के प्रयोग में प्रौढ़-लेखक पूर्णतया मितव्ययी होता है। इस मितव्ययिता का आवश्यक रूप में यह अर्थ नहीं है कि श्रेष्ठ लेखक विशेषणों आदि के प्रयोग में अनावश्यक कंजूसी से काम ले। फिर भी यह ठीक है कि अभ्यस्त एवं प्रौढ़-लेखक शब्दों का दुरुपयोग नहीं करता, वह ऐसी व्यंजनाओं के प्रयोग से बचता है जो रचना की प्रभाव-वृद्धि में उल्लेखनीय योग नहीं देतीं। शब्दों तथा शब्द-समूहों का प्रयोग प्रायः दो प्रयोजनों से होता है—अनुभूति के सही एवं प्रभावपूर्ण प्रकाशन के लिए अथवा उसे निकटवर्ती क्षेत्रों के चित्रों तथा संकेतों द्वारा अधिक समृद्ध बनाने के लिए। रोमांटिक काव्य-साहित्य में यह दूसरा प्रयोजन मुख्य रहता है। आधुनिक काव्य-साहित्य प्रायः पहले प्रयोजन को ज्यादा महत्त्व देता है। कवि कीट्स ने कहा है—"Poetry should surprise us by a fine excess", अर्थात् कविता को हमें एक मनोज्ञ अतिशयता द्वारा चकित या चमत्कृत कर सकना चाहिए। सम्भवतः आज के वैज्ञानिक समीक्षक विचारकों को यह मत अधिक ग्राह्य न होगा। स्थूल रूप में कहें तो बतलाना होगा कि प्रौढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रचना में कहीं भी भरती के शब्दों का समावेश नहीं होता। प्रौढ़ लेखक में अनुभूति अथवा विचारों की दरिद्रता नहीं रहती। वह अनुभव तथा चिन्तन के एक विस्तृत प्रदेश से रचना की सामग्री का चयनात्मक आदान करता है, इसीलिए उसे कभी प्रासंगिक चित्रों, भावों अथवा विचारों की कमी नहीं पड़ती। फलतः वह अपनी रचना में कहीं भी निरर्थक एवं प्रभावशून्य पदों तथा व्यंजनाओं का समावेश नहीं करता। उसकी रचना का प्रत्येक अंश सार्थक स्पन्दन जगाने वाला होता है, फिर चाहे वह स्पन्दन रागात्मक हो अथवा विचारात्मक।

उपरोक्त कोटि की प्रौढ़ता दूसरी कोटियों की प्रौढ़ता का आवश्यक आधार है। इस प्रकार की प्रौढ़ता के प्रतिफलन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अभिव्यक्ति अनुभूति किसी खास श्रेणी की हो; यह भी जरूरी नहीं है कि उस अनुभूति में दार्शनिकता अथवा विचारात्मक उच्चता का समावेश हो। ऐसी प्रौढ़ता साधारण मनोवृत्तियों के परिपूर्ण प्रकाशन में भी प्रतिफलित हो सकती है और असाधारण अनुभवों की अभिव्यंजना में भी अवश्य ही काव्यबद्ध अनुभूति में एक विशिष्ट कोटि का आकर्षण या चमत्कार रहता ही है। उक्त कोटि की प्रौढ़ता को 'औचित्य' के नाम से भी अभिहित किया जा सकता है। कतिपय प्राचीन साहित्यशास्त्रियों ने इस तत्त्व को विशेष गौरव दिया है।

महाकवि ग़ालिब के निम्नलिखित प्रत्येक पद्य में उक्त श्रेणी की प्रौढ़ता मिल सकेगी। वस्तुतः सभी भाषाओं तथा कोटियों के उत्कृष्ट काव्य में इस प्रकार की प्रौढ़ता आवश्यक रूप में निहित रहती है। ग़ालिब के निम्न शेर एक ही ग़ज़ल से लिये गए हैं—[1]

१. हम से खुल जाओ बवक्ते मय-परस्ती एक दिन,
वर्ना हम छेड़ेंगे रख के उज्रे मस्ती एक दिन।
२. धौलधप्पा उस सरापा नाज़ का शेवा नहीं,
हम ही कर बैठे थे ग़ालिब पेशदस्ती एक दिन।
३. क़र्ज़ की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ,
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन।
४. नाल हाये ग़म को भी अय दिल ग़नीमत जानिये,
बेसदा हो जायगा यह साज़ हस्ती एक दिन।

उक्त पद्यों को हमने विशेष प्रयोजन से उद्धृत किया है। दूसरे पद्य में प्रेमी के प्रेमिका से हाथापाई करने की बात है; जीवनोपभोग की समग्रता में सम्भवतः ऐसी हरकतों का भी समावेश है। अन्तिम पद्य में ग़ालिब ने एक मार्मिक दार्शनिक तथ्य का रागात्मक संकेत किया है; इस पद्य में एक दूसरी कोटि की प्रौढ़ता भी है। किन्तु हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि दूसरे तथा तीसरे पद्यों को किसी भी महत्त्वपूर्ण पैमाने के अनुसार अप्रौढ़ नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः ग़ालिब जैसे प्रौढ़ व्यक्तित्व की लेखनी से जो कुछ भी निःसृत

१. (१) शराबखोरी के अवसर पर एक दिन बेतकल्लुफ हो जाओ, वर्ना हम तुम्हें नशे का बहाना करके छेड़ेंगे। (२) सरापा नाज़ = सर से पैर तक सुन्दर या सुन्दर भंगिमाओं से युक्त। पेशदस्ती = हाथ छोड़ना। (३) स्पष्ट है। (४) ग़म या वेदना के गीतों को भी ग्राह्य समझना चाहिए, क्योंकि अस्तित्व का यह वाद्य एक दिन स्वरहीन हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होता है वह सांस्कृतिक दृष्टि से अप्रौढ़ हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार बिहारी अथवा सूर के शृंगार-काव्य को लेकर उन पर सांस्कृतिक लांछन लगाना समीक्षक की अप्रौढ़ता का ही द्योतक हो सकता है।

हमने कहा था कि प्रौढ़ता का प्रतिफलन अनुभूति की समंजस गठन एवं समृद्धि में होता है। एक गीत या पद्य की प्रौढ़ता हममें एक पूर्ण रागात्मक स्पन्दन जाग्रत होने का कारण होती है। एक महाकाव्य अथवा उपन्यास ऐसे स्पन्दनों के एक सम्बद्ध पुञ्ज को उत्पन्न करता है। प्रौढ़ता का चरम आधार सशक्त जीवन-स्पन्दन की सफल सृष्टि है। स्पष्ट ही एक प्रभावशील व्यक्तित्व का जीवन असम्बद्ध शक्त स्पन्दनों की परम्परा-मात्र नहीं होता; उस जीवन में विभिन्न स्पन्दन गम्भीर प्रयोजनमूलक सम्बन्ध-सूत्रों से आबद्ध रहते हैं। व्यक्ति के जीवन-व्यापारों की भाँति काव्यगत अनुभूति भी छोटे-बड़े अनेक प्रभाव उत्पन्न करती है। हम एक व्यक्ति के हँसने-मुस्कराने के ढंग से प्रभावित हो सकते हैं; हम उसकी असाधारण प्रतिभा अथवा कार्यदक्षता की लम्बी-चौड़ी अभिव्यक्ति से भी प्रभावित होते हैं। एक गांधी अथवा नेहरू के व्यक्तित्व में साधारण तथा असाधारण अनेक विशेषताएँ पाई जा सकती हैं। गीतिकाव्य का अपना महत्त्व है; प्रायः गीतिकाव्य का विषय सौन्दर्य तथा प्रेम होता है। प्रायः गीतकार कवि एक क्षेत्र से सम्बद्ध बहुत सी रचनाएँ प्रस्तुत करके हमारे मन पर छाप डालते हैं। बिहारीलाल, विद्यापति, उमरखैयाम, महादेवी, पन्त आदि इसी कोटि के कवि हैं। किन्तु किसी महाकाव्य अथवा उपन्यास में अनुभूति का जो आकलन होता है उसकी प्रौढ़ता केवल अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं होती। वह प्रौढ़ता अनुभूति के सम्बद्ध विस्तार एवं उसकी यथार्थमूलक दृष्टि की प्रखरता तथा सार्थकता से भी निरूपित होती है।

हमने कहा था कि अभिव्यक्तिगत प्रौढ़ता दूसरी कोटियों की प्रौढ़ता का आवश्यक आधार होती है। प्रश्न है, कालिदास जैसे महाकवि एवं टॉल्स्टाय जैसे उपन्यासकार की कृतियों में प्रतिफलित प्रौढ़ता किन कोटियों की है?

समस्त साहित्य जीवन से प्रेरणा लेता है। प्रौढ़ साहित्य, अन्तिम विश्लेषण में, प्रौढ़ जीवन-स्पन्दन की अभिव्यक्ति होता है। प्रौढ़ गीतिकाव्य एक प्रौढ़ व्यक्तित्व के राग-विरागों अथवा प्रतीतियों को वाणी देता है। कालिदास के काव्य की प्रौढ़ता का रहस्य यह है कि उन्होंने एक प्रौढ़ अथवा विकसित संस्कृति से सम्पन्न जाति के समग्र जीवन के सार्थक पहलुओं को प्रकाशित किया। एक जातीय जीवन में बहुत से तत्त्व होते हैं, एक समुन्नत जाति में विकसित सौन्दर्य-बोध, परिपक्व नीति-बोध एवं लम्बी अनुभूति से प्रमाणित जीवन का तत्त्व-बोध पाये जाते हैं। कालिदास तथा दूसरे महत्त्वपूर्ण संस्कृत कवियों में उक्त सभी कोटियों के बोध विकसित रूपों में प्रतिफलित हुए हैं। फलतः संस्कृत काव्य एक दूसरे महत्त्वपूर्ण अर्थ में प्रौढ़ है। इस प्रकार की प्रौढ़ता प्रायः विकसित जातियों के साहित्यकारों में ही पाई जा सकती है। इस दृष्टि से सूर और तुलसी का काव्य कालिदास, भवभूति आदि के काव्य का समकक्ष नहीं है। भारवि, माघ आदि कवियों में जिस परिपक्व कोटि का जीवन-विवेक (जिसमें राजनीतिक जरूरतों तथा मर्यादाओं का बोध भी सम्मिलित है) पाया जाता है वैसा मध्ययुगीन हिन्दी आदि के कवियों में नहीं। 'किरातार्जुनीय' के भीमसेन एक राजकुमार की मर्यादा के अनुरूप बातचीत तथा व्यवहार करते हैं; मध्ययुगीन तथा बाद के साहित्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमें भीमसेन जैसे वीरों के विकृत अतिरंजना करने वाले चित्र ही मिल सकते हैं। इन दृष्टियों से हिन्दी के प्रायः किसी भी नाटककार को हम प्रौढ़ लेखक नहीं कह सकेंगे। प्रसाद के एक नाटक में मातृगुप्त अथवा कालिदास का उल्लेख है, किन्तु वहाँ महाकवि की गरिमा का वैसे ही निर्वाह नहीं हो सका है जैसे कि 'रामचरितमानस' में रावण आदि के सम्राटोचित गौरव का।

जातीय संस्कृति एवं यथार्थ-दृष्टि से आगे मानवीय इतिहास के सत्य एवं यथार्थ का क्षेत्र है। स्वयं मानव-प्रकृति का विविध यथार्थ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। राष्ट्रों के सम्मिलन के इस युग में श्रेष्ठ कलाकार मानव-प्रकृति एवं इतिहास के यथार्थ को किसी एक जाति के सांस्कृतिक चश्मे को लगाकर नहीं देख पाता; अपनी प्रखर दृष्टि से वह उस यथार्थ को अपने प्रकृत रूप में पकड़कर व्यक्त करना चाहता है। आज का कलाकार जीवन का एक स्वतन्त्र द्रष्टा तथा अन्वेषक बनने को बाध्य हो गया है। आज उसकी दृष्टि अनेक ज्ञान-विज्ञानों के आकलन तथा इतिहास की विस्तृत जानकारी द्वारा गठित होती है। आज का प्रौढ़ उपन्यास-कार अथवा महाकाव्य-प्रणेता अपनी रचना में ऐसी दृष्टि को ही प्रकाशित एवं प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील होगा। इसका मतलब यह है कि आज के महत्त्वपूर्ण उपन्यास या महाकाव्य में एक प्रबुद्ध पाठक को अपने युग का समस्त उन्नत बोध प्रतिफलित होता दिखाई पड़ना चाहिए। यह युग-बोध आवश्यक रूप में किसी एक जीवन-दृष्टि को जन्म नहीं देता; उस युग-बोध की अनेक दिशाएँ एवं आयाम भी हैं। टॉल्स्टाय तथा दास्ताएव्स्की दोनों ही समकालीन युग-बोध को प्रकट करते हैं, यद्यपि उनके क्षेत्र अलग-अलग हैं।

ऐतिहासिक बोध एवं दृष्टि का प्रतिफलन अनेक रूपों में होता है—इस अवगति में कि नैतिक तथा दूसरी सांस्कृतिक परम्पराएँ अनेक एवं परस्पर-विरोधी हैं, इस प्रतीति में कि इतिहास में कुछ प्रेरणाएँ तथा शक्तियाँ ज्यादा महत्त्वपूर्ण रही हैं। ऐतिहासिक दृष्टि रखने वाला कलाकार ही एक गहरे अर्थ में नैतिक शिक्षा का कार्य सम्पन्न कर सकता है। ऐसा शिक्षण प्रायः स्थूल आदर्शों की दुहाई नहीं देता, वह पाठकों की यथार्थ दृष्टि का प्रखर विस्तार करते हुए ही उन्हें उच्च कोटि का जीवन-विवेक देता है।

अन्तिम विश्लेषण में जीवन-विवेक का अर्थ है—सुख-दुख से सम्बद्ध जीवन की विभिन्न सम्भावनाओं की अवगति और उन सम्भावनाओं के आपेक्षिक अथवा चरम महत्त्व की चेतना। इस प्रकार की अवगति एवं चेतना के उपकरण के रूप में ही इतिहास एवं दर्शन की जानकारी का उपयोग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन : भारतीय लेखक

प्रकाशचन्द्र गुप्त

# यशपाल के उपन्यास

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी-उपन्यास विविध दिशाओं में उन्मुख हुआ और नई धरती उसने गोड़ी। जैनेन्द्र जी ने मध्यम वर्ग के शहरी जीवन के अनेक कुशल चित्र खींचे, जिनमें 'त्याग-पत्र' सबसे सशक्त और मर्मवेधी था; श्री भगवतीचरण वर्मा ने इतिहास को आधुनिक विचारों के आलोक में देखा और चित्रित किया, तथा आज के संस्कारों का खोखलापन दिखाया; श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने पहले उपन्यासों में मानसिक विकारों और ग्रन्थियों का उद्घाटन किया, फिर बाद में प्रेमचन्द की सामाजिक परम्परा को अपनाया और समृद्ध किया; श्री 'अज्ञेय' ने व्यक्ति-मन की कुण्ठाओं का शिल्प से शृङ्गार किया। प्रेमचन्द के परवर्त्ती उपन्यासकारों में यशपाल ने ही सबसे अधिक तत्परता और लगन से राजनीतिक-सामाजिक उपन्यास लिखे और प्रेमचन्द की परम्परा के सबसे समर्थ उत्तराधिकारी वे कहे जा सकते हैं। इधर नये कथाकार ग्राम-जीवन का अंकन बहुत मनोयोग से कर रहे हैं; इस प्रवृत्ति का विकास हिन्दी-कथा-साहित्य के लिए अत्यन्त शुभ लक्षण है।

प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में भारतीय जीवन का जो वृहद्, विस्तृत और संश्लिष्ट अंकन हम पाते हैं, उसकी समता उनका परवर्त्ती उपन्यास-साहित्य नहीं कर पाता। इसका कारण यह हो सकता है कि प्रेमचन्द को जीवन से जो लगन थी, जिस प्रकार ग्राम-जीवन के अन्तरंग अंग वे बन गए थे, जितनी गहराई से वे जीवन में डूब सके थे, अहम् को त्याग चुके थे, वह आज के साहित्य-साधकों के लिए दुर्लभ है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के परवर्त्ती उपन्यास का विकास निरन्तर हो रहा है और अनेक नई दिशाओं में हिन्दी-उपन्यास को प्रेमचन्द के परवर्त्ती उपन्यासकारों ने समृद्ध किया है।

यशपाल राजनीतिक पृष्ठभूमि को अपने उपन्यासों में केन्द्रीय स्थान देते हैं। वे भारत के उस राजनीतिक दौर को अंकित करते हैं, जो १६३५-३६ से शुरू होता है, जब कांग्रेस में वामपक्षी दल सुदृढ़ हो रहे थे। 'प्रेमाश्रम' की पृष्ठभूमि में सन् १६२० का सत्याग्रह-आन्दोलन था और 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' और 'गोदान' के पीछे उग्र होते हुए किसान-आन्दोलनों की चेतना। यशपाल के उपन्यास इसी चेतना का उत्तराधिकार अपनाते हैं और आधुनिक भारत के नये परिच्छेदों को कथाबद्ध करते हैं।

यशपाल राजनीतिक आतंकवादी का जीवन बिताकर मार्क्सवादी साहित्यकार के जीवन में प्रविष्ट हुए। मार्क्सवादी दृष्टि से आपने जीवन और इतिहास को समझने और



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अंकित करने का प्रयास अपने कथा-साहित्य में किया। 'दादा कामरेड' में आप आतंकवाद में टूटती आस्था और मार्क्सवाद में दृढ़ होते हुए विश्वास की कथा कहते हैं। यह एक प्रकार से समकालीन आतंकवादी भारत का इतिहास है, क्योंकि इस काल में लगभग सभी आतंकवादी दल मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हो रहे थे।

'देशद्रोही' में यशपाल ने सन् १९४२ के संघर्षों का वर्णन किया है। 'देशद्रोही' की कथा अत्यन्त रोचक है। कांग्रेस की राजनीति से आन्दोलित दिल्ली में कथा का सूत्र शुरू होता है; सीमान्त पर वजीरियों के बीच, ग़ज़नी में और सोवियत में कथा का नायक खन्ना जाता है। इस लम्बी भूमिका के बाद खन्ना भारतवर्ष लौटकर मज़दूर-वर्ग के संगठन में जुटता है। यह सन् १९४२ का भारत है, जब कम्यूनिस्ट पार्टी की राजनीति कांग्रेस की राष्ट्रीय चेतना से टकरा रही थी। खन्ना मज़दूरों के बीच घायल पड़े हैं और मानो मुश्किल से ही उनके प्राण बचेंगे। उन्हें उनके मित्र स्वास्थ्य-लाभ के लिए पहाड़ ले जाते हैं। कथा का यह अन्त बहुत दुःखमय और हृदय-द्रावक है। यशपाल के कम्युनिस्ट नेताओं का अन्त बहुधा इसी प्रकार होता है। 'दादा कामरेड' का नायक शहीद हुआ; खन्ना बुरी तरह घायल पड़े हैं; 'मनुष्य के रूप' में भूषण बरकत की करौली से घायल होकर मरता है।

'देशद्रोही' में जो स्थल पाठक की स्मृति पर विशेष प्रभाव छोड़ते हैं, वे खन्ना की यात्राओं से और उसके प्रणय-सम्बन्धों से जुड़े हैं। राजनीति और यौन-सम्बन्ध यशपाल के उपन्यासों में परस्पर लिपटे रहते हैं। नारी के स्वतन्त्र जीवन के प्रति यशपाल के विचार महत्त्व रखते हैं। पुरुष-समाज नारी का युग-युग पर्यन्त शोषण करता रहा है; बिना आर्थिक स्वाधीनता के नारी का त्राण नहीं। पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण भी जीवन का मूल सत्य है, किन्तु जब यह यशपाल खतून को अतृप्त वासना से आक्रान्त दिखाते हैं, अथवा खन्ना को निरन्तर शरीर की वासना से अधीर और उद्वेलित पाते हैं, तब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या क्रान्तिकारी अपने यौन-सम्बन्धों में संयम और सन्तुलन के लिए संघर्ष नहीं करता? क्या इन समस्याओं का अधिक ऊँचे क्रान्तिकारी आधार पर हल सम्भव नहीं है? क्या यशपाल की दृष्टि इस सम्बन्ध में आतंकवादी दृष्टि प्रतीत होती है, कम्युनिस्ट दृष्टि नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि कम्युनिस्ट विचारक सामाजिक सम्बन्धों में संयम और अनुशासन को महत्त्व देता है, किन्तु पुराने जीर्ण-शीर्ण सम्बन्धों को नष्ट करने की आतुरता में 'एनार्किस्ट' चिन्तक मर्यादा का कोई प्रश्न नहीं उठाता।

'देशद्रोही' के सम्बन्ध में एक बात और उठती है। इस उपन्यास के अनेक कल्पना-प्रधान वर्णन बहुत रोचक हैं; किन्तु किस हद तक वे यथार्थ का अंकन हैं, इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकते हैं। डॉ० महादेव साहा के मत से वजीरियों के जीवन के वर्णन अवास्तविक हैं। डॉ० साहा कहते हैं कि वजीरी बड़े ही सरल और निश्छल होते हैं। अपनी दो सोवियत यात्राओं के बाद यशपाल स्वयं समझ सकते हैं कि 'देशद्रोही' में सोवियत समाज का वर्णन कहाँ तक वास्तविक है।

'पार्टी कामरेड' में सन् १९४५ के आम चुनाव और बम्बई का नाविक विद्रोह उपन्यास की राजनीतिक पृष्ठभूमि हैं। इस उपन्यास की नायिका कम्युनिस्ट पार्टी का पत्र प्रचार-हेतु सड़कों पर बेचती है और चुनाव-फंड के लिए कोष-संग्रह के प्रयास में दुश्चरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



धनिकों से भी अज्ञान-वश मित्रता कर लेती है। इस उपन्यास में यशपाल कांग्रेस की राजनीति का पर्दाफ़ाश करते हैं और दिखाते हैं कि उनके अनेक कार्यकर्त्ता काफी नीचे नैतिक स्तर पर उतर आते हैं। यशपाल कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रेरित होकर अपने उपन्यास लिखते हैं, साथ ही वे यथार्थ के अंकन में काफ़ी निष्पक्ष भाव से लिखने का प्रयास करते हैं। वे अपने कम्युनिस्ट पात्रों में अनेक चरित्रगत दुर्बलताएँ दिखाते हैं जो मानव-स्वभाव में अन्तर्हित हैं और जिन पर मनुष्य धीमे-धीमे विजय पाता जायगा।

'मनुष्य के रूप' में 'देशद्रोही' के समान एक बार फिर यशपाल ने घटना-प्रधान कथानक उठाया है। पहाड़ी गाँव की विधवा, सोमा, घटना-चक्र के प्राबल्य से अनेक रोमांचकारी अनुभव प्राप्त करती हुई अन्त में बम्बई के फ़िल्म-जगत् की 'हीरोइन' 'पहाड़न' बन जाती है। इस उपन्यास में पहाड़ों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है, कथा आकर्षक है और बम्बई की कोलाहलमय पूँजी-प्रधान दुनिया का बड़ा सजीव अंकन है। 'मनुष्य के रूप' में सामाजिक और आर्थिक ढाँचे पर कठोर प्रहार हैं, किन्तु मूल कथा यह है कि एक ग़रीब, निराधार लड़की, जिसे मनुष्य की वासना निरन्तर खा जाना चाहती है, फ़िल्मी 'हीरोइन' बन जाती है। ऐसी घटनाएँ कभी-कभी सच भी हो सकती हैं, किन्तु इन्हें जीवन का प्रतिनिधि चित्र नहीं कहा जा सकता। भारतीय जीवन का प्रतिनिधि सत्य यह है कि सोमा के समान असंख्य लड़कियाँ जीवन में घुट-घुटकर यों ही मर जाती हैं और फ़िल्मी दुनिया उनके लिए कल्पना के प्रासाद-मात्र रहती है। असंख्य भारतीय सोमाओं का प्रतिनिधित्व 'मनुष्य के रूप' की सोमा नहीं करती, वह अकेली, असामान्य और अ-प्रतिनिधि है।

'दिव्या' और 'अमिता' यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में भारत का अतीत इतिहास उपन्यासकार की कल्पना ने मूर्त्त किया है। इतिहास के ये चित्र बड़े भव्य और आकर्षक हैं, किन्तु इनमें हम मानो वर्तमान की गूँज भी सुन सकते हैं। प्राचीन भारत की समृद्ध संस्कृति का चित्र अंकित करते हुए भी यशपाल सामन्ती-समाज का वर्ग-शोषण, नारी की असमर्थता, दैन्य, ग़रीबी और युद्ध के संकट का वर्णन करना नहीं भूलते। मार्क्सवादी दृष्टि से इतिहास के ये विशद अध्ययन और अंकन हैं और यशपाल की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के अन्तर्गत आते हैं।

'अमिता' में यशपाल ने अशोक की कलिंग-विजय की कथा उठाई है। इस उपन्यास में कथा की नायिका एक छोटी लड़की है, जिसकी सरलता और निश्छलता के सामने प्रबल पराक्रमी चण्डाशोक का अभिमानी मस्तक भी झुक जाता है। 'अमिता' का प्रवाह गंगा की धारा के समान निर्मल और हृदय-ग्राही है; किन्तु यह प्रश्न भी इस सिलसिले में उठता है कि उपन्यासकार कहाँ तक इतिहास के तथ्य और सत्य की रक्षा कर सका है? अमिता की बाल-सुलभ चपलता और सरलता के सन्मुख चक्रवर्ती अशोक का समर्पण अत्यन्त आकर्षक है, किन्तु असंख्य आहत और मृतकों के दयनीय, हृदय-द्रावक दृश्य से अशोक का पिघलना, जो इतिहास का सुपरिचित रूप पाठक जानता है, क्या अधिक मर्मस्पर्शी घटना नहीं कही जा सकती? इस सम्बन्ध में हम जो भी सोचें, अमिता का चित्रण उपन्यासकार यशपाल की निश्चय ही एक महान् सफलता और विजय है।

'दादा कामरेड' से 'अमिता' तक यशपाल आधे दर्जन उपन्यास लिख चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इनके अतिरिक्त कहानी को उनकी देन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। इन उपन्यासों में इ भारतीय जीवन की वह विराट् महाधारा तो नहीं मिलती जो प्रेमचन्द की कृतियों में प्रवाहि हुई थी, किन्तु प्रेमचन्द की परम्परा को दृढ़ और सक्षम, समर्थ हाथों से अवश्य ही सँभाला गय है। यशपाल सामाजिक कल्याण की भावना से अनुप्राणित होकर साहित्य-रचना करते और इस केन्द्रीय लक्ष्य से कभी नहीं डिगते। 'दादा कामरेड' की भूमिका में ही यशपाल अपने कला-सम्बन्धी विचार इस प्रकार प्रगट किये थे—

**"कला को कला के निर्लिप्त क्षेत्र में ही सीमित न रखकर मैं उसे भावों या विचा का वाहक बनाने की चेष्टा क्यों करता हूँ?......क्योंकि जीवन में मेरी साध केव व्यक्तिगत जीवन-यापन ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन की पूर्णता है, इसलिए कला सम्बन्ध जोड़कर भी मैं कला को केवल व्यक्तिगत सन्तोष के लिए नहीं समझ सकता कला का उद्देश्य है—जीवन में पूर्णता का यत्न। बजाय इसके कि कला का यत्न बहक हवा में पैंतरे बदलकर श्रान्त हो जाय, क्या यह अधिक अच्छा नहीं कि वह समाज के लि विकास और नवीन कला के लिए आधार प्रस्तुत करे?"**

अपने उपन्यासों के माध्यम से यशपाल भारत की क्रान्तिकारी सामाजिक शक्ति को बदल देते हैं, साथ ही वे हिन्दी में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित नई कथा-शै और कला का सृजन भी करते हैं। यशपाल ने मार्क्सवाद का अध्ययन सामाजिक विज्ञान रूप में किया है, और इस विषय पर वे हिन्दी में एक अधिकारी पुस्तक के रचयिता भी हैं उनके उपन्यास पढ़कर हिन्दी के अनेक पाठक मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट हुए हैं और क्रा कारी विचारों का उन्होंने वरण किया है। प्रेमचन्द की महान् मानवतावादी दृष्टि की तुल में यशपाल की चेतना अधिक वैज्ञानिक अवश्य है, यद्यपि इससे यह तात्पर्य नहीं है कि चेतना अधिक क्रान्तिकारी है। भावना और बुद्धि दोनों के सम्मिलन और सन्तुलन से क्रा कारी चेतना बनती है और प्रेमचन्द की चेतना दोनों ही तत्त्वों में गहरी और दृढ़ थी।

यशपाल की उपन्यास-कला का केन्द्रीय विषय है, आर्थिक, सामाजिक और राज तिक शोषण से मनुष्य की मुक्ति। इसी आधारभूत समस्या को वे अपने ऐतिहासिक आधुनिक जीवन से सम्बन्धित उपन्यासों में उठाते हैं। 'दादा कामरेड' में सुलतान अप सफाई मुकदमे में पेश करते हुए कहता है—**"हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अ परिश्रम के फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रे द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनु है, अन्याय है, अपराध है। यह समाज में निरन्तर होने वाली भयंकर हिंसा और डकैती इस हिंसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य रहा है, उसी के हमने प्रयत्न किया है......।"**[1]

कांग्रेस पर पूँजीपति-वर्ग के प्रभाव का भी यशपाल ने अनवरत पर्दाफाश किया 'देशद्रोही' में वे बद्री बाबू और विश्वनाथ के चित्र अंकित करते हैं जो श्रमजीवी-वर्ग त्याग और वर्ग-सहयोग की सीख देते हैं। 'पार्टी कामरेड' और 'मनुष्य के रूप' में भी वे पू पति-वर्ग की काँग्रेस की नेताशाही से गाँठ-साँठ दिखाते हैं। अभिजात-वर्ग के समस्त

१. पृष्ठ १७४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



छन्दों को उन्होंने सुतलीवाला के चरित्र में मूर्त किया है।

यशपाल अपने उपन्यासों में निरन्तर समाज द्वारा नारी का शोषण अंकित करते हैं। 'दिव्या' का केन्द्रीय विषय यही है। वर्ग-समाज केवल वेश्या की स्वतन्त्रता स्वीकार करता है, अन्यथा उसे पिता, पति, पुत्र अथवा स्वामी की आज्ञा की अनुगामिनी होना पड़ता है। अभिधर्म तक उसे संघ में अंगीकार नहीं करता, जब तक वह पिता, पति, पुत्र अथवा स्वामी की अनुमति से संघ में प्रवेश न कर रही हो। 'दादा कामरेड' में स्त्री की स्वाधीनता उपन्यास के कथानक का महत्त्वपूर्ण विषय है। शैल और यशोदा दोनों ही वास्तविक स्वतन्त्रता की खोज कर रही हैं। शैल की इस खोज का अन्त यह है कि वह घर से निकाल दी जाती है। यशोदा का पति उससे विमुख हो जाता है, यद्यपि उसकी खोज अभी पूर्ण नहीं हुई। रावर्ट कहता है—

**"जिस तरह पराई सम्पत्ति लेना पाप है उसी तरह दूसरे की औरत से बात करना भी पाप है। परन्तु औरत ऐसी सम्पत्ति है जिसके अपने हाथ-पैर और सिर हैं, इसलिए उसे समझाया गया कि अपने मालिक से चिपके रहने में ही तेरा कल्याण है, तू पतिव्रता बनी रहना !"**[1]

हरीश कहता है—**"स्त्रियाँ तीन तरह की होती हैं। एक किसान-मजदूर श्रेणी की औरतें, जो पति के बराबर ही काम करती हैं और पति की गुलामी करती हैं घाते में। दूसरी हैं, सफेदपोश लोगों की औरतें। ये घर का वह काम करती हैं जिसे आठ-दस रुपये माहवार का नौकर बखूबी कर सकता है, हाँ सन्तान पैदा करने के काम को अलग रहने दीजिए······। तीसरी हैं अमीर श्रेणी की औरतें। पुरुष के मनबहलाव और सन्तान-प्रसव करने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं करतीं।"**[2]

यशपाल के अनुसार वर्ग-समाज में स्त्री की यही दयनीय स्थिति है, इसी प्रकार अपने उपन्यासों में यशपाल अनेक सामाजिक समस्याओं को उठाते हैं और रूढ़िगत संस्कारों पर तीव्र कुठाराघात करते हैं। वे पाठक के मौलिक चिन्तन की वृत्तियों को जगाने का प्रयास करते हैं।

कला की उपयोगिता में विश्वास रखते हुए भी यशपाल कला के शिल्पगत सौन्दर्य को कभी नहीं खोते। वे बड़ी साधना और लगन से अपनी रचनाओं को निखारते हैं और अनुपम साँचों में अपनी कला को ढालते हैं। उनके कथानक बड़े रोचक और आकर्षक हैं, अपनी मोहक कथाओं के कारण और अपनी निर्भीक शैली और चिन्तन के कारण ही यशपाल हिन्दी पाठकवर्ग में इतने लोकप्रिय हो सके हैं। उत्कृष्ट कला का मूल्य इस बात से अधिक आँका जाता है कि लेखक जीवन का मर्म कहाँ तक छू सका है, किन अतल गहराइयों में वह बैठा है, कितनी सूक्ष्म उसकी अनुभूति है, कितना प्रसार और कितनी व्यापकता उसकी दृष्टि में है। इस दृष्टि से रवि ठाकुर, शरतचन्द और प्रेमचन्द आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं, और प्रेमचन्द के परवर्त्ती उपन्यासकारों में बहुत ऊँचा स्थान यशपाल का है।

यशपाल की सबसे बड़ी सफलता यह है कि उन्होंने अगणित सजीव पात्र अपने उपन्यासों में गढ़े हैं। 'दादा कामरेड' के दादा हरीश, शैल और यमुना का चित्रण बहुत विशद

१. पृष्ठ ९९-१००।
२. पृष्ठ १००-१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। इनमें से पहले तीन तो हिन्दी-कथा-साहित्य को अनुपम और अमर देन हैं। इनके सम्पर्क में आकर पाठक अधिक उन्नत और उदात्त बनता है। अपने बलिदान से हरीश और शैल मानवता के उच्चतम शिखर पर जा बैठते हैं। अपने सभी उपन्यासों में यशपाल ने इसी प्रकार के स्मरणीय पात्रों की सृष्टि की है—'देशद्रोही' में खन्ना और चन्दा, 'दिव्या' में दिव्या और मारिश, 'मनुष्य के रूप' में भूषण।

यशपाल व्यंग के प्रहार में विशेष दक्ष हैं। भारतीय जीवन के सड़े-गले अंगों के वर्णन में वे तीखे व्यंग का प्रहार करते हैं। पूँजीपतियों, नेताओं, पाखंडियों पर वे भरपूर वार करते हैं और शिकार तिलमिलाकर रह जाता है। आधुनिक जीवन से सम्बन्धित कथाओं में सब-से अधिक सफलता उन्हें अपने व्यंगपूर्ण चित्रण में ही मिली है। 'मनुष्य के रूप' में सिनेमा-संसार की अनैतिकता और खोखलेपन पर उन्होंने व्यंग के अस्त्र से मर्म-प्रहार किया है। इस दिशा में सुतलीवाला का चित्रण बहुत सफल है। 'देशद्रोही' और 'पार्टी कामरेड' के व्यंगात्मक स्थल भी इतने ही सफल हैं।

यशपाल का गद्य अति सुन्दर और मोहक है। उनकी भाषा अलंकृत और रूप-सज्जा में मधुर है। वे संस्कृत शब्दावली से अपनी शैली का शृङ्गार करते हैं। उनके प्रकृति के वर्णन विशेष हृदयग्राही हैं, जैसे 'मनुष्य के रूप' में धर्मशाला का वर्णन। 'दिव्या' में ऐतिहासिक वातावरण बनाने के लिए यशपाल ने अपनी शैली को संस्कृत शब्दावली से अधिक बोझिल बना दिया था, किन्तु 'अमिता' इस दिशा में अधिक सन्तुलित रचना है। कभी-कभी भाषा में गल्तियाँ भी रह जाती हैं, जैसे 'लक्ष्य' के लिए 'लक्ष' अथवा 'सम्वेदना के लिए 'समवेदना'। वाक्यों के बीच में आप अर्द्ध-विराम के चिह्न देने भी भूल जाते हैं। किन्तु अपनी सीमाओं और दुर्बलताओं के बावजूद यशपाल की उपन्यास-कला प्रगतिशील कला में आगे बढ़ा हुआ एक महत्त्वपूर्ण कदम है और प्रेमचन्द की परम्परा को नई दिशाओं में विकसित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास है। यशपाल आधुनिक नागरिक जीवन के चित्रकार हैं और भारत का सर्वहारा-वर्ग प्रथम बार आपके पात्रों में अपना विजयी स्वर उठाता है। मार्क्सवाद के वैज्ञानिक विचार-दर्शन को उपन्यास-कला में ढालने का भी पहला सफल प्रयास यशपाल ने किया है। इस विकास-क्रम में नागार्जुन, रांगेय राघव, अमृतराय और फणीश्वर नाथ 'रेणु' नई कड़ियाँ जोड़ रहे हैं।

पिछले वर्षों में यशपाल की कला की असन्तुलित प्रशंसा और निन्दा हुई है। अब वे प्रौढ़ और परिपक्व कथाकार हैं और अति-प्रशंसा और अति-निन्दा के थपेड़ों को आसानी से झेल सकते हैं। अब वह समय आ चुका है, जब यशपाल की कला की निष्पक्ष, स्पष्ट और सन्तुलित आलोचना हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मूल्यांकन

*रामसिंह तोमर*

## अपभ्रंश साहित्य

डॉ० हरवंश कोछड़ ने 'अपभ्रंश साहित्य' ग्रंथ लिखकर हिन्दी-जगत् में एक बड़े अभाव की पूर्ति करने का प्रयास किया है। गुलेरी जी ने 'पुरानी हिन्दी' में केवल कुछ ग्रंथों में उद्धृत अपभ्रंश पद्यों को ही हिन्दी-पाठकों के सामने रखकर सन्तोष किया था। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों में मानो इतिहास के प्रारम्भ को ठीक करने के लिए अपभ्रंश के कुछ कृतिकारों का चलता वर्णन मिल जाता है, इसके कारण हो सकते हैं—अपभ्रंश की कृतियों का अप्रकाशित रहना और हिन्दी के अन्वेषकों की संकीर्ण उदासीनता। पिछले तीन दशकों में अपभ्रंश पर अनेक विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रकाश डाला है। अनेक श्रेष्ठ कृतियाँ सुसम्पादित होकर प्रकाश में आ चुकी हैं, भाषा और साहित्य की दृष्टि से अपभ्रंश पर अच्छा कार्य हुआ है। अनेक नई कृतियों के अस्तित्व की सूचनाएँ मिली हैं। डॉ० कोछड़ आज गुलेरी जी की अपेक्षा अपभ्रंश के अनुसंधानकर्ता की दृष्टि से सुविधाजनक स्थिति में हैं और उनकी कृति से इसका अच्छा परिचय मिलता है। सम्पूर्ण ज्ञात सामग्री का अपने ग्रंथ में उन्होंने वर्णनात्मक परिचय देने का सुन्दर प्रयास किया है।

आकर्षक छपाई और जिल्द की इस ४५० पृष्ठ की पुस्तक में आमुख, प्राक्कथन, परिशिष्ट और अनुक्रमणिका को छोड़कर सत्रह अध्याय हैं। इन अध्यायों को लेखक ने तीन भागों में विभक्त किया है। पहले भाग में अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में प्राप्त उल्लेखों की चर्चा, उसका क्रमिक विकास, हिन्दी से सम्बन्ध और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। दूसरे भाग में सात अध्यायों में अपभ्रंश-साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया है और अन्तिम भाग में अपभ्रंश-साहित्य की छोटी कृतियों का परिचय देते हुए अपभ्रंश और हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

इस प्रकार लेखक ने सारी समस्या को काफी विवेचनापूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

अपभ्रंश-साहित्य को धार्मिक आधार पर विभाजित करना सुविधाजनक अवश्य है, किन्तु साहित्यिक और आलोचना की दृष्टि से यह विभाजन बहुत युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किन्तु लेखक ने इस पक्ष पर कहीं-कहीं इतना बल दिया है कि वह खटकता है। जैन-अपभ्रंश-साहित्य के विवरण के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर संकेत किये गए हैं कि उसमें धार्मिक भावना प्रधान है और इस तर्क से पाठक ऐसा समझ सकता है कि इन कवियों में काव्य-पक्ष गौण है, धार्मिक प्रचार की भावना प्रधान। स्वयंभू, पुष्पदन्त-जैसे श्रेष्ठ कवियों की कृतियों के साहित्यिक सौन्दर्य का पूरा परिचय डॉ० कोछड़ की महत्त्वपूर्ण कृति से नहीं मिल पाता। साथ ही स्वयंभू का जो उदार दृष्टिकोण है, उसका भी कोई उल्लेख नहीं किया। योगीन्द्र आदि मर्मियों की सारी संकीर्णताओं के ऊपर उठी हुई रहस्य-भावना का भी और विस्तृत उद्घाटन आवश्यक था।

लेखक ने कहीं यह सीमा नहीं निश्चित की कि अपभ्रंश कहाँ समाप्त होती है और आधुनिक भाषाएँ कहाँ शुरू हो जाती हैं। 'पृथ्वीराज रासो' भी अपभ्रंश कृति है और अनेक छोटे-छोटे स्फुट काव्य-ग्रंथ भी अपभ्रंश के ही अन्तर्गत आते हैं। महाकाव्य और खण्डकाव्य शीर्षकों में जिन कृतियों को विभाजित करके रखा गया है, वह भी बहुत युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। धनवाल की 'भविसयत्तकहा' क्यों महाकाव्य है ? और 'करकंड चरिउ' और 'पार्श्वपुराण' क्यों खण्डकाव्य हैं ? पाठक को सारी कृति में इस बात का कहीं सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता कि अपभ्रंश महाकाव्य, खण्डकाव्यों में संस्कृत के इस प्रकार के काव्य-रूपों से क्या भेद है ? और लौकिक और धार्मिक काव्यों की परख के अलग मान होने चाहिएँ या एक ही ?

लेखक ने अपनी कृति में अनेक प्रकार की स्थापनाएँ कल्पित की हैं, जो अनुचित हैं—हिन्दी-उपन्यासों का किसी भी प्रकार का पूर्वाभास अपभ्रंश के चरित-काव्यों में नहीं ढूँढा जा सकता, किन्तु पृष्ठ ५१ पर लेखक कहता है कि आगे चलकर हिन्दी में जिस उपन्यास-साहित्य का विकास हुआ, उसका आभास इन चरित-काव्यों में दिखाई पड़ता है। हिन्दी की प्रेमाख्यानक सूफी कवियों द्वारा गृहीत कथाएँ जैन-चरित-काव्यों में भी मिल जाती हैं इतना तो ठीक है, किन्तु आधुनिक उपन्यासों का इन चरित-काव्यों से दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है।

'सन्देश रासक' को लेखक प्रबन्ध-काव्य कहने का भी साहस करता है ( पृष्ठ ५० ) और फिर उसे स्फुट-काव्य भी कहता है। उसी पृष्ठ पर लेखक कहता है कि विश्वनाथ के उल्लेख के आधार पर प्रतीत होता है कि अपभ्रंश-महाकाव्य संस्कृत-महाकाव्यों के ढंग पर ही लिखे जाते थे। विश्वनाथ का इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है; अपभ्रंश के विषय में विश्वनाथ का उल्लेख है, उसका अर्थ संगत तो यह होगा कि अपभ्रंश-काव्यों के सर्ग कडवकबद्ध ( कुडवक-विश्वनाथ ) होते हैं, जिसका कि लेखक ने आगे उल्लेख किया है।

लेखक का यह कथन कि जैनाचार्यों की बहुसंख्यक रचनाएँ सर्वसाधारण अशिक्षित-वर्ग के लिए थी, बहुत अत्युक्तिपूर्ण है।

कवियों की रचनाओं का परिचय देने के लिए लेखक ने एक ढाँचा-सा निश्चित कर लिया है—कथावस्तु का परिचय, भाषा और अलंकार के उदाहरणों के रूप में कुछ उद्धरण देना और कालादि का संक्षेप में उल्लेख कर देना। इस प्रकार के परिचय से पुस्तक एक प्रकार की विवरणात्मक पुस्तक-सूची-जैसी बन गई है। सारी पुस्तक पढ़कर एक निश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



धारणा पाठक नहीं बना पाता। प्रारम्भिक भाग और अन्त के भाग तो केवल शिष्टाचार के लिए पुस्तक को एक 'पूरा' रूप प्रदान करने के लिए लिखे गए हैं। प्राकृत और अपभ्रंश के विकास का, भारतीय विचार-धारा के साथ उनके सम्पर्क-जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न स्पष्ट नहीं होते। पुस्तक में 'जैनों, जैनियों'-जैसे कई एक शब्द के दो रूपों का प्रयोग हुआ है और कई प्रकाशित ग्रंथों, जैसे—शारंगधर पद्धति, डाकार्णव, सेकोद्देसटीका आदि के नामों का भी उल्लेख नहीं है।

उपरिनिर्दिष्ट तथा अन्य त्रुटियाँ मामूली हैं। आधुनिक भाषाओं की पृष्ठभूमि समझने के लिए अपभ्रंश का अध्ययन आवश्यक है और यह हर्ष का विषय है कि अब विद्वान् इस महत्त्वपूर्ण साहित्य के अध्ययन की ओर उन्मुख हो रहे हैं। डॉ० कोछड़ का ग्रंथ अच्छा प्रयास है और उससे हिन्दी के विद्वानों को प्रकाश मिल सकेगा। उनकी इस कृति का स्वागत होना चाहिए। कृति में अनेक उद्धरण हैं, जिनको पढ़कर साधारण पाठक भी अपभ्रंश-काव्य-रस का आनन्द ले सकता है।

भानुदेव शुक्ल

## उखड़े हुए लोग

राजेन्द्र यादव को सृजनात्मक साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किये एक दशाब्दी से ऊपर हो गया है किन्तु उनका मूल क्षेत्र कहानी का ही रहा है। प्रथम उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं'' की रचना द्वारा राजेन्द्र यादव ने उपन्यास के सृजन में भी हाथ लगाया। लगभग ४-५ वर्ष के अन्तर के उपरान्त उनका दूसरा उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' प्रकाशित हुआ है।

संघर्षशील मध्यवर्गीय जीवन की घुटन तथा इस स्थिति को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का चित्रण आधुनिक उपन्यास का मूल आधार बन गया है। देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक—सभी क्षेत्रों में मध्यवर्गीय समाज का जो महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है उसको ध्यान में लेने पर साहित्य द्वारा मध्यवर्गीय जीवन को प्रदत्त यह महत्त्व अस्वाभाविक नहीं ज्ञात होता। मध्यवर्ग की विभिन्न समस्याओं को लेकर, विभिन्न दृष्टिकोणों से उन पर विचार करते हुए तथा उनके विभिन्न हल प्रस्तुत करते हुए हिन्दी में बहुसंख्यक उपन्यासों की रचना की जा रही है। 'उखड़े हुए लोग' उपन्यास में जिन लोगों का चित्रण किया गया है वे एक ओर रूढ़ियों के कठोर पाशों से व्याकुल हैं तथा दूसरी ओर पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में निरन्तर लुटते रहने के कारण जम पाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं। इस दुतरफा संघर्ष में रत उखड़े हुए चेतन मध्यवर्गीय जीवन का एक पहलू प्रस्तुत उपन्यास में प्रकट हुआ है।

विवाह के रूढ़िवादी स्वरूप से विद्रोह करके एक युवक तथा एक युवती—शरद् तथा जया संघर्षमय संसार में निकल पड़े हैं। यह जोड़ा जीवन की विषम परिस्थितियों से प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपरिचित रहा है तथा इसीलिए वह अनुभवहीन है। यथार्थ जीवन की ठोकरें खाकर तथा निरन्तर आघात झेलकर उसे जब समझ आती है तब वह देखता है कि सपनों का निर्माण जितना आसान है उतना उनका पाना नहीं। संसार जैसा ऊपर से दीखता है वह वैसा है नहीं है। देवतावत् मानकर जिनके पास शरद् विश्वास के साथ गया था, शील एवं सौम्यता के अवतार तथा त्यागमूर्ति देशबन्धु का वास्तविक स्वरूप वह पास रहकर ही देख सका। देवता का चेहरा लगाए शैतान पुज रहा था, यह शरद् पास जाकर ही देख सका। दूसरी ओर अपने व्यक्तित्व का स्वयं ही दमन करते हुए, परिस्थितियों से समझौता करने के प्रयास में कुढ़-कुढ़कर जीते हुए सूरज जी के प्रति शरद् प्रारम्भ में सहानुभूतिपूर्ण भाव नहीं जगा पाता। परिस्थितियों से जूझता हुआ शरद् देशबंधु, जो 'नेताभैया' के नाम से अधिक ख्यात हैं, के पास आशा के साथ जाता है। देशबंधु के सहृदय भाव से उत्साहित होकर वह अपनी प्रेयसी तथा जीवन-संगिनी जया को भी ले आता है। देशबंधु के सौजन्य एवं सौहार्द से दबकर वह अपनी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में स्पष्ट बातें करने में सकुचाता है तथा पीछे देशबंधु के बनावटी स्वरूप में छिपे शैतान का परिचय मिलने पर भी शरद् खरा बनने में अपने को असमर्थ पाता है। देशबंधु के व्यक्तित्व के सम्मुख उसका दुर्बल व्यक्तित्व दबकर रह गया है, कुछ सहमा-सा रहता है। जीवन की कटुता से परिचित सूरज जी देशबन्धु के वास्तविक स्वरूप को पहचानने में भूल नहीं करते हैं। शरद् को वास्तविकता का परिचय सूरजजी द्वारा ही मिलता है। सूरजजी के दबे व्यक्तित्व को उभारने के लिए जिस विस्फोटक परिस्थिति की अपेक्षा है वह देशबन्धु की 'सत्या मिल्स' के मजदूरों पर हुए गोली-काण्ड के समय उपस्थित हो जाती है। देशबन्धु के घातक पाश से वह छूट निकलते हैं और मुक्त भाव से शोषक वर्ग के विरुद्ध मोर्चे में सम्मिलित हो जाते हैं। शरद और जया भी 'स्वदेश महल' के विषाक्त वातावरण से घबराकर प्राण बचाकर भाग निकलते हैं।

जीवन की हर परिस्थिति व्यक्ति के अनुकूल हो, यह आवश्यक नहीं हैं, सम्भव भी नहीं है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रहने, न मिटने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि या तो इन परिस्थितियों को संघर्ष द्वारा बदल डाला जाय अथवा दूसरा तथा सरल मार्ग है कि उनसे समझौता कर लिया जाय। हर कदम पर तथा हर प्रतिकूल परिस्थिति से संघर्ष किसी भी रूप में संभव नहीं है। होता यह है कि हम अधिकांश परिस्थितियों से समझौता करते हुए चलते हैं। एक दृष्टि से यह उपयुक्त भी है, क्योंकि हर परिस्थिति सर्वथा प्रतिकूल नहीं होती। परिस्थितियों से समझौता करते-करते कभी ऐसा समय भी आता है कि अधिक झुकना असम्भव हो जाता है तथा इस अवसर पर व्यक्ति का दबा हुआ व्यक्तित्व फूट पड़ता है। परिणामस्वरूप सीधा संघर्ष होता है तथा या तो व्यक्ति परिस्थितियों को सर्वथा बादल डालता है या दुर्बल होने पर, स्वयं टूट जाता है।

'उखड़े हुए लोग' उपन्यास में शरद्, देशबन्धु तथा सूरज जी प्रमुख पुरुष पात्र हैं तथा जया, मायादेवी और पद्मा प्रमुख नारी पात्र। इनमें केवल देशबन्धु ही चारों ओर अनुकूल परिस्थितियों से घिरे हुए हैं; शेष पात्र उनके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ जुटाने में स्वयं पिसे जा रहे हैं। यह बहुसंख्यक शोषित वर्ग प्रतिकूल परिस्थितियों से समझौता करता हुआ संघर्ष को टाल रहा है। रूढ़ि-जर्जर बन्धनों से विद्रोह करके शरद् तथा जया प्रथम साहस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पूर्ण कदम रखते हैं तथा मनचाही दिशा की ओर अग्रसर होते हैं। द्विपक्षीय संघर्ष में एक मोर्चे पर उनका यह विजय-अभियान है। दोनों का सहजीवन उनकी सफलता का द्योतक है। संघर्ष का दूसरा स्थल 'स्वदेश महल' है जहाँ पूँजीवादी शोषण के शिकार विभिन्न पात्र एकत्र हैं। एक ओर शरद् और जया हैं, जो अपने पाँव पर खड़े होने का प्रयास कर रहे हैं तथा देशबन्धु का दिखावटी व्यक्तित्व अपने कुशल अभिनय द्वारा उन पर हावी हो जाना चाहता है। शरद् को मीठी बातों में ही लुभाकर देशबन्धु उससे काम निकाल लेना चाहता है। दूसरी ओर मायादेवी तथा पद्मा हैं, जो देशबन्धु की ऐन्द्रिय-लिप्सा का शिकार बनती हैं। मायादेवी भुलावे में आकर छली जाती हैं अपना सब-कुछ देशबन्धु को देकर ठगी जाती हैं। मायादेवी के धन से ही देशबन्धु का ऐश्वर्यशाली जीवन बना है। सब-कुछ लूटकर देशबन्धु मायादेवी को दूध की मक्खी की भाँति निकाल फेंकता है। निराश मायादेवी खीझकर पतन के मार्ग पर अग्रसर होती हैं, देशबन्धु को जलाने को किन्तु होता यह है कि स्वयं को ही वे जला रही हैं और अपने बेशर्म कृत्यों द्वारा वे अपनी पुत्री को ही भार बना रही हैं। जिस मानसिक पीड़ा का शिकार देशबन्धु को बनाने का प्रयास किया गया है उसका शिकार पद्मा होती है। पद्मा उपन्यास के समस्त नारी पात्रों में सर्वाधिक भावुक तथा कोमल भावनाओं से युक्त है, सबसे अधिक मानसिक पीड़ा से ग्रसित भी वही हैं। वह न तो जया की भाँति विद्रोह करने की सामर्थ्य रखती है और न मायादेवी की भाँति निर्लज्ज भाव से अपनी स्थिति पर विचार करना छोड़कर जिस भाँति तथा जहाँ से भी मिल सके वहीं से इच्छा-पूर्त्ति के साधन ही जुटा सकती है। उसका सारा जीवन एक करुण कहानी है तथा उसका अन्त भी करुण है। देशबन्धु की लिप्सा का शिकार बनने से बचने के लिए वह ऊपर से कूद पड़ती है। सूरजजी का व्यक्तित्त्व सबसे निराला है। उसमें कड़वापन है, प्रखरता है, दृढ़ता है तथा साथ ही सरलता एवं निश्छल व्यवहार भी उनके चरित्र के विशिष्ट अंग हैं।

उपन्यास के सभी प्रमुख पात्रों में देशबन्धु तथा सूरजजी के व्यक्तित्व सबसे प्रबल तथा महत्त्वपूर्ण हैं। देशबन्धु पूँजीपति हैं, नेता हैं तथा समाचार-पत्र के स्वामी भी हैं। मिल द्वारा हज़ारों मजदूरों का शोषण करके ऐश्वर्यशाली बने बैठे हैं; जन-नेता एवं राष्ट्रीय संघर्ष के सेनानी का बाना पहनकर वह अपने शोषक स्वरूप को ढाँककर जन-सेवक बने बैठे हैं। समाचार-पत्र उनके हाथ में है, जिसके द्वारा वे अपने त्यागी देशभक्त स्वरूप का भली प्रकार प्रचार भी कर लेते हैं। मुखाकृति बनाने तथा बातें गढ़ने में यह व्यक्ति अत्यन्त कुशल है तथा हर परिस्थिति में वह एकदम आवश्यक रूप धारण कर लेता है। वस्तुतः इस प्रकार के पूँजीवादी पात्र का निर्माण प्रस्तुत उपन्यास की विशेषता है।

देशबन्धु सफल व्यक्ति हैं। परिस्थितियाँ उनके इशारे पर नाचती हैं। सफलता की चरम सीमा पर पहुँचकर वे अब इस स्थिति में आ गए हैं कि अधिक ऊपर उठने की उनमें सामर्थ्य नहीं है, अब उनके लिए उतार ही शेष रह गया है। आश्चर्य नहीं कि वर्तमान से वे चिपके हुए हैं तथा उनके प्रयास वर्तमान को ही स्थायी बनाये रखने तक सीमित हैं। इसके विपरीत सूरज जी को सदैव असफलताएँ ही मिली हैं। हर समय की असफलता इस सशक्त व्यक्ति को तोड़ तो नहीं पाई किन्तु कुछ समय के लिए विरक्त अथवा जड़ अवश्य उसने बना दिया है। इस जड़ता को नष्ट करने के लिए जिस परिस्थिति की आवश्यकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वह गोली-कांड द्वारा निर्मित हुई है। इस प्रसंग द्वारा सूरज जी के मस्तिष्क पर जो ठोकर लगती है उससे तथा शरद् एवं जया के सहानुभूतिपूर्ण साहचर्य से, यह उनके शुष्क जीवन में नया अनुभव है, उनकी जड़ता मिट जाती है और एक न टूटने वाला सशक्त एवं अपराजित व्यक्तित्व जाग उठता है। परिस्थितियों से इस व्यक्ति का संघर्ष प्रारम्भ होता है कि उपन्यास समाप्त हो जाता है। भविष्य का संकेत अवश्य मिल जाता है। उपन्यासकार अन्तिम पृष्ठों में इस योद्धा को पूर्ण सजग तथा आत्मविश्वास से युक्त प्रकट करते हुए संघर्ष के लिए पूरी तरह तना हुआ दिखाकर उपन्यास को समाप्त कर देता है। स्पष्ट ही वर्तमान का स्वामी यदि देशबन्धु है तो भविष्य का निर्माता यह न टूटने वाला संघर्षशील वर्ग है जिसके प्रतिनिधि शरद एवं जया हैं तथा जिसका नेता सूरजजी-जैसा दृढ़ व्यक्ति है। संघर्ष की अवस्था में है इसलिए यह वर्ग अभी उखड़ा हुआ ही है। यह तथ्य विलक्षण है कि समाज का विरोध करने वाला व्यक्ति शरद् दूसरे मोर्चे पर, पूँजीवादी शोषण के विरोध में प्रायः निर्बल-सा प्रकट हुआ। देशबन्धु के अनेक कार्यों के सम्बन्ध में शरद् के हृदय में विद्रोह-भावना का उदय होता है किन्तु किसी भी स्थल पर वह खुलकर विरोध नहीं कर सका है, मन में ही घुटकर रह जाता है। देशबन्धु के व्यक्तित्व की प्रबलता का यह उदाहरण है।

उपन्यास चरित्र-प्रधान है। इसमें कथानक चरित्र-विकास का हेतु-मात्र है। घटनाओं का संयोजन सर्वत्र विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि का हेतु होने से कथानक का विकास स्वाभाविक नहीं हो सका है, घटनाएँ स्वयं घटित न होकर उपन्यासकार के हाथ का खिलौना-मात्र बनकर रह गई हैं। घटनाएँ एवं वातावरण इसी लोक के होते हुए भी अनेक अवसरों पर अवास्तविक-से हो गए हैं। जो कार्य वर्षों की अवधि में नहीं हुए वे सब सप्ताह विशेष में ही एक साथ हो जाते हैं, यह थोड़ा अस्वाभाविक-सा दृष्टिगोचर होता है। जब कि उपन्यासकार सब पात्रों के चरित्रों को यथावत् स्वरूप में अंकित करने में सचेष्ट है वहीं पर देशबन्धु के चरित्र को वह विशिष्ट रूप से गढ़ने में प्रयत्नशील है जो कुछ अंशों में यथार्थ से भिन्न तथा अस्वाभाविक-सा बन गया है। उपन्यासकार की कुशलता है कि इस चरित्र के विकास में कहीं पर त्रुटि का अनुभव करते हुए भी इस पात्र के किसी कार्य में स्पष्ट अस्वाभाविकता का संकेत करने में पाठक को कठिनाई का अनुभव होता है। अन्य चरित्रों का विकास काफी स्वाभाविक है। नारी पात्रों में सबसे विकृत चरित्र मायादेवी के प्रति सम्भवतः पाठक पूर्ण न्याय न कर पाये तथापि निस्सन्देह ही यह चरित्र सर्वाधिक दयनीय है। सब-कुछ लुटा देने वाली नारी के रूप में उसने जीवन प्रारम्भ किया किन्तु निराश होकर तथा असफलता से खीझकर जिस मार्ग को उसने ग्रहण किया है वह नकारात्मक (Negative) है। यहाँ प्रथम जीवन को भूल स्वीकार कर उस में संशोधन का प्रयास न मिलकर उसकी असफलता से खीझकर अपने को ही मिटा देने का प्रयास है। मायादेवी परिस्थितियों से संघर्ष करने के स्थान पर स्वयं अपने व्यक्तित्व से संघर्ष करके उसको फुसलाने में प्रयत्नशील हैं। उनके चरित्र का यह स्वरूप भी सम्भवतः उनके लिए अधिक स्वाभाविक है, तथापि उनके प्रति कोई निश्चित धारणा बनाने से पहले पाठक को अपेक्षाकृत सहृदयता से विचार करना होगा।

बौद्धिक विचारणा की दृष्टि से उपन्यास पर्याप्त स्पष्ट और खरा है। कुछेक स्थलों पर जहाँ उपन्यासकार ने भावुकतापूर्ण अभिव्यंजना का प्रयास किया है, वहाँ वह सफल नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पाया है। इस प्रकार के अवसर कम हैं तथा बौद्धिक तर्क-वितर्क एवं सैद्धान्तिक विश्लेषण ही उपन्यास में प्रमुख हैं। साफ़-सुथरी और प्रवाहपूर्ण शैली के कारण यह बौद्धिकता भारी नहीं लगती।[1]

त्रिलोचन

## गीत-फ़रोश, नई चेतना और सूर्य का स्वागत

आधुनिक हिन्दी कविता अनेक प्रेरणाओं और दृष्टिकोणों को समाहित करती है। उसकी यह विशेषता 'गीत-फ़रोश', 'नई चेतना' और 'सूर्य का स्वागत' को देखकर स्पष्ट प्रतीत होती है। ये तीनों कृतियाँ काव्य-संग्रह हैं, जिनमें क्रमशः भवानीप्रसाद मिश्र, महेन्द्र भटनागर और दुष्यन्तकुमार की कविताएँ संकलित हैं। ये तीनों ही कवि अनेक रूप में एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। काव्य के विषय में उनकी मान्यताओं और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोणों में बहुत अन्तर है। सामान्य दृष्टि से देखने पर भवानीप्रसाद मिश्र और महेन्द्र भटनागर में कुछ बातों की समानता दिखाई देती है। दोनों ही कवि काव्य के सामाजिक लक्ष्य पर जोर देते हैं। कविता उनके लिए जन-जीवन के अनेक स्पन्दनों और आशा-आकांक्षाओं को व्यक्त करने वाली वस्तु है। वे उसमें ऐसे भाव सँजोना चाहते हैं जो केवल उनके नहीं, जन-जन के हैं, और उन्नायक हैं। मनुष्य और मनुष्य के बीच वे समानता के हामी हैं। इसी प्रकार कला-पक्ष में वे ऐसी भाषा और कथन-शैली का प्रयोग करना चाहते हैं जो बोल-चाल की भाषा के समीप और सहज बोधगम्य है। किन्तु इसके पश्चात् उनमें अन्तर है। काव्य में बाहरी सिद्धान्तों का नाम लेना बहुधा खतरनाक होता है, किन्तु सामान्यतः भवानी मिश्र गांधीवादी हैं और महेन्द्र भटनागर प्रगतिवादी। गांधीवाद को मिश्र जी ने सरलता, सचाई, सहानुभूति और अहिंसा के रूप में ग्रहण किया है, और भटनागर जी के लिए प्रगतिवाद वह वस्तु है जो समाज से शोषण को मिटाकर एक नये साम्यमूलक समाज की स्थापना करेगा। मंगला-कांक्षी, उत्साही और आशावादी दोनों हैं, किन्तु मिश्र जी का काव्य जहाँ कोमलता और प्रेम से ओत-प्रोत है, वहाँ भटनागर जी का काव्य संघर्ष की दुर्निवार कठोरता और विद्रोही की सारगर्भित घृणा से परिपूर्ण है। 'नई चेतना' की कविताएँ प्रधानतः एक ही मूल भाव को प्रशस्त करती हैं और 'गीत-फ़रोश' का अभिव्यंजना-पट अधिक विविध और विशाल है। प्रथम कृति कवि के व्यक्तित्व के स्पर्श से अछूती प्रतीत होती है और दूसरी कृति उससे परिपूर्ण है। प्रथम कवि सामयिकता और मनुष्य के आगे प्रकृति की ओर विशेष नहीं बढ़ते, जबकि द्वितीय उसके विविध रूपों में मंत्र-मुग्ध होकर उल्लसित और तल्लीन होते हैं।

'सूर्य का स्वागत' और उसके कवि का धरातल उपर्युक्त कृतियों से नितान्त भिन्न है।

१. **उखड़े हुए लोग—राजेन्द्र यादव; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यहाँ भी आक्रोश और बेचैनी है, किन्तु वह सामाजिक संघर्ष के कारण उतनी नहीं, जितनी आन्तरिक द्वंद्व के परिणामस्वरूप है। कवि की सबसे बड़ी और सम्भवतः एक-मात्र आकांक्षा आत्म-प्रकाशन है। मन के अन्दर कुछ छटपटाता है, जो निरूपित नहीं है, किन्तु रूप पाने के लिए विकल अवश्य है। एक तीखी कड़ुआहट और दर्द है, किन्तु वह विनाशक नहीं, मूल्यवान है; उससे अभिनव शिवम् का जन्म होगा। कवि बहुत पीड़ित है, किन्तु निराशावादी नहीं। इस कृति में केन्द्र सामाजिकता नहीं, किन्तु स्वयं कवि का आत्म और इस प्रकार व्यक्तिवादिता है।

'गीत-फ़रोश' में भवानीप्रसाद मिश्र की १९३० से १९४५ तक की कविताएँ संकलित हैं। इनमें से अनेक विविध कवि-सम्मेलनों में इस प्रकाशन के बहुत पूर्व ही प्रसिद्ध हो चुकी हैं। 'सन्नाटा', 'राजपथ' और 'सतपुड़ा के जंगल' ऐसी ही कविताएँ हैं। कवि-सम्मेलनों में मिश्र जी काव्य-पाठ की अपनी विशेष शक्ति का भी उपयोग कर पाते हैं। तब उनकी रचनाएँ अधिक सजीव और शक्ति-सम्पन्न हो जाती हैं। भाषा को उन्होंने इस प्रकार सँवारने का प्रयास किया है कि वह पूर्णतया सहज और अनगढ़ प्रतीत हो। सरलता की साधना में उन्होंने अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया है, जो स्थानीय होने के कारण सर्वत्र प्रचलित नहीं, किन्तु जानने वालों के लिए जो अधिक भावनात्मक अर्थ रखते हैं।

संग्रह की प्रथम कविता 'कवि' में ही उन्होंने अपने कवि-लक्ष्य को स्पष्ट कर दिया है—

**क़लम अपनी साध,**
**और मन की बात बिलकुल ठीक कह एकाध।**
**..................................................**
**..................................................**
**टेढ़ मत पैदा करे गति तीर की अपना,**
**पाप को कर लक्ष्य कर दे झूठ को सपना।**
**विन्ध्य, रेवा, फूल, फल बरसात या गरमी,**
**प्यार प्रिय का, कष्ट-कारा, क्रोध या नरमी,**
**देश या कि विदेश, मेरा हो कि तेरा हो**
**हो विशद विस्तार, चाहे एक घेरा हो,**
**तू जिसे छू दे दिशा कल्याण हो उसकी,**
**तू जिसे गा दे सदा वरदान हो उसकी।**

अर्थात् कवि का मुख्य लक्ष्य अपने मन की बात कहना है, विषय कोई भी हो, किन्तु उसकी गति सदा शिवम् की ओर होनी चाहिए। सत्य का वह पुजारी है और सत्य उसके लिए शिवम् के साथ सदा सम्बद्ध है।

उनकी आरम्भिक कुछ कविताएँ किसी प्रेम-प्रसंग का संकेत रखती हैं। इसकी परिणति विरह में हुई है। कवि ने अपने उद्‌गारों को बहुत संयम के साथ व्यक्त किया है। उनकी दो प्रसिद्ध कविताएँ 'सन्नाटा' और 'राजपथ' अपनी अधिकांश शक्ति इस तथ्य से प्राप्त करती हैं कि एक तटस्थ वस्तु के अन्दर उनमें प्रेम की भावना सँजोई गई है। यह प्रेम विरुद्ध शक्तियों से टकराकर मिलन की परिणति तक नहीं पहुँचता, किन्तु उसकी गहराई में कोई कमी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आती। 'सन्नाटा' में कवि रानी और बाँसुरी वाले पागल के प्रेम को एक अनुभूति का सम्मोहन-रूप प्रदान करता है—

**पर कभी-कभी जब पागल आ जाता है,**
**लाता है रानी को, या गा जाता है;**
**तब मेरे उल्लू, साँप और गिरगट पर**
**अनजान एक सकता-सा छा जाता है।**

ये पंक्तियाँ 'सन्नाटा' को सामान्य से विशेष में बदल देती हैं तथा व्यक्तित्वहीन को व्यक्तित्व प्रदान करके निर्जीव को सजीव बना देती हैं।

मिश्र जी की भावना केवल अपने ही दायरे में बँधकर कभी नहीं रही। उन्होंने पारिवारिक स्नेह और वात्सल्य के भी बहुत सुन्दर चित्र खींचे हैं। उनकी भावुकता और स्नेहशीलता ऐसी कविताओं को सुनाते समय सहज ही उनकी आँखें नम कर देती है। 'बाहिर की होली' इसी श्रेणी में आती है। आत्म और परिवार के आगे मानव-जगत् में उन्हें सबसे प्रिय किसान है। 'लुहार से' कविता में कवि एक तलवार बनवाना चाहते हैं। वह कैसी हो और उसका उपयोग क्या होगा, वह निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है—

**मुझे एक तलवार बना दे,**
**हवा की जो लहरों पर दौड़े**
**इतनी हलकी धार बना दे।**
**लम्बाई उसकी कितनी हो?**
**पूरी बढ़ी फसल गेहूँ की,**
**बढ़ते-बढ़ते तक जितनी हो;**
**.................................**

**मूठ बनाते चित्र खींचते**
**थके हुए भूखे किसान का**
**उस पर माँ का प्यार सींच दे।**

स्पष्ट ही फसल उगाने वाले थके और भूखे किसान तथा माँ के प्यार के समन्वय में कवि जीवन का सबसे बड़ा मूल्य देखता है। तलवार हिंसा की वस्तु है, किन्तु उसे भी वह निर्माण, परिश्रम और प्रेम का प्रतीक बना देना चाहता है। सम्भवतः जीवन की गहरी अनुभूतियों को कवि एक-दूसरे से अलग नहीं मानता, चाहे वह सावन का उल्लास हो या बाढ़ का सम्मोहक आतंक, सृजनशील किसान के प्रति आदर-मिश्रित आसक्ति हो या माँ के स्नेह का मृदुल आश्वासन, जो कुछ उसके मन को गहराई में जाकर छूता है वह सब एक ही धरातल की वस्तु है और उनके समन्वय से कवि की काव्यानुभूति निर्मित है।

इस प्रकार की मानवीय रुचि वाला कवि प्रकृति का भी पुजारी है। यथार्थवाद के इस युग में प्रकृति-चित्रण या तो मिलता नहीं या प्रकृति किसी सिद्धान्त-निरूपण के लिए प्रतीक बनकर उपस्थित हो पाती है। किन्तु भवानी मिश्र सतपुड़ा के जंगलों और घाटियों तथा नर्मदा की गोद में पले हुए हैं। उनका यह जगत् उनके मन में गहरी अनुभूति जगाने की क्षमता रखता है। नर्मदा के दृश्यों और सतपुड़ा के जंगल के चित्रण में उसने इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वस्तुओं को सजीव और स्पन्दनशील बना दिया है। सतपुड़ा के जंगल सघन और अंधकारपूर्ण, ऊँघते और अनमने, रहस्यमय और भयानक हैं। किन्तु यहाँ भी कवि मनुष्यता का समावेश करता है—

**इन वनों के खूब भीतर,**
**चार मुर्गे चार तीतर,**
**पाल कर निश्चिन्त बैठे,**
**विजन वन के बीच पैठे,**
**झोंपड़ी पर फूँस डाले**
**गोंड तगड़े और काले**
**जबकि होली पास आती,**
**सरसराती घास गाती,**
**और महुवे से लपकती,**
**मत्त करती बास आती,**
**गूँज उठते ढोल इनके,**
**गीत इनके गोल इनके !**

प्रकृति सामान्यतः उनमें उल्लास की भावना उत्पन्न करती है। ऋतुओं में सबसे अधिक प्रिय उन्हें वर्षा प्रतीत होती है। इस संग्रह में ही सावन पर चार गीत हैं। इसके अतिरिक्त आषाढ़, पहला पानी इत्यादि कुछ और इसी प्रसंग की कविताएँ हैं।

इन समस्त कविताओं में अनुभूति विशेष है। कवि स्वयं आदर्शवादी हैं, किन्तु उनके आदर्श बहुधा काव्य का रस भंग करते हुए उपस्थित नहीं हुए हैं। वे मानव-प्रेम, सहयोग और शान्ति की भावना से प्रेरित हैं, यह उनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है। पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व कवि को प्रौढ़ता की ओर अग्रसर होने का अवसर मिला है और इससे उनकी क्षति नहीं, उन्हें लाभ ही हुआ है। अपनी काव्य-साधना वे अधिक मनोयोग और मौलिकता के साथ कर सके हैं। अभी यह कहना कठिन है कि अग्रिम विकास में कवि किस प्रकार की वस्तु हमें देगा किन्तु उसकी मूल आस्थाओं और भावभूमि में परिवर्तन का कोई कारण दिखाई नहीं देता। निश्चय ही हिन्दी-काव्य में अभिव्यंजना की सरलता की ओर जो गति दिखाई देती है, उसके मिश्रजी सफल साधक हैं।

'नई चेतना' में महेन्द्र भटनागर की १९५० से १९५३ तक की रचनाएँ संकलित हैं, 'प्राक्कथन' में उन्होंने मुख्य बातें प्रस्तुत की हैं। प्रथम यह है कि **"जीवन में वैयक्तिक और सामाजिक संघर्षों के बीच जब-जब मुझसे न रहा गया और अवकाश मिला मैंने अपने भावों को कविता में व्यक्त किया।"** दूसरी बात में वे इसका विरोध करते हैं कि कतिपय समीक्षक उनकी प्रगतिशीलता को बलात् साम्यवाद की श्रेणी में रख देते हैं। सम्भवतः वे यह कहना चाहते हैं कि वे वर्तमान शोषण पर आश्रित समाज के विरोधी और नए साम्यमूलक समाज के आकांक्षी अवश्य हैं किंतु इनके काव्य में अभिव्यंजना उनकी अनुभूति पर आश्रित है, किसी सिद्धान्त पर नहीं।

सामाजिक संघर्ष में भटनागर जी की सहानुभूति उस वर्ग के साथ है जो दमित और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पीड़ित है। यह सहानुभूति विषाद की भावना न जगाकर एक सामूहिक संकल्प को जन्म देती है जिसमें स्वयं कवि भी सम्मिलित है। इस संकल्प के पीछे क्या शक्ति है? कवि उसे इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

**हमारे पास केवल**
**विश्व-मैत्री का**
**परस्पर प्यार का संदेश है,**
**हमारा स्नेह**
**पीड़ित ध्वस्त दुनिया के लिए अवशेष है!**
**हमारे हाथ**
**गिरतों को उठायेंगे,**
**........................**

यह संघर्ष बहुत प्रखर है। वह शोषकों के लिए भयंकर अंत की भूमिका है,

**नकली दीवारो! नहीं रुकेगी नई हवा,**
**बस कर दो राह कि बचने की है यही दवा!**
**जर्जर संस्कृति के रक्षक भागो! आज लगी!**
**इन अंगारों से तो लपटों की धार जगी!**
**इसको और हृदय से चिपटाना घातक है,**
**आसक्ति, तुम्हारी हो काया की भक्षक है।**

बन्धन क्या हैं? हमारे ही अन्ध विश्वास, जर्जर रूढ़ियाँ और परम्परा। किन्तु उनकी शक्ति भी अब आगे काम नहीं देगी, क्योंकि खरा सत्य अब सामने आ गया है—

**नवीन स्वर नहीं सुना?**
**नया स्वरूप भी नहीं दिखा?**
**बदल गया जहान**
**सत्य आ गया खरा!**
**कहां गई परंपरा, परंपरा, परंपरा?**

इन रचनाओं में सबसे बड़ी विशेषता है कवि का उत्साह और नए जीवन की अवतारणा में पूर्ण विश्वास। वह नए विहान की कल्पना करता है और अपने काव्य में उसे प्रत्यक्ष बनाता है। इस वस्तु की अभिव्यञ्जना में उसकी भाषा अतिशय सरल है किन्तु शक्ति से वंचित नहीं। इस संग्रह की समस्त रचनाएँ एक ही मूल भाव पर आश्रित हैं जिसके कारण उसकी वक्तव्य वस्तु में प्रसार और परिपूर्णता की कमी का भान होता है परन्तु अपनी सीमित परिधि में यह रचना पर्याप्त भावोत्तेजक है।

'सूर्य का स्वागत' इसी वर्ष का प्रकाशन है। इसकी कविताओं में विशुद्धतः कवि का व्यक्तित्व ही मुखर है। यह व्यक्तित्व कैसा है? अभी वह अनिरूपित है, कुण्ठाग्रस्त और पीड़ित है, उसमें दर्द और घुटन है, क्षोभ और जलन है, किन्तु सम्भावनाओं से वह विहीन नहीं। उस पर अभी निर्णय नहीं दिया जा सकता; क्योंकि बार-बार पराजित होकर भी कवि वास्तव में पराजित नहीं है। वह पुनः संघर्ष की तैयारी करता है और अपनी अन्तिम विजय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर उसे पूर्ण विश्वास है—

अगर इस लड़ाई में मेरी साँसें उखड़ गईं,
मेरे बाजू टूट गए,
मेरे चरणों में आँधियों के समूह ठहर गए
मेरे अधरों पर तरंगाकुल संगीत जम गया,
या मेरे माथे पर शर्म की लकीरें खिच गईं,
तो मुझको पराजित मत मानना,
समझना—
तब और भी बड़े पैमाने पर
मेरे हृदय में असंतोष उबल रहा होगा,
..........................................

मेरी प्रगति या अगति का
यह माप-दण्ड बदलो तुम
मैं अभी अनिश्चित हूँ।

इस प्रकार की जो कविताएँ आज प्रकाशित हो रही हैं उनकी तुलना में उपर्युक्त पंक्तियाँ अधिक सशक्त हैं यद्यपि इनमें भी प्रवाह की कमी और गद्यात्मकता की गहरी छाप है। इस कविता में प्रयुक्त कल्पना-चित्र केवल नूतनता के लिए नहीं किन्तु भावाभिव्यंजन के लिए प्रयुक्त हैं। कवि का विश्वास है कि पीड़ा से ही प्रगति का जन्म होता है। दिन निकलने से पहले, कविता में यही भाव इस प्रकार निरूपित हुआ है—

"अपने को सँभालो मित्र !
अभी ये कराहें और तीखी,
ये धुवाँ और कड़ुआ,
ये गड़गड़ाहट और तेज होगी
मगर इनसे भयभीत होने की जरूरत नहीं,
दिन निकलने से पहले ऐसा ही हुआ करता है।"

उपर्युक्त छन्द में छन्द की एकता पुनरावृत्ति पर निर्भर है। कुछ रचनाएँ किसी क्षण-विशेष की अनुभूति को व्यक्त करती हैं। 'सूर्यास्त : एक इम्प्रैशन' ऐसी ही कविता है। सबसे अधिक उल्लेखनीय तथ्य कवि का विश्वास है। उनकी प्रस्तुत कृति पाठकों के मन में भी कुछ आशा उत्पन्न करती है। सापेक्ष दृष्टि से भाषा का परिमार्जन आकर्षक है, किन्तु निश्चित कुछ कहने के पूर्व यह आवश्यक होगा कि दुःख और पीड़ा के सामान्य चित्रण के अतिरिक्त कवि अपनी अनुभूतियों के विशेष रूप को प्रस्तुत करे तथा पाठकों और समीक्षकों को उसकी भावभूमि के अधिक व्यापक और विविध चित्रपट देखने का अवसर मिले।[1]

---

१. गीत-फ़रोश—लेखक भवानीप्रसाद मिश्र, प्रकाशक—नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद; नई चेतना—लेखक महेन्द्र भटनागर, प्रकाशक—श्री अजन्ता प्रेस ( प्राइवेट ) लि०, पटना-४; सूर्य का स्वागत—लेखक दुष्यन्तकुमार, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देवेन्द्र सत्यार्थी

# बाँसरी बज रही

'बाँसरी बज रही' जगदीश त्रिगुणायत का प्रथम लोक-गीत-अध्ययन है। इस अध्ययन की अपनी विशेषताएँ हैं। अध्ययन का जो प्रतिमान यहाँ प्रस्तुत किया गया है, लेखक की वर्षों की साधना का फल है। भारतीय लोक-साहित्य के संग्रह तथा अध्ययन में संलग्न विद्वानों एवं लोक-वार्ता-शास्त्र के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त मनीषियों के निष्कर्षों से लेखक सुपरिचित है और तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा को आगे बढ़ाने में पूरी तरह समर्थ है। उसे मुण्डाओं का आत्मीयतापूर्ण ज्ञान है, और वह जानता है कि मुण्डा-जीवन में पूर्ण रूप से ममता उँडेले बिना यह सम्भव नहीं कि उनके संगीत और काव्य की बारीकियों में जा सके। पुस्तक का नाम अतिशय सार्थक है।

बाँसुरी के लिए मुण्डारी भाषा का शब्द है 'रुतु': 'बाँसरी बज रही' का मुण्डारी पर्याय 'रुतु सड़ितना' पुस्तक के मुख पृष्ठ पर उपनाम के रूप में स्वीकार किया गया है। आदिवासी जीवन में वंशी-स्वर के अस्तित्व को लेखक ने बड़े उदात्त स्वर में स्थापित किया है: **"आदिवासियों ने आनन्द और मनोरंजन के विकेन्द्रित और स्वावलम्बी तत्त्व को गीत के रूप में पहले से पा लिया है। उनके जीवन का स्वर जैसे-जैसे ऊपर उठेगा, इन मनोरंजनों का स्तर भी उठेगा। और यदि वे कहीं इस तत्त्व को भूल गए तो जंगलों की पत्तियाँ मुरझा जायँगी, पहाड़ों के झरने सूख जायँगे, वनों में पक्षियों के पंख झड़ जायँगे और वृक्षों की छाया में बाँसुरी के स्वर मौन हो जायँगे।"**[१]

बड़े आकार के ४२२ पृष्ठों की यह पुस्तक दो खण्डों में विभक्त की गई है। पहले खण्ड में तीन विवेचनात्मक अध्याय हैं: (१) आदिवासी लोक-साहित्य का अध्ययन (१-३२), (२) मुण्डा लोक-गीतों का अध्ययन (३३-४१), (३) काव्य-कला (४१-६२)। दूसरे खण्ड (६३-४०३) का शीर्षक है 'गीत (सानुवाद)' जिसमें 'जदुर' 'ओर जदुर', 'जेना', 'करमा', 'जरगा', 'जापी', 'जतरा' और 'अड़न्दी' के कुल मिलाकर ३५७ गीत दिये गए हैं। पुस्तक के आरम्भ में श्री शिवपूजन सहाय द्वारा लिखित प्रकाशकीय 'वक्तव्य' और लेखक के 'पूर्वाभास' के अतिरिक्त इस पुस्तक के सम्बन्ध में भी सुमित्रानन्दन पन्त और श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की आशीर्वाद स्वरूप लघु सम्मतियाँ दी गई हैं। और पुस्तक के परिशिष्ट भाग में हैं गीत-अनुक्रमणिका ( ४०७-१२ ), 'मुण्डारी के कुछ शब्द' (४१३-२१ ), और 'सहायक पुस्तकें' (४२२)।

'बाँसुरी बज रही' का स्वागत सबसे पहले इसके विवेचना खण्ड के लिए होना चाहिए। इसमें बुद्धि, तर्क और भावना के सुन्दर सन्तुलन द्वारा पहले लोक-साहित्य का परम-मूल्य और उसका विधिवत्, वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और फिर इस अध्ययन-पट पर अनुभूतियों और बारीकियों में जाने वाली सामर्थ्य द्वारा मुण्डा लोकगीतों का शुद्ध मानवीय स्वरूप स्थापित किया गया है; नृत्य और पर्वोत्सव किस प्रकार मुण्डा-काव्य को उदात्त स्वर प्रदान करते हैं और किस प्रकार मुण्डा सांस्कृतिक परम्परा सौन्दर्य-बोध की रंग-

१. **'बाँसुरी बज रही', मुण्डा लोकगीतों का अध्ययन, पृ० ४२।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्थली में शक्तिपूर्ण, चित्रात्मक और प्रतीकमयी काव्यधारा को प्रवाहित करने में सफल हो है, इसकी विवेचना करते हुए लेखक ने जिस गद्य का आश्रय लिया है, उसमें न केव शब्दों की मितव्ययता उल्लेखनीय है, बल्कि उसकी उपलब्धि में लेखक का मुण्डाओं के सा निकट सम्पर्क पूरी तरह ढल गया है।

सम्पादकीय वक्तव्य में बताया गया है, "जगदीश त्रिगुणाय, साहित्यरत्न, उत्तरप्रदे के देवरिया ज़िले के निवासी हैं। आप बहुत दिनों से बिहार राज्य के राँची ज़िले में हा स्कूल के अध्यापक हैं।" इस वक्तव्य से यह भी ज्ञात होता है कि बिहार सरकार इस पुस्त की पाण्डुलिपि पर पुरस्कार दे चुकी है, और इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए बिहार-सरक के जन-कल्याण-विभाग से मिली धनराशि से बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इसे प्रकाशित कि है। सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं: "श्री त्रिगुणायत जी ने अत्यन्त अध्यवसाय के साथ इ कार्य का सम्पादन किया है।......"इन लोक गीतों के पढ़ने से अवश्य ही एक नई प्रेरण का स्रोत आज के काव्य-जगत् में प्रवाहित हो सकता है, जिससे हिन्दी की काव्य-चेतना नवीन स्फूर्ति, हार्दिकता, माधुर्य तथा स्वाभाविकता आ जायगी।" सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराल लिखते हैं।:"......अनुवाद से भाषा समझ में आ जाती है। भाव बड़े हृदयहारी हैं।"

'पूर्वाभास' में लेखक ने अपनी गतिविधि पर प्रकाश डालते हुए लिखा है: "...गीतं के संग्रह के सिलसिले में मुझे अनेक बार मुण्डा क्षेत्र के जंगलों के झुरमट में छिपे पहा की छाया में बसे हुए गाँवों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैं इस विषय में भाग्यशाल रहा हूँ कि इन गीत-पुष्पों को प्रकृत रूप में जीवन की डालों पर झूमते हुए देख सका हूँ इस क्षेत्र के प्रायः सभी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता मेरे मित्र हैं। अपने कार्यक्षेत्र में पारिवारिकता का इतना प्रसार होना किसी भी अध्येता के लिए सौभाग्य की बात है।" अपनी प्रवृत्ति स्पष्ट करते हुए लेखक आगे लिखता है: "सभ्यता और शिक्षा की बाढ़ में बह जाने बचाने के लिए आदिवासियों के सांस्कृतिक उपकरणों—गीतों, कहानियों आदि—को भागने की प्रवृत्ति मेरे मन में कभी नहीं आई। मुझे लगता है कि यदि आदिवासियों हृदय में अपने सांस्कृतिक उपकरणों के प्रति मिली हुई आस्था को बचाया न जा सका, केवल उन उपकरणों को मृतक की भांति स्पिरिट की बोतलों में बन्द कर रखने का को विशेष महत्त्व नहीं है। इसलिए, केवल अनुलेखन की अपेक्षा उन्हें समुचित ढंग से प्रस्तु कर सकने की प्रवृत्ति ने मुझे अधिक प्रेरित किया है। अनेक नृतत्त्व शास्त्रियों का यह मनो भाव कि जो हो रहा है, वह होकर रहेगा; सशक्तता का चिह्न नहीं है। कठिनाइयों के सा समझौता कर के मानव-विज्ञान की विद्याएँ मानवता का अधिक उपकार नहीं कर पायेंगी यदि इन विद्याओं का काम वस्तुओं की यथा-तथ्य विवेचना मात्र कर देना है, तो फि मानव के उज्ज्वल भविष्य के प्रति विश्वास और बेचैनी लेकर जीवन के उन मूल भूत तत्त्व की रक्षा करना किस का काम है, जिनके जीवित रहने पर जंगलों में फूल खिलते हैं, डाल पर कोयल कूकती है, बाँसुरी से स्वर फूटता है, मनुष्यों में प्रेम जगता है और जिसके मि जाने पर धरती बाँझ हो जाती है तथा उसके स्तनों का दूध सूख जाता है।"

भारतीय लोक-वार्त्ता के संग्रह तथा अध्ययन में टेम्पल, थर्स्टन, रिज़ले, इन्थोमेन औ रसल इत्यादि विदेशी विद्वानों के कार्य पर जगदीश त्रिगुणायत के वक्तव्य पर दो मत न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो सकते : **"वास्तव में इन विद्वानों की साधना का पानी अंग्रेज़ी राज की जड़ों के पोषण के लिए था, लोक-जीवन को हरा-भरा बनाने के लिए नहीं था। यद्यपि भारतवासियों की सेवा के लिए इन विद्वानों के भी आदर्श उतने ही ऊँचे थे, जितने अंग्रेज़ी राज के आदर्श।"** आगे चलकर लेखक कहता है : "**तो भी यहाँ लोकवार्ताओं और लोकगीतों का जो अध्ययन हुआ है, उसे हमें महत्त्व देना चाहिए। इससे कम-से-कम भविष्य का मार्ग प्रशस्त हो चुका है।**"

विशेष रूप से आदिवासियों के लोकगीतों से सम्बन्धित अब तक के कार्य पर दृष्टिपात करते हुए लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि अध्ययन के भिन्न-भिन्न उद्देश्य रहे हैं। लेखक को शिकायत है कि इस अध्ययन में प्राय: "**विशुद्ध मानवी दृष्टिकोण का प्रयोग कम किया गया है।**" लेखक उन नृतत्त्व-शास्त्रियों से सहमत नहीं जो लोकवार्ताओं का मात्र-मनोरंजन लिए ही उपयोग करते हैं और आदिवासियों के गीतों को 'म्यूज़ियम की सामग्री' समझते हैं। लेखक को सुधारवादी दृष्टिकोण भी पसन्द नहीं। संग्रह, लिपि और अनुवाद-सम्बन्धी समस्याओं को भी सामने लाया गया है। अनेक विदेशी विद्वानों ने मौलिक गीतों को छोड़ दिया और "**पाश्चात्य तथा अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे पाठकों की ही दृष्टि से।**" अंग्रेज़ी अनुवाद ही प्रस्तुत किये। बहुतों ने अंग्रेज़ी छन्द में अनुवाद किये। फिर वैरियर, एलविन और डब्ल्यू० जी० आर्चर-जैसे विद्वानों ने अंग्रेज़ी छन्द में अनुवाद का मार्ग छोड़कर मौलिक गीतों के सौन्दर्य और सरल अभिव्यक्ति को ज्यों-का-त्यों उतारने का यत्न किया जिसके लिए प्रत्येक पंक्ति के पृथक्-पृथक् सरल, गद्यात्मक अनुवाद की वैज्ञानिक शैली ही उपयोगी सिद्ध हुई।

एलविन और आर्चर की चर्चा करते हुए लेखक ने कहा है: **"विशेषकर मौलिक गीतों के संग्रह, अनुवाद और विश्लेषण जहाँ तीनों के सन्तुलन की आवश्यकता है, इन विद्वानों का महान् प्रयत्न भी अधूरा ही रह जाता है। एलविन ने अपने संग्रहों में गीतों के अनुवादों को ही स्थान देना पर्याप्त समझा है और सिद्धान्ततः मौलिक गीतों के संग्रह की आवश्यकता स्वीकार कर के भी उनका वैज्ञानिक पीछे पड़ गया है। उधर आर्चर ने मुण्डा, उराँव, हो, सन्थाल आदि के हज़ारों-हज़ार गीतों के मूल रूप का संग्रह किया और नागरी लिपियों में किया; मगर अनुवाद और व्याख्या से उन मोटी जिल्दों को वंचित रखा। केवल उराँव गीतों के लिए उनकी एक अलग पुस्तक 'दि ब्लू ग्रोव' है, जिसमें थोड़े गीतों का अनुवाद है और सुन्दर विश्लेषण है; मगर यहाँ गीतों का मूल ही ग़ायब है। आदिवासी गीतों के ये सबसे बड़े दो आचार्य राहु और केतु के समान दो टुकड़ों में बँटे हुए हैं और उनमें प्रत्येक इस प्रकार अधूरा है जो आपस में मिलकर भी पूर्ण नहीं हो सकते ।......फिर भी वे निश्चित रूप से सबसे बड़े आचार्य हैं और उनका पथ-प्रदर्शन अमूल्य है। हमें सच्चे हृदय से इनका कृतज्ञ होना चाहिए। यह तो भारतीय विद्वानों का काम है कि वे न केवल इनके अधूरे काम को पूरा करें, वरन् इनकी अपूर्ण प्रणाली को भी पूर्णता प्रदान कर उसे पूर्ण कलात्मक, वैज्ञानिक तथा जीवनानुकूल बनायें।"**

विशेष रूप से मुण्डा लोकगीतों की खोज के सम्बन्ध में लेखक ने यह स्वीकार किया है कि सर्वप्रथम फादर हाफ मन ने ही दो सौ गीतों का संग्रह किया था, और उन्होंने 'दि मैमायर्स आफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल' में मुण्डा लोकगीतों की विशेषताओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की चर्चा की थी। फिर स्वर्गीय शरतचन्द्र राय ने जहाँ अपनी पुस्तक 'दि मुण्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' में प्रमाण और उद्धरण स्वरूप स्थान-स्थान पर मुण्डा गीतों का प्रयोग किया, विशेष रूप से मुण्डा लोकगीतों की व्याख्या के सिलसिले में बीस-बाईस गीतों का प्रयोग किया "विद्वान् लेखक ने अंग्रेज़ी छन्दों में अनुवाद किया है, वहाँ अधिकांश मुण्डा गीतों का कायाकल्प हो गया है। उन में मुण्डा गीतों के सरल सौन्दर्य से अधिक शरत् बाबू की विद्वत्ता प्रकट होती है। उन अनुवादों में शरत् बाबू ने अपनी ओर से नये भाव, नये प्रयोग और नये अर्थ जोड़े हैं और अंग्रेज़ी के बड़े-बड़े कवियों फ्रांसिस सैम्पेल, जेम्स रसल लावेल, टेनिसन और वर्डस्वर्थ आदि की कविता से मुण्डा गीतों की भाव-भूमि की तुलना की है।"

जगदीश त्रिगुणायत ने अपनी यह स्थापना सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिये हैं। 'दि मुण्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' [1] में एक गीत की बानगी देने से पूर्व गीत का प्रसंग प्रस्तुत करते हुए शरत् बाबू लिखते हैं: "जहाँ मुण्डा अपने सगे सम्बन्धियों से मिलने पर उदार और सन्तुष्ट होता है, वहाँ अपने उत्पीड़कों और शत्रुओं को देखकर अकथनीय घृणा और नफरत से आगबगूला हो जाता है। उसके गाँव में आने वाले हिन्दू और मुसलमान, व्यापारिक और महाजन तथा बाहरी ठेकेदार, जागीरदार या नीला-सदार मुण्डाओं की आँख में अत्यधिक खटकने वाले हैं। व्यापारी और साहू-महाजन अपने स्वार्थ के लिए उनका सिर मूड़ा करते हैं और बाहरी 'दिक्' उन की अपने गाँव की जमीन की मलकीयत से पदच्युत करके उन्हें केवल लकड़हारा और पनभरा बना छोड़ते हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं मुण्डा गीतकार घृणापूर्वक उनकी तुलना खून चूसने वाले चील, लोभी गृद्ध, गोपशकुनी कौवे, हठी जिद्दी उल्लू और छद्मवेश वाले मोर से करते हैं।"

अब शरत् बाबू द्वारा उद्धृत मुण्डा लोकगीत लीजिए जिसे उनकी रोमन अक्षरों में दी गई प्रतिलिपि से उतारा गया है:

नाकु नाकुजा दारोमदा
कुड़िद को लपालुड़िया गा
नाकु बाकुजा आगा मारी को
गेयोन गेयोना।
उदूबाकोपे जोजो को जुम्बलाए
उदूबो कोपेगा।
चुण्डूला कोपे उली को अम्बरांए
चुण्डूला कोपेगा।
काको सुकु जान
जोजो को जुम्बलाए
काको सुकुजान गो।
उली को अम्बरांए

शरत् बाबू ने इस गीत का यह अँग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है:

१. पृ० ५३८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Those kites have hither winged their way,
Athirst for water clear ;
These greedy geese with graceful swing,
Thus wend their way up here.
Oh ! take them where you tam'rind tope,
Doth stand, do take them there;
Point out to them you mango grove,
O, let them there repair.
The tam'rind tope they do not like
It does not please them so
You mango grove these geese mislike,
Ill pleas'd are they, I trow.

अर्थात्—'ये चील यहाँ पर अपने रास्ते से उड़कर आये हैं। साफ है कि पानी के लिए प्यासे हैं। ये लोभी हंस सुन्दर उड़ान के साथ ऊपर चक्कर काट रहे हैं। उन्हें वहाँ जहाँ इमली का पेड़ खड़ा है, ले जाओ; वहाँ उन्हें पहुँचा दो। उन्हें उस अमराई को बता दो जहाँ वे आश्रय प्राप्त करें। इमली का सिरा उन्हें पसन्द नहीं आया, वह उन्हें, प्रसन्न नहीं कर सका। उस अमराई को इन हंसों ने नापसन्द किया। मुझे विश्वास है कि वे अप्रसन्न हैं।'

यह तो रहा शरत् बाबू द्वारा किए गए अनुवाद का अर्थ। अब इस मुण्डा लोकगीत का जगदीश त्रिगुणायत द्वारा किया गया अनुवाद लीजिए :

'देखो, देखो, पानी का स्वागत करने वाले चील पंख हिला रहे हैं। देखो, देखो, घाँटो के दल उड़े जा रहे हैं। इमली का झुण्ड बता दो (जहाँ जाकर बैठें) आम का बाग दिखा दो (जहाँ जाकर उतरें)। उन्होंने पसन्द नहीं किया। इमली का झुण्ड उन्होंने पसन्द नहीं किया।' [1]

जगदीश त्रिगुणायत लिखते हैं :

**"वास्तविकता यह है कि इस गीत का शरत् बाबू की व्याख्या से कोई सम्बन्धी नहीं है। यह एक साधारण प्रकृति का वर्णन मात्र है, उन पक्षियों के स्वभाव का चित्रण ! चील के बारे में मुण्डाओं की कोई बुरी भावना नहीं और घाँटो तो सारी मानव जाति की तरह उन्हें भी प्रसन्न करने वाले पक्षी हैं।**

**"पहली पंक्ति में 'दारोमदा' का अर्थ है पानी की अगवानी करने वाले। चील का उड़ना पानी आने की सूचना समझा जाता है, लेकिन, श्री राय लिखते हैं— 'साफ है कि वे पानी के लिए प्यासे हैं।' आगे की पंक्ति में सीधे घाँटो पक्षियों की सीधी उड़ान का वर्णन है; किन्तु श्रीराय घाँटो को हंस बनाते हैं, उनके साथ लोभी का विशेषण लगाते हैं और 'चक्कर काटने' की क्रिया प्रदान करते हैं। मज़ा यह कि हंस मुण्डाओं की किसी नफरत का पक्षी नहीं हैं।"**

शरत्चन्द्र राय की पुस्तक 'दि मुण्डाज एण्ड देयर कन्ट्री' सर्वप्रथम सन् १९१२ में

१. बाँसुरी बज रही,' पृ० २४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रकाशित हुई थी। इसकी भूमिका में श्री ई० ए० गैट [आई० सी० एस०] ने बल पूर्वक यह बात कही है: 'The author is one of the few persons, other than missionaries, who can speak the language of Mundas, and he is well acquainted with their manners and customs' ( मिशनरियों को छोड़कर, लेखक उन थोड़े से लोगों में से है जो मुण्डाओं की भाषा बोल सकते हैं; और वह उनके रीति-रिवाजों से भली प्रकार परिचित है।)

सन् १९३८ में, जब मैं स्वयं मुण्डाओं और छोटा नागपुर की अन्य आदिवासी जातियों के लोकगीतों का अध्ययन करने के सिलसिले में राँची गया था, मैंने स्वर्गीय शरत्-चन्द्र राय के दर्शन किये थे। छोटा नागपुर के आदिवासियों के सम्बन्ध में नृशास्त्र-सम्बन्धी उनका कार्य प्रामाणिक माना जाता है। इस दिशा में उनकी तपस्या के बारे में दो मत नहीं हो सकते। लोक-वार्ता-शास्त्र की बाइबल 'दि गोल्डन बाउ' के लेखक जे० जे० फ्रेज़र ने 'दि मुण्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' की आलोचना करते समय लिखा था : "the translations of Poetry are charming" ( कविता के अनुवाद सुन्दर हैं। ) मेरा अपना विचार है, सारी भूल उस समय हुई, जब शरत् बाबू ने लोकगीत के अनुवाद के लिए अंग्रेजी छन्द की शरण ली। एक बार छन्द की शरण में जाकर लेखक के लिए वस्तुतः लोकगीत के प्रति अधिक-से-अधिक सच्चा और खरा रहना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है, क्योंकि छन्द अपनी पूर्ति के लिए मनमानी गुलामी कराता है, और इस स्थिति में यदि लेखक लोकगीत से कहीं अधिक पाठक के मनोरंजन को ही लक्ष्य बनाकर चलने लगे, तो वह सचाई से बहुत दूर जा पड़ता है। वार्तालाप के दौरान में शरत् बाबू ने स्वयं स्वीकार किया था कि मुण्डा लोकगीतों के अनुवाद में उन्होंने अंग्रेजी छन्द में अनुवाद करने की प्रवृत्ति अपनाकर अच्छा नहीं किया था, और उन्होंने मेरा ध्यान अपने बाद के ग्रन्थों की ओर दिलाया था, जिनमें वे लोकगीत का अनुवाद करते समय छन्द की गुलामी को एकदम ठुकराकर चले हैं। उनकी 'दि ओराओज आफ़ छोटा नागपुर'[1] 'दि रिलिजियन एण्ड कस्टम आफ दि ओराओंज', 'दि बिरहोरज़'[2] 'दि हिल भुइयाँज़ आफ उड़ीसा', 'प्रिन्सिपल्स एण्ड मैथड्स आफ फिज़िकल एन्थ्रो पालोजी' और अपने सुपुत्र रमेशचन्द्र राय के साथ मिलकर लिखी 'दि खड़ियाज़'[3] में लोकगीत के अनुवाद में छन्द की गुलामी से मुक्त होने की बात अपनी आँखों से देख सकते हैं। 'दि मुन्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' में दिये गए मुण्डा लोकगीतों की व्याख्या में त्रुटियाँ रह जाने का एक कारण यह भी हो सकता है कि इस क्षेत्र में यह शरत बाबू का प्रथम प्रयास था।

पर जहाँ तक 'दि मुण्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' में दिये गए लोकगीतों के अनुवाद का सम्बन्ध है, जगदीश त्रिगुणायत का स्पष्टीकरण उल्लेखनीय है : **'ऐसे अनुवादक दुर्भाग्यवश इस तथ्य को भूल गए कि लोकगीतों का सौन्दर्य उनकी सरल अभिव्यक्ति में है, उनकी निरीह निःसंकोचता में है, और उनके भोलेपन में है। किन्तु महान् अनर्थ तो तब हुआ**

१. १९१५
२. १९२५
३. १९३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जब उन्होंने अपनी विद्वत्ता पर लांछन लगने के डर से, जिनमें रुखड़ापन मिला, उन पर पालिश लगाई और गीतों के (अपनी समझ में) रिक्त कलेवर को नवीन अर्थों से ज़बरदस्ती भर दिया। श्री शरत्चन्द्र राय ने 'मुण्डाज़ एण्ड देयर कण्ट्री' के एथना ग्रोफी खण्ड में लगभग बीस-बाईस गीत मूल और छन्दोबद्ध अनुवाद सहित प्रस्तुत किये हैं। उनमें केवल दो-तीन को छोड़कर प्राय: सभी उपर्युक्त कथन के ज्वलन्त प्रमाण है।"[1]

मुण्डा लोकगीतों का सबसे बड़ा संकलन है देवनागरी लिपि में प्रकाशित 'मुण्डा दुरङ' (१६४२), जिसे डब्ल्यू० जी० आर्चर ने स० अ० बि० दिलवर हंस और सामुएल हंस के सहयोग से युनाइटेड प्रेस लिमिटेड पटना से मुद्रित कराया था। इसमें कुल मिलाकर १६४१ गीत और 'कहानी' शीर्षक से ३८० मुण्डा पहेलियाँ दी गई हैं। पुस्तक शरत्-चन्द्र राय (जन्म १८७१, मृत्यु १६४२) को समर्पित करते हुए डब्ल्यू० जी० आर्चर ने उस महान् नृ-तत्त्व शास्त्री के प्रति आदर जताया है। यह उल्लेखनीय है कि इस संकलन में डब्ल्यू० जी० आर्चर द्वारा अंग्रेजी में लिखित दो पृष्ठ का Preface दिया गया है जिसमें अन्य-तथ्य-चर्चा और आभार स्वीकृति के अतिरिक्त यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है कि इस संकलन में वे २०० गीत भी आ गए हैं जिनका संग्रह सन् १६३० में फादर हाफमन ने किया था। इस संकलन के सम्बन्ध में जगदीश त्रिगुणायत लिखते हैं :

"........कलेवर के हिसाब से निस्सन्देह वह मोटी पुस्तक है और उन बहुसंख्यक बिखरे हुए गीतों को बचाकर लिख रखने का प्रयत्न सराहनीय है; किन्तु इसके अतिरिक्त और किसी उद्देश्य की पूर्ति उससे नहीं होती। उस विद्वान् और प्रतिभाशाली लेखक के लिए दो पृष्ठ की छोटी-सी भूमिका पर सन्तोष कर लेना उचित प्रतीत नहीं होता।

"अधिकांश गीत टूटे-फूटे हैं। बहुधा तीन पदों के गीतों की रचना करने वाले मुण्डाओं के गीतों के एक या डेढ़ पद हड़प्पा की खुदाई में मिले ठीकरों के संग्रह के समान जान पड़ते हैं। निस्सन्देह यह बड़ा काम हुआ; किन्तु यदि इतना महत्त्वपूर्ण काम केवल उन कर्मचारियों के भरोसे ही नहीं छोड़ दिया गया होता तो, सम्भवत: कुछ और अच्छे परिणाम सामने आये होते ?"[2]

'बाँसरी बज रही' के विवेचना-खण्ड में लेखक ने मुण्डा संगीत और काव्य के अनुभवी मार्ग-दर्शक का दायित्व निभाया है। "जंगल के वातावरण का सूना एकान्त मुण्डाओं के लिए भावों का उद्दीपक बन जाता है।....निर्झर का किनारा, कोई सूनी चट्टान, एकान्त खेत, सुनसान रास्ता—ये ऐसे वातावरण प्रस्तुत कर देते हैं; जिनसे गीतों का फूट पड़ना स्वाभाविक है।"[3] "उनका सारा जीवन ही संगीतमय है। वह संगीत जब मौन होता है, तब भी उनके प्राणों की गत बजाता है। वह उनके कर्मों में सुरुचि और लगन भरता है, उनके जीवन की प्रत्येक साँस को अपनी सुरुचि से सँवारता है.........तन्मयता बनकर एक-एक अनुष्ठान को पूर्ण कराता है और वही संगीत ताल बनकर उनके नृत्यों की शिंजिनी बजाता है। और जब मुखर होता है तब आकाश में काली घटाएँ छा जाती हैं, वसन्त की ठण्डी हवा

१. बांसुरी बज रही, पृ० ७
२. 'बांसरी बज रही', पृष्ठ २५
३. पृ० २६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


में पत्तियों के पायल बज उठते हैं, वृक्षों की सूखी डाल पर कलियाँ फूट पड़ती हैं और उसके स्वर की धारा में दुःखों के पहाड़ डूब जाते हैं।"[१] "मौसम के अनुसार मुण्डा-गीतों के बहुत-से भेद हो गए हैं। और सब के लय-ताल आदि अलग-अलग हैं। सभी गीत अपने ही मौसम-विशेष में गाये जाते हैं। एक मौसम का गीत दूसरे मौसम में गाया जाना वर्जित है ........मुण्डाओं का सबसे प्रमुख और प्राचीन गीत जदुर है, जो बसन्त-गीत है। और इनका सबसे प्रमुख पर्व सहुल है, जो वसन्तोत्सव है।"[२] "माघ में मनाये जाने वाले 'मागे' पर्व के बाद जदुर का मौसम प्रारम्भ हो जाता है..........जदुर गीतों की संख्या सबसे अधिक है..........दो जदुर गीतों के बाद 'बोना' गाया जाता है, जो जदुर नृत्य की ताल को थोड़ी देर के लिए बदल देता है..........'ओर जदुर' भी जदुर के पूरक हैं और जदुर के विशाल वृक्ष की बाहर निकली हुई टहनी के समान जान पड़ते हैं। इनके लय और छन्द जदुर से कुछ भिन्न होते हैं, किन्तु गाने का समय, मौसम और उपयोग वही है...सरहुल की समाप्ति में से ही करमा गीतों का प्रारम्भ होता है। मुण्डा लोग सरहुल की अन्तिम सन्ध्या आने के पहले ही उसी दिन के धुँधलके प्रभात में दो-चार करमा गीत गाकर करमा के महान् मौसम का स्वागत करते हैं। और फिर, इन गीतों का क्रम नित्य बदलते रहने व ले वातावरण में अपना रूप बदलता हुआ आश्विन के अन्त तक चलता है। भादों की एकादशी को करमा-पर्व मनाया जाता है और उस पर्व से भी सम्बन्धित बहुत-से गीत हैं; किन्तु दरअसल करमा-गीत पर्व की सीमाओं में बँधे हुए नहीं हैं..........करमा पर्व मुण्डाओं का अपना पर्व नहीं है। इसे उन्होंने दूसरों से सीखा है। किन्तु, उसमें अपना रंग मिलाकर उसे और भी रसमय बना लिया है। अस्तु, पर्व के लिए भी बहुत-से गीत बने हैं। करमा के अलग नृत्य हैं और बाजों के अलग लय-ताल हैं।"[३] "करमा के बाद 'जरगा' गीतों का मौसम आता है जो कार्तिक की सीमा से लेकर 'मागे' पर्व की सीमा तक गाये जाते हैं। 'मागे' फसली पर्व है। यह खेती-बारी के सारे काम समाप्त हो जाने के बाद—जब अनाज घर में आ जाता है और जब ये लोग काम-धाम से थोड़े दिनों के लिए छुट्टी पा जाते हैं तब मनाया जाता है। मागे पर्व अन्न की प्रसन्नता में तृप्ति का पर्व है और जरगा गीत अपने मौसम के अनुसार शान्त भावों के गीत हैं.........'जापी' शिकार के गीत हैं.........ये उन शिकार के आयोजनों में, जो होली और सरहुल पर्वों के उपलक्ष्य में होते हैं, गाये जाते हैं........प्रत्येक पर्व और आनन्द के अवसर पर इन नृत्य-प्रेमियों के बहुत-से गाँवों का जो सम्मेलन हुआ करता है उसे 'जतरा' कहते हैं........युवक-युवतियों के लिए ये जतराएँ महापर्व हैं।"[४] "विवाह के गीतों में........कुछ गीत दूल्हा-दुलहिन के लिए आशीर्वाद स्वरूप भी हैं और कुछ सम्बन्धियों के स्वागत के प्रसंग में भी।"[५] "मुण्डा गीतकार अपने अमर क्रान्तिकारी और पथ-प्रदर्शक नेता बिरसा भगवान् को कैसे भूल सकता है? बिरसा भगवान् इनकी स्वतन्त्रता के

१. पृ० २८।
२. पृ० २९।
३. पृ० ३०-३१।
४. पृ० ३२।
५. पृ० ३३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उज्ज्वल प्रतीक हो गए हैं तथा उनके त्याग, संघर्ष और बलिदान की कहानी से सारी मुण्डा जाति अपने को आज भी गौरवान्वित समझती है। बिरसा भगवान् के आन्दोलन, उनकी प्रचण्ड शक्ति, उनकी युद्ध-भूमि डुम्बारी पहाड़, उनका अमर बलिदान इन गीतों के विषय हैं।"[1] "कुछ गीतों में राष्ट्र-पिता की याद में भी मुण्डा-गीतकारों ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है और भारत माता के मन्दिर में अपनी जाति की वन्दना भी स्वरित की है...... समय की महिमा, जीवन का आदर्श, अतिथि-सत्कार, घटनाओं में परोक्ष रूप से भाग लेने वाले देवता, परदे के पीछे छिपा हुआ भाग्य, सिंगबोंगा (सूर्य), माता, पृथ्वी आदि विषयों पर भी छुटपुट गीत हैं।"[2]

विवेचना खण्ड में जगदीश त्रिगुणायत ने प्रतीक-उपमान-आलम्बन की विशेष रूप से चर्चा की है। फूल, लताएँ, वृक्ष, पक्षी, पशु और अन्य प्राकृतिक तत्त्व मुण्डा गीतकार के लिए कहीं प्रतीक बनकर आते हैं, कहीं उनसे मनोहर उपमाएँ उपलब्ध हुई हैं; कहीं प्रेम-विरह अथवा मिलन की भावभूमि पर प्रकृति के इन उपादानों ने उद्दीपन का रंग उत्पन्न किया है। श्री त्रिगुणायत का यह निष्कर्ष परम सत्य पर आधारित है : "इनफूलों, पक्षियों और पर्वत-घाटियों के वातावरण से परिचित हुए बिना हम गीत की भावना नहीं समझ सकते और गीतकार की अनुभूतियाँ हमसे दूर रह जायँगी।"[3]

मुण्डा काव्य-कला की विवेचना करते हुए 'उपमा और रूपक', 'आलम्बन और उद्दीपन', 'चित्र-विधान', 'अत्युक्ति', 'अभिव्यंजना', 'बिम्ब-ग्राहिता या गुणात्मकता', 'पुनरावृत्ति', 'कथोपकथन', 'प्रधान विशेषता', 'छन्द-विधान', 'गीतकार', 'बाह्य प्रभाव', 'प्रभाव और उपयोगिता', 'अध्येताओं के लिए,' और 'उपसंहार' इन सभी प्रसंगों पर विचार किया है। गीतों का अध्ययन करते समय हम श्री त्रिगुणायत के इस निष्कर्ष से सहमत हुए बिना नहीं रह सकते : "मुण्डा गीतों में ऐसे सरल और स्वाभाविक उद्गार हैं जो इनके सारे रस और आनन्द को खोलकर रख देते हैं। कलाकार की अभिव्यक्तियाँ परिभाषाओं की घोड़ी पर चढ़कर नहीं चलतीं, वे अपने-आप स्वाभाविक रूप में प्रकट होती हैं।"[4] मुण्डा गीतों में प्रतीक विधान पर प्रकाश डालते हुए श्री त्रिगुणायत बताते हैं : "हरि-बा" और "सिसि-बा" [ दो फूल ] जदुर खेलने जाते हैं। 'कारे' और 'भीरू' ( दो पक्षी ) पुरानी कोपलों के सूख जाने पर बिलख-बिलखं कर रोते हैं। ( दो मित्र अपने हमजोलियों के बिछुड़ जाने पर रो रहे हैं), 'सालू' और 'सुग्गा' [ दो पक्षी—दो मित्र ] नाचते जाते हैं। तराई और टांड़ के रहने वाले 'दोवा' और 'आसाकल' पक्षी लासा लगाकर पकड़े जाते हैं। ( दो युवतियाँ प्रलोभनों से फँसा ली जाती हैं। मनुष्यों की एक कुरूप लगने वाली जोड़ी एक बच्चे के लिए 'बण्डा कुता' और 'नटरी सूअर' बन जाती है। 'विशी' और 'चाड़ू' नाच देखने जाते हैं। लेकिन घर के पीछे-पीछे 'बाज' और 'सिकरा' बैठे हुए हैं। दो लड़कियाँ नाचने जाना चाहती

१. पृ० ३७।
२. पृ० ३८।
३. पृ० ३८।
४. पृ० ४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**हैं; पर घर के पीछे माँ-बाप बैठे हुए हैं।"[१]**

हमें जगदीश त्रिगुणायत से एक ही शिकायत है, यही कि उन्होंने मुण्डा-गीतों के प्रतीक-विधान पर बहुत कम प्रकाश डाला है। कदाचित् उनका यह विचार रहा हो कि इन थोड़े-से संकेतों के बल पर पाठक आगे अपनी कल्पना और सूझ की गाड़ी ठेल ले जायगा। इस दिशा में पाठक के सामने ऐसे प्रत्येक स्थल पर, जहाँ भी प्रतीक का आधार लिया गया है, लेखक को प्रतीक का स्पष्टीकरण करना चाहिए था।

एक शिकायत और भी है। पुस्तक के द्वितीय खण्ड में ३५७ गीतों के अनुवाद देकर ही लेखक ने छुट्टी ले ली। यह ठीक है कि गीतों का अपना रस है, और इस रस'धारा में डुबकी लगाना किसी भी दृष्टि से अनुपयोगी नहीं। पर लेखक का यह सोच लेना कि विवेचना खण्ड की सभी बातें पाठक के सामने रहेंगी, और उन संकेतों के बल पर पाठक प्रत्येक गीत का घूँघट उलटकर इसकी वास्तविकता तक पहुँच सकता है, प्रत्येक अवस्था में ठीक नहीं कहा जा सकता। अच्छा होता, यदि लेखक ने गीत-खण्ड में प्रत्येक विभाग की भावमयी भूमिका दी होती और गीतों के साथ-साथ संक्षिप्त परिचयात्मक वार्ता का सहारा भी लिया होता, जैसा कि हम डब्ल्यू० जी० आर्चर की 'दि ब्लू ग्रोव' और वैरियर ऐलविन की 'फोकसौंग्स आफ छत्तीसगढ़' में देखते हैं। भले ही ऐसा करने के लिए लेखक को विवेचना-खण्ड को थोड़ा संक्षिप्त करना पड़ता, या फिर गीत-खण्ड के लिए और पृष्ठ लेने पड़ते।

सबसे अन्तिम शिकायत यह है कि जहाँ लेखक ने गीत-खण्ड में अधिकांश स्थानों पर मूल गीत देने के बाद पंक्तिवाद अनुवाद देने की पद्धति अपनाई है (जो पाठक की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है, और वैज्ञानिक भी) वहाँ कुछ स्थलों पर वह पद्धति खटाई में पड़ जाती है, क्योंकि मूल गीत और अनुवाद की पंक्तियाँ गिनती में बराबर बराबर नहीं रहीं। और किसी-किसी स्थान पर [२] लेखक ने गीत के तीन अंशों का अनुवाद तीन गड्ड-मड्ड पैराग्राफों के रूप में दिया है। कहने का भाव यह नहीं कि अर्थ में गड़बड़ी हुई है; अलग-अलग पंक्तिवाद अनुवाद न रहने से पाठक की सुविधा जाती रही और साथ ही कविता का रूप भी गद्यात्मक हो गया।

पर ये शिकायतें 'बाँसुरी बज रही' की रस-माधुरी में आस्था न जम सकने के कारण नहीं (क्योंकि जिस रंगस्थली में मुण्डा बाँसुरी बज रही है, वहाँ तो हम आ पहुँचे हैं); ये शिकायतें तो इसलिए हैं कि हम लेखक से अधिक पथ-प्रदर्शन की अपेक्षा रखते थे; और शायद लेखक ने यही उचित समझा कि बाँसुरी की टेर द्वारा दूल्हा-दुलहिन को समीप लाकर छोड़ दिया जाय, फिर बीच में कोई न रहे, और दूल्हा-दुलहिन स्वयं पहचान करें और एक-दूसरे के होकर आगे चलें। यह आशा की जानी चाहिए कि जगदीश त्रिगुणायत अपने अध्ययन की जयपताका समूचे छोटा नागपुर प्रदेश पर फहरायँगे। 'बाँसरी बज रही' के अन्तिम गीत में प्रतीक रूप से आदिवासी जीवन की कठिनाइयाँ बोल उठी हैं:

**रास्ते का डिम्बू का फूल, रास्ते का डिम्बू का फूल!**
**हे माँ, फूल खोंस लेने की इच्छा होती है।**

१. पृ० ४२
२. पृ० ६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हे माँ, फूल खोंस लेने की इच्छा होती है !
खोंसने को तो खोंस लेंगे, खोंसने को तो खोंस लेंगे
(लेकिन) हे माँ हम दोनों के पास फूल का दाम नहीं है।
हे माँ, हम दोनों के पास फूल का दाम नहीं है।
खोंसने को तो तुम खोंस लोगे;
खोंसने को खोंस लोगे।
(लेकिन) हे बेटा ! दिकू सिपाही पकड़ेंगे !
हे बेटा ! राजा के सिपाही पकड़ेंगे !

हो सकता है कि कुछ पाठकों को गीत के उत्तरार्ध तक पहुँचते धचका-सा लगे कि यह क्या हो गया—हमने तो सोचा था कि फूल खोंसने की इच्छा वाली कोई लड़की होगी, पर यह तो लड़का निकला:—पर यथार्थ यही है कि मुण्डा युवक छैला बना रहता है और फूल खोंसने में वह किसी युवती से पीछे नहीं रहता। परन्तु गीत में 'डिम्बू का फूल' जीवन की समस्त सुख-सुविधा का प्रतीक है।

'बाँसुरी बज रही' का प्रकाशन मुण्डा लोक-गीतों के प्रांगण में ही नहीं, भारतीय लोक-गीतों की रंगस्थली में एक महत्त्वपूर्ण घटना है।[१]

महादेवप्रसाद शर्मा

## राजनीति और दर्शन

पुस्तक के नाम से प्रतीत होता है कि इसमें राजनीति और दर्शन के सम्बन्ध का विवेचन होगा, परन्तु ऐसा नहीं है। लेखक के शब्दों में इसका मूल विषय है, 'दार्शनिक राजनीति-शास्त्र' अथवा 'राजनीतिक दर्शन' जिसे उन्होंने 'सरलता के विचार से', 'राजनीति और दर्शन' शब्दों द्वारा व्यक्त किया है ( भूमिका पृष्ठ २ )। अतः पुस्तक का नाम उसके विषय का ठीक परिचय नहीं देता।

लेखक का कथन है कि प्लेटो, अरस्तू तथा अन्य यूरोपीय दार्शनिकों की राजनीति के प्रति भी महान् देन थी, परन्तु भारतीय दार्शनिकों की "संप्रभुता, विधि, न्याय, राज्य आदि पर—कुछ उल्लेखनीय देन नहीं है—जिन अर्थशास्त्रकारों और स्मृतिकारों—कौटिल्य, कामन्दक, शुक्र, मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने राजनीति पर विचार किया है, वे कोई महान् दार्शनिक नहीं थे—हमारे देश में—दार्शनिक, राजनीति-शास्त्रवेत्ताओं की नितान्त कमी है" ( पृष्ठ क : भूमिका )। यह अनुमान असंगत न होगा कि लेखक का प्रस्तुत प्रयत्न इस कमी को पूरा करने और 'पूर्वीय तथा पाश्चात्य विचारधारा के आधार पर' एक नये 'राजनीति-

१. **'बाँसुरी बज रही' : मुण्डा लोक-गीत, लेखक—जगदीश त्रिगुणायत; प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शास्त्र प्रणयन' ( पृष्ठ १५१ ) का है।

यह नवीन राजनीति-शास्त्र, दार्शनिक राजनीति-शास्त्र ही है। इसकी प्रक्रिया पर निम्नलिखित उद्धरणों से प्रकाश पड़ता है—

"दर्शन के हमने दो अर्थ स्वीकृत किये हैं (१) कृत्स्न ज्ञान...... (२) मानव के नैतिक और आध्यात्मिक स्वरूप का ग्रहण।" ( पृ० १६-२० )।

"दार्शनिक अध्ययन का तात्पर्य विभिन्न 'शास्त्रों' के द्वारा वर्णित वस्तुओं और घटनाओं का कैवल्य अवस्था में दिव्य दर्शन करना नहीं है, किन्तु इनके क्रमबद्ध पारस्परिक अन्तः सम्बन्धों का परिदर्शन ही।" ( पृ० ४ )।

"दर्शन का मुख्य लक्ष्य व्यापक मौलिक सम्बन्धों का निर्माण ही है" ( पृ० ५ )।

"इतिहास, प्राचीन मानवोत्पत्ति-शास्त्र, निवास-शास्त्र आदि के द्वारा अनुमोदित सिद्धान्तों के सहारे ही हम उस व्यापक राजनीति-शास्त्र की स्थापना, जो समग्रतः और तत्त्वतः राज्य की पूर्ण समीक्षा कर सके।" ( पृ० १६ )।

"अनेक शास्त्रों के द्वारा ज्ञात सिद्धान्तों के समन्वय का उपक्रम ही दार्शनिक प्रयास है।" ( पृ० १५१ )।

"प्रस्तुत पुस्तक में समन्वयात्मक पद्धति का अवलम्बन होगा—( हम ) अन्य सामाजिक शास्त्रवेत्ताओं के विचारों के आलोचन में भी प्रवृत्त होंगे......मानव के नैतिक और आध्यात्मिक स्वरूप में हम मूलतः भारतीय संस्कृति के संदेशवाहकों से प्रभावित हैं।" ( पृ० २० )।

लेखक ने जो दार्शनिक समन्वय किया है, उसका कुछ परिचय इन उद्धरणों से ही मिल जाता है। एक ओर तो दर्शन को 'कृत्स्न ज्ञान' बतलाया है, परन्तु दूसरी ओर दार्शनिक पद्धति को विभिन्न शास्त्रों के 'क्रमबद्ध पारस्परिक अन्तः सम्बन्धों का परिदर्शन', 'व्यापक मौलिक सिद्धान्तों का निर्माण' आदि मात्र कहा है, जो वैज्ञानिक पद्धति का लक्षण है। भारत की कौन कहे, यूरोप में भी दर्शन और दार्शनिक पद्धति का यह संकुचित अर्थ ग्रहण नहीं किया गया है। प्लेटो, अरस्तू, हेगेल, काण्ट आदि ने राजनीति की दार्शनिक मीमांसा में उसके और अन्य शास्त्रों के अन्तः सम्बन्धों मात्र पर प्रकाश नहीं डाला है, किन्तु सचराचर विश्व की योजना में मानव तथा उसकी राजनीतिक प्रवृत्तियों के स्थान तथा उद्देश्य की विवेचना की है। दर्शन यदि कृत्स्न ज्ञान है, तो उसमें 'मानव के नैतिक और आध्यात्मिक स्वरूप' के ग्रहण का स्वतः ही समावेश हो जाता है। इसे अलग से जोड़ने की आवश्यकता तभी पड़ती है, जब 'कृत्स्न ज्ञान' के यथार्थ अभिप्राय के विषय में भ्रम हो। अतः दर्शन के भारतीय, पूर्वकालीन, यूरोपीय विचारकों तथा आधुनिक यूरोपीय तथा अमेरिकन विचारकों वाले अर्थों के समन्वय की समस्या का समाधान करने का लेखक ने प्रयत्न नहीं किया। इसी प्रकार का दूसरा उदाहरण हमें राज्य और धर्म के सम्बन्ध के विषय में मिलता है। लेखक ने आजकल प्रचलित 'धर्म-निरपेक्ष' राज्य को मान्यता दी है ( पृ० ५५२-५३ )। जिसका आधार है धार्मिक सहिष्णुता या सहनशीलता। पृ० १६ पर लिखा है कि भारतीय मनीषियों ने 'सर्व धर्म समभाव' को सहिष्णुता से अधिक उत्कृष्ट कहा है। पर इस तथ्य का धार्मिक तथा धर्मविरोधी राज्य की कल्पनाओं के समन्वय में उपयोग न करके लेखक ने 'धर्म-निरपेक्षता'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ही को मान्यता दी है, सर्व-धर्म-पोषक राज्य को नहीं। इसका कारण कदाचित् यह है कि अधिक उत्कृष्ट होने पर भी सर्व-धर्म-समत्व के भाव को 'पूरी रीति से समझने के लिए पश्चिम को कुछ वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ेगा।' (पृ० १६)।

इस प्रकार, पुस्तक में जो कुछ समन्वय पाया जाता है, वह वही है जो पाश्चात्य विचारकों ने पहले से ही कर रखा है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है, वह यह है कि विभिन्न विषयों पर पाश्चात्य और जहाँ सम्भव हुआ है वहाँ भारतीय ग्रन्थों से भी उद्धरण दे-देकर कहीं एक मत को ग्राह्य बतलाया है, कहीं दूसरे को। इसे समन्वय नहीं कह सकते। समन्वय का अर्थ विरोधी बातों का साथ-साथ उल्लेख करके किसी को ग्राह्य और किसी को अग्राह्य बतला देना नहीं, किन्तु एक ऐसे व्यापक सत्य की स्थापना करना है, जिसमें उन विरोधी मतों के विरोध का उपशम हो जाय।

लेखक द्वारा मान्य अथवा प्रणीत दार्शनिक राजनीति-शास्त्र के स्वरूप के परिचायक कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं—

"प्राचीन भारतीय शास्त्रों में दण्डनीति का बड़ा ही प्रकृष्ट वर्णन है······किन्तु इस दण्डवादी राजनीति को हम घोर या उग्र राजनीति ही समझते हैं······दार्शनिक समीक्षा के अनुसार दण्ड की व्यवस्था राजनीति का प्रकृष्ट पुरुषार्थ नहीं है, किन्तु साधन है। राजनीति-शास्त्र का लक्ष्य सन्तुष्ट, उन्नति-पथ-गामी, श्रेयान्वेषी समाज को स्थापित करना है।" (पृ० ४-५)।

"हिंसापूर्ण दण्ड का एकाधिकार राज्य को समाज से पृथक् करता है।" (पृ० १३१)।

"राज्य की उत्पत्ति के विषय में ऐतिहासिक या विकासवादीय विचार ही संगत मालूम पड़ता है।" (पृ० १३५)।

"राज्य को हम श्रेयानुसन्धान का बाह्य साधन मानते हैं।" (पृ० १६२)।

लेखक के राजनीति तथा राज्य-विषयक नमूने के तौर पर लिखे गए ये कुछ निष्कर्ष निर्विवाद हैं, परन्तु ये सब-के-सब परम्परागत हैं, किसी मौलिक नवीन सिद्धान्त के परिचायक नहीं। हज़ारों वर्ष पूर्व अरस्तू ने कहा था कि राज्य की उत्पत्ति जीवन की आवश्यकता मात्र के लिए होती है, पर उसके अस्तित्व के निरन्तर बने रहने का उद्देश्य उत्तम प्रकार का जीवन—श्रेय का अन्वेषण—है। भारत में राजनीति का प्राचीन नाम दण्डनीति है तो, परन्तु यह समझना भूल होगी कि दण्डनीति 'दण्ड' को राज्य का प्रकृष्ट पुरुषार्थ मानती थी। कौटिल्य ने दण्डनीति की परिभाषा यों दी है कि 'दण्डनीतिः अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षिणी, रक्षित विवर्धिनी'। यहाँ दण्डनीति को केवल दण्डदायिका नहीं माना है और राजा के विषय में तो 'राजा प्रकृति रंजनात्' प्रसिद्ध है। 'दण्ड' वास्तव में राजशक्ति का प्रतीक है, दण्ड देना मात्र नहीं। फिर लेखक को भी 'हिंसापूर्ण' दण्ड के एकाधिकार को राज्य का विशिष्ट लक्षण मानना पड़ा है, तो राजनीति को यदि भारत में दण्डनीति कहा गया, तो अनौचित्य कहाँ है? राज्य विकसित हुआ है, यह आजकल सभी मानते हैं तथा राज्य श्रेयानुसन्धान का बाह्य साधन है, यह ग्रीन का मत है।

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक की विशेषता कोई मौलिक समन्वय या सिद्धान्त-निरूपण नहीं है। भूमिका में यह अवश्य लिखा है कि लेखक के कुछ अन्य ग्रन्थ अमेरिकन तथा रूसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



'महाध्यापकों' द्वारा बर्टांण्ड रसेल के ग्रन्थों से भी उत्कृष्टतर बतलाये गए हैं। यह भारतीयों के लिए प्रसन्नता व सन्तोष की बात है, परन्तु विद्वान् लेखक की उस उत्कृष्ट, मौलिक प्रतिभा के दर्शन हमें प्रस्तुत ग्रन्थ में तो नहीं होते।

परन्तु यदि इस बात को छोड़ दें, तो पुस्तक मैक आइवर, मेरियम आदि के ग्रन्थों की भाँति व्यापक दृष्टिकोण से लिखी गई है। हिन्दी भाषा में राजनीति विषय पर इस ढंग की यह कदाचित् प्रथम ही पुस्तक है। लेखक का राजनीति सिद्धान्तों का अध्ययन विस्तृत व गम्भीर है और पुस्तक में विभिन्न विचारकों के मतों का बहुमूल्य एकत्रीकरण तथा मूल्याङ्कन है। इन सभी दृष्टियों से हिन्दी-जगत् में यह अभिनन्दनीय प्रयत्न है और उसके राजनीति-साहित्य में बहुमूल्य वृद्धि करती है। राजनीति के गम्भीर अध्ययन के इच्छुक सभी लोगों के लिए यह पठनीय है। पुस्तक की भाषा संस्कृतनिष्ठ है जो उचित ही है, परन्तु पाश्चात्य पारिभाषिक शब्दों के कुछ अनुवाद आवश्यकता से अधिक लम्बे और क्लिष्ट हैं। जैसे—'ऐन्थ्रोपोलोजी' को 'प्राचीन मानवोत्पत्ति शास्त्र' न कहकर उसके लिए प्रचलित शब्द 'मानव-शास्त्र' का ही प्रयोग किया जाता तो कोई हानि न होती। पुस्तक की छपाई आदि उत्कृष्ट है।[1]

*महादेवप्रसाद शर्मा*

## राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त

प्रस्तुत पुस्तक में राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्तों का विवेचन है। जैसा लेखक ने कहा है, सार्वजनिक वित्त-शास्त्र के अध्ययन में अभी तक राजकीय आय पर ही अधिक ध्यान दिया गया है और व्यय पर कम। इसका कारण इस विषय की अन्तर्हित जटिलताएँ या कठिनाइयाँ हैं। उनमें कुछ का संकेत प्रथम अध्याय में किया गया है। व्यक्तिगत व राजकीय व्यय का मुख्य अन्तर है कि राजकीय व्यय में जो व्यय करने वाले हैं, वे दूसरों के धन को 'थातीदार' के रूप में व्यय करते हैं। इसी कारण राजकीय व्यय-प्रबन्ध को अनेक नियमों, उपनियमों से जकड़कर रखना पड़ता है, जिससे करदाताओं के हित की रक्षा हो सके। पुस्तक के शेष सात अध्यायों में व्यय का शासन, आय व्यय के शीर्षक, बजट निर्माण व आय-व्यय का सन्तुलन, व्यय-सम्बन्धी असाधारण स्थितियाँ, आय-व्यय पर जनता के प्रतिनिधियों के नियन्त्रण की यथार्थता, व्यय की प्रणाली और उसका नियंत्रण तथा अंकेक्षण की क्रम से चर्चा की गई है। लेखक अपने विषय के अधिकारी हैं और ३७ पृष्ठों की पुस्तक में जितनी ठोस सामग्री भरी जा सकती थी, उन्होंने भर दी है। पर इसे पढ़ लेने पर पाठक की इच्छा होती है कि पुस्तक कुछ अधिक बड़ी होती और उसमें कुछ अन्य भी महत्त्वपूर्ण विषयों—जैसे बजट का

१. राजनीति और दर्शन, ले० डॉ० विश्वनाथप्रसाद वर्मा, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, १९५६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आर्थिक तथा सामाजिक महत्त्व, असंतुलित बजट के उपयोग, जन-लेखा-समिति की कार्य-प्रणाली आदि का भी विवरण होता, तो अच्छा होता।

पुस्तक की भाषा कई स्थलों पर अशुद्ध है, उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्य—

"उसके कारण एक व्यापक नियंत्रण तथा नियम-प्रणाली की आवश्यकता है, जिसका प्रत्येक अंग परस्पर एक-दूसरे पर नियंत्रण-प्रणाली पर एक काक-दृष्टि उनके व्यौरेवार विवरण के पहिले लाभदायक होगा" (पृ० १२)।

कुछ तथ्यगत अशुद्धियाँ भी हैं। जैसे पृ० २१ पर कहा गया है कि "सब माँगों पर बहस पन्द्रह दिन के भीतर समाप्त होनी चाहिये।" यह पुरानी ब्रिटिश राज्यकालीन व्यवस्था थी, जिसे १९५० या ५१ में छोड़ दिया गया। अब ब्रिटेन की भाँति ही भारत में भी माँगों पर बहस के लिए २६ दिन दिये जाते हैं।[1]

प्रेमशंकर

# भारतीय कविता : १९५३

'भारतीय कविता : १९५३' एक राजकीय प्रकाशन है। साहित्यिक प्रकाशन का कार्य राज्य-द्वारा संचालित होना चाहिए अथवा नहीं, यह एक विवादास्पद विषय है। किन्तु इतना निश्चित है कि राज्याश्रय साहित्य के स्वाभाविक विकास के लिए अधिक हितकर नहीं सिद्ध होता। अकबरी दरबार के नौ रत्न राज्य-सभा की शोभा भले ही बढ़ाएँ किन्तु जनता के जीवन से क्रमशः उनका सम्पर्क छूटता चला जाता है, और वे लोक-स्वर को वाणी देने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि राज्य साहित्यिक प्रकाशन के क्षेत्र में आना ही चाहता है, तो उसे चाहिए कि पहले प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण प्रस्तुत करे। कालिदास की रचनाओं का सुन्दर अनुवाद हिन्दी में कहाँ है? अन्य भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि पुस्तकों को भी इसी प्रकार अनूदित किया जा सकता है। सामयिक साहित्य के प्रकाशन की अपेक्षा यह कार्य अधिक हितकर होगा। प्राचीन भारत सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक अखण्ड था। विभिन्न प्राचीन प्रादेशिक साहित्यों के प्रकाशन से 'उनमें पारस्परिक सहयोग की भावना को अधिक प्रोत्साहित किया जा सकता है।' बंगला, मराठी और गुजराती का हिन्दी-साहित्य से निकट सम्बन्ध रहा है। राजनीतिक कारणों से प्रादेशिक साहित्य कालान्तर में एक-दूसरे से किंचित् दूर हो गए किन्तु देश की सांस्कृतिक अखण्डता उन्हें पुनः समीप ला सकती है।

संकलन, सम्पादन का कार्य हिन्दी में प्रायः विश्राम के क्षणों का सहज कार्य समझा जाता है। पुस्तक-सम्पादन के विषय में यह सत्य अधिक चरितार्थ होता है। अनेक संकलनों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो मणि-मंजूषा के साथ सीप-घोंघे भी एक स्थान पर

१. **राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त—ले० श्री गोरखनाथ सिंह, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, १९५५।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संग्रहीत कर दिए गए हैं। किन्तु सम्पादक अथवा संकलनकर्ता को एक मौक्तिक-माल का संग्रथन करना पड़ता है, जिसमें उसे बड़ी कुशलता से चयन करना होता है। उदार-निष्पक्ष दृष्टि, परिष्कृत रुचि सफल सम्पादन के लिए अपेक्षित हैं। सम्पादन में सम्पादक का व्यक्तित्व सन्निहित रहता है। प्रस्तुत पुस्तक समग्र रूप में इस व्यक्तित्व से वंचित है, यद्यपि अनेक ख्यातनामा विद्वानों ने इसका संचयन किया है और अन्त में साहित्य अकादेमी की कार्यकारिणी ने अपनी अन्तिम सम्मति से प्रकाशन किया है। किन्तु इस विरल व्यक्तित्व के अभाव की पूर्ति कविताओं की विविधता द्वारा हो जाती है। एक साथ अनेक प्रकार की भावनाएँ पाठक को देखने को मिल जाती हैं। एक ओर यदि तेलुगु कवियों की आस्तिक और भक्ति-समन्वित वाणी है तो दूसरी ओर आसाम के कवि महेश्वर नेओग का स्वर है—

**देवता से वर माँगते हो 'देहि-देहि', किसने 'देहि' ?**
**आपाणिपाद देवता, क्या देगा ?**

मलयालम की कविताओं में स्थानीय रंग है। उनमें 'महाबलि' का आह्वान है, जो 'रामराज्य' के प्रतीक हैं। शिल्प के क्षेत्र में भी यह विविधता दिखाई देती है। संस्कृत की कविताओं के अतिरिक्त तेलुगु की कविताएँ भी प्राचीन-संस्कृत-शैली के समीप हैं। पि० गणपति शास्त्री ने अपनी कविता 'मणि-दीपिका' में जो वन्दना की है, वह परम्परगत ही है। तेलुगु के अन्य कवि रामकृष्णमूर्ति की कविता 'अमृतकेतकी' के शब्द-योजना बाण-भट्ट भी कादम्बरी का स्मरण कराती है। कन्नड़ की कविताएँ भाव-भाषा सभी में नवीन हैं। अम्बिकातनयदत्त ने 'राह की कुतिया' पर लिखा है। संग्रह की सभी कविताओं में एकसूत्रता तभी लाई जा सकती थी जब वे एक ही प्रकार के विषयों से सम्बद्ध होतीं। किन्तु ऐसी स्थिति में उनमें एकरसता आ जाने का भय था। संकलन की सार्थकता इसीमें है कि प्रादेशिक साहित्य का प्रतिनिधि स्वर हमें सहज सुलभ हो। सामयिक प्रवृत्तियों की एक रूप-रेखा हमारे समक्ष आ जाती है। अनुवाद एक कठिन कार्य है और वह भी कविता का! महान् कविता के प्रत्येक शब्द से एक अर्थ विशेष का बोध होता है। वे सार्थक शब्द होते हैं। उन्हें अन्य भाषा में उसी सार्थकता के साथ प्रस्तुत करने के लिए केवल शब्द-कोष की सहायता से काम नहीं चलाया जा सकता। सम्भवतः इसी कारण भावानुवाद काव्य के लिए अधिक उपयुक्त है। अनेक स्थानों पर मूल शब्दों को अनुवाद में उसी प्रकार रख दिया गया है। हिन्दी कविता का शब्द भण्डार इससे समृद्ध हो सकता है, किन्तु अनुवादक की विवशता के कारण काव्य-सौन्दर्य पाठक तक नहीं पहुँच पाता। अनेक कविताओं में तत्सम शब्दों का बहुल प्रयोग कविता के भाव को स्पष्ट नहीं होने देता। तेलुगु कविता 'जीवन-संगीत' में नव मृद्वीकमकरन्द-सुरभितानंदैकमन्दानिल-इन्दिदरो' की समासान्त पदावली को उसी प्रकार रख दिया गया है। अनुवाद की दृष्टि से सर्वोत्तम अनुवाद बंगला, मराठी, असमिया और उड़िया के हैं। कविता के अनुवाद के सम्बन्ध में फ़िट्ज़राल्ड को यदि एक आदर्श स्वीकार कर लिया जाय तो यह मानना होगा कि मूल और अनुवाद के आनन्द में अधिक अन्तर न होना चाहिए। विश्व वन्द्योपाध्याय की बँगला कविता 'कालपक्षी' का एक अंश द्रष्टव्य है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रतिदिन एक पक्षी उड़कर आता है।
और वापिस लौट जाता है।
मनुष्य की आयु
दो चंचल डैनों के बीच थर-थर कांपती है।
महा चेतना के गोल गवाक्ष में बैठकर
नित्य ही देखता हूँ,
क्यों ये आते हैं ?
ऐसा कौन-सा काम है ?
और क्यों वापिस चले जाते हैं ?

कविताओं का संचयन संकलनकर्ताओं के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखता है, इस कारण उनके गुण-दोष की विवेचना विस्तार से करना समीचीन नहीं प्रतीत होता। संकलन की दृष्टि से सबसे अधिक दुर्बल रचनाएँ हिन्दी की हैं।......चिराग़ तले अँधेरा ! पुराने खेवे के कवि मिलिन्दजी की कविता 'कवि और मानव' में भाषण-शैली का प्राधान्य हो गया है, जो प्रवचनकर्ताओं के अधिक उपयुक्त है। बच्चन जी के गीत को देखकर ऐसा लगता है मानो उनकी सम्भावनाएँ (साहित्यिक) निश्शेष हो चुकी हैं। यदि हिन्दी के इस सरस खैय्यामी गीत-कार ने अपने पुराने गीतों के स्वर दुहराए होते तो भी इससे बेहतर होते। नवीनजी की कविता 'अहो मन्त्र-द्रष्टा, हे ऋषिवर' उच्चकोटि के शब्द-शिल्प का परिचायक नहीं बन पाई। महादेवी जी के साधारण गीतों में संकलित गीत की गणना की जायगी। हमारे पुराने कवि यदि चाहें तो आज भी अपनी समर्थ वाणी से गौरवपूर्ण रचनाएँ हिन्दी को दे सकते हैं। दिन-कर जी की रचना नवीनजी की ही भाँति है। 'मेरे नगपति मेरे विशाल' से 'किसको नमन करूँ मैं' की तुलना करने पर ज्ञात होगा कि एक की अनुभूत राष्ट्रीय भावना प्रबल है, पर दूसरे की नहीं। 'नया हिमालय' कविता तो बाल-साहित्य के अधिक उपयुक्त है और मार्चिंग-साँग के रूप में काम आ सकती है। हिन्दी खण्ड की कविताएँ अन्य प्रादेशिक भाषाओं की संकलित रचनाओं में उत्कृष्टतम के समीप नहीं रखी जा सकतीं। हिन्दी-कविता की इस अवस्था का समस्त दायित्व केवल संकलन की भूल पर नहीं डाला जा सकता। ऐसा करना एक प्रकार का कछुआ-धर्म होगा—सत्य से आँखें मूँद लेना। हिन्दी-काव्य-जगत् में जो श्रेष्ठतम है उसे प्रकाश में लाते हुए भी नए कवि को अधिक जागरूक होकर काव्य-सृजन में तत्पर होना पड़ेगा। इस साहित्यिक अनुष्ठान में आलोचक को भी अपना योग-दान करना होगा। पूर्वग्रह और पक्षपात दोनों से उसे ऊपर उठना होगा।

पन्तजी की कविता 'गीत' शीर्षक से प्रकाशित है। इसमें एक प्रौढ़ कवि का चिंतन प्रति-फलित है और यदि इसे किसी अन्य शीर्षक से प्रकाशित किया जाता तो अधिक स्पष्टता आ जाती। कविता की प्रेरणा सामयिक है। विनाश का जो वातावरण सर्वत्र छाया हुआ है, उसीको कवि ने समर्थ वाणी दी है। तीव्र मानवीय संवेदना से परिचालित पन्तजी का कवि भावी मानवता के प्रति पूर्ण आस्थावान है। अज्ञेयजी की बहु-विज्ञापित कविता 'यह दीप अकेला' व्यक्ति का समाज में पर्यवसान-मात्र नहीं है। वह एक विशिष्ट व्यक्तित्व का सामाजिक जीवन-धारा में प्रवहमान हो जाना है। कविता का संग्रथन और शब्द चयन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



द्रष्टव्य है—

**यह सदा द्रवित, चिर-जागरुक, अनुरक्त नेत्र,**
**उल्लम्ब बाहु यह चिर-अखण्ड अपनाया**
**जिज्ञासु प्रबुद्ध सदा श्रद्धामय,**
**इसको भक्ति को दे दो।**

जानकीवल्लभ शास्त्री एक सफल गीतकार हैं। एक ही माध्यम के निरन्तर प्रयोग से उन्होंने उसमें सफलता प्राप्त कर ली है। निराला जी की परम्परा में उन्होंने योग दिया है। उनकी छाया में वे आगे बढ़े हैं। प्रस्तुत गीत 'अन्विति' में नये भावों में नैतिकता का आग्रह अधिक है, इस कारण गीत में दार्शनिकता का पुट आ गया है। अंचल का गीत 'यो नभ में मँडराते बादल बे बरसे मत जा' अनुनयपूर्ण है। अनुभूति में यदि और अधिक सत्य होता तो पंक्तियों को बल मिल जाता……।

प्रादेशिक भाषाओं को अकारादि क्रम से रखा गया है। प्रथम स्थान असमिया का है। सभी कविताओं का मूल स्वर मानवीयता है। उन्हें हम धरती की प्रेरणा कह सकते हैं। दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' में जो 'मिट्टी का राग' है, कुछ-कुछ वैसा ही। अब्दुल मलिक सैयद की कविता 'जारज', जीवकान्त बरुआ की कविता 'सहस्र मृत्यु के बाद' तथा नवकान्त बरुआ की कविता 'कारण' एक ही भावभूमि पर प्रतिष्ठित हैं। उनका स्वर यही है कि धरती का अनुराग ही सर्वोपरि है। आस्था और विश्वास की इन कविताओं में भावनामयता है। बीरेन बरकटकी की कविता 'अहल्या पृथिवी' में भी यही स्वर है। वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य की रचना 'विष्णु रामा, अब कितनी रात है' जीवन-संघर्ष का साधारण आभास देती है। महेन्द्र बरा की कविता 'मुन्शी शैले की चिट्ठी' की अभिव्यक्ति नितान्त नवीन है। उसमें करुणा है और व्यंग्य भी। 'कल तो इतवार, तो भी काश पोस्टमैन आता।' पावर हाउस की घरघराहट, टेलीफोन की रिङ्-रिङ् नये युग के प्रतीक हैं। हेम बरुआ की कविता 'जाड़े के दिनों का स्वप्न' सबसे सशक्त रचना है—

**शीत के अन्त में फिर आएगा निर्लज्ज फागुन। बहागी बिहु,**
**रंगीले दिन। फूलों के बगीचे। कोयल और काकातुआ गान की भेंट।**
**फिर आएगी दिखौ में बाढ़। साथी, डर किसके लिए ?**
**पहली रात की अपरिचिता पत्नी की तरह पृथ्वी काँप रही है।**

उड़िया की कविताएँ प्रगतिशील हैं यद्यपि उनमें कोई राजनीतिक वाद आग्रह नहीं है। अनन्त पट्टनायक की कविता 'आया हूँ, मैं आया हूँ' में क्रान्ति का आह्वान है। कविता में गर्जन-तर्जन भी पर्याप्त मात्रा में है। कुंजबिहारीदास की रचना 'तूफान की सहस्र पद-ध्वनि' अधिक संयत और गम्भीर है। उसमें आवेश का स्थान चिन्तन को प्राप्त हुआ है। उसकी विशिष्ट कल्पनाएँ अनुभूति से मिलकर मार्मिक हो गई हैं—

**जीवन के सभी सिंगार**
**उसने तुम्हारे लिए छोड़ दिए**
**तुम्हारे घर को फूलों की सुगन्ध से सुवासित करके**
**स्वयं दुर्गंध बनकर रह गया।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



खुद होकर छन्दहीन
उसने तुम्हारे जीवन को छंदमय बनाया।

× × ×

उसके पसीने के सागर से तुमने उसकी लक्ष्मी का हरण किया
और वह तुम्हारी वीणा में वाणी भरकर
स्वयं मूक हो गया।
उसकी कोई शिलालिपि नहीं, कोई पद चिह्न नहीं
वह परिचयहीन परिचय है!

'भूखा है भगवान्' में तथा 'मूर्ति और मन्दिर' कविताओं में परम्परागत भक्ति-भावना पर आक्रमण है। दुर्गाचरण की छोटी कविता 'त्रयी' अपने में सर्वथा पूर्ण है। सरलतम शब्दों और चिरपरिचित प्रतीकों के माध्यम से कवि ने सुन्दर भाव प्रकट किये हैं—

दुर्मद नदी की भँवरों में
छलाँग लगाता है एक फूल
एक तेजस्वी फूल, वह साहस का फूल!
उन्मत्त प्रभंजन के होठ चूमता है
एक पत्र
एक हरित पत्र, वह पत्र प्रत्यय का!
अधिकार की वल्लरी पर
अंकुरित एक कली
वह कली आलोक की!

छोटी कविताओं में जो कसावट, प्रत्यक्ष चित्रात्मकता चाहिए, वह इसमें विद्यमान् है। उड़िया के कवि विनोदचन्द्र नायक की कविता 'ग्राम-पथ' सम्पूर्ण संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचना है। कवि का इस ग्राम-पथ से घनिष्ठ परिचय है। इसीलिए वह पूरी ईमानदारी और सचाई के साथ अपनी बात कह सका है, जो महान् कविता की प्रमुख आवश्यक शर्त है। जीवन से तादात्म्य स्थापित करके जब कवि किसी वस्तु विशेष को अपनी चेतना से एकाकार कर लेता है, तभी अभिव्यक्ति रस-सृष्टि में सफल होती है। 'ग्राम पथ' का कवि केवल वस्तुओं के नाम-मात्र गिनाकर नहीं रह जाता। वह उन्हें सम्पूर्ण रागात्मकता में प्रस्तुत करता है। कविता का समस्त 'कैनवास' ग्रामीण जीवन को उसके आदिम रूप में ही सामने नहीं लाता, वरन् उसे जीवन्त भी बनाता है। कविता के चित्र जड़ अथवा अमूर्त नहीं हैं। वे मूर्त मांसल और सप्राण हैं। कास के फूल, खास से घनीभूत बंजरभूमि के साथ ही मामा का गाँव-चित्र को मानव-सम्पर्क में ले आता है। लोक-जीवन भी अंकित है—

यहाँ पर नई दुलहिन माँजती है अपने पैरों की पायल
और खुली हुई वेणी को मेथी लगाकर धोती है,
ननद उसकी बड़ी चतुर है
वह अपने गालों में हल्दी लगाकर देखती है
प्रकंपित पानी में अपनी मुख छवि!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कवि जब प्रकृति और मानव को एक-दूसरे में संग्रथित कर देता है, उनके अन्तर और विभेद की खाई को अपनी मानवीय संवेदना से पाट देता है, तब काव्य में एक असाधारण गरिमा आ जाती है। इसके लिए चिन्तन का आश्रय लेना पड़ता है। विनोदचन्द्र नायक ने भावों को अतिशय उदात्त बनाया है। ग्रामवधू का चित्र है—

**उसी पथ में जब ग्रामवधू सवेरे अकेली नहाकर**
**सजल चरण-चिह्न-रेखा अंकित कर लौटती है,**
**एक बार माँ कहकर बुलाने को जी चाहता है,**
**पृथ्वी के समान सहनशीला वह**
**असीम करुणावती,**
**आँखों में उसकी युग-युग की वेदना छिपी हुई है।**

प्राचीन प्रतीकों को नये सन्दर्भ में कवि ने प्रस्तुत किया है। किसी परम्परागत प्रतीक को नए अर्थ से समन्वित करने में प्रतिभा की जो आवश्यकता होती है, उसे प्रस्तुत कविता के स्रष्टा में देखा जा सकता है। जायसी ने नागमती के वियोग-वर्णन में कौए को नए सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। पद्मावत के दोनों प्रसिद्ध दोहे सूफ़ी कवि की मौलिकता के प्रमाण हैं। 'ग्राम-पथ' के कवि ने एक लोक-प्रचलित परम्परा को नया मोड़ दिया है। जन-श्रुति है कि जब कौवा काँव-काँव करता है तब वह किसी के आगमन की सूचना देता है, किन्तु ग्राम-पथ की ओर निहारती हुई नवविवाहिता पत्नी को 'खाने का लोभी कौवा' न जाने क्या सन्देश देता है। गोल्डस्मिथ की कविता 'डेज़र्टेड विलेज' में ग्राम के प्रति जो असाधारण ममता है, उसका एक अधिक परिष्कृत रूप इस कविता में मिलता है। कविता के अन्त में कवि जीवन की समाप्ति पर इस ग्राम-पथ से जाना चाहता है। कविता में कल्पना का वैभव है, जो इस चीज में देखा जा सकता है—

**नीलांबर में मनोरम छाया-पथ की भाँति**
**श्यामल प्रांतर के अंक में नग्न शिशु की तरह यह पथ सोता है**
**गाँवों के निर्झर को लाँघकर यह पथ स्वर्ग की सीमा के पास दौड़ता है**
**जैसे कि संयासी अपनी करुणा का धन बाँधकर जा रहा हो।**

उड़िया की अन्तिम कविता सबुज की 'आवारा कुतिया' है, जिसमें पशु को भी मानव के परिवार में सम्मिलित करने का सन्देश है।

कन्नड़ की कविताएँ अति नूतन शैली में लिखी गई हैं, नूतनता का यह मोह इस सीमा तक बढ़ गया है कि जी० एस० शिवरुद्रय्य ने शिशु को क्रान्तिकारी रूप में चित्रित किया है। गोपाल कृष्ण अडिग की लम्बी कविता 'गड़बड़ नगर' शेक्सपियर के मैकबेथ की पंक्तियों से आरम्भ होकर 'Call no man happy till he dies' में समाप्त होती हैं। बी० एच० श्रीधर की कविता 'नव्य जीवन' नई कविता के विरोधियों पर व्यंग्य है, बस। इस प्रकार की प्रतिक्रियामूलक रचनाएँ कभी महान् साहित्य नहीं बन सकतीं, क्योंकि सुन्दर साहित्य सर्जनात्मक अधिक होता है, विध्वंसात्मक कम। दो-तीन कविताओं को छोड़कर कन्नड़ की अधिकांश कविताएँ साधारण हैं। असाधारणता तो दुर्भाग्यवश किसी में नहीं मिलती। यदि असाधारणता है तो प्रदर्शन की, जो उत्कृष्ट काव्य की संज्ञा नहीं पा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गुजराती खण्ड की कविताएँ सन्तोषजनक हैं। गनी दही वाला की कविता 'भिखारिन का गीत' अनुभूति और अभिव्यक्ति का विरोध स्पष्ट करती हुई भिखारिन की दयनीय अवस्था का संकेत करती है। भिखारिन गीत गाती है कि 'मेरे प्रभु ! सोने-चाँदी की गगरियाँ मँगा दे, किन्तु उसके हाथ में केवल टूटा भिक्षा-पात्र है आदि। जयंत पाठक की कविता 'मुझे लगता है' में नई विचारणा और सूझ है। पति अपनी रूपहीन नारी को प्रेम करने के लिए बालक से प्रेरणा पाता है। गुजराती खण्ड की महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं–निरंजन भगत की 'हार्नबी रोड' बम्बई, ( १९५१ ) तथा बालमुकुन्द दुवे की 'सहज संगम'। 'हार्नबी रोड' के मित्र किसी सीमा तक औपन्यासिक कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनमें विस्तार है। नई सभ्यता के प्रतीक बम्बई की आत्मा को स्पष्ट करने के लिए कवि ने नए उपमान जुटाए हैं। क्लाक टावर, नियोग फानूस, ट्राम की पटरियाँ वर्णन को विश्वसनीय बनाते हैं। टाइपिस्ट गर्ल्स, कारकुन सब बम्बई के जीवन का अंग है। बालमुकुन्द दवे की कविता 'सहज संगम' दो अज्ञात हृदयों के मिलन से आरम्भ होती है। यथार्थ की भावभूमि से गुजरती हुई यह कविता 'जीवन के मेले' के चित्र प्रस्तुत करती है—

**सखी, देख तो इस विश्व वट के नीचे**
**ऋणानुबन्ध के कारण कैसा बहुरंगी**
**मेला आ लगा है……**

सुन्दर जी बेटाई की कविता 'अपने वतन की बातें' अपनी सादगी में बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। सारल्य के साथ बाल्यकाल की स्मृतियाँ कही गई हैं।

तमिल कविताओं में सबसे अधिक मर्मस्पर्शी है कोत्तमंगलम् सुब्बु की कविता 'कूकने वाली कोयल।' यह एक लोक-प्रचलित कथन है कि कोकिल अपना अण्डा कौए के नीड़ में छोड़ आती है। कवि ने इसीको आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कोकिल अपनी करुण कथा स्वयं कहती है। कमलतालाबवाली कोयल तथा आम के पेड़ वाली कोकिल के संसर्ग से कोकिल-शिशु का जन्म हुआ। माँ ने लोक-लज्जा के भय से उसे कौए के एक नीड़ में रख दिया, जहाँ उसका पालन-पोषण हुआ। अन्य बच्चों से विभिन्न स्वर वाले इस पक्षी को एक दिन अलग कर दिया गया, और तब से कोकिल भटक रही है—

**किस गाँव में किस देश में**
**कहाँ कहाँ ढूँढूंगी मैं ?**
**सुता को यों तरसाने वाली**
**माँ से कभी मिलूँगी मैं ?**

तिरुलोक सीताराम की कविता 'सान्त्वनादायिनी' की राष्ट्रीय भावना नीरस और शुष्क नहीं है। वह औपचारिक न होकर रस-सम्पन्न हैं। कावेरी नदी का मानवीकरण चित्रों को सजगता प्रदान करता है। भारतीदासन् की कविता 'मलय पवन' की उक्ति अनूठी है। 'लाभ-कार्य', 'एकता की भेरी' आदि कविता साधारण हैं। सोमु की कविता 'एक वरदान' का अन्त पठनीय है, जिसमें भगवान् से वरदान माँगा गया है—

**"जड़-तन्द्राग्रस्त मानव में चैतन्य**
**जगाने में समर्थ एक कवि हमें दो।"**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तेलुगु की कविताओं का व्यक्तित्व संपूर्ण संकलन में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। कविताओं के विषय परम्परागत ही हैं। किसी सीमा तक उनका निर्वाह भी पूर्णतया परम्परा-मुक्त नहीं कहा जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है मानो संस्कृत-काव्य की उसमें प्रबल प्रेरणा है। आस्तिकता और भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं। मि० गणपति शास्त्री की कविता 'मणिदीपिका' सरस्वती-वंदना है। अप्पल वीर वेंकट जोगय्य शास्त्री की ताजमहल पर लम्बी रचना भावविभोर होकर लिखी गई है। उसमें भावुकता का प्राबल्य है। जीवन-संगीत शरदवसर, द्वैराज्य, परिणति, केतकी आदि कविताओं में प्रकृति-प्रेम, भक्ति-भावना दिखाई देती है। कहीं-कहीं संस्कृत की अलंकृत शैली स्पष्ट हो गई है। इस भव्य-प्रदेश में ललित कलालतांगी अपने सुविलास-लसनावहेय किंकिणी-कलितपदद्वयीचलन-कल्पित-सुन्दर नाट्य वैखरी विलास प्रदर्शित करके नेत्रों के लिए प्रीति- भोज प्रस्तुत करती है।' आज जब प्रायः नए की ओर कवियों की रुचि हैं, तैलुगु साहित्य में क्लासिकल साहित्य का अधिक आग्रह दिखाई देता है, जो भाव और अभिव्यक्ति दोनों में स्पष्ट है।

बंगला की कविताएँ संकलन की सुन्दर रचनाओं में से हैं। इनमें नवीनता है—भाव और शिल्प दोनों दृष्टियों से। पर इनमें नए कवियों का-सा प्रदर्शन, अराजकता अथवा असंयम नहीं है। बंगला की ये नई कविताएँ स्थिरता और प्रौढ़ता का परिचय देती हैं। उनमें वह वैशिष्ट्य है कि केवल 'नई कविता' कहकर उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। सभी कविताएँ अनुशासन की सीढ़ियों से गुजरी हुई जान पड़ती हैं। अनुभूति और विचार का समन्वय इन कविताओं की विशेषता है। अजित दत्त की कविता 'ऊर्ध्वबाहु' में एक विचार को मूर्त किया गया है। 'स्वर्ग कभी धरती के पास नहीं आता तो भी धरती आकाश को छूने के लिए दोनों हाथ बढ़ाती ही रहती है।' 'शीशमहल' में भी एक विचार संग्रहीत है। जिस प्रकार गीत में एक विशेष मनःस्थिति को बंदी किया जाता है उसी प्रकार नया कवि एक विचार (जो विशेष क्षणों की ही सृष्टि है।) को लिपिबद्ध करता है। प्रमथनाथ विशी की कविता 'अनिर्वचनीया' नई उपमाओं से भरपूर है। 'पक्षियों के संगीत पर पैर रखता-रखता आलोक आता है।'—

**फिर कभी आलोक आता है चुपके-चुपके,**
**साँय-सांय करती दोपहर की**
**उनींदी निस्तब्धता की लय पर,**
**और अचानक उसके सिर पर**
**बादलों की पूनी से**
**चांद के करघे पर बुना हुआ**
**मयूरकण्ठी वस्त्र पहना देता है**

सम्पूर्ण कविता कवि की कल्पना से परिचालित है। एक चित्र और है—

**चाँदनी रात में आलोक**
**सफेद मोर के पंख फैलाए आता है,**
**उस क्षण गिरिमाला जैसे लीन हो जाना चाहती है**
**निस्तब्ध निर्जन पृथ्वी ऐसी लगती है**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मानो चन्द्रलोक का ही कोई प्रांतर हो।
वन के गहरे काले रंग के ऊपर
अविश्वास की सफेद चादर पड़ गई है।

चित्रों का बाहुल्य इस कविता को सुन्दरतम कविताओं में ले आता है। मनीन्द्रराय की कविता 'असम्पूर्ण' सामाजिक विषमता को उदात्त रूप में प्रकट करने में समर्थ हुई है। उसका प्रगतिशील स्वर साधारण भाषणकर्ताओं का-सा नहीं है। आश्विन, ग्रीष्म, चैत्र, शरद आदि ऋतुएँ प्रतीक रूप में प्रयुक्त की गई हैं। इसी कारण कवि पौष लक्ष्मी की प्रतीक्षा करता है।

फसल की आशा चाहे जितना बहकाए
अभी भंडार से तो वह दूर ही है;
इसलिए भराभर आश्विन की गोद में भी
इसी प्रश्न की आग में जलता रहता हूँ
कि पौष-लक्ष्मी कब बुझायेगी मेरी प्यास।

संजय भट्टाचार्य की कविता 'स्मरण' प्रेम के परम्परागत आदर्शवादी दृष्टिकोण की अस्वीकृति है। सुधीन्द्रनाथ दत्त की कविता 'उल्टा रास्ता' चिन्तन-प्रधान है। हरप्रसाद मित्र की कविता 'व्याध' भी प्रतीक के माध्यम से विचार-प्रकाशन है। बंगला की लगभग सभी कविताएँ विचारोत्तेजक हैं। उनमें नए प्रतीकों और उपमानों के सहारे किसी विचार को मूर्तिमान करने का प्रयास किया गया है और इस दृष्टि से दार्शनिक कविता से उसका अन्तर स्पष्ट है। अभिव्यक्ति सर्वथा नवीन है। उदाहरणार्थ 'व्याध' कविता का एक अंश—

दिन का आलोक चुक जाता है,
और रात में रह जाता है
केवल फैला हुआ आकाश
जिसमें झिलमिलाते हुए
कामदनी के से सितारे टँके जान पड़ते हैं,
अथवा लगता है
तारों फूलों से भरा कोई मैदान हो।

मराठी की कविताएँ शिल्प की दृष्टि से बंगला कविताओं से बहुत दूर नहीं हैं। कुछ मराठी कविताएँ संक्षिप्त अवश्य हैं। ना० ध० देशपांडे की कविता 'कब होगा मिलन ?' विन्दा करन्दीकर की कविता 'कूजन करता शुभ्र कबूतर', मंगेश पांडेगाँवकर की कविता 'प्रतीक्षा' संक्षिप्त है। इनमें कुछ तो स्नैपशॉट-जैसी हैं, और किंचित् विवेचना-गुण इनमें मिल जाता है। कहीं-कहीं सूक्तियों में कवि ने मन्तव्य को प्रकट करना चाहा है। बसन्त बपट ने अपनी कविता 'बबूल का पेड़' में प्रतीक का सहारा लिया है। मराठी कविताओं की भाव-भूमि में विविधता है, यद्यपि सभी में नवीन दृष्टि है। कुसुमाग्रज की कविता 'कोई दिन' एक विशेष मनःस्थिति का सफल अंकन है, जिसमें सर्वथा नवीन उपमाएँ हैं—

उच्छ्वास भरता, अंगड़ाइयां लेता
आज का दिन जगा
उदय गिरि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नीले तकिये पर
विषण्ण मस्तक से झुका हुआ
किसी सुन्दर स्वप्न का उसका टूटा धागा।

मलयालम की कविताएँ पर्याप्त पुष्ट हैं। स्थानीय प्रभाव के कारण उनमें विशिष्ट व्यक्तित्व आ गया है। केरल की समस्याएँ उनमें प्रतिफलित हुई हैं। पी० कुञ्जिरामन् नायर की कविता 'पुल्लुब बाला' में सर्प देवता को प्रसन्न करने के लिए घर-घर घूमकर सर्पगीत गाने वाली एक जाति-विशेष का वर्णन है। धरती का राग कवि का प्रिय विषय है। पूर्ण राग के साथ नागकन्याओं की गीत-माधुरी को अंकित किया गया है। एन० गोपाल पिल्लै की कविता 'केरल-मनोरथ' में अपनी भूमि का गुण-गान है। का० मा० पणिक्कर की कविता 'छोटा पक्षी बड़े पक्षी के प्रति' की व्यंजना द्रष्टव्य है—

तुम आकाश के उच्चतम स्थान का सन्धान करके वहाँ पहुँच जाओ :
हम दीन-हीनों को भुला दो; तब हे गृध्र श्रेष्ठ, हम भी तुम्हारी
प्रशस्ति गायेंगे कि पक्षिवर्ग में सर्वोत्तम तुम हो !

गोपाल कुरुप्पु वेरिणक्कुलम् की कविता 'कन्हैया की मुसकान' में एक वन्ध्या स्त्री की करुण दशा अंकित है। माँ बनने की लालसा के मनोवैज्ञानिक सत्य को स्वीकार किया गया है। वल्लतोल् की कविता 'मरुभूमि नहीं', नालांकल् की कविता 'इन्द्रजाल' बालामणियम्मा नालपाट्टु की कविता 'क्या करें ?' इन सभी में चिन्तक का आध्यात्मिक स्वर है।

अन्य प्रादेशिक भाषाओं में संस्कृत की कविताएँ परम्परागत ही हैं। महालिंग शास्त्री की कविताओं में, जो 'कुछ व्यंग्योक्तियाँ' नाम से प्रकाशित हुई हैं, कुछ नवीनता अवश्य है। उर्दू की अधिकांश कविताएँ साधारण हैं। अली सरदार जाफ़री की इससे अच्छी कविता दी जा सकती थी। ग़ज़लों में 'जोश' मलस्यानी और 'अर्श' मलस्यानी की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। राही मासूम रजा की कविता 'चिराग़ जल रहा है' आस्था से भरी है, जो उर्दू काव्य के लिए परम्परा पालन ही है और इक़बाल को याद दिला देती है। कश्मीरी कविताओं में यत्र-तत्र प्रकृति की छाया है। ज़िन्दा कौल मास्टर जी की कविता 'ना तैयारी' इसमें सर्वोत्तम है। पंजाबी कविताओं में रूमानी स्वर हैं। उनमें सौन्दर्य, प्रेम की प्रधानता है। मोहनसिंह की कविता 'प्रतीक्षा' में कुछ नए उपमान हैं।

प्रस्तुत संकलन की कविताओं पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर भारतीय भाषाओं में होने वाले विभिन्न प्रयोगों का एक चित्र प्राप्त हो जाता है। अधिकांश भाषाओं में स्थानीय रंग है। पर इस अन्तर के अतिरिक्त कुछ ऐसी समान प्रवृत्तियाँ भी हैं, जो समस्त भारतीय कविता को एक-दूसरे के समीप लाकर प्रस्तुत करती हैं। कविताओं में आशा, विश्वास, जागृति और आस्था के प्रबल स्वर हैं। नये जागरण ने सभी प्रमुख कवियों को दायित्वपूर्ण साहित्य-सृजन में नियोजित किया है। इसमें कुण्ठा, अहं, निराशा और व्यक्तिवाद को स्थान नहीं है। राष्ट्रीय भावना से परिचालित सभी कविताएँ उत्कृष्ट नहीं बन पड़ी हैं, किन्तु वे इस सत्य का उद्घाटन करती हैं कि आज की राष्ट्रीयता और विगत राष्ट्रीयता में अन्तर है। कल तक कवि का स्वर आक्रोश का था, आज उसमें नवनिर्माण का संकल्प है। यही कारण है कि अधिकांश श्रेष्ठ कविताएँ धरती की ममता और मानवीय संवेदना से परिचालित हैं। भाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भूमि की यह समानता विभिन्न प्रादेशिक काव्यों को एक-दूसरे के निकट लाती है। साहित्य अकादेमी ने इसे सुलभ बनाया है, इसके लिए उसे बधाई। शिल्प के जो विभिन्न प्रयोग देखने को मिलते हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि काव्य परम्परा और प्रगति के दो विरोधी ध्रुवों पर न जाकर एक समन्वयात्मक मार्ग ग्रहण करेगा, जिसमें नवीन जीवन-दृष्टि होगी, किन्तु संयम और अनुशासन से शासित! आशा है इस संकलन से भारतीय काव्य की विभिन्न शाखाएँ एक-दूसरे के समीप आ सकेंगी।[1]

डॉ० भगीरथ मिश्र

## 'काव्य निर्णय' और 'आचार्य भिखारीदास'

आचार्य भिखारीदास का नाम हिन्दी-साहित्य के काव्य-शास्त्र के आचार्यों में अग्रगण्य है। जिस प्रकार पूर्व-रीतिकाल में आचार्य केशवदास का प्रभाव रहा, उसी प्रकार उत्तर-रीतिकाल में आचार्य भिखारीदास का सम्मान था और उनका ग्रन्थ 'काव्य निर्णय' हिन्दी-काव्य-शास्त्र के ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण रहा। 'काव्य निर्णय' की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें कुछ तो हस्तलिखित हैं और कुछ मुद्रित हैं। इन प्रतियों में पाठ-भेद भी है, जो स्वाभाविक ही है। परन्तु वह अधिक नहीं है। उनके परवर्ती विद्वान् कवियों पर दास जी का प्रभाव पड़ा था। 'काव्य निर्णय' की तीन-चार मुद्रित प्रतियाँ उपलब्ध हैं और तेरह-चौदह हस्तलिखित प्रतियाँ। इन सबको समेटकर 'काव्य निर्णय' का एक प्रामाणिक संस्करण तैयार करने की आवश्यकता थी, जिसमें कि इस ग्रन्थ से सम्बन्धित समस्त ज्ञान को एकत्र देखा जा सके। श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'काव्य निर्णय' में इसी प्रकार का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थ की कुछ और विशेषताएँ हैं। प्रथम तो यह कि सम्पादन में एक प्रति का यथार्थ पाठ देकर पाद-टिप्पणी में अन्यत्र उपलब्ध प्रतियों के पाठान्तर दे दिये गए हैं। दूसरी विशेषता है कि 'काव्य निर्णय' में दासजी के लक्षणों के साथ यथावश्यक स्थानों पर— रसलीन, अजान, मतिराम, जसवन्तसिंह, पद्माकर, दूलह आदि के लक्षणों को देकर तुलनात्मक विशेषता का संकेत किया गया है। तीसरे, उदाहरणों में भी दास के उदाहरणों के साथ समान भाव रखने वाले अन्य कवियों—जैसे नन्ददास, बिहारी, चिन्तामणि, पद्माकर, लछिराम, रत्नाकर आदि के उदाहरणों को देकर लक्षण के स्पष्टीकरण और कवित्व की तुलना के लिए सामग्री प्रस्तुत कर दी गई है। चौथी विशेषता यह है कि लक्षणों और उदाहरणों का संस्कृत के आधारभूत लक्षणों और उदाहरणों से मिलान किया गया है। इन ग्रन्थों में 'काव्यादर्श', 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश', 'काव्यालंकार', 'सार-संग्रह', 'चन्द्रालोक', 'कुवलयानन्द', 'साहित्यदर्पण', 'अमरुशतक' आदि प्रमुख हैं। कहीं-कहीं सुन्दर उदाहरणों

१. भारतीय कविता : १९५३। प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से मेल खाते हुए उर्दू के शेर भी उद्धृत किये गए हैं। जो 'काव्य निर्णय' की काव्य-शास्त्रीय विवेचना की एकरसता को कम करते हैं।

'काव्य निर्णय' के लक्षणों तिलक अथवा उदाहरणों के बाद विशेष व्याख्या द्वारा उनकी विशेषता, गूढ़ता अथवा सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न भी किया गया है। यह विशेष व्याख्या, यद्यपि पूर्ववर्ती टीकाकारों और 'काव्य निर्णय' के सम्पादकों की सूचनाओं का आधार लिये हुए है; फिर भी यह बहुत-कुछ रोचक है और सम्पादक की काव्य-रसिकता का ही प्रमाण है।

इतना होते हुए भी सम्पादक ने 'दास' के प्रत्येक लक्षण और उदाहरण का सरलार्थ नहीं दिया है। 'काव्य निर्णय' की पूरी टीका नहीं की गई है। मेरी दृष्टि से वह आवश्यक है। 'दास'जी-जैसे लेखकों को यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि ये तो यों ही पढ़कर समझे जा सकते हैं। बिहारी, केशव और तुलसीदास के समान इनके ग्रन्थों और विशेषतया 'काव्य निर्णय' की पूर्ण व्याख्या करने वाली टीका या उसका भाष्य आवश्यक है। यह कार्य सरल नहीं है; क्योंकि अनेक छन्दों के अर्थों में न केवल मतभेद है, वरन् गूढ़ता भी है। यदि चतुर्वेदीजी 'काव्य निर्णय' के अगले संस्करण में यह कार्य भी पूरा कर दें, तो वे काव्य-शास्त्र के पाठकों की सहायता ही करेंगे।

इस सम्बन्ध में मैं एक उदाहरण लेकर अपना विचार प्रकट करूँगा। चित्रालंकार के प्रसंग में 'नागफाँसोत्तर' का उदाहरण है—

**कहा चंद, को स्यांम, छत्रिन को गुँन कोन कहि।**
**कहा संयतै नाम, पारसीक वासी कहें॥**
**कहा रहै संसार, बांहन कहा कुबेर को।**
**चाहे कहा भुवार, 'दास' उतर दिय सरसजन॥**

इसके उत्तर लक्षण के संकेतानुसार सम्पादक ने सस, रस, रज, सन, जस, जन और सरसजन के रूप में दिए हैं। इसमें प्रथम प्रश्न ( कहा चन्द ) कोई प्रश्न नहीं है और फिर उसका उत्तर 'सस' जिसका अर्थ 'शशक' या खरगोश होता है। शशि के अर्थ में लेना उचित नहीं। इसी प्रकार 'को स्याम' प्रश्न और इसका उत्तर 'रस' ( शृंगार रस ) महत्त्वपूर्ण नहीं। इन दोनों को मिलाकर केवल एक प्रश्न बनता है—'कहा चंद को स्याम' चन्द्रमा का कालापन क्या है ? उसका उत्तर 'सस' अर्थात् शशक अधिक संगत और उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त 'दास'जी के लक्षण के हिसाब से 'इक इक अन्तर तजि वरन, द्वै द्वै वरन मिलाइ' का नियम भी इसमें नहीं लग पाता। अतः 'को स्याम' अलग प्रश्न नहीं और न इसका उत्तर रस ही अपेक्षित या नियमानुकूल है। इसी प्रकार 'बाहन कहा कुबेर को' का उत्तर जन-जन न होकर 'नर' होना चाहिए, जो कि नियमानुकूल है। 'सरसजन' में अलग-अलग पाँच वर्ण के पाँच और पूरा मिलाकर छः प्रश्न होते हैं। अतः छः ही प्रश्न और उनके उत्तर अपेक्षित जान पड़ते हैं। चतुर्वेदीजी की इस व्याख्या का आधार 'काव्य निर्णय' की 'मालवीय' जी वाली व्याख्या है। उसमें भी ऐसा ही है।

इस प्रकार अन्य अर्थों और व्याख्याओं में मतभेद और विचार-विमर्श की अपेक्षा है। यह सब होते हुए भी 'काव्य निर्णय' का यह संस्करण काव्य-शास्त्र के अध्येताओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लिए उपादेय है।

दूसरी पुस्तक इसी विषय से सम्बन्धित 'आचार्य भिखारीदास' है। दोनों का दृष्टिकोण भिन्न है। यह आचार्य भिखारीदास की जीवनी, रचनाओं, कवित्व और आचार्यत्व का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली पुस्तक है। इसके लेखक हैं, डॉ० नारायणदास खन्ना और यह उनकी पी-एच० डी० डिग्री के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध है। निश्चय ही इसे विद्वानों और विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त है। उत्तर-प्रदेश की सरकार भी इस ग्रन्थ को पुरस्कृत कर चुकी है। ये सब बातें इस ग्रन्थ के महत्त्व के स्वतः प्रासंगिक प्रमाण हैं।

पुस्तक चार खण्डों और अनेक प्रसंगों में विभाजित है। प्रथम खण्ड जीवन-वृत्त का है, जिसमें भिखारीदास की जीवन-सम्बन्धी अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य से प्राप्त सामग्री की विचारपूर्वक विवेचना की गई है। इसी प्रसंग के अन्तर्गत 'दास' के व्यक्तित्व और उनकी साहित्य-साधना का भी उल्लेख है। परन्तु इनमें कोई तथ्यात्मक सामग्री न होने के कारण ये प्रसंग महत्त्वहीन लगते हैं।

द्वितीय खण्ड 'साहित्य-रचना' का है। इस खण्ड में समकालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में 'दास'जी की रचनाओं का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें विभिन्न स्रोतों से भिखारीदास पर प्राप्त सामग्री का विवरण और परीक्षण है। मेरे विचार से उनकी अप्रामाणिक कही जाने वाली रचनाओं की ओर अधिक सूक्ष्म एवं विशद विवेचना अपेक्षित थी।

तृतीय खण्ड 'काव्य-कला' में भिखारीदास के काव्य-शिल्प (Poetic technique) सम्बन्धी विचार सर्वप्रथम दिये गए हैं। इसके उपरान्त भाव-व्यञ्जना, कल्पना-तत्त्व, भावपक्ष के अन्तर्गत रखे गए हैं। शैली-पक्ष में भाषा-विवेचन, विविधता, मुहाविरे, दोष आदि का कथन है। परन्तु लगता है कि जैसे कला-सम्बन्धी सम्यक् विवेचन इस प्रसंग में नहीं हो पाया। इस खण्ड में सबसे अधिक खटकने वाली बात है 'भक्तिभावना और नीति' के प्रसंग को काव्य-कला के अन्तर्गत रखना। इस प्रकार १४-१४ पृष्ठ लिखे गए हैं। इस प्रसंग को भाव और विचार नामक अलग अध्ययन में जाना चाहिए था। कला-पक्ष के भीतर इसका रखना समीचीन नहीं जान पड़ता।

चतुर्थ खण्ड 'आचार्यत्व' का है। इस खण्ड में लेखक ने काव्यांग काव्य-प्रयोजन, काव्य के कारण, गुण-निर्णय, पदार्थ-निर्णय, ध्वनि-विवेचन, गुणीभूत व्यंग्य, तुक-वर्णन, छन्द-निरूपण, काव्य-दोष, रसविवेचन, नायिकाभेद वर्णन, अलंकार विवेचन आदि प्रसंगों में दास के आचार्यत्व की विवेचना है। दास के आचार्यत्व के मूल्यांकन में लेखक ने 'काव्यादर्श', 'काव्यलंकार सूत्र', 'ध्वन्यालोक' वक्रोक्तिजीवितम्, 'काव्यप्रकाश', 'रस गंगाधर', 'चन्द्रा-लोक', 'नाट्य-शास्त्र', 'काव्यानुशासन' आदि ग्रन्थों से इन प्रसंगों के आधार और प्रामाणिकता का परीक्षण किया है। ये प्रसंग लेखक के परिश्रम का प्रमाण हैं। एक-आध स्थल पर दासजी के तात्पर्य को पूर्णतया स्पष्ट न कर सकने के कारण लेखक कुछ विद्वानों के आक्षेपों का उत्तर नहीं दे पाया। उदाहरण के लिए उपादान लक्षणा का इनका उदाहरण है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**जमुना जल को जात ही डगरी गगरी जाल।**
**बजी बाँसुरी कान्ह की, गिरीं सकल तेहि काल॥**

इस पर विवेचन करते हुए लेखक ने लिखा है—दूसरी पंक्ति में दासजी ने 'कान्ह' के बजाने का गुण बाँसुरी में आरोपित माना है। परन्तु वास्तविकता यह है कि बाँसुरी के बजाने में मुख्यार्थ बाधित नहीं है। इसी प्रकार का भ्रम तीसरी तथा चौथी पंक्ति में भी है। इसी कारण इस सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि उपादान लक्षणा लीजिए। इसका लक्षण भी गड़बड़ है और उसी के अनुरूप उदाहरण भी अशुद्ध है। "वास्तव में यहाँ न लक्षण गड़बड़ है और न उदाहरण ही अशुद्ध है। जहाँ पर मुख्यार्थ पूर्ण बाधित न होकर अंशतः बाधित होता है और उसमें दूसरे के गुण का या अर्थ का ग्रहण किया जाय, वहाँ पर उपादान लक्षणा मानी गई है। गगरी चल नहीं सकती अतः मुख्य अर्थ बाधित है और इन पर गोपिकाओं के अर्थ का ग्रहण है। गगरी का अर्थ गगरी लिये हुए गोपिकाएँ। इसी प्रकार बाँसुरी बज नहीं सकती बजाई जाती है। अतः इसके बजाने में कृष्ण के द्वारा बजाए जाने (कर्त्तापन) के अर्थ का ग्रहण है। इस प्रकार अपने अर्थपूर्ण त्याग किये बिना अन्य अर्थ के ग्रहण से उपादान लक्षणा है जिसके उदाहरण में ये उपयुक्त ही हैं।

उपसंहार में लेखक ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। दास पर मिश्रबन्धुओं द्वारा किये गए आक्षेप का कि उन्होंने श्रीपति के 'काव्य-सरोज' से भावापहरण किया है, तर्कपूर्ण निराकरण किया है। यद्यपि लेखक की यह धारणा सत्य नहीं है कि मिश्रबन्धुओं के आधार पर अन्य इतिहासकारों ने भी दास पर भावापहरण का आक्षेप लगाया है। वास्तव में दास को बड़े-बड़े पूर्ववर्ती हिन्दी आचार्यों के ग्रन्थों का आधार प्राप्त था। इस सुविधा को पाकर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। इसमें उनकी हीनता ध्वनित नहीं होती। फिर भी यह तर्कपूर्ण निराकरण बहुत ठीक है। इस प्रसंग में अन्य कवियों से भावसाम्य, वर्गीकरण और वैज्ञानिक विवेचन, नवीन उद्भावनाएँ और उनकी हिन्दी-साहित्य में विशिष्ट स्थिति आदि विषयों पर तथ्यपूर्ण विचार प्रकट किये गए हैं। पुस्तक परिश्रम से लिखी गई और उपादेय है।[1]

पुस्तकालय

१. काव्य निर्णय : सम्पादक—जवाहरलाल चतुर्वेदी; प्रकाशक—ज्ञानवापी वाराणसी। आचार्य भिखारीदास—डॉ० नारायणदास खन्ना; प्रकाशक—लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दक्षिण-भारत के प्रथम हिन्दी उपन्यासकार

श्री 'आरिगपूडि'

की अनुपम मूल हिन्दी रचना

**खरे-खोटे** मू० ५)

दक्षिण-भारत के ग्राम्य-जीवन का अनुपम एवं सजीव चित्रण अत्यन्त ही सरल व रोचक भाषा में।

हिन्दी-जगत् के सर्वप्रसिद्ध उपन्यासकार

श्री गुरुदत्त की नवीन अन्यतम रचना

**पत्रलता** मू० ७)

सातवीं शताब्दि के भारत-खण्ड के इतिहास की पृष्ठ-भूमि पर।

*

भारती साहित्य सदन

३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री देवराज, मैनेजिंग डाइरेक्टर, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली के लिए
श्री गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक : नन्ददुलारे वाजपेयी

# ३२ आलोचना


| | |
|---|---|
| ...मयिक परिवेश : | सम्पादकीय |
| ...कता के स्तर : | डॉ० देवराज |
| ...स्कृत काव्य-शास्त्र और शृंगार-रस : | डॉ० सत्यदेव चौधरी शास्त्री |
| कवि की विशेषता : | रमाशंकर तिवारी |
| यशपाल के उपन्यास : | प्रकाशचन्द्र गुप्त |
| प्रतिबिम्बवाद : | मनोहर वर्मा |
| 'नई कविता' : प्रवादों की परीक्षा : | गंगाधर झा |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

राजकमल प्रकाशन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...द्याल... ...कालय

...मिक आलोचना

...ै अंक १ पूर्णाङ्क २१ जनवरी, १९५७

...र्षिक मूल्य १५) एक अंक का ४)

# सूची


**सम्पादकीय**

...मयिक परिवेश --- १

**निबन्ध**

—'नई कविता': प्रवादों की परीक्षा :
**गंगाधर झा** --- ६

—आधुनिक पश्चिमी काव्य :
**रामरतन भटनागर** --- २२

—प्रतिबिम्बवाद :
**मनोहर वर्मा** --- ४२

—संस्कृत-काव्य-शास्त्र और शृङ्गार-रस :
**डॉ० सत्यदेव चौधरी शास्त्री** --- ५०

—कवि की विशेषता :
**रमाशंकर तिवारी** --- ५६

—चरित्र-चित्रण :
**देवेन्द्र इस्सर** --- ७१

—प्रौढ़ता के स्तर :
**डॉ० देवराज** --- ७८

**अध्ययन : भारतीय लेखक**

—यशपाल के उपन्यास :
**प्रकाशचन्द्र गुप्त** --- ८३

**मूल्यांकन**

—अपभ्रंश साहित्य :
**रामसिंह तोमर** --- ८६

—उखड़े हुए लोग :
**भानुदेव शुक्ल** --- ९१

—गीतफ़रोश, नई चेतना और सूर्य का स्वागत :
**त्रिलोचन** --- ९५

—बाँसरी बज रही :
**देवेन्द्र सत्यार्थी** --- १०१

—राजनीति और दर्शन :
**महादेवप्रसाद शर्मा** --- १११

—राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त :
**महादेवप्रसाद शर्मा** --- ११४

—भारतीय कविता : १९५३ :
**प्रेमशंकर** --- ११५

—'काव्य निर्णय' और 'आचार्य भिखारीदास' :
**डॉ० भगीरथ मिश्र** --- १२५


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आलोचना

पुस्तक सं० ... आगत ... दिनांक ...

# सम्पादकीय

## सामयिक परिवेश

सन् '४७ में राजनीतिक स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् अपने देश की परिस्थिति में शीघ्रता के साथ बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। समग्र रूप से ये परिवर्तन देश को उन्नति की दिशा में ले गए हैं, यद्यपि इनके साथ ही नई समस्याएँ और प्रश्न भी उठ खड़े हुए हैं। सामूहिक रूप से ये राष्ट्रीय परिवर्तन एक नई चेतना और नई रचनात्मक दृष्टि का उन्मेष और निर्माण कर सकते थे। साथ ही जो नई समस्याएँ उपस्थित हुई हैं, उन पर गम्भीरता के साथ विचार करके साहित्यिक सृष्टियों द्वारा उनके समाधान का प्रयत्न किया जा सकता था। अपने देश की अन्तर्राष्ट्रीय नीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी ऐसे रहे हैं कि जो नये साहित्यिकों में नई उद्भावना और नई सक्रिय कल्पना की योजना कर सकते थे। कुल मिलाकर हमारा राष्ट्रीय परिवेश साहित्य में एक नये और मूल्यवान युग की सम्भावना लेकर आया था। परन्तु हम देखते हैं कि इस नये परिवेश के अनुरूप विशिष्ट स्तर की साहित्य-सृष्टि कम हो रही है और बहुत-से लेखक और कवि नये राष्ट्रीय परिवेश से लगाव छोड़कर व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं और उद्गारों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। हमें यह देखना है कि ऐसी अनाकांक्षित स्थिति क्यों उत्पन्न हो गई है?

कुछ नये लेखक जो मध्यवित्त के हैं और जिनमें राष्ट्रीय चेतना का समुचित विकास नहीं हुआ है, अपनी निजी समस्याओं में मशगूल हैं। आज से पच्चीस वर्ष पहले हमारे अनेक लेखक विदेशी सरकार के आक्रोश और अपनी पारिवारिक दुरवस्था का एक-साथ सामना करते हुए निष्ठा और संकल्प-पूर्ण साहित्य-रचना कर रहे थे। आज की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है। मध्यवित्त के लेखक निर्वाह के योग्य रोज़ी भी पा गए हैं, पर उनकी भाव-धारा एक दूसरी दिशा में दौड़ने लगी है। कदाचित् वे सोचते हैं कि जितना वेतन उन्हें मिलता है, वह उनकी योग्यता से कम है। वे उससे कहीं अधिक के अधिकारी हैं। उन्होंने अपनी आवश्यकताएँ और अपना जीवन-स्तर भी बढ़ा लिया है, जिसके कारण उन्हें अर्थ-कष्ट रहा करता है। ऐसे लेखक न तो समाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मौलिक वैषम्य के विरोध में ही ईमानदारी के साथ सोच और लिख सकते हैं और न वे अपने विश्वासों के लिए किसी प्रकार का त्याग करने को तैयार हैं। सच तो यह है कि ये मध्यवित्तीय नये लेखक अपनी ही कोटि के पिछली पीढ़ी के लेखकों से बिलकुल भिन्न मनोरचना के हो गए हैं। इनकी कृतियाँ राष्ट्रीय उपयोग से दूर होती जा रही हैं।

हमारे वर्तमान समाज का नया मध्य-वर्ग अपने परिवार की मर्यादा और स्तर कायम रखने तथा रोज़ी कमाने में ही सारी शक्ति लगा रहा है। इस वर्ग की राष्ट्रीय चेतना के ह्रास के साथ उसकी नैतिक शक्तिमत्ता भी बहुत-कुछ क्षीण होने लगी है। लोग अपने से ऊँचे स्तर के व्यक्तियों को देखते हैं और उनमें किसी प्रकार का चारित्रिक उत्कर्ष, त्याग की भावना अथवा अन्य उच्चादर्श न पाकर स्वयं भी उसी जीवन-शैली को अपनाने को प्रेरित हो रहे हैं। अपने से भिन्न और अभावग्रस्त वर्ग की जीवन-दशा उनका ध्यान आकृष्ट नहीं करती और इस प्रकार वे समाज से विच्छिन्न होकर अपनी इकाई अलग ही बनाते जा रहे हैं। अपने निजी परिवेश को ही सब-कुछ मानकर वे उसीमें रम रहे हैं। अपनी सीमित जीवन-चर्या के पाश में बँधकर राष्ट्रीय जीवन के प्रति उपेक्षा-शील हो गए हैं। प्रदर्शन की वृत्ति और महत्त्वाकांक्षा के मोह में पड़कर वे देश-विदेश की नई साहित्य-सृष्टियों को अपना लेते हैं और थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ उन्हें अपने कर्तृत्व के रूप में प्रचारित करते हैं। पश्चिम की नई कृतियों के अनुवाद किये जायँ इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं, परन्तु उनमें अनुवादक का नाम होना आवश्यक है। पर पश्चिमी कृतियों को अल्प-परिवर्तन के साथ अपनी रचना का रूप देने में ये लेखक दुहरा अन्याय करते हैं। एक तो भारतीय स्थिति का उनसे कोई लगाव नहीं रहता और दूसरे अपने देश के लिए एक तथ्यहीन और निरर्थक, किन्तु चकाचौंध से भरे जीवन-चित्र देकर ये मिथ्या-आकर्षण भी उत्पन्न करते हैं। हिन्दी के पाठक समाज को न केवल उनके परिवेश के बाहर की वस्तु देते हैं, बल्कि एक कृत्रिम और बे-पहचान जीवन का आकर्षण उत्पन्न करके उनको स्पष्टतः गुमराह भी बनाते हैं।

आश्चर्य यह है कि इस प्रकार की स्वनिष्ठ और कृत्रिम रचना के समर्थन में एक सामूहिक और साहित्यिक दर्शन का उपयोग भी किया जाता है। सामूहिक स्तर पर यह वर्ग अपनी विवशता का एलान करते हुए और समाज और राज्य को दोषी ठहरा-कर अपने प्रति कृत्रिम सहानुभूति की याचना करता है। ये लेखक अपने को निरीह और निस्सम्बल करार देते हैं, परन्तु वास्तव में उनकी दैनिक जीवन-चर्या उतनी निरीह नहीं होती। अवसर मिलते ही इस वर्ग के लेखक विदेश और विशेषकर अमरीका-यात्रा के लिए तैयार हो जाते हैं और लौटने पर वहाँ की शतमुख से प्रशंसा करने में दत्तचित्त रहते हैं। यही नहीं, विदेशी पूँजी अथवा अन्य प्रकार की सहायता से ये लेखक अपने तथाकथित नई शैलियों के साहित्य का प्रकाशन करते में नहीं हिचकते। मध्यवर्गीय विवशता के साथ यह आर्थिक प्रवञ्चना कैसे विचित्र सम्बन्ध से जुड़ी हुई है, यह अपने में एक रोचक तथ्य है। साहित्यिक स्तर पर ये रच-नाएँ प्रकृतिवाद का आवरण देकर विज्ञापित की जाती हैं। समीक्षक-वर्ग इन्हें युग की अनिवार्य कृति कहकर इनके लिए बिक्री का बाज़ार खोलने की चेष्टा करते हैं। गुप्त स्वार्थ की इस विलक्षण स्थिति से पिछली पीढ़ी के साहित्य-सृजन की संघर्षमयी स्थितियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तुलना करने पर दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। पिछली पीढ़ी के लेखक और समीक्षक साहित्य में थोड़ी-सी अनर्गलता अथवा अश्लीलता भी सहन नहीं करते थे। प्रकृतिवाद के नाम पर यही अश्लीलताएँ खुले-आम फैलाई जाती हैं। ये नए लेखक इसे समाज का यथार्थ और व्यंग्यात्मक चित्रण कहकर सामने रखते हैं, परन्तु इनमें से अधिकांश लेखक अश्लीलता के लिए ही अश्लीलता का उपयोग करते हैं। इनमें हृदय की कचोट और व्यंग्यमयता नाम को ही होती है।

यह तो नये लेखकों के एक वर्ग की बात है। इनसे अपेक्षाकृत पुराने लेखक जो इस समय साहित्य-रचना कर रहे हैं, प्रायः सरकारी नौकरियों अथवा अन्य सम्पन्न स्थानों से सम्बद्ध हैं। सरकार के विभिन्न विभागों और विशेषकर रेडियो और प्रकाशन-विभाग में हिन्दी के बहुत-से प्रौढ़ लेखक स्थान पा गए हैं। इन लेखकों की नई रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि इनके अनुभवों और रचना-शिल्प में उन्नति हुई है, पर इनकी वक्तव्य-वस्तु पहले-जैसी निश्छल, मार्मिक और प्रखर प्रभाव-शक्ति नहीं रखती। ऐसा प्रतीत होता है कि खाली समय में बिना किसी तीव्र सृजनेच्छा के ये लेखक विविध भाव-भंगियों से पूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत करते रहते हैं। यदि इन्हीं लेखकों की स्वतन्त्रता-पूर्व की रचनाओं से इनकी आज की रचनाओं की तुलना की जाय, तो प्रायः सर्वत्र यह अन्तर दिखाई देगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन लेखकों का सरकारी क्षेत्रों में जाना और आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त हो जाना इनके निजी जीवन के लिए भले ही हितकर रहा हो, साहित्य की उच्चतर सृष्टि में सहायक नहीं हुआ। सम्भवतः सरकारी क्षेत्रों में अब तक ऐसी राष्ट्रीय चेतना और तत्परता नहीं आ पाई है, जिससे लेखकों को सम्यक् और उपयोगी प्रेरणा मिल सके। लेखकों की आर्थिक निश्चिन्तता श्रेष्ठ साहित्य-सृष्टि में बाधक हो यह आवश्यक नहीं है, पर प्रस्तुत उदाहरणों में प्रायः यही देखा जाता है।

इन नये और पुराने लेखकों के आज के साहित्य-सृजन की तुलना करना किसी वांछित उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकेगा। नये लेखकों को अपनी तुलना के लिए पुराने लेखकों की आज की कृतियाँ देखने से कोई लाभ न होगा। यदि उन्हें तुलना करनी है तो वे आज के प्रौढ़ लेखकों की आज की कृतियों की अपेक्षा उनकी पूर्ववर्ती कृतियों से तुलना करें। साहित्य-समीक्षकों को भी अपनी समीक्षा में तुलनात्मक मूल्य और विशिष्टता की खोज करते हुए, आज की नई साहित्य-सृष्टि की समक्षता में सन् २५ से ३५ तक की साहित्य-कृतियों को ही रखकर देखना होगा, क्योंकि उसी समय आज के प्रौढ़ लेखक अपनी साहित्य-साधना का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत कर सके थे।

हिन्दी-लेखकों की उपर्युक्त दोनों पीढ़ियों के उल्लेख के साथ सामयिक साहित्यिक परिवेश की समाप्ति नहीं हो जाती। नये और पुराने लेखकों का एक और बड़ा समूह है, जो वास्तविक राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक कर्तव्य के भाव से सम्पन्न रहा है और अब भी प्रचुर मात्रा में है। आश्चर्य और खेद की बात यह है कि ये लेखक जो 'प्रगतिशील साहित्य' के उन्नायक और निर्माता थे और जिन्होंने साहित्य को नई सामाजिक चेतना और नया शिल्प दिया था, आज उतने सक्रिय नहीं रह गए। इसका कारण या तो इन लेखकों का जीवन के वास्तविक तथ्यों और अनुभवों से दूर जाकर वादों का आश्रय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ले लेना है अथवा नई परिस्थिति में इनकी सृजन-शक्तियाँ अपने-आप ही शिथिल और क्षीण हो गई हैं। एक तीसरा कारण यह भी है कि परस्पर छोटे-बड़े मतभेद होने से इनकी संगठित शक्ति कम पड़ गई है। जो भी कारण हो, इस वर्ग के लेखक हिन्दी साहित्य के निर्माण-कार्य में ऐतिहासिक योग-दान कर चुके हैं और अब भी कर सकते हैं। इस धारा के नये और पुराने लेखकों में कुछ प्रवृत्तियाँ सामूहिक रूप से पाई जाती हैं। एक तो ये लेखक वर्गवादी होने के कारण मनुष्य की सामान्य इच्छाओं और मनोभावों के प्रति सर्वत्र न्याय नहीं कर पाते। साहित्य को सामाजिक क्रान्ति का अस्त्र बनाकर चलने के कारण अनेक राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों की अवमानना हो जाती है। फिर ये लेखक अपनी यथार्थवादी धारणा के अनुसार मनुष्य को हाड़-मांस का पुतला ही मान लेते हैं। मानव के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास से उपलब्ध वह मूल्यवान सम्पत्ति, जो राष्ट्रीय चेतना का अंग बन गई है, इन लेखकों के लिए नगण्यप्रायः ही है। स्थान-स्थान पर नारी के नैतिक पतन का चित्र खींचते हुए ये लेखक प्रबुद्ध पाठकों को अपने प्रति उदासीन बना देते हैं और इस प्रकार साहित्य की सार्वजनिकता पर अपने हाथों ही प्रहार करते हैं। परन्तु इन विलक्षणताओं के रहते हुए भी वे नई प्रतिभा की परिचायक उपयोगी और उच्च-कोटि की कृतियाँ प्रस्तुत करते रहे हैं। यदि अतिरिक्त वाद-निष्ठता और बौद्धिकता को सन्तुलित रूप देकर ये लेखक राष्ट्रीय परिवेश में अपने अनुभवों का अधिक व्यापक दृष्टि से प्रसार करते, तो हमारे साहित्य की वर्तमान पीढ़ी उनसे बहुत अधिक लाभान्वित हो सकती थी।

सामयिक परिवेश में स्वतन्त्र लेखकों और कवियों का एक ऐसा बड़ा वर्ग भी है जो उपर्युक्त किसी सम्प्रदाय में सम्मिलित नहीं है और स्वच्छन्द निर्माण में लगा हुआ है, परन्तु ये निर्लिप्त लेखक और कवि उचित मूल्यांकन द्वारा पुरस्कृत नहीं हो रहे। एक तो इस वर्ग के लेखकों में कोई चमत्कारी नवीनता नहीं है और दूसरे इनमें प्रदर्शन की या विशिष्ट विचार-धारा के प्रचार-प्रसार की रुचि नहीं है। आज के युग में जब साहित्यिक क्षेत्र छोटे-छोटे दलों और गिरोहों में बँटता जा रहा है और जब प्रत्येक गिरोह आत्मविज्ञप्ति के पीछे दौड़ रहा है, तब इस प्रकार के मुद्रा और छाप-रहित लेखकों की उपेक्षा की जाय, तो आश्चर्य नहीं। नये और कर्तव्य-निष्ठ समीक्षकों के लिए इन रचनाओं को नये साहित्यिक परिवेश में उचित मूल्य और महत्त्व देने का ध्यान रखना होगा अन्यथा हमारा वर्तमान युग उच्च-कोटि के साहित्यिक मूल्यों की स्थापना से वंचित ही रहेगा। सम्प्रति साहित्यिकों का यह वर्ग संख्या में अधिक होता हुआ भी बहुत-कुछ असंगठित भी है। इस वर्ग के लेखक और कवि किसी विशेष सामाजिक या राजनीतिक सिद्धान्त से बँधे हुए तो हैं ही नहीं, इनमें परस्पर विचार और लेखन-सम्बन्धी पर्याप्त भिन्नताएँ भी हैं। आवश्यकता यह है कि लेखकों का यह निर्लिप्त समूह हिन्दी के समीक्षकों का अधिकाधिक सौहार्द्र पा सके।

ऊपर हमने हिन्दी-साहित्य के नये परिवेश में रचनात्मक कार्य करने वाले लेखकों और कवियों की ही चर्चा की है। इसके साथ ही हमें समीक्षा, विचार और चिन्तना के क्षेत्र में कार्य करने वाले साहित्यिकों का भी आकलन करना है। इस समय हिन्दी में शोध-कार्य और प्राचीन अनुशीलन का इतना बाहुल्य हो गया है कि साहित्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सामयिक गतिविधि और साहित्यिक विचार और चिन्तन का पक्ष बहुत-कुछ दुर्बल हो रहा है। प्राचीन शोध में भी यद्यपि साहित्यिक विवेक और विचार की आवश्यकता होती है, पर अधिकांश में यह शोध-कार्य संग्रहात्मक और परिचयात्मक ही होता जा रहा है। कदाचित् यही कारण है कि साहित्य के सैद्धान्तिक और वैचारिक पक्षों पर बहुत कम काम हो पाया है। सैद्धान्तिक समीक्षा-सम्बन्धी जो नये तथ्य पश्चिम में उद्घाटित हो रहे हैं, हम प्रायः उन्हींकी आवृत्ति किया करते हैं। प्राचीन साहित्य-शास्त्र के सम्यक् विश्लेषण और उसके आधार पर नवीन साहित्यिक विचारणाओं का राष्ट्रीय भूमिका पर निर्माण नहीं हो रहा है। कुल मिलाकर आज का अनुशीलन सूचनाओं के आधिक्य से पीड़ित है। व्यावहारिक समीक्षा की दिशा में हिन्दी के गण्यमान्य समीक्षक जो-कुछ कार्य करते रहे हैं, उसमें भी इस समय शिथिलता आ गई है। जान पड़ता है कि हमारे ये समीक्षक साहित्य की नई सृष्टियों के सम्बन्ध में 'कौन झमेले में पड़े' की नीति बरतने लगे हैं। वे अन्य किसी विषय पर चाहे जितना लिखें, पर सामयिक साहित्य के सम्बन्ध में मौन ही रहते हैं। परिणाम यह हुआ है कि नये समीक्षकों ने साहित्य की स्वदेशी परम्परा से क्रमशः सम्बन्ध-विच्छेद करके एक-मात्र पश्चिम की नई विवेचना को ही अपना लिया है। इस प्रकार नया साहित्य और नई समीक्षा दोनों ही बहुत-कुछ विदेशी अनुकृति की दिशा में बढ़ते जा रहे हैं। भूले-भटके ही नये साहित्य पर कोई प्रौढ़ समीक्षा निकल पाती है।

विचार और चिन्तन के क्षेत्र में एक ओर प्राचीन संस्कृति और साहित्य की आध्यात्मिक ऊँचाइयों का अनवरत आलेख किया जाता है, तो दूसरी ओर समस्त प्राचीन जीवन का बहुत ही कुरूप चित्र तथ्य और यथार्थ के नाम पर खींचा जाता है। ये अतिवादी चिन्तन हिन्दी-पाठकों के लिए विस्मयकारक बन गए हैं। दोनों ही प्रकार की चिन्तना में बड़े योग्य और अध्यवसायी लेखकों का हाथ है, परन्तु दोनों ही एकांगिता से ग्रस्त हैं। कला और साहित्य की समीक्षा में इस प्रकार की आतिशयिक दृष्टियों का होना केवल असमंजस और दिग्भ्रम की ही सृष्टि कर सकता है। सार्वजनिक जीवन में ऐसी कृतियाँ कोई गहरा और मूल्यवान प्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकतीं। इस विषमता का प्रमुख कारण यह है कि ये लेखक केवल पण्डित हैं और व्यावहारिक जीवन तथा सन्तुलित कला-समीक्षा के तथ्यों से अवगत नहीं हैं।

ऊपर के रेखाचित्र को समग्र रूप से देखने पर एक बड़ी कमी सामयिक परिवेश में यह दिखाई देती है कि पुराने और नये लेखकों के बीच सम्पर्क की कमी है, जिसके कारण हिन्दी-साहित्य का समन्वित, क्रम-विकास बाधित हो रहा है। कदाचित् इसी के कारण नये साहित्य में नई-नई शैलियाँ और छुट-पुट हुई भाव-धाराएँ इतनी अधिकता से उत्पन्न हो रही हैं। हिन्दी-साहित्य आज अपने को एक इकाई के रूप में देखने में असमर्थ है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि किसी युग का साहित्य किसी एक ही प्रेरणा-केन्द्र से सम्बद्ध हो, परन्तु यह आवश्यक है कि अनेक केन्द्रों के रहते हुए भी युग-साहित्य में एक विशिष्ट प्रकार की भावात्मक और चिन्तनात्मक गहराई हो। ऐसा दायित्व हो जो राष्ट्र को एक मूल्यवान सत्ता मानने पर ही आविर्भूत होता है। हमारे सामयिक परिवेश में एक समन्वित शृङ्खला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और दायित्व की कमी है। नया साहित्य अपनी नवीनता की दौड़ में अपने राष्ट्र की नैतिक चेतना को भी रौंदता चला जा रहा है। यहाँ हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कि प्रचलित नैतिक मानों का तिरस्कार करना नये साहित्य के लिए किस सीमा तक उचित या अनुचित है। पर उच्च-कोटि की कला और साहित्य में कुछ बातें तो आवश्यक होती हैं। एक यह कि हम किसी नैतिक मान का उच्छेद करें, तो उसके स्थान पर उससे श्रेष्ठतर मान की योजना भी करें। दूसरी यह कि नये मान की योजना में हमारी दृष्टि राष्ट्रीय दायित्व से सम्पन्न हो तथा उसमें तल-स्पर्शी गम्भीरता और संवेदना हो। तीसरी, यह कि किसी वाद या विचार-धारा की पुष्टि के लिए हम स्वीकृत राष्ट्रीय मानों का उन्मूलन न करें।

ऊपर के तथ्य हमारे निष्कर्ष को जिस दिशा में परिचालित करते हैं, वह यह है कि हमारा वर्तमान साहित्य एक विशिष्ट समग्रता और गाम्भीर्य की कमी से छिछला और छिन्न-मूल बन रहा है। समग्रता लेखकों के दायित्व से सम्बन्ध रखती है और गम्भीरता इनके व्यक्तित्व और चारित्रिक दृष्टिकोण का परिणाम होती है। आज के परिवेश में दोनों की दयनीय दशा है, परन्तु मध्य-वर्ग के लेखक और साहित्यिक अनेक अवसरों पर राष्ट्रीय प्रगति के अग्रगामी दस्ते में रहे हैं और संकटकालीन परिस्थिति में उनका चरित्र कसौटी पर कसा जाकर खरा उतरा है। मध्य-वर्ग के लेखक ही वर्गहीन समाज और वर्ग-हीन संस्कृति की नींव डालते आए हैं। वर्गीय संस्कारों को छोड़कर मानवतावादी आदर्शों और जीवन-विधियों को अपनाने का श्रेय भी इस वर्ग के लेखकों और कवियों को प्राप्त हुआ है। सम्पूर्ण राष्ट्रीय साहित्य और कला को इतिहास के धरातल पर रखकर उसकी समन्वित व्याख्या करना राष्ट्रीय संस्कृति की पुष्टि के लिए अत्यावश्यक है। सामयिक परिवेश में इन लक्ष्यों के प्रति अन्यमनस्कता बड़ी मात्रा में दिखाई दे रही है। वर्तमान लेखकों और कवियों के लिए उपर्युक्त तथ्यों की उपेक्षा करना और राष्ट्रीय सन्तुलन में योग न देना अपवाद की बात है।

व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि के सम्बन्ध में बहुत-से तर्क दिए जाते हैं। व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता की रक्षा नये युग का एक आवश्यक लक्ष्य है। समाज में फैली हुई हीनताओं के विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह का अर्थ हम समझ सकते हैं। विस्तारित अन्धकार के बीच अकेली दीप-शिखा का मूल्य हम जानते हैं, पर जब व्यक्तिवादी प्रवृत्ति अपना लक्ष्य स्वयं ही बन जाती है और जब यह राष्ट्रीय और मानवीय उत्थान के साधनों का दुर्लक्ष्य करने लगती है, तब वह व्यक्तिवादिता साहित्य और समाज के लिए शंकास्पद हो उठती है। विचारों की विविधता और शैलियों की अनेकता साहित्य का शृङ्गार होती है, पर तब जब उस विविधता और अनेकता में कोई समन्वित चेतना और जीवन-दृष्टि हो। किन्तु वर्तमान परिवेश की साहित्यिक विविधताएँ क्या ऐसी ही चेतना और जीवन-दृष्टि का नियोजन करती हैं?

एक अन्य बात, जो साधारणतः हमारी समझ के परे रही है, यह है कि नये साहित्य में नये लेखकों की मनोदशा की छाप पड़ रही है और इस प्रकार ऐसे साहित्य का निर्माण हो रहा है, जो एक ऐतिहासिक सत्य से सम्बन्धित है और जिसके बिना भारतीय समाज और साहित्य के विकास की एक कड़ी छूटी रहेगी। मार्क्सवादी विचारकों द्वारा प्रचारित इस तथ्य को स्वीकार करने में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सदैव असमर्थ रहे हैं और अब भी हैं। ऐसा साहित्य, जो किसी व्यक्ति या वर्ग-विशेष की हीन दशा का परिचायक हो, कौन-सा सार्वजनिक उद्देश्य पूरा करेगा? ऐसा साहित्य लिखने के लिए बाध्यता क्या है? और इसके अभाव में किसकी हानि होने वाली है?

योरुप की पिछली शताब्दी की साहित्य-सृष्टि के विकास-क्रम को देखने पर यह भासित होता है कि प्रत्येक नई पीढ़ी के कवि और लेखक एक सार्थक और विद्रोही नवीनता लेकर आये थे और जब कभी इस नवीनता में वस्तु-तथ्य की कमी हुई है, तब-तब साहित्य अपने कलात्मक मूल्य और महत्त्व को खो बैठा है। यूरोपीय जातियों ने अपनी साहित्यिक चेतना और संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्न में उच्च-कोटि की साधनाएँ और बलिदान किए हैं। जब वे राष्ट्र अपनी प्रादेशिक सीमा में नई सृष्टि की सम्भावना नहीं देख पाये, तब उनके कवि और लेखक राष्ट्रीय चेतना के उन्नयन के लिए विदेशों में गये। ग्रामों और अन्य भूमियों में पहुँचे। असभ्य जातियों की जीवन-चर्या का निरीक्षण किया और उनसे कई प्रेरणाएँ प्राप्त कीं। पर यह तब की बात है, जब उनका राष्ट्रीय विकास नितान्त अवरुद्ध हो गया था और जब प्रगति की सारी दिशाएँ रुद्ध हो गई थीं। अपने देश में अभी न तो ऐसी कोई स्थिति है और न हमारी प्रगतिशील संस्कृति पर किसी प्रकार का संकट। बल्कि हमें अवसर मिला है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् हम सार्वत्रिक स्वतन्त्रता का शिलान्यास करें और सामाजिक जीवन को उस दिशा में ले जाने की प्रेरणा दें। हम यहाँ किसी प्रचारात्मक साहित्य-सृष्टि का संकेत नहीं कर रहे। हमारा आशय उन नवीन भावना-भूमियों पर दृष्टिपात करने का है, जो अब तक बहुत अंशों में अछूती पड़ी हुई हैं और जिनकी ओर नई रचनात्मक प्रतिभा का आकर्षित होना स्वाभाविक और अनिवार्य था। पर यह तो तब होता, जब हम साहित्य की राष्ट्रीय विकास-दिशा को उचित महत्त्व देते। पर हमने तो राष्ट्रीय साहित्य की अपेक्षा साहित्य की विदेशी गतिविधियों को प्रमुखता दे रखी है—हम राष्ट्रीय बनने के पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय बन गए हैं! किसी देश की अथवा समाज की स्वाभाविक विकास-दिशा क्रमशः छोटी सीमा से बड़ी सीमा की ओर जाने की होती है और वह भी छोटी सीमाओं को पुष्ट कर लेने पर। पर हमारे ये साहित्यिक तो समीप की वस्तु को छोड़कर दूर की दौड़ लगा रहे हैं।

विनोद के लिए, हास्य और व्यंग्य के लिए, दिलबहलाव और मनोरंजन के लिए भी साहित्य होता है, पर इस प्रकार के साहित्य को युगप्रतिनिधि नहीं कहा जाता। आज हमारे बीच साहित्यिक मूल्यों के सम्बन्ध में ऐसी अव्यवस्थित धारणाएँ फैली हुई हैं कि कृतियों के सापेक्षिक मूल्य और उपयोग के सम्बन्ध में भी हम अनिश्चय में पड़ गए हैं। यह ऐसी भ्रान्ति है, जो किसी युग की साहित्यिक चेतना के लिए लाञ्छन ही कही जायगी। हम यह नहीं मानते कि जिस सामयिक परिवेश का हमने यहाँ उल्लेख किया है वह अपरिवर्तनीय है, बदला नहीं जा सकता। हम ऐसे नियतिवादी नहीं हैं, जो किसी सामयिक गतिविधि को अकाट्य और अवश्यम्भावी मान लें। हमारी यह धारणा और विश्वास है कि थोड़े विवेक और प्रयत्न से स्थिति में वांछित परिवर्तन हो सकता है। इसके लिए नये और पुराने सभी लेखकों को आत्मशोध करने की आवश्यकता है। हम यह भी मानते हैं कि हमारे नवयुवक लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और कवि जिन नई सरणियों पर चल रहे हैं, आगे चलकर उनमें साहित्यिक प्रौढ़ता और विशिष्टता भी आवेगी, परन्तु सामूहिक और राष्ट्रीय स्थितियों, अभावों और अपूर्णताओं को ध्यान में रखने पर ही यह परिवर्तन अधिक शीघ्र और सफल रीति से सम्पन्न हो सकेगा।

अनेक देशों में लेखकों के अपने राष्ट्रीय संगठन हैं। प्रतिवर्ष अथवा वर्ष में एक से अधिक बार उनके अधिवेशन में वे अपने पिछले वर्ष के कार्यों का लेखा-जोखा लगाते और आगे की रूप-रेखा बनाते हैं। हिन्दी-साहित्य में लेखकों का कोई राष्ट्रव्यापी संगठन नहीं है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पिछले सम्पूर्ण दशक से विघटित दशा में है। अपने कार्य-काल में भी उसका झुकाव साहित्य के राष्ट्रीय प्रश्नों और गतिविधियों पर कम ही रहा है। उसकी अधिकांश शक्ति भाषा-सम्बन्धी झगड़ों और राजनीति पर खर्च होती रही है। हिन्दी में इस समय लेखकों के अपने राष्ट्रीय स्तर के संगठन की बड़ी आवश्यकता है। आज कोई भी लेखक हिन्दी-साहित्य का प्रतिनिधि बनाकर चीन भेज दिया जाता है—रूस और अमेरिका चला जाता है। भेजने वाली संस्था यह जानती ही नहीं कि किसे भेजें, किसे न भेजें। उसके सामने चुनाव का कोई आधार ही नहीं होता। अभी पिछले दिनों एशियायी लेखकों का अधिवेशन दिल्ली में हुआ था। ऐसे अधिवेशन को हिन्दी अथवा भारतीय लेखकों के राष्ट्रीय संगठन के माध्यम से और उसीके तत्त्वावधान में बुलाना था, पर वह बुलाया गया तीन-तिलंगों के आपसी गठबन्धन से। दिल्ली में जो लेखक पहुँच जाते या रहने लगते हैं, वे अपने को हिन्दी-साहित्य का धुरीण मान लेते हैं। पाँच-सात आदमी मिलकर लेखकों के राष्ट्रीय संगठन के स्थानापन्न बन जाते हैं और रहनुमा बनकर उनके भाग्य का निपटारा करने लगते हैं। इससे अधिक दयनीय और गिरी हुई स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। दिल्ली और लखनऊ से नई प्रकाशित पुस्तकों पर सरकारी पुरस्कार दिए जाते हैं। पुरस्कारों के वितरण की कोई नीति, पद्धति या उद्देश्य नहीं है। हमारा प्रस्ताव है कि ये पुरस्कार सीधे सरकारी माध्यम से न दिये जाकर लेखकों की अपनी संस्था और संगठन द्वारा दिये जायँ। लेखक अपने-आप ही निर्णय करें कि वर्ष-भर में या दो वर्षों में किसने कैसा काम किया है, किसकी क्या आवश्यकताएँ हैं, किसे क्या पुरस्कार दिया जाय। हम तो यह भी कहना चाहते हैं कि पाँच सौ रुपये प्रतिमास वेतन या आय के रूप में पाने वाले लेखकों को ये पुरस्कार दिए ही न जायँ और यह द्रव्य नई प्रतिभा की सूचना देने वाले नवयुवक लेखकों में वितरित किया जाय। हम आशा करते हैं कि हिन्दी-लेखकों का यह सक्रिय संगठन सामयिक परिवेश में अप्रत्याशित परिवर्तन ला सकेगा और नई संजीवनी शक्ति द्वारा उन अनेक प्रश्नों और समस्याओं का निराकरण कर सकेगा, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। जहाँ तक सम्भव हो, यह संगठन अधिक-से-अधिक अनौपचारिक रहे। प्रवेश-शुल्क, उद्देश्य, विधेय, वार्षिक-निर्वाचन या चुनाव आदि की विधि-व्यवस्था को गौण स्थान देकर साहित्यिक कृतियों, गतिविधियों और अन्य सम्बन्धित प्रश्नों के विचार-विवेचन को एक-मात्र प्रमुखता दी जाय। राष्ट्रीय संगठन और क्या-क्या करे, यह वह अपने-आप ही सोचे और निर्णय करे। हमने तो केवल एक सुझाव प्रस्तुत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निबन्ध

गंगाधर झा

## 'नई कविता' : प्रवादों की परीक्षा

छायावाद की परिणति १९३५ के आसपास सम्पन्न हो चुकी थी और उसके पश्चात् हिन्दी-काव्य-धारा नई दिशाओं की ओर मुड़ी। इस परवर्ती काल में काव्य के लक्ष्य अनेकात्मक हो गए और विभिन्न प्रेरणाओं के सामंजस्य द्वारा काव्य के क्षेत्र में एक उच्चतर धरातल की सिद्धि नहीं हो पाई। यह बहुमुखता बहुत अंशों में स्वाभाविक है और उसके कारण भी स्पष्टता से समझे जा सकते हैं। इस प्रकार की परिस्थिति में एक या दो या तीन ऐसे कवियों की खोज करना व्यर्थ है, जिन्हें युग की समग्रमूलक चेतना का अथवा उसके व्यापक चित्रपट का प्रतिनिधि कहा जा सके। अभी वह समय नहीं आया जब युग की आत्मा निरूपित होकर कुछ चुने हुए कवियों की वाणी में उसी प्रकार आत्म-प्रकाशन कर सके, जिस प्रकार छायावाद-युग की आत्मा प्रसाद, निराला और आरम्भिक पंत की वाणी में अभिव्यक्त हुई। यह नहीं कि उस काव्य में विविधता न थी, किन्तु यह विविधता एक विशालतर एकता में अनुस्यूत और अंगीकृत होकर एक विशेष और स्वयंप्रभ व्यक्तित्व प्राप्त कर सकी थी। यदि आधुनिक उत्साही उस युग के काव्य और आदर्शों पर सर्वेन्तीज़ के अदम्य नायक की भाँति अपना भाला तानें तो उन्हें कोई मना नहीं करेगा। गौरव का कारवाँ आया और अपनी विभा से दिगंत को दीप्त करता हुआ चला गया। अब कोई भावुक उसके अवसान से वज्राहत हो अधीर विलाप करे, अथवा अन्य ऊर्जस्वित क्रोध से लड़खड़ाते हुए उस विगत गौरव को ललकारे, तो उसका आस्फालन सहृदयों को अरुचिकर न होगा। मानवीय प्रतिक्रिया के रूप अनंत हैं और फिर क्या यह 'विभक्त चेतना' और 'उलझी हुई संवेदना' का युग नहीं है? 'हम नदी के द्वीप हैं'—अतएव व्यक्तित्व ही तो हमारा सर्वस्व है, द्वीपों की मूल मानवीयता है। किन्तु सब न तो इतने भावुक हैं और न बुद्धि-रस के आचमन में अगस्त्य की क्षमता ही वे रखते हैं। इन गुणों से वंचित मनुष्य जो कुछ देखता, सोचता और समझता है, उसकी एक अपनी स्थिति है। उसे अनुभव है कि छाया-वाद आया और चला गया, न तो वह अकारण आया था और न अकारण गया ही, जाने के पूर्व वह हमें कुछ दे गया किन्तु महत्त्वपूर्ण होते हुए भी वह 'कुछ' हमारे परितोष के लिए आज पर्याप्त नहीं; इस अभाव की पूर्ति के लिए वह काव्य के एक नये उत्थान की अभिलाषा



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रखता है और इसके लिए भी प्रस्तुत है कि नये काव्य की अनेक भंगिमाएं अपने नयेपन के कारण संभवतः उसे एकाएक चौंकाने वाली भी लग सकती हैं; इसे वह स्वाभाविक समझता है; वह यह भी देखता है कि वर्तमान काल में हिंदी-काव्य की रचना करने वाले कवियों की संख्या कम नहीं है, और उनके कृतित्व के मूल्य के विषय में चाहे जो मतभेद हो, किंतु उसकी बहुरूपिणी 'नवीनता' के विषय में कोई मतभेद नहीं। किंतु यह बहुरूपिणी नवीनता नये हिन्दी-काव्य की है तथा कथित 'नई कविता' की नहीं जो एक फिरके के भीतर पनप रही है।

प्रथम प्रश्न स्वयं नामकरण से उठता है। 'नई कविता' किस कविता का नाम है? उसकी परिभाषा से संबद्ध एक निश्चित तथ्य यह है कि वह छायावाद-युग की परवर्ती है। क्या इस काल में विरचित उन कविताओं को भी 'नई कविता' में सम्मिलित किया जा सकता है जो उपकरण, भाव-वस्तु और अभिव्यंजना-शैली में पूर्णतया तथाकथित व्यतीत युग का अनुगमन करती हैं? स्पष्टतया नहीं, क्योंकि ऐसा करने से मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी-युग के ही कवि न रहकर छायावादी और 'नई कविता' के कवि भी बन जायँगे। तब नई कविता क्या है? वह समस्त कविता नई है जो उपर्युक्त परिसीमन से कम या अधिक मुक्त होते हुए नये विकासों की सूचना देती है। नये विकास बौद्धिक चेतना, भाव-वस्तु और अभिव्यंजना-शैली, प्रत्येक क्षेत्र में देखे जा सकते हैं। किंतु इस काव्य में एक से अधिक दिशाओं, और यहाँ तक कि दिग्भ्रम, के भी दर्शन होते हैं। समीक्षक का कार्य दिग्भ्रम की स्थितियों और अपेक्षातर स्पष्ट दिखने वाली दिशाओं और गतियों का अनुशीलन करना है। इस अर्थ में नई कविता एक व्यापक वस्तु है जिसमें अनेक प्रेरणाओं और दृष्टिकोणों का सह-अस्तित्व है। एक ओर बच्चन जैसे कवि हैं, जिनमें छायावाद की गीत-शैली व्यक्तिवाद का अग्रिम विकास और काव्य-भाषा में सरल सौन्दर्य का विन्यास मिलता है; दूसरी ओर वे कवि हैं जिन्होंने 'यथार्थवाद' की मांग स्वीकार की और जिनमें से कुछ मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक मान्यताओं को अपना आधार बनाकर चले। नई शैली और नई उपमाओं का आग्रह सबमें एकसा नहीं है; कुछ भाव-निरूपण को प्रधान मानकर चलते हैं तथा अन्य शैली-निरूपण को। काव्य के कलात्मक, वैयक्तिक और सामाजिक पक्षों तथा उनके महत्व के न्यूनाधिक्य के विषय में मतभेद है। व्यक्तिवादिता जिनमें विशेष है वे मानसिक उलझनों, अंतश्चेतन और अंतर्द्वन्द्व की ओर अग्रसर हो जाते हैं और जिनमें सामाजिकता विशेष है वे नीति, राजनीति और वर्ग-संघर्ष की ओर। कुछ ऐसे भी हैं जो इन दो सीमान्तों में से किसी के कट्टर अनुयायी अथवा हामी नहीं हैं, किंतु जिनके काव्य में यत्र-तत्र दोनों प्रकार की चेतनाओं के प्रभाव लक्षित होते हैं। सैद्धान्तिक कट्टरता अथवा उसके अभाव से ऐसी स्थितियाँ निर्मित होती हैं।

किंतु उपर्युक्त आधार पर चलकर हम उस 'नई कविता' और उसकी मान्यताओं के विवेचन से बहुत दूर तक वंचित हो जायँगे, जिसकी परिधि सीमित है और जो स्वयं के विषय में बहुत मुखर है। उसकी बानगियाँ 'नई कविता' नाम से प्रकाशित होने वाले व्याख्या-समन्वित संकलनों में प्राप्त होती हैं। नीरज और नागार्जुन यहाँ बहिष्कृत हैं अथवा स्वेच्छा से वे इस मंडली में भरती होना स्वीकार नहीं करते; और हंसकुमार तिवारी तथा विद्यावती 'कोकिल' संभवतः 'इष्टं इष्टेन योजयेत्' के अनुसार अन्य नये कवियों के साथ नियोजित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं। इस प्रकार 'नई कविता' का क्षेत्र एक साथ सीमित और असीम है। अब कोई समीक्षक उँगली उठाकर बच नहीं सकता। यदि वह नई कविता को सीमित (संकीर्ण के अर्थ में) कहता है तो हंसकुमार तिवारी को हथियार बनाकर उसे उड़ाया जा सकता है, और यदि वह उसे सीमाहीन (रूपहीन) के अर्थ में कहता है तो नीरज और नागार्जुन के उदाहरण का उपयोग उसे भू-लुंठित करने के लिए पर्याप्त होगा।

नई कविता के व्याख्याता उसके स्वरूप के विषय में जो कुछ कहते हैं उसमें स्वाभाविक बहुरूपता के साथ यदि कोई एक निश्चित तथ्य है, तो वह है छायावाद का विरोध। सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं—"**नई कविता ने मानव-भावना को छायावादी सौन्दर्य के धड़कते हुए पलने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन-समुद्र की उत्ताल लहरों में पेंग भरने को छोड़ दिया है; जहाँ वह साहस के साथ सुख-दुःख, आशा-निराशा के घात-प्रतिघातों में बढ़ती हुई युग जीवन के आँधी-तूफानों का सामना कर सके, अंतर्वेदना से मुक्त होकर सामाजिक व्यथा के अनुभवों से परिपक्व बन सके। नई कविता विश्ववर्चस्व से प्रेरणा ग्रहण करके तथा आज के प्रत्येक पल बदलते हुए युग-पट को अपने मुक्त छन्दों के संकेत की तीव्र-मन्द गति-लय में अभिव्यक्त कर युग-मानव के लिए नवीन भाव-भूमि प्रस्तुत कर रही है।**" यदि हम 'पलने के धड़कने' पर न भी ध्यान दें तो भी इस वक्तव्य में दो पक्ष उल्लेखनीय हैं—एक तो यह कि छायावाद स्वप्न और कल्पना की वस्तु थी और अन्य यह कि 'नई कविता' वास्तविक जीवन के अनुभवों से निर्मित होने वाली वस्तु है। यही नहीं, 'नई कविता' का एक महान् निर्माणात्मक लक्ष्य भी है, और वह है 'युग-मानव' के लिए 'नई भाव-भूमि' प्रस्तुत करना।

'नई कविता' की दूसरी परिभाषा गिरिजाकुमार माथुर से प्राप्त होती है—"**मौजूदा कविता के अंतर्गत वह दोनों ही प्रकार की कविताएँ कही जाती रही है जिनमें एक ओर या तो शैली, शिल्प और माध्यमों के प्रयोग होते रहे हैं या दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जाता रहा है। लेकिन नई कविता हम उसे मानते हैं जिसमें इन दोनों के स्वस्थ तत्वों का संतुलन और समन्वय है। यह नई कविता नये शिल्प और उपमानों के प्रयोग के साथ समाजोन्मुखता और मानवता को एक साथ अंजलि में भरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है। उसकी नज़र अतीत की श्यामलता और वर्तमान के संघर्ष से आगे भविष्य पर टिकी है। जीवन की संघर्षजन्य कटुता के बीच भारतीय आदर्शानुसार उसकी आशा की लौ निष्कंप है, क्योंकि उसे विश्वास है कि आज चाहे जो स्थिति हो मानवता का भविष्य कल्याणमय है और वह हर अमंगल शक्ति पर निश्चित रूप से विजय प्राप्त करेगी। इसीलिए नई कविता पलायन, पस्ती और पराजय की कविता नहीं हो सकती।**"

'नई कविता' की उपर्युक्त परिभाषा में संभवतः ऐसी कोई बात नहीं छूट पाई है जिसकी मांग समीक्षक समय-समय पर उठाते हैं। ये कतिपय अच्छे लगने वाले किन्तु सामान्य निर्देश हैं। इनके आधार पर यदि 'कामायनी' को परखा जाय तो उसकी भी गणना नई कविता के अंतर्गत हो जायगी। उसमें शिल्प और समाजोन्मुखता का समन्वय है, महाकाव्य की पुरानी मान्यताओं से भिन्न वह एक नये प्रकार का महाकाव्य है, नये उपमानों के प्रयोग उसमें हुए हैं, अतीत और वर्तमान का समाहार और अतिक्रमण करते हुए भविष्य के प्रति गतिमानता उसमें है, मानवता उसमें प्रतिष्ठित है और भारतीय आदर्शानुसार आशा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लौ भी उसमें निष्कंप है। स्पष्ट है कि ऐसी परिभाषा 'नई कविता' की किसी विशेषता का परिचय नहीं देती।

'नई कविता' वास्तव में उस कविता का ही दूसरा नाम है, जिसे हिंदी में 'प्रयोगवाद' अभिधान मिला है और 'तारसप्तक' जिसका आदि-स्रोत है। 'प्रयोगवाद' शब्द को लेकर होनेवाले घात-प्रतिघातों के विषय में हम कुछ नहीं कहना चाहते, कुछ विषयों पर तो हम 'तारसप्तक' के संपादक की सत्यवादिता पर मुग्ध हैं। उनकी जो बातें सहज स्वीकार-योग्य प्रतीत होती हैं वे इस प्रकार हैं—"[**'तारसप्तक' के कवियों में] मतैक्य नहीं है, सभी महत्त्व-पूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है—···काव्य-वस्तु और शैली के, छन्द और तुक के कवि के दायित्वों के—प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है।" "प्रयोगों का महत्त्व कर्ता के लिए चाहे जितना हो, सत्य की खोज, लगन, उसमें चाहे जितनी उत्कट हो, सहृदय के निकट वह सब अप्रासंगिक है। पारखी मोती परखता है, गोताखोर के असफल उद्योग नहीं। ······इस प्रकार 'प्रयोग' का 'वाद' और भी बेमानी हो जाता है।"** समीक्षक को आपत्ति यह है कि 'तारसप्तक' की कविताओं में उसे मोती नहीं मिले। प्रयोग के नाम पर नये उपमानों की योजना और नई लय की साधना का जो रूप वहाँ प्रस्तुत है वह किसी प्रकार के उत्कर्ष का द्योतक नहीं है। यदि ढूँढ़-ढाँढ़कर दो-चार ऐसी नई उपमाएँ पा भी ली गईं जो काव्यात्मक प्रभाव रखती हैं, तो केवल उनकी स्वीकृति न तो समीक्षक को तोष दे सकती है और न नये काव्य का कोई महत्त्व ही उनके द्वारा द्योतित होता है। विचार के क्षेत्र में 'तारसप्तक' के कवि परस्पर इतने भिन्न हैं कि उन्हें ध्यान में रखकर नई कविता की किसी प्रकार की रूपरेखा की धारणा निर्मित करना संभव नहीं। उनमें से कोई भी कवि इतना शक्तिमान नहीं कि केवल उसे और उसके काव्य को महत्त्व देकर आगे बढ़ा जा सके। इस प्रकार वह संकलन न तो सामूहिक प्रयास के रूप में चर्चा करने का अवसर देता है और न व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के आधार पर। कुछ चर्चा यदि संभव है तो वह उसमें प्रस्तुत व्याख्याओं और वक्तव्यों के आधार पर। संभवतः अज्ञेय का दावा इससे अधिक है भी नहीं, और उस स्थिति में हम उनसे पूर्णतया सहमत हैं।

अज्ञेय के अधिकारी वक्तव्य के अनुसार प्रथम सप्तक के कवि यदि राहों के अन्वेषी थे तो द्वितीय सप्तक के कवियों में से कुछ अवश्य गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, बच्चन, दिनकर—इस सूची को आगे बढ़ाने पर उसमें उल्लेख योग्य हैं, अर्थात् वे राहों के अन्वेषी नहीं बल्कि पहुँचे हुए हैं। इसमें संदेह नहीं कि काव्य की दृष्टि से दूसरा सप्तक बहुत आसानी से प्रथम सप्तक से ऊँचा है। उसमें संकलित कुछ कवि दूसरों से अधिक महत्त्व रखते हैं और व्यक्तिगत रूप से उनकी कविताएँ विचार-योग्य हो सकती हैं; किन्तु सामूहिक रूप में यहाँ भी नये काव्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। कवियों के वक्तव्य और उनके कृतित्व में परस्पर इतनी विभिन्नता है कि उनके बलात् समाहार द्वारा नई कविता की कतिपय प्रवृत्तियों का आकलन करना इसका उदाहरण होगा कि जहाँ एकता नहीं है वहाँ उसे कैसे खोजा जा सकता है। वैचित्र्य और असम्बद्धता की दृष्टि से हरिनारायण व्यास का वक्तव्य एक अनुपमेय वस्तु है। वहाँ छायावाद का व्यक्तिवाद **"पतनोन्मुखी मन की विवशता का परिचायक है, जिसमें व्यक्ति ने अपनी मानसिक दासता के लिए अपनी एक मौलिक एवं मधुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दार्शनिक वृत्ति को अपना लिया था," इस वक्तव्य के साथ यह भी पढ़ने को मिलता है कि "शेखर एक व्यक्तिवादी पात्र है। किन्तु उसका व्यक्तिवाद एक दास मन का रुदन नहीं है।··· उसे विद्रोह द्वारा अपनी माँगों का महत्त्व समझाना आता है; वह 'रिरियाता' नहीं और न भीख ही मांगता है।" यही नहीं, हम सीखते हैं कि "तारसप्तक का व्यक्तिवाद वस्तुतः शेखर की वैयक्तिकता का ही काव्यात्मक रूप था," फासिज़्म जब दूसरा महायुद्ध लेकर सिर पर आ सवार हुआ तब व्यक्तिवादी बातों में आस्था के लिए स्थान लब्ध होना कठिन था, निदान कवि "इकाई को खण्ड-खण्ड होता हुआ देखकर शंकित हो उठता है और आत्मा विस्मृत। और पूछने लगता है, 'कौनसा पथ है?' वह घोर अन्तर्मुखी हो जाता है और उसके कण्ठ से चीत्कारें फूट पड़ती हैं।·········तारसप्तक में इन्हीं चीत्कारों का प्राधान्य है।" इसके पहले कि पाठक 'तार सप्तक' की न रिरियाने वाली विद्रोहिता के साथ उसमें उपस्थित चीत्कारों के प्राधान्य का संबंध स्थापित कर सके, यह नया कवि उसे नई कविता के उस उत्थान पर ले जाता है जहाँ "कविता अपनी विशाल अमूर्तता के कारण समाज की व्यापक अनुभूतियों को स्पर्श करने की, उन्हें प्रेरित करने की क्षमता रखती है।" जब तक बुद्धि 'विशाल अमूर्तता' से उबर पाये, उसके पूर्व ही वक्तव्यकार को अपनी मौलिकता का स्मरण हो आता है। लोग उसे मात्र एक अनुगामी ही न समझ लें, इस भय से वह इन शब्दों में अपनी स्वतंत्र स्थिति को स्पष्ट करता है—"तारसप्तक के कवि की सामाजिक स्थिति और उसके बुद्धिवाद ने उसको अन्तःसंघर्ष दिया और मुझे उस बुद्धिवादिता से बाह्य संघर्ष के लिए प्रेरणा मिली। तारसप्तक के कवि की जिस विचारधारा ने अपनी ही आलोचना सिखाई, जिससे वह नकारात्मक बन गया, मुझे उस विचारधारा ने प्रगतिशील शक्तियों से सामंजस्य करने के लिए उन्मुख किया। तार सप्तक के कवि के लिए निसर्ग एक आत्म-भर्त्सना का स्थान बना, मेरे लिए प्रेरणा-भूमि। क्योंकि निसर्ग की गोदी में सर्वहारा-वर्ग के कर्मक्षेत्र एक गाँव में मेरा जन्म हुआ······।" यही कवि उपसंहार में हमें बतलाता है कि 'कविता एक सपनों का संसार है। और यह संसार यदि नये जीवन के क्रीड़ास्थल नये जगत् की रंगीनी से सिक्त हो तो कवि का कर्म और उसका सामाजिक दायित्व सार्थक हो जाते हैं।" चिंतन के क्षेत्र में कैसा सुन्दर 'प्रयोग' है! अब हमारे लिए यही रह जाता है कि अनमेल और अनर्गल वक्तव्यों में कोई नया रूप और नई सार्थकता देखें, अथवा स्वयं को 'मध्ययुगीन चेतना' से ग्रस्त और पिछड़ा हुआ मानकर चुप रह जायँ।

प्रश्न यह है कि जो कविता केवल प्रयोगशीलता के नाम पर एक जगह संकलित है उसका विवेचन किन आधारों पर किया जाय? यदि केवल प्रयोग पर ध्यान रखा जाय तो केवल गति, लय, शब्द-योजना, अलंकार-विधान और शिल्प—अर्थात् कलापक्ष—का अनुशीलन सम्भव है। किन्तु क्या कलापक्ष भावपक्ष से पूर्णतया विच्छिन्न करके देखा जा सकता है? विशुद्ध शास्त्रीय जिज्ञासा की तृप्ति इससे अवश्य सम्भव है, परन्तु वह भी तब उपादेय है जब उसमें अभिव्यक्त काव्य स्वयं महत्त्वपूर्ण है और सचमुच नई लय और नवीन शिल्प वहाँ सिद्ध और लक्षणीय हैं। इस पर भी नई कविता को एक संश्लिष्ट इकाई नहीं माना जा सकता। अज्ञेय कहते हैं कि "···आत्म-सत्य के अन्वेषी कवि को, अन्वेषण के प्रयोग-रूपी माध्यम का उपयोग करते समय उस माध्यम की विशेषताओं को परखने का भी अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**है। इतना ही नहीं, बिना माध्यम की विशेषता, उसकी शक्ति और उसकी सीमा को परखे और आत्मसात् किये उस माध्यम का श्रेष्ठ उपयोग हो ही नहीं सकता।"** किन्तु परखे और आत्मसात् किये जाने की इस प्रक्रिया में माध्यम का पुनर्निर्माण न होकर उसकी दुर्गति ही हुई है।

'नई कविता' के अंकों में इसी परम्परा का विस्तार मिलता है। वहाँ भी कविता के साथ व्याख्याएँ प्रस्तुत हैं। सामान्यतः कवियों और उनके काव्य-सहयोगियों को यह अधिकार है कि अपने उद्देश्यों और विधियों की चर्चा करें; किन्तु इस प्रकार की जो चर्चा यहाँ मिलती है वह वचन-बहुल और रूपहीन है। पश्चिम के सिद्धान्त-सम्पन्न क्षेत्रों पर आक्रमण करके जो भी हाथ लग गया और जो भी अवसरोपयोगी प्रतीत हुआ, वही नई कविता का आधार बताया जा रहा है। टी० एस० इलियट और आई० ए० रिचर्ड्स, हॉप्किन्स और हर्बर्ट रीड का उल्लेख यहाँ स्वयं उनके लिए नहीं, किसी मूलभूत सिद्धान्त के लिए नहीं, प्रत्युत् केवल उस तिनके के रूप में किया गया है जो डूबते हुए का सहारा बन सके। यूरोपीय काव्य और समीक्षा के इन महामहिमों से हमारा कोई झगड़ा नहीं, उनसे कुछ ऐसी बातें सीखने में हम गर्व का अनुभव करेंगे जिनमें वे निश्चय ही हमसे आगे हैं। किन्तु उनका अध्ययन एक व्यवस्थित और गम्भीर प्रयत्न के रूप में होना चाहिए। इस कार्य में उनके इतिहास और उनकी साहित्यिक विरासत को सदा ध्यान में रखना होगा। इसी प्रकार उन्हें 'आत्मसात्' करते समय हम अपने इतिहास और अपनी साहित्यिक विरासत को भूल नहीं सकते। भारत का इतिहास वही नहीं है जो यूरोप का है और इस तथ्य की उपेक्षा करके हम कुछ नहीं पा सकते।

पश्चिम की मदद से चीजें कितनी आसान हो जाती हैं! हॉप्किन्स ने लय में प्रयोग किये और उस नई लय का निर्माण किया जो 'Sprung rhythm' के नाम से विख्यात हुई। देखिए, हम भी तो वही कर रहे हैं—प्रयोग; और हॉप्किन्स की सफलता तत्काल हमें सिद्ध करती है! भुलाया कुल इतना ही गया है कि हॉप्किन्स ने अपने प्रयोगों को चरम उपलब्धि से मंडित किया था। मृत्यु के पूर्व उनकी कविताएँ न छप पाईं। प्रतिरोध पाकर वे धँस पड़ने के लिए आकुल नहीं हो गए, वरन् उससे दृढ़ता प्राप्त करते हुए उन्होंने एकान्त में अपनी साधना सम्पन्न की। ऐसी लगन उनमें इसलिए थी कि वे एक गहरी आस्था से सम्पन्न थे। उन्होंने वह उपलब्ध किया जिसे अन्य असार और असम्भव समझे हुए थे। क्या हिन्दी के समीक्षक उतने ही अन्ध और रूढ़िग्रस्त हैं जितने इंगलैंड के वे समीक्षक थे जिन्होंने काव्य के मंदिर से हॉप्किन्स का सफल निष्कासन कर दिया था? यदि यह सच है तो नैसर्गिक प्रति-शोध एक दिन अवश्य उनसे हिसाब चुकता करेगा। किन्तु यह तभी संभव है जब हिन्दी में उसका अपना हॉप्किन्स उत्पन्न हो जाय, और तब, भय है कि समीक्षक उसे पहचान जायँगे। अभी तो यही दिखाई देता है कि हॉप्किन्स का उदाहरण देकर 'नई कविता' की लयहीनता को नूतन लयशीलता सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है। कभी-कभी दीवार से सिर टकराकर भी तारे दिखाए जा सकते हैं।

टी० एस० इलियट का दृष्टान्त और उनके वक्तव्य सामने रखे जाते हैं। विशेषतः उनकी उस उपलब्धि का उल्लेख किया जाता है जिसे आई० ए० रिचर्ड्स ने 'Music of

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Ideas' कहा है और बतलाया जाता है कि कवि-विशेष हिन्दी में उसी पथ का अनुसरण करना चाहते हैं। अवश्य करें, किन्तु यहाँ भी विशेष सतर्कता वांछित होगी। टी० एस० इलियट के प्रयोगों और तर्कों ने उन्हें सिद्ध नहीं किया, उनका जीवन्त प्रमाण स्वयं उनका काव्य है। उन्होंने बीते युगों की उपेक्षा नहीं की, प्रत्युत सच्ची मनस्विता के साथ उसके अध्ययन और विश्लेषण का भार उन्होंने उठाया। एक नये प्रकार की काव्य-कला की उन्होंने सृष्टि की, किन्तु अपनी विरासत का उन्होंने पूर्णतम उपयोग किया। यह कार्य वे एक मौलिक ढंग से कर सके, क्योंकि शिल्प के पूर्व उनके पास एक आस्था थी। इस आस्था ने ही उनके प्रयोगों को एक निश्चित दिशा में अग्रसर किया। किन्तु उनकी उपलब्धि इतनी व्यक्ति-विशेष है कि उनका अनुसरण या अनुकरण करने वाले अनिवार्यतः विफल हुए। इससे उनका सिद्धान्त उतना प्रमाणित नहीं होता, जितनी प्रमाणित उनकी प्रतिभा की महानता होती है। उन्होंने कुछ ऐसा किया, जिसे केवल उन्होंने किया है। विशुद्ध विचार की दृष्टि से यह इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस या उस भूमि में पुनः ऐसी प्रतिभा का उदय सम्भव है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि उनके लिए एक अनुपेक्षणीय चेतावनी है जिनके लिए टी० एस० इलियट का सिद्धान्त उनके व्यक्तित्व से अधिक भारी है। इन विधियों का प्रयोग हिन्दी में करने से कोई किसी को रोकेगा नहीं, किन्तु यदि कोई उदीयमान इलियट है तो समीक्षक उसके काव्य के आगमन की बाट जोहेंगे। वे यह लक्ष्य करेंगे कि इस प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं, और यदि उनमें स्वल्पतम सफलता के संकेत मिलते हैं तो उन पर भी ध्यान दिया जायगा। इलियट के आगे कोई दृष्टान्त नहीं था, हिन्दी के इलियट का सौभाग्य है कि इलियट के रूप में उसे एक अनिंद्य आदर्श प्राप्त है।

यह नहीं भूलना चाहिए कि भाव-विनियोग में सक्षम पाठक-वर्ग के अभाव की अनुभूति इलियट में अत्यन्त प्रखर थी। उन्होंने निर्णय किया कि उसके लिए लिखने का प्रयत्न ही वे नहीं करेंगे। भाव-विनियोग को ध्यान से हटाकर उन्होंने अपनी समस्त शक्ति एक नव्य और स्वयं-संपूर्ण शिल्प तथा अभिव्यंजना-शैली की उद्भावना और निर्माण में लगा दी। जन-जीवन से दूर हटकर उन्होंने एकान्त में कार्य किया और जब सिद्ध होकर वे सामने आये तब विद्वानों का एक भावक-वर्ग उनके स्वागत के लिए तैयार था। अनेक महान् कवि प्रसिद्ध हो जाते हैं, किन्तु जनता के कवि नहीं बनते। मिल्टन और निराला ऐसे ही उदाहरण हैं। वे हिमालय के समान ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं, जो जन-साधारण के लिए अगम्य होती है। वे सचमुच महान् कवि बने रहते हैं क्योंकि उनकी उपलब्धि का विस्तार विशाल होता है और उनकी सफलता का गुम्बद गगनचुम्बी। जन-साधारण के लिए उनकी सफलता की कहानी विद्वानों के माध्यम से छनकर पहुँचती है। वे उनके अध्ययन का कष्ट इसलिए सहन करते हैं कि उसका पारितोषिक असीम होता है। संभवतः यह उनके युग-दर्शन की आवश्यकता है जो उन्हें इस प्रकार एकान्त में भेज देती है। टी० एस० इलियट ने अपने जगत् को अत्यन्त कुरूप और किसी प्रकार के सौन्दर्य के जन्म के लिए बंजर पाया। ऐसी स्थिति में कवि या तो अंतर्जगत् के दर्शन के लिए अग्रसर होता है, अथवा कुरूप को वह स्वीकार करता है और उसे ही कलात्मक रूप में मंडित करता है। इतिहास चाहे अन्य आदर्शों की ओर बढ़कर उसकी प्रतिक्रियाओं को ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रगतिशील और अनुप-

REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



युक्त सिद्ध कर दे, किंतु वे उच्च और सशक्त बने रहते हैं—कुछ ऐसी वस्तु के प्रतीक जिसे इतिहास की गतिमानता ने यद्यपि त्याग दिया है तथापि जो एक समय इतिहास का बहुत सप्राण और महत्त्वपूर्ण भाग थी तथा जिसने इतिहास द्वारा इसी उद्देश्य के लिए चुने हुए व्यक्तियों में स्वर प्राप्त किए—ऐसे व्यक्तियों में जिन्होंने अन्तिम सीमा तक उसका अनुभव किया था। 'वेस्टलैंड' की प्रशस्ति और शक्ति केवल उसके अभिनव शिल्प और नये उपमानों के कारण नहीं है, वह अपने जीवन-दर्शन और पश्चिम की सभ्यता की विगलनशीलता और बंजरपन पर एक व्यापक और सशक्त निर्णय के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है। वह निराशा नहीं प्रत्युत एक कटु यथार्थ की चरम स्वीकृति है। इस स्वीकृति में कवि लिप्त नहीं, वह पूर्णतया वस्तुपरक और तटस्थ है। कुरूप की यह स्वीकृति एक ऐसी वस्तु के अभाव की भी स्वीकृति है जिसे कवि मानव-सत्ता के लिए अनिवार्य मानता है। यह वस्तु उसकी आत्मा का एक शक्तिमान किन्तु मौन आदर्श है। उसका संकेत उस नैतिक तथ्य में मिलता है जिसे कवि ने दान, दया और दम के समावेश द्वारा सूचित किया है। अपने जगत् से वह निराश है, किन्तु अपनी आत्मा के अनुरूप एक नये जगत् का आकांक्षी भी है। ऐसे एक सुनिश्चित और व्यापक जीवन-दर्शन के अभाव में प्रयोग कभी विशुद्ध प्रयोग की स्थिति से उठकर कविता नहीं बन सकते। प्रयोग उद्देश्यहीन नहीं हो सकता और उसका निरूपण वह चेतना करती है जिसकी अभिव्यंजना के लिए कवि स्वयं को विवश पाता है।

प्रश्न यह उठता है कि पश्चिम के कवियों में इस प्रकार का जीवन-दर्शन क्यों आया? इसका कारण पश्चिमी संस्कृति और उसके विकास के इतिहास में मिलता है। रिनेसां की प्रेरणाओं से जिस जीवन को गढ़ना पश्चिम ने आरम्भ किया था वह अपनी चरम परिणति पर पहुँचकर आज क्रमिक विगलन की स्थिति में है। उन्होंने इस उत्थान में कुछ मूल्य स्थापित किये जिन्हें आज वे मिटता हुआ पाते हैं। वह संस्कृति सदोष सिद्ध हो गई और कोई दूसरा पथ सूझता नहीं। साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हामी पश्चिम को प्रिय नहीं, अमेरिका की विशुद्ध औद्योगिक और व्यापारिक सभ्यता अपनी सांस्कृतिक परम्परा के गर्वित इन देशों को असह्य लगती है और कोई नई प्रेरणा स्वयं उनके अन्दर से उठ नहीं पाती। यह एक विचित्र गंभीर और अत्यंत उत्पीड़क अनुभूति है। वे संस्कृति चाहते हैं, किन्तु वह कैसी होगी और कहाँ मिलेगी इस विषय में कुछ नहीं जानते। परिणामतः उनकी वेदना एक अमूर्त किन्तु शक्तिमान आकांक्षा से समन्वित है। विक्टोरियन युग की समाप्ति के साथ अपनी सभ्यता के खोखलेपन का अनुभव पश्चिम को होने लगा। इसे बर्लेन ने कर्म और स्वप्न का विच्छेद कह-कर प्रस्तुत किया। कवियों के विषय में वे कहते हैं—**"वह जगत्, जिसे उनके गंभीर शब्दों ने पीड़ित किया है, उन्हें निष्कासित करता है। वे इसके उत्तर में जगत् को निष्कासित करते हैं।"** अर्थात् कवि जगत् को भूलकर आत्मलीन होना और अपने अन्तर्जगत् की ओर बढ़ना स्वीकार करता है। संसार की गति अविभिन्न है और कवियों के आदर्श भिन्न हैं।

काव्य में 'सिम्बोलिज़्म' और 'इमेजिज़्म' का जन्म होता है तथा चित्रकला में 'इम्प्रेशनिज़्म' का। कलाकार मनोजगत् के अभिदर्शन के लिए अभियान करते हैं। इसके बाद वादों का ताँता लग जाता है जिसमें वास्तव में अभाव की अनुभूति और उसकी पूर्ति की अनेक चेष्टाएँ परिलक्षित होती हैं। आज वे स्वीकार करते हैं कि जिस पथ पर वे चले उसने उन्हें एक गतिरोध की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्थिति में पहुँचा दिया। अब अपनी संस्कृति के आधारों का पूर्ण विश्लेषण किये विना और नव-निर्माण किये विना कोई पथ नहीं है। एडिथ सिटवैल के काव्य में नई आशा और मानवता के भविष्य में एक नई आस्था के स्वर गूँजने लगे। इस अवधि में विभिन्न कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से अपने विभक्त व्यक्तित्व को एकान्वित किया। स्वयं टी० एस० इलियट ने १६२८ ई० में अपने सामान्य दृष्टिकोण को साहित्य में 'क्लीसीसिस्ट', राजनीति में 'रॉयलिस्ट' और धर्म में 'ऐंग्लो-कैथॉलिक' घोषित किया। अनास्था की परिस्थितियों में कवियों ने आस्था की खोज की। ऑल्डस हक्सले जैसे उपन्यासकार विशुद्ध शरीरवाद की स्थिति से आरम्भ करके वेदान्त के सुरक्षित कक्ष में प्रविष्ट हुए। हिन्दी की 'नई कविता' में विविध अन्य सामग्री के साथ पश्चिमी काव्य की इस समस्त अवधि की चेतना के उच्छिन्न कण प्राप्त होते हैं, इसीलिए वह कविता बुद्धिजीवियों के ऐसे वर्ग की चेतना को अभिव्यक्त करती है जिसने पश्चिम का क्रमहीन, असंबद्ध और अधूरा अध्ययन किया है।

जिस काल में पश्चिम का विकास उक्त दिशा में हुआ उसी काल में हिन्दी-काव्य एक दूसरी दिशा में प्रवाहित हुआ। वह बृहत्तर यथार्थ एक था जिसमें पूर्व और पश्चिम अनुस्यूत थे। वह यथार्थ पृथ्वी पर पश्चिम की विजय और आधिपत्य से निर्मित था। किन्तु उसके दो पक्ष दो नितान्त भिन्न चेतनाओं के जन्म-दाता बने। पश्चिम में जब रुडयार्ड किपलिंग ने साम्राज्य, यंत्र-युग और वीरता के गीत गाए, तब हिन्दी-कविता राजभक्ति से मुक्त होती हुई प्राचीन गौरव के स्मरण पर आश्रित करुणापूर्ण देशभक्ति के उद्‌गार व्यक्त कर रही थी। युद्ध-क्षेत्र के कवियों (Trench Poets) ने १६१७-१८ में जब देशभक्ति को पर्याप्त नहीं पाया और युद्ध के निष्करुण, विनाशक, अमानवीय और अर्थहीन रूप को काव्य में अंकित किया, उस समय हिन्दी में 'भारत-भारती' के ही स्वर गूँज रहे थे और आदर्शनिष्ठ 'बलि-पंथी' की अवतारणा हो रही थी। 'कामायनी' तक पहुँचकर हिंदी-काव्य भारत में एक नये और पूर्ण आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा को मुखरित कर सका। यह आत्मविश्वास उस मनुष्य की अवतारणा में निरूपित है जो प्रकृति की शक्तियों में सामंजस्य स्थापित करते हुए, घोरतम संकटों के विरुद्ध अभ्युदय का उपाय करते हुए, भावना और बुद्धि के साथ आस्था और तर्क, ज्ञान और विज्ञान तथा पूर्व और पश्चिम में समन्वय स्थापित करते हुए सृष्टि को उसके चरम मंगलमय लक्ष्य तक ले जायगा। जब पश्चिम एक कटु यथार्थ में छटपटा रहा था, तब भारत की आत्मा नये स्वप्नों और नये आदर्शों के सूर्य जगा रही थी। इन स्वप्नों को काल्पनिक कहकर टालना काव्य को बहीखाते के समान पढ़ना है। इसके बाद भी अवसाद और विभक्त व्यक्तित्व का कोई कारण दिखाई नहीं देता। पश्चिम में रिनेसाँ ने जो स्वप्न देखा था उसे यथार्थ में निर्मित किया और तब विगलन की स्थिति वहाँ आरम्भ हुई। हमारा अभ्युदय का स्वप्न आज भी स्वप्न ही है, उसकी उपलब्धि से हम बहुत दूर हैं और उसकी प्राप्ति के प्रयासी हैं। अतएव पश्चिम की और हमारी मनोदशा एकसी नहीं हो सकती। हिन्दी-काव्य को जबरन पश्चिमी काव्य का अनुगामी बनाना उसके साथ बलात्कार है।

यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि यन्त्र-युग के साधनों ने सम्पूर्ण पृथ्वी को एक इकाई में बदल दिया है, अतएव दूसरों से अलग होकर हम नहीं रह सकते। यह सत्य है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस इकाई के अन्तर्गत समस्त गतियाँ एक-सी हैं। यह इकाई और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अणुयुद्ध की सम्भावना हमारी राष्ट्रीय गति को एक निश्चित परिस्थिति से बाँध देती है, जिसकी अवहेलना करना सम्भव नहीं है। किन्तु एकता लाने वाली इस शर्त का यह अर्थ नहीं कि पश्चिम और भारत की गतियाँ एक हो गई हैं। हिन्दी-काव्य न तो अज्ञता से पुरस्सर हो सकता है और न अन्धानुगामिता से। दूसरे शब्दों में हम उस जीवन-दर्शन को नहीं स्वीकार करते और न सत्य ही मानते हैं जिसे 'नई कविता' के नाम पर सिद्ध करने की चेष्टा की जा रही है।

'नई कविता' को प्रतिष्ठित करने के लिए जो प्रयास किये जा रहे हैं वे बहुत विलक्षण हैं। कभी-कभी स्वयं-सिद्ध तथ्यों को प्रमाणित करने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया जाता है। हमें बतलाया जाता है कि काव्य केवल पुनरावृत्ति नहीं, सृजन है; सृजन सदा मौलिक होता है; एक नये युग को नये काव्य की आवश्यकता होती है; नये युग के काव्य के लिए नई लयों, नई उपमाओं और नई शब्द-योजनाओं की आवश्यकता होती है। इन अत्यन्त स्वाभाविक बातों का विरोध करता कौन है! डॉ॰ देवराज ने केवल यह सिद्ध करने के लिए स्वयं को अनावश्यक रूप से निपीड़ित किया है कि प्रयोग सदा होते आये हैं। इसमें भला कोई सन्देह भी है, फिर पहाड़ खोदने की क्या जरूरत थी? यह एक ऐसी वस्तु है जिसे किसी भी साहित्य के इतिहास का साधारण विद्यार्थी भी भली भाँति जानता है। साँसें कीमती होती हैं और कोई उन्हें इस निर्दयता से खर्च करे इसके पूर्व ही हम अनावश्यक को अतिरिक्त श्रम के साथ करने की क्षमता के समक्ष प्रणत हैं। बतलाया जाता है कि नये काव्य की आवश्यकता है, किन्तु प्रश्न आज स्वयं इस नये काव्य तथा उसकी उपलब्धि अथवा उपलब्धि के अभाव के विषय में उठाया जा रहा है।

जगदीश गुप्त यह सिद्ध करने में व्यस्त रहे कि लय केवल स्वर या शब्द की वस्तु नहीं है, वह अर्थ-संघटन की आत्मा में प्रविष्ट होने वाली वस्तु है। इसके लिए आई॰ ए॰ रिचर्ड्स, हर्बर्ट रीड, इत्यादि के उद्धरण समाहृत हैं, लेकिन ये उद्धरण सिद्ध क्या करते हैं! यही कि लय अन्ततः भाव या चेतना की गति से उत्पन्न होती है और केवल शाब्दिक लय विशेषतः रूढ़ हो जाने पर अपनी प्राण-शक्ति खो देती है। नई चेतना से सम्पन्न कवि अपनी चेतना के अनुकूल नई लयों की सृष्टि करता है। इस वक्तव्य का एक सैद्धान्तिक महत्त्व स्पष्ट है, किन्तु नई कविता के समर्थन में उसका उल्लेख कुछ सन्देह उत्पन्न करता है। लय की यह विशेषता क्या केवल 'नई कविता' में प्राप्त होती है? यदि ऐसा नहीं है तो उसके साथ ही उसे युक्त करने के प्रयत्न का क्या अर्थ हो सकता है? सम्भवतः यह कि 'नई कविता' की लयहीनता को छिपाने के लिए वह एक सम्भव छद्मवेश है। पुरानी और नई होने से भी अधिक लय के लिए यह आवश्यक है कि शाब्दिक लय और चेतना की गति में पूर्ण सामंजस्य हो। ऐसा न होने पर नई लय भी नई चेतना का गला घोंट सकती है। शाब्दिक लय तथा-कथित अर्थ की लय का ही प्रत्यक्ष रूप है। सुकवि अपनी चेतना को बने-बनाये साँचे में नहीं ढालता, किन्तु उसकी प्रकृति के अनुकूल नया रूप विधान करता है। पाठक या श्रोता पहले इस रूप-विधान को देखते हैं और तब उसके सहारे कवि की चेतना की गति को पकड़ते हैं। इस प्रकार शब्द और अर्थ की लय में पूर्ण सामंजस्य की आवश्यकता के कारण शाब्दिक लय की अवहेलना नहीं की जा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


'भारतीय भाषाओं में नई कविता : कुछ नोट्स' के रचयिता प्रभाकर माचवे निवेदन करते हैं कि **"हिन्दी में यह नई कविता का आन्दोलन अन्य सभी वादों की भाँति बहुत विलम्ब से आया है...।"** उसके आगमन का उपयुक्त समय क्या होता इसका निर्णय वे ही करें। अन्य भारतीय भाषाओं में इस आन्दोलन की स्थिति का परिचय देना उनके 'नोट्स' का उद्देश्य है। सारांश यह है कि पुराने-नये का यह संघर्ष सभी भारतीय भाषाओं के काव्य में दृष्टिगोचर होता है। इसी के साथ विभिन्न प्रान्तों के कुछ कवियों के नामों की सूची मिलती है। नई कविता के विषय में जो कुछ तथ्य उन्होंने संचित किये हैं, उनका एक उदाहरण विशेष लक्षणीय है। उड़ीसा के कवि गोपालचन्द्र मिश्र ने माचवेजी को बतलाया कि जब उनकी कविता में एटम बम की उपमा प्रेयसी की आँखों से दी गई तो पाठक सहसा चकित हो गए। चकित न होकर माचवेजी ने स्पष्टीकरण चाहा। कवि बोले—"पुराने खेवे के आलोचक अपने दृष्टिकोण को बदलने की असमर्थता के समर्थन में ऐसा ही कहते हैं। वस्तुतः नये विज्ञानाविष्कारों ने हमारे—रचनाशील सृजनशील कलाकारों के सामने एक चुनौती फेंकी है। भाषा अब बचकानी नहीं रही। बच्चा भी अब समझता है कि कमल-लोचन कहने से केवल देवालय के देवता की मूर्ति का बोध होता है। मनुष्य के लिए यह प्रयुक्त करना उसे पत्थर बना देना है। क्या कर-कमल और पद-कमल हम केवल ध्वनि-शून्य परम्परित शब्दावली की तरह प्रयुक्त नहीं करते ?" इसके बाद माचवेजी लिखते हैं—**"इसी प्रकार कई नये उड़िया कवियों से मिलने से मैं समझ सका।"** वे क्या समझे यह शायद हमारी समझ पर छोड़ दिया गया है। अब रास्ता यही है कि या तो आप एटम बम की उपमा प्रेयसी की आँखों से देखकर सृजनशील काव्य की अनुभूति कीजिए अथवा 'पुराने खेवे के आलोचक' और 'बचकाने' बनने के लिए तैयार हो जाइए। अन्त में माचवेजी निर्णय करते हैं कि **"अब इन सूचनाओं के बाद...हिन्दी के बारे में कहने को क्या रह जाता है ? 'लोगा मति के भोरा रे'** मसीहा बोल गया, अब चुप्पी में ही भलाई है।

'नई कविता' के समर्थन में नये-नये तर्क खोजकर निकाले जाते हैं। बालकृष्णराव ने इस विषय पर कुछ सन्तुलन के साथ कहने का प्रयास किया है—**"स्पष्टता, दुरूहता, दीक्षागम्यता के आरोप नई कविता पर लगाये जाते हैं...। आरोप सर्वथा अनुचित भी नहीं हैं और न इस पर आश्चर्य करना चाहिए कि जिस भावक-वर्ग की दृष्टि निराकार को साकार मान सकी वह नई कविता में नयेपन के सिवा कुछ क्यों नहीं देख पाती ? दोष दोनों का है। अँधेरे से रोशनी में आने पर दृष्टि को अभ्यस्त होने में कुछ देर लगती ही है। यह भी सत्य है कि नई कविता के नाम पर इतनी बेमतलब और बेसिर-पैर की चीजें धड़ाधड़ सामने आती रही हैं कि देखने वाला इतना चकित हो गया है कि वह निश्चयपूर्वक अपने-आप से भी यह कहने से हिचकता है कि उसे कुछ मिला या नहीं।...यदि नक्कालों की संख्या बहुत हो गई है...।"** पहला लक्षणीय तथ्य यह है कि छायावाद और 'नई कविता' की तुलना क्रमशः अँधेरे और रोशनी से की गई है। क्या यह साधार है ? इसी प्रकार 'नई कविता' की पहचान को एक विशेष कला में बदल दिया गया है। नक्काल-बहुल स्थिति में सत्य की पहचान पारखी ही तो कर सकते हैं। निष्कर्ष निकाला गया है कि जिस चीज के इतने नक्काल पैदा हो रहे हैं उसकी जड़ जमती जा रही है। अच्छा होता यदि बालकृष्णराव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नक्कालों की एक सूची भी दे देते, जिससे जो स्वयं बड़े पारखी बनने की शक्ति नहीं रखते वे सतर्क हो जायँ और असल और नकल की तुलना करके असल को पहचानने की योग्यता क्रमशः प्राप्त कर सकें।

किन्तु प्रतीत होता है कि बीमारी बहुत गहरी उतर गई है और नये कवियों में परिगणित वर्ग में कुछ सचेत तत्त्व उठने लगे हैं। 'नई कविता' अंक ३ में नरेश मेहता ने स्वतंत्र और स्वस्थ विचारणा की ओर कदम बढ़ाया है। उनकी यह व्याख्या 'दूसरे सप्तक' में प्रस्तुत उनके वक्तव्य से मिलाकर देखने योग्य है। वहाँ वे राजनीति और साहित्य को पर्यायवाची मानते हैं, अपनी पिछली छायावादी एवं रहस्यवादी कविताओं को कविता मानने से इनकार करते हैं। हिन्दी में नये प्रयोगों की आवश्यकता दिन-पर-दिन बढ़ती हुई बतलाते हैं और द्वितीय वाली बात पसन्द न करके अपनी मौलिकता और व्यक्तित्व का आग्रह करते हैं। 'नई कविता' में उनका प्रथम वक्तव्य है कि "**अनास्था और किसी वस्तु को भले ही जन्म दे सके किन्तु कला एवं साहित्य को नहीं। अस्वीकार, सभी श्रेष्ठ पूर्व स्वीकृतियों के अशुभ अपंगत्व पर अट्टहास करता हुआ गिद्ध है।......साहित्य, स्वीकारोक्ति है।........ अनास्था, आत्महत्या है। आत्महत्या, राजनीति की स्थिति तो हो भी सकती है, किन्तु साहित्य की वह नियति नहीं।**" इसके पश्चात् आधुनिकता, विज्ञान और प्रगतिशीलता के नाम पर कवियों से जिस अनुगामिता की अपेक्षा की जाती है उसके विरुद्ध वे कहते हैं कि "**राजनीति ने हमें क्रीत दासत्व दिया है।**"

दूसरी पंगु बनाने वाली वस्तु विलायती क्षयिष्णु वैयक्तिकता है—"**हम जीनियस के रोग से पीड़ित रहने लगे। हमने वैयक्तिक संकट के नाम पर जिस बीमार व्यक्तित्व को साहित्य में व्यक्त होने दिया वह था अनुत्तरदायित्वपूर्ण आत्मरति भाव। इस काल में या तो राजनीति के क्रीत दासों ने प्रणयन किया या फिर इन बीमार आधुनिकों ने। राजनीति के पास देने के नाम पर दासता थी और इस विलायती वैयक्तिकता के पास देने के नाम 'द्वीप-भाव' था।**"

'नई कविता' के संकट और प्रयोग के विषय में जो कुछ उन्होंने लिखा है वह और भी ध्यान देने योग्य है—"**......नवीनता अपने में कोई साध्य नहीं। इधर अनेक नई कविता के सामूहिक संकलन मिले हैं जिन्हें देख बोध हो जाना चाहिए कि प्रयोग एवं प्रचार में एक सीमा होती है। जीवन-भर कोई प्रयोग तथा प्रचार की दुहाई दे सकता है। इस नई कविता को साहित्य में आये आज १५ वर्ष होने आए। इतने दिनों के उपरान्त भी यदि हमारी कविताओं की यही दशा है तो निश्चय ही यह कोई श्रेष्ठ स्थिति हो सो नहीं। वस्तुतः हम अपनी कविताओं के खोखलेपन को जानते हैं।......दुःख तो यह है कि हम......उसे छुपाने की कला में निष्णात् भी हैं।......इधर के संकलनों को देखकर स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कविता में आज अज्ञानता, उच्छृङ्खलता आदि बातें मौलिकता मानी जा रही हैं। परम्परा से हीन होने को आधुनिकता की संज्ञा दी जा रही है। हम नये कवियों की सबसे बड़ी कमजोरी है कि काव्य की रचना से भी अधिक आवश्यक यह है कि हमारा कवि का व्यक्तित्व ही नहीं है।......दूसरी ओर भावना की अपेक्षा जिस तर्क-चातुर्य को प्रश्रय दिया गया, यह भी ठीक नहीं हुआ। आज की हमारी कविता तथा हमारे व्यक्तित्वों के बौनेपन को गम्भीर संकट**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अं-२१, पृ-२



के रूप में अनुभव करना होगा नहीं तो नई कविता अपनी सारी चमक-दमक से भी कोई महत्त्वपूर्ण कृतित्व एवं कृतिकार नहीं दे पायेगी।"

उपर्युक्त वक्तव्य यह सिद्ध करते हैं कि वे समीक्षक, जिन्हें 'नई कविता' प्रिय नहीं लग पाई, अनिवार्यतः विद्वेषी नहीं हैं। उनके निर्णय के पीछे तथ्य हैं। यह विश्वास भी दृढ़ होता है कि सच्चा कवि बहुत समय तक अपने कर्तव्य को न पहचानने की भूल नहीं कर सकता। नरेश मेहता एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने विश्वास को दृढ़ता के साथ कहने का सदा साहस किया है। इसकी उन्होंने चिन्ता नहीं की कि दूसरे उनसे सहमत हैं या नहीं। अतएव यदि 'नई कविता' के पुरस्कर्ता उनके प्रति वक्र होने लगते हैं तो इससे उनकी बातों की साधारणता और सत्यता में कोई बाधा नहीं होगी।

प्रस्तुत निबन्ध में हमने उन तर्कों पर विचार किया है जो 'नई कविता' के नाम पर सामने लाये गए हैं। हमने यह निरूपित करने का प्रयत्न किया है कि जिस अर्थ में 'नई कविता' को आगे ठेला जा रहा है वह संकीर्ण है और आधुनिक युग की समस्त कविता उसके कुछ अच्छे अंशों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। उसकी सीमा के अन्तर्गत होने वाली चर्चा अनिवार्यतः सीमित हो जाती है। 'नई कविता' के नाम पर प्रस्तुत किये गए मत और निर्णय वर्तमान हिन्दी-काव्य की समष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उन्हें हम मुरारि के 'तृतीय पंथ' (मुरारेस्तु तृतीयः पंथाः) से अधिक और कुछ नहीं कह सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामरतन भटनागर

# आधुनिक पश्चिमी काव्य

: १ :

आधुनिक काव्य को हम एक प्रकार से १७९८-१८२० ई० तक के रोमांटिक काव्य का परवर्त्ती विकास मान सकते हैं। वास्तव में यूरोप में रोमांटिक काव्य का पहला उच्छ्वास १८२० ई० तक समाप्त हो जाता है और १८६० ई० के लगभग टेनीसन, ब्राउनिंग, प्रीरेफलाइट वर्ग, स्विनबर्न और बोदलेर के काव्य में हमें उसका दूसरा चरण मिलता है। इस दूसरे उच्छ्वास के कवियों की बहुत सी मान्यताओं और काव्य-प्रक्रियाओं ने नये काव्य को जन्म दिया और पो, रिम्बो, मेलार्मे, वर्ले और पाल वेलरे को हम इस नये काव्य का प्रवर्तक कह सकते हैं। वास्तव में काव्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण में बराबर परिवर्तन होता गया है, परन्तु मूलाधार नहीं बदले हैं। काव्य की प्रकृति अब भी स्वच्छन्दतावादी या रोमांटिक है, यद्यपि उसने नियमनिष्ठ ( क्लासिकल ) शैली और सामाजिक बोध से भी बहुत-कुछ नया ग्रहण किया है। कुछ अन्य कारणों से हम उसे रोमांटिक काव्य के भीतर एक स्वतन्त्र धारा के रूप में देखते हैं। नई काव्यधारा और रोमांटिक काव्यधारा के अनन्य सम्बन्ध पर विचार करता हुआ 'एक्ज़िल्स केसिल' का लेखक एडमंड विलसन कहता है—"**उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रोमांटिक आन्दोलन ने जो समस्याएँ उठाई थीं, आज हम उनसे भली भांति परिचित हैं। हम आज भी नियमनिष्ठता (क्लासिसिज्म) और स्वच्छन्दता को लेकर तर्कवाद उपस्थित करते हैं और समसामयिक साहित्य को इन्हीं शब्दों की परिधि में बाँधना चाहते हैं। फिर भी हमारे अपने युग का काव्यान्दोलन न तो केवल स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का पतन है, न उसका प्रसार। उसे हम उसका पूरक ही अधिक कह सकते हैं। वह उसी ज्वार की दूसरी लहरी है। और ज्वार का यह रूपक भी उस पर पूर्णरूपेण लागू नहीं होता। आज जो हमारे सामने प्रस्तुत है, वह पूर्णतः स्वतन्त्र आन्दोलन है जिसका जन्म भिन्न परिवेश से हुआ है और जिसकी व्याख्या के लिए हमें भिन्न परिभाषा गढ़नी होगी।**" जो हो, यह स्पष्ट है कि नये काव्य की प्रवृत्ति भिन्न होने पर भी रोमांटिक काव्यधारा के परिवेश में उसे समझाने में सरलता हो सकेगी।

रोमांटिक काव्यधारा के कारण काव्य और समाज में एवं कल्पना और व्यवहार के जगत् में बहुत गहरी खाई पड़ गई थी, यद्यपि रोमांटिक कवियों की काव्यानुभूति के कारण यह बात अधिक असुविधाजनक सिद्ध नहीं हुई। रोमांटिक आन्दोलन व्यक्ति का विद्रोह था। जिस परम्परावाद के विरुद्ध यह विद्रोह उठा था, उसकी अपनी कुछ विशेषताएँ थीं। उसमें राजनीति और नैतिकता के क्षेत्रों में समाज की समूहगत चेतना का प्रसार था और कला के क्षेत्र में निर्वैयक्तिकता उसका आदर्श थी। क्लासिकल कलाकार अपने चित्र के केन्द्र में उस



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रकार प्रतिष्ठित नहीं होता था जिस प्रकार रोमांटिक कलाकार। वह अपने नायक की सत्ता में विलीन नहीं हो जाता और कथा के बीच-बीच में अपने व्यक्तिगत भावोच्छ्वास को स्थान देना कदाचित् उसके लिए कलाच्युति थी। परन्तु रोमांटिक कृतियों में या तो लेखक (या कवि) ही नायक है या वह अपने नायक से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेता है और इस तरह लेखक का व्यक्तित्व और उसका भावोच्छ्वास पाठक के लिए अदम्य रूप से आकर्षक बन जाता है। ये कलाकार समाज के समष्टिगत अधिकार के समकक्ष व्यक्ति के अधिकार को उभारते हैं। परम्पराओं, रूढ़ियों, नैतिक प्रतिबन्धों, धर्म और शासन की जड़ीभूत संस्थाओं और प्रवृत्तियों के प्रति वे खड्गहस्त हैं। वास्तव में रोमांटिक कलाकार मूलतः विद्रोही है, परन्तु इस विद्रोह का एक दूसरा रूप भी है और वह विशेषतः ऐतिहासिक है। श्री ए० एन० ह्वाइटहेड ने अपनी पुस्तक 'साइंस एण्ड द माडर्न वर्ल्ड' में इस दूसरे रूप का विशदता से उद्घाटन किया है। ह्वाइटहेड के अनुसार रोमांटिक धारा वस्तुतः वैज्ञानिक विचारधारा अथवा विश्व को यांत्रिक संगठन मानने वाली विचारधारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। यूरोप की सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियाँ जहाँ कलापक्ष में क्लासिक्स के प्रभाव को सूचित करती हैं, वहाँ विचार-क्षेत्र में डेकार्टे और न्यूटन का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस युग में कवि प्रकृति और विश्व को स्वचालित यंत्र मानने लगे थे और उनके लिए मानव प्रकृति भी उसी प्रकार पूर्वनिर्दिष्ट, जड़-वत् और यांत्रिक थी। रोमांटिक कलाकारों की प्रकृति-चेतना अत्यन्त सूक्ष्म और कोमल थी। उनके लिए विश्व महान् यंत्र न होकर एक रहस्यमय सत्ता थी। उनके मत में मानव-प्रकृति को किन्हीं दो-चार सूत्रों में बाँधना असम्भव बात थी। वर्ड्सवर्थ के काव्य में वैयक्तिक अनुभूति और बाइरन के काव्य में वैयक्तिक धारणा की प्रधानता है और इन कवियों को अपने भीतर के रहस्यानुभवों, द्वन्द्वों और संघर्षों को वाणी देने के लिए एक नई ही भाषा का निर्माण करना पड़ा है। एक प्रकार से यह मनुष्य की चेतना में क्रांति का सूचक है। जहाँ सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक विश्व-प्रपंच को मशीन मानते थे और मनुष्य को प्रकृति से अलग स्वतंत्र और बाहरी वस्तु, वहाँ वर्ड्सवर्थ जैसे रोमांटिक कवियों ने विश्व-प्रपंच को मूलगत चेतना का रूप माना और पर्वतों-नदियों के साथ मनुष्य को भी रखा। उनका कहना था कि विभिन्न इन्द्रियों के कार्य-व्यापार और उनसे प्राप्त बहिरानुभूतियाँ अखण्ड और अवि-च्छिन्न हैं और उन सबको लेकर ही उस इकाई की सृष्टि होती है जो परम सत्य है। इस विचारधारा के अनुसार मनुष्य और जड़ प्रकृति में कोई द्वन्द्व नहीं है। मानव की अनुभूति और जड़ प्रकृति अन्तर्सम्बन्धित हैं और विकासमान हैं, यद्यपि हम अपने परम्परागत कार्य-कारण-सम्बन्धी अथवा जड़-चेतन-सम्बन्धी विचारों के कारण इस अनन्य सम्बन्ध की आत्मानु-भूति नहीं कर पाते। इस प्रकार रोमांटिक काव्य प्रकृति के प्रति नई अंतर्दृष्टि का प्रचारक है। वह अपने चारों ओर के परिवेश में डूब जाता है और वस्तुओं का अन्तरंगी एवं तथागत वर्णन करता है। उसकी भाषा प्रतीकों और कल्पना-चित्रों के क्षेत्र में नई चेष्टाएँ लाती है, भले ही वह इसमें पूर्णतः सफल नहीं हो, और उसका भावोच्छ्वास इस नई भूमि पर हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है। वास्तव में मूर्तिमत्ता के क्षेत्र में क्रांति, दर्शन के क्षेत्र में क्रांति की सूचक है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में विज्ञान ने मनुष्य, प्रकृति और विश्व-प्रपंच की भौतिक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वादी और यांत्रिक व्याख्या के स्थान पर नई विकासवादी व्याख्या को जन्म दिया, जिसने मनुष्य के अहं पर प्रहार किया और उसे एक बार फिर रोमांटिक कवियों की महत् कल्पना से नीचे उतारकर क्षुद्र और नगण्य प्राणी बना दिया जो पशु के स्तर पर चेतनावान है। वंशानुक्रम और परिवेश, ये दो तत्त्व ही मानव-विकास के मूल तत्त्व माने जाने लगे और साहित्य में भी प्रकृतिवाद के नाम से इन दोनों की पूजा होनी लगी। ज़ोला के उपन्यासों में इस विचारधारा का पूर्ण उत्कर्ष दिखलाई देता है। प्रकृतिवाद के विकास में स्वच्छन्दतावाद की अतिभावुकता और शिथिलता की भी प्रतिक्रिया समन्वित थी और उसने क्लासिकल काव्य की तटस्थता और रूपात्मकता को भी एक सीमा तक अपना लिया था। फ्रांस में इस प्रतिक्रिया ने प्रचुर साहित्य को जन्म दिया। अंग्रेजी साहित्य में प्रकृतिवाद की स्पष्ट रूपरेखा नहीं दिखलाई पड़ती, परन्तु रोमांस के विरुद्ध यथार्थ की भावना का बराबर विकास होता गया है। ब्राउनिंग और टेनीसन के काव्य में शिल्प की जड़ता और वर्णन की तथ्यवादिता काफ़ी मिलती है और रूपात्मक परिपूर्णता एवं सूक्ष्म चित्रण का उसी प्रकार प्राधान्य है जिस प्रकार पोप के काव्य में प्रकृतिवाद का विशेष विकास काव्य के क्षेत्र में न होकर नाटक और उपन्यास के क्षेत्र में हुआ और इब्सन तथा फ्लावेर की रचनाओं में उसका बड़ा प्रभावशाली रूप हमें मिलता है। रोमांटिक काव्य के परवर्ती विकास के लिए हमें फ्रांस के कुछ कवियों को लेना होगा।

: २ :

नई कविता का पहला स्पन्दन हमें फ्रांस के जेरार्द द नर्वल के काव्य में मिलता है। इस कवि का विचार था कि दृश्यमान जगत् हमारे मनःचिन्तन से, जितना गहरा हम समझते हैं, उससे कहीं अधिक सम्बन्धित है और हमारे स्वप्न और भ्रम भी किसी प्रकार यथार्थ से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। इस विचारधारा के कारण उसके काव्य में प्रकृति का अत्यन्त संवेदनाशील, व्यक्तित्वनिष्ठ चित्रण हुआ है और उसमें भीतर-बाहर मिलकर एक हो गए हैं।

परन्तु वास्तव में इस काव्यधारा को स्थायित्व देने का श्रेय एडगर ऐलेन पो को प्राप्त है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में अमरीकी रोमांटिक लेखक पो, हाथर्न, मेलविले, विटमेन और इमर्सन प्रतीकवाद की ओर अग्रसर होने लगे थे और फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन का इतिहास बोदलेर द्वारा पो की खोज से शुरू होता है। बोदलेर ने पो को १८४७ ई० में पढ़ा और १८५३ ई० में उसने पो की कुछ कहानियों का अनुवाद प्रकाशित कराया। इसके बाद से पो का प्रभाव फ्रांसीसी-साहित्य में बढ़ता ही गया। बोदलेर पो की समीक्षात्मक रचनाओं से भी परिचित हुआ और ये रचनाएँ प्रतीकवादी आन्दोलन का परिपत्र बन गईं। पो के काव्य में बहुत-कुछ ऐसा था जो उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक काव्य की पुनर्ध्वनि था, जैसे कॉलरिज की रचना 'कुबलाखाँ' और उसके गद्य को भी हम डिक्येन्सी के गद्य के सामने रख सकते हैं, परन्तु उसने कॉलरिज के बाद पहली बार निश्चित सिद्धान्त खड़े किये और स्वच्छन्दतावाद के कुछ पहलुओं पर विशेष बल देकर एक नई काव्यधारा को जन्म दिया। यह धारा रोमांटिक धारा की शिथिलता और भाषा के क्षेत्र में उसकी अतिवादिता की विरोधिनी थी। काव्य के सम्बन्ध में उसकी कुछ निश्चित धारणाएँ थीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(१) "मैं जानता हूँ कि अनिश्चितता सच्चे काव्य (और संगीत) का अंग है, यदि वह काव्य या संगीत सचमुच में उत्कृष्ट है। यह अनिश्चितता व्यंजनात्मक ढंग से अस्फुट और फलतः आध्यात्मिक प्रभाव संपन्न हो।" (पो) इस अनिश्चितता का आभास देना प्रतीकवाद का प्रधान लक्ष्य था। इसके लिए कई साधन थे, जैसे (क) वस्तुजगत् और कल्पना के जगत् को भावना में अत्यन्त निकट ले आना। (ख) विभिन्न इंद्रियानुभूतियों को समीकृत रूप में अनुभव करना, जिससे जीवनानुभूति की एकता का आभास हो।

(२) उसका विश्वास था कि काव्य का मूल स्रोत मानवता की उन गहराइयों, उन परछाइयों और खामोशियों में खोजना चाहिए जहाँ मनुष्य और उसके भवितव्य का संघर्ष चलता है, परन्तु ये गहराइयाँ लुकी-छिपी रहती हैं, चेतन मन की पहुँच उन तक नहीं है। उन साहसी व्यक्तियों को छोड़कर, जो उन गहराइयों की खोज का व्रत ले लेते हैं, शेष मानवों के लिए वे अनियंत्रित और आकारहीन हैं।

(३) पो के विचार में अंतरात्मा की गहराइयों की खोज कला और शिल्प के उन सूत्रों द्वारा सम्भव है जिन पर कलाकार का विशेष अधिकार है। उसके मतानुसार कलाकृति का निर्माण उसी तरह सूक्ष्म पद्धतियों पर विकसित हो सकता है जिस तरह विज्ञान की किसी कृति का अथवा किसी व्यावहारिक संस्था का। उसके पहले कदाचित् किसी का भी ध्यान इस ओर नहीं गया था कि कविता का प्रभाव इस सीमा तक शिल्प पर आधारित है। पो न होता तो बोदलेर अपने को 'स्वप्न-देश का स्थापति' नहीं कहता, न मेलार्मे निश्चित शब्द के माध्यम से शाश्वत सत्य की खोज में अपना जीवन विताने का साहस करता। पॉल वेलेरे ने कविता के जादू की जो इतनी पद्धतिबद्ध खोज की, तो उसके पीछे पो के विचारों की ही प्रेरणा थी। यह स्पष्ट है कि नई कविता का सैद्धान्तिक पर्दा पो की मान्यताओं और उसकी कृतियों से अनिवार्यतः प्रभावित है और उसे हम प्रतीकवाद का जनक कह सकते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बुद्धि पर संवेदनाओं का आलेखन कोई नई बात नहीं थी और हमें अनेक रचनाएँ ऐसी प्राप्त हुई जिनमें काव्य का संगीतात्मक, अतर्कित और स्वप्नवत् रूप प्रतिष्ठित था। ये तत्त्व अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य में प्रचुर मात्रा में प्रतिष्ठित थे। इसीलिए अंग्रेजी पाठकों को फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन में कोई विचित्रता दिखलाई नहीं पड़ी। काव्य में जिन नये तत्त्वों का उपयोग हुआ, वे अंग्रेजी काव्य के लिए एकदम नये नहीं थे। वास्तव में एलिज़ेबेथ युग (सोलहवीं शताब्दी) के काव्य में ये उपकरण विद्यमान थे। ये नये तत्त्व थे कल्पना-चित्रों का प्रचुर उपयोग, रूपक-संकर, भाव की तीव्रता और बौद्धिकता का एक साथ निर्वाह, बौद्धिक और आध्यात्मिक भावस्तरों का एकीकरण, शैली के क्षेत्र में वैचित्र्य की दृष्टि। गद्यात्मक उपकरणों के साथ अतिशयात्मक भाव-शैली का उपयोग उसी युग में दिखलाई देता है। सच तो यह है कि एलिज़ेबेथ-युग के काव्य में वे सभी उपकरण थे जिनके द्वारा रोमांटिक काव्य-शैली का सृजन हुआ। इन्हीं के विरोध में अठारहवीं शताब्दी में नये काव्य का जन्म हुआ। प्रतीकवादी इन्हीं उपकरणों की ओर लौटे।

फ्रांस के इस प्रतीकवाद ने समस्त छन्दशास्त्र को उलट-पुलट कर दिया। उसके निर्माण में जर्मन, फ्लेमिश, ग्रीक और अंग्रेजी स्रोतों से बहुत-कुछ लिया गया है, अधिकतः अंग्रेजी से। वर्लें, मेलार्मे और बोदलेर, तीनों अंग्रेजी साहित्य से पूर्णतः परिचित थे। बोदलेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर पो के प्रभाव की बात हम पहले कह चुके हैं। दो अन्य प्रारम्भिक प्रतीकवादी कवि स्टुअर्ट मेरिल और फ्रेन्सिस वेले ग्रिफिन अमरीकन थे, परन्तु पेरिस को उन्होंने अपना निवासस्थान बना लिया था और फ्रांसीसी में रचना शुरू कर दी थी। इनकी रचना का सबसे बड़ा और क्रांतिकारी कदम यह था कि इन्होंने फ्रांसीसी काव्य के मूलाधार 'अलेक्जेण्ड्रीन' छन्द के साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया था और उस तरह के अंग्रेजी स्वच्छन्द छन्द (इरेंगुलर मीटर) प्रचलित किये थे जैसे आर्नाल्ड और ब्राउनिंग की रचनाओं में पाये जाते थे। इस तरह फ्रांसीसी काव्य-भूमि छन्दों की जड़ता से मुक्त हुई।

परन्तु इस नई काव्यधारा की सबसे बड़ी विशेषता थी इसकी सैद्धान्तिक भूमि। वास्तव में एक नये सौन्दर्य-शास्त्र का ही निर्माण हो गया। इस सौन्दर्य-शास्त्र का जन्मदाता मेलार्मे है। स्टेफेन मेलार्मे (१८४२–९८) को प्रतीकवादी आन्दोलन में वही स्थान प्राप्त है जो रोमांटिकों में कॉलरिज को प्राप्त है। वही प्रतीकवादियों का मंत्रगुरु था। उसकी अपनी मान्यताओं में से कुछ तो पो से ली गई थीं, जैसे, (१) यह मान्यता कि विभिन्न इन्द्रियों के संवेदन परस्पर रूपांतरित हो सकते हैं; और (२) काव्य संगीत से अभिन्न है और इसलिए उसमें संगीत के तत्त्वों और प्रभावों की योजना आवश्यक है। प्रतीकवाद काल्पनिक और वस्तु-जागतिक संवेदनाओं और अनुभूतियों को एक मानकर चलता है।

हमारी संवेदनाओं और कल्पनाओं, हमारी संकल्पात्मक अनुभूति और हमारे कृतित्व में बड़ा विरोध है, यह प्रतीकवादी मानते हैं। वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक आन्दोलन की भांति यह भी विरोधमूलक आन्दोलन है। प्रकृति के यांत्रिक रूप की कल्पना और मनुष्य की सामाजिक धारणा के विरोध में नये (प्रतीकवादी) कवियों ने काव्य को व्यक्ति की भावनाओं और संवेदनाओं का प्रतिरूप बना दिया। इस तरह से वह स्वच्छन्दतावाद से एक विशेष दिशा में आगे बढ़ा हुआ कदम था। फलतः काव्य नितान्त व्यक्तिगत वस्तु बन गया और कवि पाठक के प्रति निवेदित होने की जिम्मेदारी से छुटकारा पा गया।

प्रतीकवादियों के प्रतीक सामान्य ढंग के प्रतीक नहीं थे जिनसे हम दांते के धार्मिक काव्य से या अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य से परिचित थे। दांते और रोमांटिकों के प्रतीक परम्परागत, निर्विशिष्ट और वैयक्तिक थे। नये प्रतीकवादी कवियों के प्रतीक पूर्णतः व्यक्तिगत थे। कवि बहुधा अपनी अन्यतम गोपनीय अनुभूतियों के लिए विशेष प्रतीक चुन लेता है और जब तक हम इस प्रतीकयोजना से परिचित नहीं हो जाते, तब तक हम उसकी अनुभूति के मूल स्रोत तक नहीं पहुँच पाते। नये प्रतीकवादी कवियों की प्रतीक-सम्बन्धी मान्यता मेलार्मे के इन शब्दों में ध्वनित होती है—"**पर्नासी कवि वस्तुओं को तथ्यगत ग्रहण करता है और उसी रूप में उन्हें हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इसी का फल यह होता है कि उनमें रहस्य का अंग शेष नहीं रह जाता। वे मन को सृजनशीलता अथवा कर्तृत्व के आनन्द से वंचित रखते हैं। वस्तुओं को नाम देकर हम कविता का तीन-चौथाई आनन्द नष्ट कर देते हैं। इससे अनुमान और शनैः-शनैः अनावृत्ति का आनन्द जाता रहता है। कल्पना का आनन्द है वस्तु की व्यंजना, उसका भाव-निर्माण।**" (विलसन के 'एक्ज़िल्स केसिल' में उद्धृत) प्रतीकवादी अनुभूति या काव्यवस्तु को वर्णित या सूचित करना नहीं चाहते, वे उस अनुभूति या वस्तु को ही पाठक को देना चाहते हैं। उन्होंने काव्य-प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुछ बड़ी उलझी और सूक्ष्म धाराएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बना ली हैं। उनका कहना है कि हमारी चेतना का प्रत्येक क्षण दूसरे क्षण से भिन्न है और इसीलिए हमारी भाव-संवेदनाएँ और रसात्मक प्रतिक्रियाएँ सतत परिवर्तित और प्रवहमान हैं। फलतः काव्यभाषा-शैली के परम्परागत रूपों में उन्हें बाँधना कठिन है। प्रत्येक कवि अपने काव्य में अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है और श्रेष्ठ काव्य में उसके व्यक्तित्व का यह निजी रूप ही उभरना चाहिए। कवि का लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह अपने अन्यतम व्यक्तित्व और संवेदना के अन्यत मत्क्षणों का अनुभव पाठक को दे सके। इसके लिए विशिष्ट भाषा का निर्माण अनिवार्य है। यह भाषा प्रतीक भाषा होगी। विशिष्ट प्रवहमान, अस्पष्ट और रहस्यमय चेतना और भाव-संवेदन को तथ्य-कथन अथवा वर्णन-शैली द्वारा ग्रहीत नहीं बनाया जा सकता। केवल कल्पना-चित्रों और व्यंजनात्मक शब्दों एवं प्रतीकों द्वारा कवि इस क्षेत्र में सफल हो सकता है। ये कल्पना-चित्र और प्रतीक संगीत के सुरों की तरह सूक्ष्म, निर्विशेष और मार्मिक होंगे। अपने भावोन्मेष में प्रतीकवादी कवि यह भूल गया कि शब्द केवल नाद और रंग-रूप की ही व्यंजना पर समाप्त नहीं हो जाते, उनकी एक अर्थात्मक सत्ता भी है। वास्तव में प्रतीकवादियों के प्रतीक सन्दर्भविहीन रूपक-मात्र थे और कवियों ने जान-बूझकर चेष्टित रूप से काव्य में उनका प्रयोग किया था। इस प्रयत्न में कलात्मक जागरूकता अधिक थी, कवि की आत्यंतिक भावविभोरता का अभाव था। फलस्वरूप कम प्रतिभावान कवियों के हाथ में यह आन्दोलन कलाकारिता का आन्दोलन बन गया, परन्तु श्रेष्ठतम कवियों में भी प्रतीकों के निजी और रहस्यमय चुनाव के कारण दुर्बोधता आ गई और अस्पष्टता का आग्रह रहा। विशिष्ट व्यक्तिगत संवेदनाओं और अंतर्जगत् के निगूढ़ आलोड़न-विलोड़न को काव्य-विषय बनाने के कारण ऐसा होना अनिवार्य था।

इस प्रकार प्रतीकवादी आन्दोलन का जन्म फ्रांस के काव्यक्षेत्र में हुआ, परन्तु बाद में यह आन्दोलन यूरोपव्यापी बन गया। कालान्तर में इसने सभी साहित्यकोटियों को अपना लिया। इस धारा का सबसे प्रमुख समीक्षक रेमे द गोरमां है। इलियट ने इसके प्रभाव को स्वीकार किया है। उन्नीसवीं शताब्दी का अंत होते-होते यह सबसे प्रमुख आन्दोलन बन गया। यीट्स के इस कथन में निश्चय ही बड़ा सार है—"**अट्ठारहवीं शताब्दी के बुद्धिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया उन्नीसवीं शताब्दी के भौतिकवाद से मिल-जुलकर एक हो गई है और प्रतीकवादी आन्दोलन, जो जर्मनी में वेगनर में, इंगलैंड में प्री-रेफिलाइट वर्ग में और फ्रांस में वेलेर द ले आइल आदम्स, मेलार्मे और मेटरलिंक में पूर्णता को प्राप्त हुआ है और जिसने इब्सन और द एननजियो के भाव-जगत् को आन्दोलित किया है एकमात्र ऐसा आन्दोलन है जो कुछ नई बात कह रहा है।**" (१८९७) यीट्स ने इस कथन में जिन लेखकों का उल्लेख किया है वे सब-के-सब आज प्रतीकवादी धारा में नहीं गिने जाते, परन्तु यह निश्चय है कि मेलार्मे और परवर्ती फ्रांसीसी कवियों का यूरोपीय काव्यधारा पर विशेष प्रभाव पड़ा और इस प्रभाव को समझे बिना अमरीका और इंगलैंड के अनेक नये कवियों के काव्य से रस ग्रहण करना कठिन होगा। प्रतीकवादी धारा के तत्त्व अंग्रेजी काव्य के लिए नये न होकर भी नये सन्दर्भ में अद्भुत बन गए और अंग्रेजी काव्य-परम्परा में बद्ध आलोचक नये काव्य के साथ न्याय नहीं कर सके। इसीलिए इलियट के काव्य और ज्वॉइस के उपन्यासों के प्रति अंग्रेज समीक्षकों का दृष्टिकोण बहुत-कुछ कठोर, भ्रामक और असन्तुलित रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



: ३ :

प्रतीकवादी नई काव्यधारा के कुछ मूल सिद्धान्त हमें रिम्बो (१८५४-६१) के एक पत्र में मिल जाते हैं जो उसने सत्रह वर्ष की आयु में अपने एक मित्र को लिखा था। पॉल वेलेरे की यह मान्यता थी कि रोमांटिक कवियों का पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित है और इस पत्र में उसने इस पर विचार करते हुए कविता की एक नई परिभाषा ही उपस्थित की है जो प्रतीकवाद पर पूर्णतः लागू होती है।

"मेरी धारणा है कि कवि को द्रष्टा होना चाहिए, उसे अपने को 'द्रष्टा' बनाना होगा।" "कवि अपने को द्रष्टा इस प्रकार बनाता है कि वह निरन्तर साधना द्वारा अपनी समस्त इन्द्रियों को अनन्य गहराइयों तक और तर्कसाधित रूप में अस्तव्यस्त एवं विशृंखलित बना देता है। प्रेम, पीड़ा और पागलपन के सभी आवेगों को वह आहूत करता है। इनका गरल वह स्वयं पान कर लेता है और इनका सार-मात्र रह जाता है। उसके अपने पल्ले पड़ता है अवर्णनीय आत्मवेदन, जिसके सहन के लिए उसे सम्पूर्ण आस्था और अतिमानवीय शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इस चेष्टा में वह महारोगी, महापापी, महाभिशापित और महापंडित बन जाता है, क्योंकि इस तरह वह अज्ञात तक पहुँच जाता है, इसलिए कि वह इस प्रकार अपनी आत्मा को अन्य किसी भी व्यक्ति की आत्मा से अधिक सुसंस्कृत बना लेता है। वह अपरिमेय को आत्मसात् कर लेता है। फिर वह पागल भी हो जाय अथवा अश्रुत एवं नामहीन वस्तुओं द्वारा त्रस्त होकर अपने स्वप्न की पकड़ को भी ढीली कर दे, तो भी यह निश्चित है कि उसके बाद दूसरे कवि-साधक आएँगे और उन क्षितिजों से अपना कार्य आरम्भ करेंगे जहाँ पूर्ववर्ती कवि-साधक विफल हो गए हैं।" "कवि ने सत्य ही सर्जन की आदिम आग की चोरी की है।" "समस्त मानवता से वह (कवि) अन्तरंगी हो जाता है, यहाँ तक कि पशुओं से भी उसे तादात्म्य की प्राप्ति होती है। वह चाहता है उसने जो जाना है, लोग उसका अनुसरण करें, उसे अपनाएँ, उसे कान दें। उस पार से यदि वह 'रूप' लाता है तो 'रूप' देता है, 'अरूप' लाता है तो 'अरूप'। यही रूप या अरूप वह साहित्य को दे सकता है। नई भाषा का निर्माण उसका धर्म हो जाता है। भाषा अन्ततोगत्वा विचार ही है, इसलिए सार्वभौम भाषा का युग कभी अवश्य आएगा। किसी भी भाषा के कोश की रचना करते समय सम्पादक को भाषाशास्त्री होना पड़ता है—पुरावशेषों की तरह जड़ होना पड़ता है। दुर्बल धारणा वाले व्यक्ति बारहखड़ी के पहले वर्ण से ही उलझ बैठेंगे और पागल हो जायँगे।" "यह भाषा आत्मा के लिए आत्मवत् होगी। उसमें सब-कुछ समाहृत होगा—गन्ध, रंग, ध्वनि। उसमें विचार, विचार को उभारेगा और उसे तल पर लाएगा। कवि अपने राग में जगी अज्ञात वास्तविकता द्वारा विश्वात्मा का नक्शा देगा। वह अपने विचार के 'सूत्र' मात्र से कुछ अधिक हमें देगा। उसमें प्रगति की टीका-मात्र नहीं होगी। जब वह अपनी विपुलता में सब-कुछ सिमेटकर उसे एक 'मान' बनाने में सफल हो जायगा, तभी वह प्रगतिशील बन सकेगा।"

आगे चलकर उसने लिखा है—"मैंने दिवास्वप्न की आदत डाली। मैंने फैक्टरी के स्थान पर मस्जिदों, आकाश के इन्द्रधनुषी मार्गों अथवा झील के तल के ऐश्वर्य-कक्ष की अनुभूतियों को जन्म दिया। मैं अद्भुत विद्रूपों और रहस्यों से भर गया। कभी तो किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**'संगीत' की बात सुनकर ही मेरे सामने प्रेत नाचने लगते।" "तब मैंने अपनी जादुई अनुभूतियों को शब्दों के जादू का रूप दिया।" "अन्त में मुझे ज्ञात हुआ कि मेरा बुद्धि-विपर्यय पुण्यमय और पवित्र है।"[1]**

रिम्बो का बहुत अधिक काव्य हमें प्राप्त नहीं है, परन्तु जो है, उसमें वह मेलार्मे से अधिक सुन्दर कलाकार जान पड़ता है और उसने अपने मित्र वर्ले के माध्यम से भी फ्रांसीसी काव्य को प्रभावित किया है। वास्तव में सिद्धान्त के क्षेत्र में मेलार्मे और काव्य के क्षेत्र में रिम्बो नये आन्दोलन के दो अग्रदूत थे।

फ्रांसीसी प्रतीकवादी कवियों में मेलार्मे और रिम्बो के बाद पॉल वेलेरे (१८७१-१९४५) का नाम आता है। पॉल वेलेरे का प्रचुर काव्य हमें प्राप्त है। उसके काव्य-सिद्धान्त हमें 'इण्ट्रॉडक्शन टु द मेथड ऑव ल्यूनारडो द विंसी' (१८९४) और 'चार्म्स' की अलेन-कृत टीका की भूमिका में मिल जाते हैं। वेलेरे के अनुसार कला (या कविता)

(१) एक ऐसा यंत्र है जिससे विशेष कोटि के मस्तिष्कों को संवेदित किया जा सकता है।

(२) कविता एक उलझी हुई बौद्धिक समस्या है जिसके द्वारा कवि स्वयंनिर्मित सीमाओं से संघर्ष करता है, अर्थात् सबके ऊपर वह 'निर्माण' है, 'गढ़न्त' है।

(३) काव्य-प्रक्रिया में भावोत्तेजना को स्थान नहीं मिलना चाहिए।

(४) काव्य दैवी नहीं, जागरूक मानवीय चेष्टा है। विशेष दृष्टिकोण से वस्तु को देखने से ही रूपक की सृष्टि होती है। उसने इस बात पर अविश्वास प्रकट किया है कि काव्य-प्रतीकों और रूपकों का जन्म दैवी प्रेरणा से होता है और वे स्वर्गीय वस्तुएँ हैं। उसका कहना है कि जब वस्तुओं को एक विशेष प्रकार से देखते हैं तो काव्य-प्रतीकों और रूपकों की सृष्टि होती है, जैसे सूरज की ओर देखने से चकाचौंध लगती ही है। जब कोई वस्तुओं की ओर इस दृष्टि से देखता है तो कुछ ऐसा ही लगता है और किसी दिन इस 'कुछ ऐसे' को निश्चित परिभाषा में बाँधना सम्भव भी हो सकेगा। तब हम कह सकेंगे कि 'ऐसे-ऐसे' और संसार के सारे रूपक, प्रतीक हमें उपलब्ध हो सकेंगे।

(५) वास्तव में वेलेरे की काव्य-सम्बन्धी धारणा बहुत-कुछ साधनात्मक और गुह्य है। वह भी टी० एस० इलियट की भाँति कवि को रासायनिक प्रक्रिया में सहायक तत्त्व (केटेलिटिक एजेण्ट) मानता है जिसकी प्रक्रिया रहस्यमय है। गद्य का लक्ष्य है अर्थबोध, परन्तु काव्य का लक्ष्य कुछ अधिक रहस्यमय है।

(६) कविता में यह प्रश्न ही नहीं है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति अपनी मनःप्रक्रिया को पूरी समझ-बूझ के साथ निवेदित कर दे। प्रश्न है पाठक या श्रोता में ऐसी मनःस्थिति के निर्माण का, जिसकी अभिव्यक्ति निश्चयात्मक ढंग से और विचित्र रूप से वही हो जो कवि के भीतर प्रथम उन्मेष के समय रही होगी। जो भी प्रतिमान या भावोद्रेक काव्य-रसिक में निर्मित होता है, वह प्रामाणिक और यथेष्ट है, यदि वह उसके भीतर कारण-शब्द और कार्य-शब्द के बीच के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्माण कर सके। फल यह होता है कि पाठक विचारों के सम्बन्ध में सर्वरूपेण स्वतंत्र है। ऐसी स्वतंत्रता संगीतरसिक को भी प्राप्त है,

१. **'एक्ज़िल्स केसिल', पृ० २७०-२ पर उद्धृत।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



परन्तु वह उतनी आभ्यंतरिक नहीं है।

यह स्पष्ट है कि पॉल वेलेरे की इन मान्यताओं के कारण काव्य एक अत्यन्त दुस्साध्य कला हो जाता है और स्वयं वेलेरे ने इसे स्वीकार भी किया है। इन्द्रियानुभूतियों से परे वस्तु-सत्य की सूक्ष्म कल्पना और उसकी प्राप्ति का विधान कविता को गुह्य साधना बना देता है और उसे धर्म और दर्शन की अस्पृष्ट तथा तरल रेखाओं में बाँध देता है। फलतः काव्य प्रत्यक्ष दर्शन बन जाता है और कवि मर्मी का स्थान ग्रहण कर लेता है। इसमें सन्देह नहीं कि काव्य का यह नया आदर्श अन्ततः रोमांटिक ही है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस आदर्श ने काव्य की सीमाओं का विस्तार किया और रोमांटिक काव्य को बन्द गलियों में से बाहर निकाला। बाद में वह स्वयं बन्द गली में जा पहुँचा, परन्तु इससे आदर्श की सूक्ष्मता का ही पता चलता है। इसमें लांछा की बात कहाँ है?

: ४ :

मेलार्मे, रिम्बो और पॉल वेलेरे के बाद फ्रांस में प्रतीकवादी काव्यधारा ने एक नया मोड़ लिया और एक नई परम्परा स्थापित की। इस नई परम्परा के प्रमुख कवि त्रिस्तां कार्बी और जुले लफ़ार्गे थे। दोनों के काव्य-व्यक्तित्व का विकास अत्यन्त क्षिप्र गति से हुआ और दोनों ही कीट्स की भाँति तरुणाई में मृत्यु को प्राप्त कर अपनी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में अनेक अनुमान छोड़ गए। त्रिस्तां कार्बी की प्रमुख रचना है 'ले अमोर जोन्स, १८७३' (Le Amors Jaunes)। वर्लें ने १८८३ ई॰ में उस पर एक लेखमाला प्रकाशित की जिसे प्रतीकवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वर्लें की काव्य-कला पर इस तरुण कवि का काफ़ी प्रभाव पड़ा है। लफ़ार्गे का काव्य कार्बी के काव्य से अधिक आत्मचेतन, सचेष्ट और कलात्मक है। लफ़ार्गे ने जर्मन-दर्शन का भी अध्ययन किया था और उसकी पारिभाषिक शब्दावली द्वारा प्रतीकवाद में अस्पष्टता का प्रवेश हो गया, परन्तु फिर भी लफ़ार्गे प्रतीकवादी कवियों में सर्वविशिष्ट है। कार्बी और लफ़ार्गे ने फ्रेंच काव्य में एक नई कोटि की भाषा और नई भावना-धाराओं का समावेश किया। मेलार्मे के काव्य में हमें नई मूर्तिमत्ता मिलती है, परन्तु भावना का अभाव है। उसमें भाषा-शैली का अभिजात्य हमें मिलता है, परन्तु इन दोनों कवियों ने साधारण बोलचाल की भाषा और व्यंगात्मक शैली को प्रश्रय दिया। अंग्रेज़ी कवियों में टी॰ एस॰ इलियट के प्रारम्भिक काव्य में हम विशेष रूप से इन दोनों कवियों की प्रतिध्वनियाँ पाते हैं।

परन्तु इलियट से पहले हमें विलियम बटलर ईट्स पर विचार कर लेना है, जिसके प्रारम्भिक काव्य में हम रोमांटिक, प्री-रेफ़िलाइट और प्रतीकवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखते हैं। रोमांटिक और प्री-रेफ़िलाइट प्रभाव हमें विशेषतः 'द वांडरिंग आफ़ ओसिन' १८८६ में मिलता है। कुछ ही वर्षों बाद पेरिस में यीट्स की भेंट मेलार्मे से हुई और अपने मित्र आर्थर सिमन्स द्वारा वह प्रतीकवाद के सिद्धान्तों से परिचित हुआ। आर्थर सिमन्स ने मेलार्मे की कुछ रचनाओं का अनुवाद भी किया था और यीट्स के परवर्ती काव्य 'द विंड अमंग द रीड्स' से 'शेडोई वाटर्स' तक में हम प्रतीकवाद की छाया पाते हैं। उन दिनों यीट्स साहित्यिक क्षेत्र में प्रतीकवाद को ही एकमात्र आन्दोलन मानता था। १९०० ई॰

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के बाद यीट्स के काव्य में प्रतीकवादी तत्त्व कम होते गए और उसने आयरलैण्ड की लोकगाथाओं और पुराण-प्रतीकों को लेकर एक नई जातीय काव्यधारा का निर्माण किया; जिसका अपना विशिष्ट स्वरूप था।

अंग्रेज़ी प्रतीकवादी धारा को कोई सशक्त व्याख्याता नहीं मिला, यद्यपि हम वाल्टर पेटर को वह श्रेय दे सकते हैं जो फ्रांसीसी प्रतीकवादी काव्य-धारा के व्याख्याता के रूप में मेलार्मे को प्राप्त है। वाल्टर पेटर की विचारधारा भी बहुत-कुछ मेलार्मे से मिलती-जुलती है। उसका कहना है कि अनुभवों द्वारा हमें सत्य की शाश्वत रूपरेखाएँ प्राप्त नहीं होतीं जो अपरिवर्तनशील और नित्य हों, बल्कि हमें सत्य के विभिन्न सूक्ष्म धरातल मिलते हैं जो हमारे भीतर के अथवा हमारे दृष्टिकोण के परिवर्तन के साथ सूक्ष्म रूप से अनिवार्यतः बदल जाते हैं। **"समस्त वस्तुओं और उनको सारभूत वास्तविकता को अनिश्चित पद्धति अथवा फ़ैशन मानना आधुनिक विचारधारा का चलन हो गया है।......मानवात्मा के प्रति दर्शन अथवा चिन्तामूलक संस्कृति की प्रमुख देन यह है कि उसके द्वारा मानवात्मा अनवरत और आकुल निरीक्षण के जीवन के लिए जाग्रत रहती है। प्रत्येक क्षण कोई आकार किसी-न-किसी अंग में परिपूर्णता प्राप्त करता है, प्रत्येक क्षण पर्वत या सागर पर अन्य से भिन्न कोई रंग झलक उठता है। संवेदना, अन्तर्दृष्टि अथवा बौद्धिक हलचल का कोई भाव अप्रतिहत रूप से यथार्थ और आकर्षक हो उठता है। केवल एक क्षण के लिए ही सही, परन्तु यही सार्थक क्षण है। अनुभूति का फल नहीं, अनुभूति ही चरम लक्ष्य है। वैविध्यपूर्ण और नाटकीय जीवन में से कुछ गिने-चुने स्पन्दन ही हमें मिलते हैं। उन कुछ क्षणों में हम वह सब-कुछ कैसे देख लें, जो सूक्ष्मतम इन्द्रियों द्वारा हम देखने में समर्थ हैं।"[1]**

: ५ :

आधुनिक अंग्रेज़ी काव्य की नूतनतम प्रवृत्तियाँ हमें हॉपकिन्स (जेरर्ड मेनले हॉपकिन्स, १८४४-८९) के काव्य में मिलती हैं। हॉपकिन्स का काव्य बहुत बाद को सामने आया। उसकी मृत्यु के बहुत बाद १९१६ ई० में उसके मित्र रॉबर्ट ब्रिज़ेज़ ने 'द स्पिरिट ऑव मेन' नाम के कविता-संकलन में हॉपकिन्स की छः रचनाएँ प्रकाशित कराईं और १९१८ ई० में उन्हीं के सम्पादन में हॉपकिन्स की रचनाओं का पहला संकलन प्रकाशित हुआ। रचनाओं की संख्या कम होने पर भी हॉपकिन्स के नये प्रयोगों ने काव्य-जगत् में हलचल पैदा कर दी। शब्द-प्रयोग, वाक्य-विन्यास, लय आदि के क्षेत्र में हापकिन्स की रचनाएँ नई विशिष्टता लेकर आईं और 'इमेजिज़्म' (चित्रवादी) काव्यधारा में, जो उस समय प्रमुखता प्राप्त कर चुकी थी, हॉपकिन्स की काव्य-प्रवृत्तियों की ही प्रतिध्वनियाँ थीं। हॉपकिन्स का जगत् शैली के काव्य-जगत् की तरह काल्पनिक नहीं है, वह भाव-जगत् है। कवि अपने भाव-जगत् में एकदम डूब गया है। इस भाव-जगत् के रूप-रंग, छाया-प्रकाश और उसकी गतिविधियाँ उसके लिए आकर्षक हैं। वह प्रत्येक वस्तु को चित्रकार की दृष्टि से देखता है, न चिन्तनशील दार्शनिक की दृष्टि से, न कलाकार की रूपसज्जात्मक दृष्टि से। परन्तु उसके भाव-जगत् में जो सबसे महत्तम वस्तु है, वह है उसकी आत्यंतिकता। उसके भावान्दोलन इतने विशद और

**१. टु रिनेसां : 'एक्ज़िल्स केसिल' में पृ० ३३ पर उद्धृत।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सर्वग्राही हैं कि ऐसा जान पड़ता है कि उनमें उसका सारा व्यक्तित्व ही समा गया है। हॉपकिन्स के व्यक्तित्व का एक नीतिवादी अंग भी है जो उसे देह के आकर्षण के प्रति विरक्त बनाए रखता है। वास्तव में कलाकार और नीतिवादी का द्वन्द्व ही हॉपकिन्स के व्यक्तित्व का द्वन्द्व है और यह द्वन्द्व उसके काव्य में पूर्णतया उभर आया है।

हॉपकिन्स के काव्य की दो विशेषताएँ हैं—

(१) वह ऐसी लय का उपयोग करता है जो प्रचलित काव्य और छन्द-शास्त्र के विरुद्ध पड़ता है। वास्तव में आधुनिक अंग्रेज़ी काव्य में लोक-संगीत और प्राचीन वीर-गीत-काव्य (बेलेड पोइट्री) की लयों का प्रयोग पहली बार इसी कवि में दिखलाई देता है। अंग्रेज़ी का छन्द-शास्त्र स्वराघात पर आधारित है, परन्तु यह कदाचित् यूरोपीय काव्य का प्रभाव है जो चासर के समय से बराबर दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हॉपकिन्स ने ऐंग्लो-सेक्सन जाति की काव्य-पद्धति का पुनरुत्थान किया। अपने काव्य की लय-पद्धति को हॉपकिन्स ने 'स्प्रंग रिद्म' कहा है। इसे हम गणात्मक और अक्षरात्मक गीत-पद्धति कह सकते हैं।

(२) हॉपकिंस की दूसरी विशेषता यह है कि वह शब्दों का प्रयोग इतनी विशिष्टता और स्वच्छन्दता से करता है कि प्रथम दृष्टि में शब्दों के व्याकरण-सम्बन्ध स्थापित करना कठिन हो जाता है। वास्तव में हॉपकिंस के ये दोनों ही प्रयोग उसे नये काव्य का अग्रगण्य नेता बना देते हैं, क्योंकि आधुनिक काव्य परम्परागत लयों, छंदों और रूढ़िगत काव्यभाषा से सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न हो जाता है। भाषा-शैली के नवीन और भावव्यंजक प्रयोगों में हॉपकिंस की तुलना पूर्ववर्तियों में केवल शेक्सपियर से की जा सकती है।

परन्तु हॉपकिंस के प्रकाश में आने (१९१९) से बहुत पहले इमेजिज़्म (१९०८-१९१७) नाम का एक साहित्यिक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। इस आन्दोलन को एक ओर पो के माध्यम से कॉलरिज से जोड़ा जा सकता है और दूसरी ओर फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन से। इस प्रकार इसे हम अंग्रेजी रोमांटिसिज़्म की ही पुनरावृत्ति कह सकते हैं। विक्टोरियन और जॉर्जियन साहित्य की अतिनैतिक, इतिवृत्तात्मक और तथ्यवादी साहित्यिक प्रवृत्तियों के विरोध में यह नया आन्दोलन सामने आया था। इमेजिज़्म स्कूल के कवियों में अमरीकी कवि वाल्टर डि ला मेर और फ्रेंच कवि जुले लफार्गे का प्रभाव प्रमुख है। प्रतीकवाद में ध्वनि या व्यंजना की प्रधानता थी। मेलार्मे ने स्पष्ट कहा था—"**मेरा लक्ष्य नाजुक छाया-प्रकाश उभारकर वस्तु का भाव-निर्माण है। उसका नाम न लेकर, सीधे अभिधात्मक शब्दों को छोड़कर दुर्ग्राह्य शब्दों में उसे बांधना है।**" यह व्यंजना संगीत का प्रमुख अंग था और इसी से प्रतीकवादी कवि काव्य को संगीत के अत्यंत निकट लाने में प्रयत्नशील थे। कॉलरिज ने भी काव्य में नादात्मक ध्वन्यात्मकता को महत्त्वपूर्ण बतलाया था और पो का कहना था कि काव्य में संगीत जैसे आरोह-अवरोह और नाद-तत्त्व ही नहीं होने चाहिए, संगीत में जैसी निर्वैयक्तिकता और रहस्यमयता रहती है, वह भी होनी चाहिए। काव्य 'कहे नहीं', अर्थ नहीं दे, 'बोध' दे। कवि के पास संगीतज्ञ जैसे स्वर नहीं हैं, परन्तु उनके स्थान पर भाव और स्पन्दन हैं। स्वरों की भांति ये भी निर्वैयक्तिक और सार्वभौमिक तत्त्व हैं। यह सम्भव है कि केवल कुछ भाव-संवेदनों से अन्य बहुत से भाव-संवेदनों की व्यंजना की जा सके, विशेष रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से जब उन भाव-संवेदनों का कोई गहनतम पारस्परिक सम्बन्ध हो।

इमेजिज़्म (चित्रवाद) में कवि इतनी दूर नहीं जाता। वह अपने अंतर्जगत् की ऐसी सूक्ष्म भावनाओं का उद्बोधन (एवोकेशन) करता है जो तथ्य-कथन में जकड़ी नहीं जा सकतीं। न वह आधुनिक जगत् के घात-प्रतिघातों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं का उद्घाटन करना चाहता है। वह जॉर्जियन कवि की इतिवृत्तात्मकता के विपरीत काव्य को सरल, सुष्ठ और सूक्ष्म बनाना चाहता है। फलतः वह अपनी काव्यगत संवेदना को किसी निश्चित स्थूल चित्र (इमेज) में बांध देने का प्रयत्न करता है। यह स्पष्ट है कि इस श्रेणी का कवि भी अपने भाव-संवेदन को सूक्ष्म रूप देगा। उसके पास भी प्रतीकवादी कवि के सामरस्य (एसोसिएशन) और व्यंजना (सजेशन) के दो तत्त्व हैं। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अर्थ देना कवि का लक्ष्य था।

इसमें संदेह नहीं कि इमेजिस्ट कवियों ने अंग्रेजी काव्यधारा को संकीर्णता के गह्वर से निकाला और यूरोप को अत्यन्त सशक्त प्रतीकवादी धारा से उसका सम्बन्ध स्थापित किया। परन्तु धीरे-धीरे कवियों को यह ज्ञात हुआ कि वे स्वयं रूढ़ियों में बँध गए हैं और उनकी अतिवादी मान्यताएँ काव्य-विकास में बाधक हैं। फलस्वरूप कुछ साहसी कवि प्रयोगों के नये क्षेत्र में उतरे। युग बदल गया था। नये युग के वैज्ञानिक विकास और तेजी से बदलते हुए नागरिक जीवन को काव्य-क्षेत्र से बहिष्कृत करना असम्भव था। काव्य में वे नये संस्कार आने अनिवार्य थे जो जीवन के अभिन्न अंग बन गए थे। काव्य-भाषा की विशिष्टता का जो आग्रह रोमांटिक, विक्टोरियन और जॉर्जियन युग के कवियों का था, वह समाप्त हो रहा था। नये कवि ने आधुनिक जीवन के सभी आनुषंगिक अंगों को स्वीकार कर लिया और इन्हीं तत्त्वों को लेकर काव्य का निर्माण करना चाहा। उसकी कविता में नागरिक कल्पना-चित्रों और मशीनों-राजनीतिज्ञों-कर्मकरों की भाषा का प्रवेश हुआ और ज्ञान-विज्ञान के नये क्षेत्रों से उसने अपने उपमान बटोरे। इस नवीनतम धारा का पहला पुष्प इलियट की रचना 'लव-साँग आव जे० एलफ्रड पुफ्राक' (१९१४) है। आलोचकों का कहना है कि इलियट की इस रचना ने आधुनिक काव्य-जगत् में महान् विस्फोट का कार्य किया। इस रचना की प्रारम्भिक पंक्तियाँ ही नई काव्य-चेतना की सूचक हैं।

Let us go then, you and I,
When the evening is spread out against the sky
Like a patient etherised upon a table,
Let us go, through certain half-desrrted streets,
The muttering retreats
Of restless nights in one-night cheap hotels
And saw-dust restaurants with oyster-shells,
Streets that follow like a tedious argument
Of insidious intent
To lead you to an overwhelming question......
Oh, so not ask, 'what is it' ?
Let us go & make our visit.

इस रचना के प्रकाशन के दो वर्ष बाद ही प्रथम महायुद्ध का आरम्भ हुआ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अगले चार वर्षों (१९१४-१८) में जिस काव्य का निर्माण हुआ, वह नये काव्य की परम्परा में नहीं जाता। वास्तव में नया काव्य जन-भाषा और प्रयोगों का काव्य था और युद्ध-काव्य में विक्टोरियन आत्मविश्वास, नैतिकता और ललकार की प्रधानता थी। युद्ध-काव्य की अपनी कोटि है और आधुनिक यूरोपीय काव्य का वह एक प्रमुख अंग है, परन्तु नये काव्य के विश्वास और संदेह के स्वरों के लिए हमें युद्धोत्तर काल की कविता को सामने रखना होगा, क्योंकि उसी में युग का स्वप्न-भंग मुखरित है। इस असार्थकता और संदेह को सबसे चेतन वाणी टी० एस० इलियट के काव्य में मिली। इलियट का 'द वेस्ट लैण्ड' (१९२२) युद्धोत्तर यूरोप के आभ्यंतर ध्वंस का प्रतीक बन गया। युद्धोत्तर काव्य में हमें यीट्स की 'द लेक ऑव इनिसफ्री' जैसी दो-चार रचनाएँ भी मिल जाती हैं, जिनमें कवि सामयिक जीवन की कटुता से भागकर एक काल्पनिक स्वर्ग में आश्रय ग्रहण करता है, परन्तु उसमें युद्धोत्तर जीवन की विश्रांति और तज्जन्य स्वप्न-भंग ही अधिक है।

वास्तव में स्वप्न-भंग से कहीं अधिक बलवती भावना विशृङ्खलता की थी। मनुष्य के विश्वासों के महल ढह गए थे। यह प्रक्रिया १९१२ के लगभग ही शुरू हो गई थी, परन्तु युद्ध में जातीय गौरव की भावना के विकास और राष्ट्रीय आत्मविश्वास के पुनर्जन्म के कारण व्यक्तिगत जीवन में थोड़ी स्थिरता आ गई थी। महायुद्ध के बाद यह स्थिरता जाती रही और अविश्वास तथा अनास्था की ओर प्रत्यावर्तन आरम्भ हुआ। यह विचारधारा इतनी तीव्रता लेकर आई कि उसके पथ में जो पड़ा वह गया। आशा, विश्वास, प्रेम और सौहार्द का संसार ही विनष्ट हो गया। उस संसार के देवता सिंहासनच्युत हुए और उनके ध्वज भूलुण्ठित। उनके स्थान पर नये विश्वासों और नई आशाओं की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी और चारों ओर 'क्या', 'क्यों' और 'कैसे' की जिज्ञासा, संदेह और निराशा की वाणी गूँजने लगी। जीवन की भांति काव्यक्षेत्र में भी उच्छृङ्खलता और अराजकता का राज्य हो गया। युद्ध-क्षेत्र में कवियों ने एक नये ढंग की स्वतन्त्रता सीख ली थी। वे जीवन से खेल कर चुके थे। केवल-मात्र आत्मविश्वास का संबल लेकर निकल पड़ना उनका स्वभाव बन गया था।

काव्य-दृष्टि में महान् परिवर्तन स्पष्ट था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में प्रतीकवाद के रूप में जो आन्दोलन काव्य-क्षेत्र में उठ खड़ा हुआ था, उसका मूल सिद्धान्त यह था कि कला अभिव्यक्ति है। परन्तु लगभग उसी समय एक नई विचारधारा भी उठ खड़ी हुई कि कला पुनर्निर्माण या अभिव्यक्ति नहीं, निवेदन है। धीरे-धीरे यह मान्यता बल प्राप्त करती गई और आज काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अप्रतिम रूप से इसे अधिकार प्राप्त है। प्राचीन दृष्टिकोण के समर्थक कला का महत्त्व इसमें समझते थे कि उसमें मानव-जीवन और मानव-प्रकृति को सचाई के साथ वाणी मिले। कलाकार के दर्पण में हम अपना ही मुख देखना चाहते थे, अथवा बाहरी जगत् का ऐसा बिंब जिसे हम पहचान सकें, परन्तु आधुनिकों का कहना है कि यह दृष्टिकोण भ्रामक है। इसमें उन्हें कवि की प्रकृतिगत मौलिकता के लिए कोई भी स्थान नहीं मिलता। उनका कहना है कि कलाकार प्रत्येक वस्तु को अपने विशिष्ट और व्यक्तिगत दृष्टिकोण से देखता है। फलस्वरूप यह सामान्य जन से कहीं अधिक स्पष्ट और दूर तक देखता है। कला उस विशिष्ट अंतर्दृष्टि का निवेदन-मात्र है। कलाकार का महत्त्व यही है कि उसका पाठक या श्रोता भी उसके दृष्टिकोण को आत्मानुभूत कर सके। इस दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देखने से आत्माभिव्यंजना उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती जितना निवेदन। एक हद तक यह मान्यता गलत भी नहीं है, यद्यपि कला को केवल संवेदन तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। उसके कुछ अन्य उपकरण भी हैं।

नये कवियों ने अपने को काव्य-परम्परा में स्थान देना चाहा तो उन्होंने नये काव्य की प्रवृत्तियों को डॉने और ड्रॉइडन में देखना आरम्भ किया। इन प्राचीन कवियों के काव्य में भी कला-जागरूकता और निवेदन महत्त्वपूर्ण थे। वे भी नये कवि की भांति निर्वैयक्तिक थे। इलियट ने पहली बार नये काव्य को परम्परा की भूमि दी। अपने एक अत्यंत प्रसिद्ध निबन्ध में उसने स्पष्ट रूप से कहा है—**"किसी भी कवि अथवा कलाकार की कला केवलमात्र अपने बल पर अर्थमती नहीं होती। उसकी विशिष्टता, उसकी मूल्यता पूर्ववर्ती कवियों और कलाकारों को लेकर साक्षेप है। केवल उसे ही लेकर उसका मूल्य निर्धारण असम्भव बात है···हमें उसे अनिवार्यतः पिछले युगों के मान-दण्डों पर आँकना होगा। यह नहीं कि हम यह देखें कि वह परलोकगत कवियों जैसा है या उनसे अच्छा-बुरा है। हमें उसे पिछले समीक्षकों के सिद्धान्तों पर तोलना नहीं है। यह ऐसा मूल्य है, ऐसी समतोल है जिसमें दोनों एक-दूसरे की तुलना पर तुलते हैं। किसी पुरातन कृति से समक्षता प्राप्त करना वास्तव में अक्षमता का चिह्न है। वह किसी भी अर्थ में समकक्षता प्राप्त करना नहीं है। कृति यदि नई नहीं है तो वह कला की चीज भी नहीं होगी।"**[1] इलियट के इस सिद्धान्त को लेकर उन्हें परम्परावादी कहा जाता है। यह स्पष्ट है कि इलियट ने काव्य-क्षेत्र में बढ़ती हुई उच्छृङ्खलता को रोका और अराजकता को काव्य मानने वाले नई पीढ़ी के कवियों के सामने परम्परा, संयम और साधना का नया आदर्श उपस्थित किया। कला को निवेदन-मात्र मानने से कवि का अहं इतना बढ़ गया था कि वह समझता था कि जब वह अपने मन के अनुसार अपनी अनुभूति का प्रकाशन कर देता था तो बस उसका कर्तव्य पूरा हो जाता था। फलतः युद्धोत्तर-काव्य का एक बहुत बड़ा अंश अराजक है। परम्परा के उत्तरदायित्व से मुक्त कवियों ने अपने ही काव्य को मानदण्ड मान लिया और काव्यभूमि प्रयोगों से भर गई—प्रयोग, प्रयोग, सतत प्रयोग। नयेपन की इस अदम्य आकांक्षा ने विडम्बना-काव्य ही उपस्थित किया, श्रेष्ठ काव्य हमें नहीं मिला। परन्तु नये शब्द, नये रूप, नये लय-छन्द के सहस्रशः विधान और मिश्रण इस काव्य ने दिये। गद्य-पद्य की सीमाएँ ही टूट गईं। काव्य-क्षेत्र से विराम-चिह्न बहिष्कृत होने लगे और कविता विचित्र आकृतियों, चित्रों और रूप-रेखाओं का आश्चर्य बन गई। छपे हुए पृष्ठ के लिए ही काव्य की सृष्टि होने लगी। प्रयोगों की इस बाढ़ में अर्थ, संकेत, प्रतीक, लय, छन्द, अभिजात शब्द सब बह गये। इसमें संदेह नहीं कि ये प्रयोग आज भी हमें आश्चर्यजनक और आकर्षक लग सकते हैं, कुछ सीमा तक उत्तेजक बन सकते हैं, परन्तु नये काव्य को इस अराजकता से शीघ्र ही उभरना पड़ा। संयम और ज्ञान की वाणी हमें पहले-पहल इलियट में सुनाई पड़ी।

: ६ :

इलियट का समीक्षक और कवि-रूप बहुत-कुछ भिन्न है। समीक्षा के क्षेत्र में वे आरनाल्ड की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं और उनके दृष्टिकोण में परम्परा प्रयोग से कहीं अधिक

१. **'इंडिवीजुअल टेलेंट : सेलेक्टेड ऐसेज'—टी० एस० इलियट।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महत्त्वपूर्ण हो जाती है, परन्तु काव्य के क्षेत्र में इलियट अदम्य साहसी और प्रयोगी हैं। इस दिशा में वे पूर्णतः मौलिक हैं। 'द लव-साँग आव जे० एल्फ्रेड पुकफ्राक' (१९१२) में इलियट ने पहली बार आधुनिक काव्य को नई काव्यभूमि दी। सामान्य की ओर संक्रमण आधुनिक युग के यथार्थवादी दृष्टिकोण की विशेषता है और इस रचना में हम एक अमहत्त्वपूर्ण सामान्य व्यक्ति के मन में उठे हुए संघर्षों और भावान्दोलनों की एक अत्यन्त विशद और सूक्ष्म झाँकी देखते हैं। इस कविता को हम अंग्रेजी की पहली मनोवैज्ञानिक कविता कह सकते हैं। इस रचना में बाह्य चित्रण महत्त्वपूर्ण नहीं है। नायक के मन का अंतर्विस्फोट ही महत्त्वपूर्ण है। एक ही मस्तिष्क में विभिन्न विचारधाराओं और किंकर्तव्यों का कैसा भावान्दोलन उठा करता है, इसका आकर्षक चित्रण यहाँ हमें मिलता है। दूसरी कविता 'द वेस्ट लैण्ड' (१९२२) में कवि ने व्यक्ति के मन को छोड़कर सामूहिक मन की अभिव्यक्ति करनी चाही है। इस कविता का नायक यूरोप का युद्धोत्तर समाज है। पहली कविता से इस नई कविता का दृष्टिकोण अधिक विशद है, अधिक परिपक्व और विकसित कला का उपयोग कवि करता है। कवि वर्णन या चित्रण की पुरानी शैली को प्रतीकवादियों द्वारा ग्रहीत नई व्यंजनात्मक शैली से मिलाकर उपयोग में लाता है। युद्धोत्तर-काल की व्यर्थता और निराशा की ऐन्द्रजालिक छटा हमें इस काव्य में मिलती है और युग के भावात्मक, बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक विशृङ्खलन का अवसादजनक चित्र उभर आता है। कविता की केवल ४३० पंक्तियों में इलियट ने समस्त यूरोपीय युद्धोत्तर भाव-जगत् का आलोड़न-विलोड़न अंकित कर दिया है। इलियट की इस रचना का अपना अलग सौंदर्य है। उसकी विरूपात्मकता ही उसका सौंदर्य है। यह सौंदर्य विक्टोरियन और जॉर्जियन काव्य के सौंदर्य से भिन्न है। कवि ने ग्रीक और लेटिन काव्यों, पुराण-गाथाओं, जनश्रुतियों और प्रागैतिहासिक रीति-रिवाजों की सारी दुनिया से पग-पग पर सहारा लिया है और नये भाव-संघात को पुराने जाने-पहचाने मूल्यों द्वारा उभारते हुए उन मूल्यों को भी नये अर्थ दिये हैं। यह कहा जा सकता है कि अध्ययनप्रसूत रूपकों और सन्दर्भों के कारण यह काव्य बौद्धिक बनकर विशिष्ट वर्गमात्र तक सीमित रह गया है, परन्तु कवि का यह आग्रह भी नहीं है कि वह सबके लिए लिख रहा है। कवि का अपना संसार है, परन्तु यह भी निश्चय है कि वह अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुँचना चाहता है। इलियट के काव्य का काठिन्य वस्तुतः उसका भाव-वैशिष्ट्य है। उसके प्रयोग भाव-गोपन के लिए नहीं, भाव-प्रकाशन के लिए ही हैं और धीरे-धीरे उसका पाठक-समाज निवेदन की कठिनाइयाँ पार कर व्यापक होता गया है। इसमें संदेह नहीं कि इलियट का 'द वेस्ट लैंड' सार्वयुगीन काव्य नहीं है। उसमें बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक की मनःस्थिति ही उभर सकी है, पर उसकी सीमाओं को स्वीकार करना उसको छोटा करना नहीं है। नई काव्यधारा के विवेचक को इस रचना को अग्रस्तंभ मानकर ही चलना होगा। युग-मन का जैसा चित्र इस काव्य में है वैसा सारे आधुनिक काव्य में नहीं मिलेगा। उसमें सम्पूर्ण युग-चेतना सन्निहित है। उसमें घटनाओं का विवरण नहीं है, युद्धोत्तर जन-मन की असार्थकता और कुण्ठा लिपिबद्ध है। इलियट की इस रचना का परवर्ती काव्य पर बड़ा व्यापक और गम्भीर प्रभाव पड़ा है। आधुनिक जीवन की उलझनों को विवरणात्मक ढंग से उपस्थित करना असम्भव बात है। उसके लिए ऐसी मनोवैज्ञानिक काव्य-शैली के आविष्कार की आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



थी जो अन्तर्मन को पुनर्जीवित कर सके। इलियट की नाटकीय, मनोविश्लेषण-प्रधान, सतर्क, कला-जागरूक शैली नागरिक संस्कारों के उद्घाटन के लिए नये उपकरण देने में समर्थ रही है। एक तरह से इलियट ने एजरा पाउण्ड और इमेजिज़्म, (चित्रवादी) स्कूल को आत्मसात् कर अपने काव्य-जगत् में प्रवेश किया है और इन स्रोतों का पूरा उपयोग उसके काव्य में हुआ है। इलियट पर पाउण्ड का प्रभाव इसीसे स्पष्ट है कि उसने 'द वेस्ट लैंड' को पाउण्ड को ही इन शब्दों में समर्पित किया है—

For Ezra Pound
il miglior fabro

(कुशल कलाकार एज़रा पाउण्ड को)

हम यह स्थापित कर चुके हैं कि अंग्रेजी काव्य की नव्यतम धारा पर फ्रांसीसी प्रतीकवादियों का प्रभाव रहा है और रूढ़िवादी तथा परम्परागत विचारधाराओं और काव्य-परिपाटियों से पुष्ट होने के कारण यह प्रभाव काफ़ी दूर तक महत्त्वपूर्ण रहा है। वास्तव में पाउण्ड और इलियट नई काव्यधारा के आदि कवि हैं। पाउण्ड की एक रचना 'ह्यू सेलविन मावरले' में हमें इलियट के 'द वेस्ट लैण्ड' का बीज मिल जाता है। इस लम्बी रचना में हम १८६० से १६१८ तक के विस्तृत काल का चित्र एक कल्पित माध्यम से पाते हैं। एक समस्त युग की कुण्ठा और आत्म-प्रताड़ना इस रचना में झलक उठी है। तृतीय पुरुष में नाटकीय ढंग से युग-चित्रण की एक नई शैली ही इलियट और परवर्ती कवियों में बाद में लोकप्रिय हुई है।

नव्यतम काव्यधारा के प्रवर्त्तकों में हमें विलियम बटलर यीट्स (१८६८-१६४५) का नाम भी लेना आवश्यक है। परन्तु यीट्स किसी काव्यधारा या काव्यशैली के उन्नायक नहीं हैं, यद्यपि उन्होंने अनेक काव्यधाराओं और काव्यशैलियों को प्रभावित किया है। अनेक महत्त्वपूर्ण आधुनिक कवियों ने यीट्स के प्रभाव को स्वीकार किया है। स्वयं यीट्स में रवीन्द्रनाथ की भाँति अनेक काव्य-व्यक्तित्व सन्निहित हैं। १८६० ई० के लगभग नवयुवक यीट्स की पेरिस में मेलार्मे से भेंट हुई और सन्देह नहीं कि यीट्स के प्रारम्भिक काव्य में प्रतीकवाद का बहुत-कुछ है, यद्यपि प्रतीकवाद के अनेक तत्त्व कवि की बहुत पहले की रचनाओं में भी मिल जाते हैं। बाद में आइरिश लोकगाथा और पुराण-कथा के तत्त्वों ने यीट्स के काव्य को एक अलग विशिष्टता दे दी और यीट्स आइरलैण्ड के राष्ट्रीय पुनरुत्थान के अग्रदूत बन गए। कल्पना और रोमांस के एक नये संसार का उन्होंने निर्माण किया और उनकी इस समय की मनःस्थिति को पलायनवाद ही कहा जा सकता है। परन्तु १६१० तक यीट्स की मनःस्थिति में महान् परिवर्तन हो गया था और अब उनके काव्य में सौन्दर्य ही नहीं, शक्ति के भी दर्शन होते हैं। काल्पनिक जगत् के भाव-विलास से उतरकर कवि यथार्थ जीवन में ही सौन्दर्य ढूँढ़ने लगा है। कवि की प्रौढ़ कृतियों में हमें उसकी इस कोटि की कला का सर्वोच्च विकास दिखलाई देता है। उदाहरण के लिए, हम 'द टावर' नाम की रचना को ले सकते हैं। इस रचना में कलात्मक सौन्दर्य-सृष्टि की कोई जागरूक चेष्टा हमें जान नहीं पड़ती। कवि की सत्यान्वेषी अन्तर्दृष्टि और उसकी ईमानदारी ही हमें प्रभावित करने में यथेष्ट है। संयम और मिताचार इस काव्य की सबसे बड़ी शक्तियाँ हैं। दृश्यमान जगत् की अवास्तविकता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पीछे की सचाई को कवि ने साहस से पकड़ा है। इस परवर्त्ती काव्य में निर्वैयक्तिकता की साधना स्पष्ट है जो अधुनातन काव्य की विशेषता है। रोमांटिक काव्य ने जीवन से सम्पर्क तोड़ दिया था, नये काव्य ने वैज्ञानिकता को आश्रय देकर, निर्वैयक्तिक बनकर, जीवन के सत्य को अपनाया। रोमांटिकों के इन्द्रधनुषी कल्पना-जगत् के प्रति यह नये काव्य का विद्रोह था। यीट्स के इस परवर्त्ती काव्य में हमें स्वप्न-भंग का काव्य ही अधिक मिलता है। परन्तु यह समस्त आधुनिक काव्य की विशेषता है। सतत प्रवाह और परिवर्तन के इस युग में जीवन का स्थायीपन नष्ट हो चुका है, पुरातन ध्वज गिर गए हैं और नये अभी खुल नहीं पाए हैं। ऐसे अनास्था के युग में कवि की वाणी में अवसाद और कुण्ठा की प्रधानता होना अनिवार्य है। वह एकदम नये, सब प्रकार से अरक्षित और अचिह्नित समुद्रों में सन्तरण कर रहा है।

: ७ :

नये कवियों में से इलियट के बाद जिन्हें सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई, वे सिटवेल-परिवार के कवि थे। मिस एडिथ सिटवेल और उसके दो भाई सेचेवेरेल सिटवेल और आज्बर्ट सिटवेल इस कवि-परिवार के सदस्य हैं। 'द ऑक्सफोर्ड बुक आव माडर्न वर्स' नाम के संचयन में यीट्स ने सेचेवेरेल सिटवेल के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से लिखा है कि कालान्तर में यह कवि अधिक प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। इस कवि ने हॉपकिन्स के 'स्प्रंग रिद्म' का बड़ा सुन्दर और व्यापक उपयोग किया है और उसके काव्य में हमें व्यक्तिगत कल्पना-चित्रों का चमत्कार दिखलाई देता है। एडिथ में भावना कम है, कला-जागरूकता अधिक है। उसकी पंक्तियाँ कठिन और गद्यात्मक हैं और भाषा-शैली भी जटिल है, यद्यपि मूर्ति-विधान का एक बड़ा सुन्दर और ऐश्वर्यशाली रूप उसके काव्य में दिखलाई देता है। एडिथ की प्रारम्भिक रचनाओं में नारी के विविध रूप हमें मिलते हैं जिनमें करुणा और कोमलता का सर्वोच्च विकास है। परवर्त्ती काव्य में कारुण्य का और भी प्रसार दिखलाई देता है और अधिकांश रचनाएँ दुःखांत हैं। कवयित्री की विशेपता है संगीत और प्रतिमान। उसमें इलियट जैसी गम्भीर दार्शनिकता नहीं है, फिर भी काव्यात्मक संवेदनाओं के प्राचुर्य के कारण उसका काव्य उत्कृष्ट कोटि का काव्य है।

अन्य आधुनिक कवियों में वाल्टर डि ला मेर, डब्ल्यू० एच० डेविस, ए० ई० हाउसमेन, ऑडेन, स्पेंडर, डे लेविस आदि का नाम ले सकते हैं। डि ला मेर के काव्य में परोक्ष और बालक के कल्पना-जगत् का सम्पूर्ण ऐश्वर्य हमें मिलता है। जीवन की दैनन्दिन वास्तविकता से दूर एक विचित्र छायालोक की उसने सृष्टि की है। इसके विपरीत ऑडेन अपने चारों ओर के संसार तक ही सीमित है, परन्तु उसके काव्य में प्रतिदिन का अनुभव कुछ अधिक विशिष्ट, बहुमूल्य और गम्भीर बनकर हमारे सामने आता है। इन दोनों कवियों की भाषा बीसवीं शती की बहुसूत्री और गूढ़ भंगिमायुक्त भाषा है। सामयिक जीवन के प्रत्येक अनुभव को ये कवि भाषा में बाँधते हैं। कोई भी अनुभव उनके लिए हीन और असार नहीं है। फिर भी ये कवि आत्मनिष्ठ और व्यक्ति-मुखी हैं। उनमें बीसवीं शताब्दी के अन्य कवियों जैसा प्रयोग का बल नहीं है। ए० ई० हाउसमेन के काव्य में हमें ऐसी ही निर्विशेषता मिलती है। वास्तव में इन तीनों को आधुनिक काव्य का प्रतिनिधित्व नहीं दिया जा सकता। नूतनतम काव्य का प्रतिनिधित्व ऑडेन, स्पेंडर और डे लेविस के काव्य में मिलता है। ये कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



काव्य-विषय अथवा काव्य-पद्धति में सौन्दर्य की गवेषणा नहीं करते। उनका विश्वास है कि आधुनिक कवि की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी सामयिक संसार के प्रति है। उसे अपने चारों ओर के संसार में से खोज-खोजकर सुन्दर दृश्य नहीं दिखाना है, उसे वस्तुगत सत्य को सम्पूर्णता में देना है। उनके लिए कला सत्य का निवेदन-मात्र अर्थात् केवल तथ्यगत सत्य ही नहीं है, उससे आगे बढ़कर वे कल्पनाजन्य सत्य तक जाते हैं। इन तीनों कवियों को हम आधुनिक काव्य की त्रिमूर्ति न कहकर त्रिधारा कह सकते हैं, क्योंकि मूल विचारों में समानता होते हुए भी वे काव्य-प्रक्रिया में असमान और विभिन्न हैं। इन कवियों ने उपमानों, रूपकों और प्रतीकों के रूप में आधुनिक वैज्ञानिक-भौतिक जगत् का बड़ा व्यापक उपयोग किया है और काव्य-विषय एवं भाषा का अपरिसीम विस्तार हमें इनके काव्य में मिलता है।

: ८ :

१९३० तक के काव्य में हमें सामाजिक अथवा राजनीतिक चेतना नहीं मिलती। कवि विशुद्ध काव्य के समर्थक जान पड़ते हैं। वास्तव में इलियट के काव्य की सबसे बड़ी लांछा ही यह है कि वह सामाजिक क्रांति के प्रति तटस्थ है और उसके साहित्य में एक प्रकार की पलायन-वृत्ति है। इलियट ने स्वयं अपने लेखों में कहा है कि कवि का समाज के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं है। 'मेन ऑव लैटर्स एंड द फ्यूचर ऑव यूरोप' निबन्ध में उसने स्पष्ट रूप से यह मंतव्य स्पष्ट किया है कि साहित्यकार का केवल एकमात्र उत्तरदायित्व है, कृति के प्रति। अवकाश के समय में ही वह समाज के प्रति उत्तरदायी होता है। यह स्पष्ट है कि इलियट का यह दृष्टिकोण फ्रांस के इलुअर्ड और अरागों जैसे लेखकों से भिन्न है, जो काव्य के समाजोन्मुख कर्तव्य के कट्टर समर्थक हैं। १९३० के बाद जो कवि हमारे सामने आते हैं, उनके दो वर्ग किये जा सकते हैं। पहले वर्ग के कवि ऑडेन, डे लेविस, मेकनीस, स्पेंडर, लेहमान आदि हैं जिनमें ऑडेन प्रमुख हैं। इन कवियों में हमें सामाजिक या राजनीतिक जागरूकता भी मिलती है, यद्यपि वे सामाजिक और राजनीतिक द्वन्द्वों में अपने कवि-व्यक्तित्व को एकदम नहीं खो पाते। इन कवियों में 'आधुनिक' बनने का प्रयास स्पष्ट है और इसी से इन्होंने मशीनों, अस्पतालों, कटरों और अपने चारों ओर की सामाजिक स्थिति से प्रतिमानों को इकट्ठा किया है। वे उस जगत् से पूर्ण रूप से आश्वस्त हैं जिसमें उनका जन्म हुआ है। वे अपने युग की रोगग्रस्त सामूहिक चेतना से भी पूर्ण रूप से परिचित हैं और मनोविज्ञान तथा मार्क्सवादी राजनीति में उन्होंने अपने युग की समस्याओं का समाधान प्राप्त कर लिया है। इन कवियों में हमें व्यक्तिगत भावोद्रेक भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है, परन्तु वे आधुनिक जीवन की विषमताओं से संत्रस्त रहने के लिए व्यक्तिनिष्ठ नहीं बने रह पाते। यौन के प्रति उनका आकर्षण अपरिसीम है, परन्तु संभवतः ऐन्द्रियता की मात्रा अधिक नहीं है। इसका कारण यह है कि उनका दृष्टिकोण बराबर बौद्धिक है। उनके प्रति यह लांछा भी उपस्थित की जा सकती है कि वे अपने व्यक्तित्वों से चिपटे रहने के कारण मानवता के व्यापक प्रश्नों में अपने को डुबो नहीं पाते। उनका काव्य बहुत दूर तक कम्युनिस्ट भावनाओं से प्रभावित है, परन्तु सच तो यह है कि हमें उसमें एक द्वैध व्यक्तित्व ही मिलता है जो वैयक्तिक विकास और सामाजिक चेतना के उभय पक्षों में कोई संतुलन स्थापित नहीं कर सका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऑडेन को छोड़कर लगभग सभी अन्य किसी-न-किसी रूप में दूसरे महायुद्ध (१९३९-४६) के अवसर पर युद्ध-कार्य से सम्बन्धित रहे और उन्होंने युद्ध-काल की चेतना के अनेक स्पन्दनों को काव्य का रूप दिया। इन कवियों की राजनीतिक चेतना का सबसे जाग्रत रूप हमें स्पेन के गृह-युद्ध से सम्बन्धित रचनाओं में मिलता है, जिसमें इन्होंने मानव-मुक्ति का महामंत्र पढ़ा था। ऑडेन, मेकनीस और स्पेंडर युद्ध के बीच में स्पेन गये और रेल्फ़ फ़ॉक्स, जूलियन बेल, क्रिस्टोफ़र कॉडवेल और जॉन कार्नफ़ोर्ड ने अन्तर्राष्ट्रीय ब्रिगेड में भरती होकर युद्ध में भाग लिया। फ़ॉक्स, बेल, कॉडवेल और कॉर्नफ़ोर्ड इस युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए। यह जनयुद्ध का पहला मोर्चा था और इन साहित्यकारों के लिए प्रजातंत्र से अमूल्य सिद्धान्तों की सुरक्षा का प्रश्न स्पेन के गृह-युद्ध से अभिन्न था।

इस वर्ग के कवियों में बौद्धिकता का आग्रह विशेष है और बाद के कवियों में, जिनमें विलियम एम्पसन प्रधान है, यह आग्रह बढ़ता गया है। एम्पसन ने जहाँ आधुनिक वैज्ञानिक चिंताधाराओं से काव्य-भाषा को समृद्ध किया और उसे इतना 'कूट' बना दिया कि आधी दर्जन विज्ञान की शाखाओं का विशेषज्ञ हुए बिना उसके काव्य में पूर्ण रूप से रस लेना असम्भव है, वहाँ साथ ही वह भाषा का एक अत्यंत व्यक्तिगत और विशिष्ट उपयोग करता है। ऑडेन के काव्य की तरलता के विपरीत एम्पसन के काव्य में विशेष प्रकार की कठोरता है। इस धारा के दूसरे कवि हैं माइकेल राबर्ट्स, रेनाल्ड बाटराल, कैथलीन रैन, जॉन लेहमान, जूलियन बेल, और चार्ल्स मेज। युद्ध के बीच में कवियों ने यूरोपीय और पूर्वीय काव्यों से परिचय प्राप्त किया है और उनसे प्रभाव ग्रहण किया है। यह हमें होल्डरलिन, रिल्के, फ्रेड मार्नो, रिम्बो, नेसवाल्ड, लोर्का, अरागों और रूसी, चीनी तथा जापानी कवियों के अनुवादों से ज्ञात होता है। कुछ यूरोपीय कवियों ने भी अंग्रेजी में लिखा है जिनमें ग्रीक कवि दिमित्रियास केपेतनकीस प्रधान हैं।

दूसरा वर्ग उन कवियों का है जिन्होंने काव्य के चेतन और बौद्धिक पक्ष के प्रति विद्रोह किया है और अचेतन, रहस्यमय, रोमांटिक, केल्टिक और शब्द-चेतनामूलक काव्य-प्रक्रियाओं को काव्य में उभारा है। इन कवियों में डाइलन टामस प्रमुख हैं। इन कवियों का काव्य अंतश्चेतनाप्रधान, उपचेतनामूलक और सौन्दर्यनिष्ठ है एवं इनमें हमें प्रतीकवादी काव्यधारा का ही विकास मिलता है। इलियट ने जिस बौद्धिकता को जन्म दिया था उससे हटकर ये कवि काव्य को एक बार फिर नादात्मक और चित्रात्मक सौन्दर्य की ओर लिये जा रहे हैं। जॉर्ज बारकर और डेविड गेसकोन इस धारा के अन्य कवि हैं। वास्तव में इन कवियों को हम अंग्रेजी के सुररियलिस्ट कवि कह सकते हैं।

पिछले दिनों के अंग्रेजी काव्य में हम कुछ नई प्रवृत्तियों का विकास देखते हैं। इनमें से एक प्रवृत्ति बोलियों के काव्य की अथवा बोलियों से प्रभावित काव्य की है। इसे हम आंचलिक काव्य कह सकते हैं। वेल्स के अनेक तरुण कवियों ने स्थानीय शब्दों और मुहावरों के प्रयोग से अँग्रेजी काव्य-भाषा में नवीनता लाने का प्रयत्न किया है, जैसे वर्नन वेटकिंस, केडरे रिहस और एलन लेविस ने। इसमें संदेह नहीं कि काव्य-भाषा को स्थानिक और प्रादेशिक रंग देने की प्रवृत्ति साहित्य के इतिहास में बराबर मिलती है, परन्तु यह कहना कठिन है कि जनपदीय भाषाओं का काव्य काव्य-विकास के इतिहास में कुछ सहायक हो सकेगा या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं। फिर भी प्रयोग का अपना महत्त्व है ही।

दूसरी प्रवृत्ति है राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों से हटकर व्यक्तिगत भावों में सिमटने की। सम्भवतः आज का कवि यह जान गया है कि वह अपनी अभिरुचि, आशा-कांक्षा, मानवीयता और अपने व्यक्तित्व को किसी भी राजनीतिक-सामाजिक संगठन में विलीयमान नहीं कर सकेगा। फलतः उसने राजनीति के सम्बन्ध में सोचना ही छोड़ दिया है और वह अपने ही भीतर केन्द्रित हो गया है। कहने को अनेक कवि कम्युनिस्ट हैं, परन्तु उनकी वाममार्गीयता बहुत-कुछ कुण्ठाजन्य और निरीह है। डाइलन टामस की रचना 'बेलेड ऑव मेरी लियुड' (१९४१), लारी ली की रचना 'द सन माई मानुमेण्ट' (१९४४), एफ़० टी० प्रिंस का संचयन 'पोयम्स' (१९३८), हेनरी रीड की रचना 'ए मेप ऑव वेरोना' (१९४६), टेरेंस टिलर का संकलन 'सेलेक्टेड पोयम्स' (१९४१) और जी० एस० फ़्रेजर की 'होम' आदि कई रचनाएँ काव्य की नव्यतम प्रवृत्तियों की सूचक हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ कवि हैं, जैसे निकोलस मूर, जो किन्हीं धाराओं से सम्बन्धित नहीं हैं। इन कवियों में हम प्रयोगों की ऐसी नई दिशाएँ पाते हैं जो इलियट और ऑडेन के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयत्न सूचित करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोहर वर्मा

# प्रतिबिम्बवाद

प्रतिबिम्बवादी आन्दोलन (Imagist movement) का सूत्रपात सन् १६०६ में ह्यूमे के नेतृत्व में हुआ। सन् १६१२ में इजरा पाउंड ने 'रिपोस्टे' की भूमिका में उसका यह नामकरण किया। सन् १६१४ में 'दि इगोइस्ट' के रूप में उन्हें अपना मुखपत्र प्राप्त हुआ। सन् १६१४ में ही इजरा पाउंड ने प्रतिबिम्बवादी कवियों का एक संग्रह प्रकाशित किया, जिसमें ११ कवियों को प्रतिनिधित्व मिला। इसके पश्चात् आन्दोलन का नेतृत्व एमी लॉवेल की पूँजी एवं व्यक्तित्व से संचालित हुआ, जिसने सन् १६१५-१६-१७ में 'सम इमेजिस्ट पोयट्स' के नाम से प्रतिबिम्बवादी काव्य को संग्रहीत किया। प्रतिबिम्बवादी काव्य का अन्तिम संग्रह सन् १६३० में निकला, क्योंकि इस आन्दोलन को साहित्यिक क्षेत्रों में बहुत विरोध मिला और प्रथम महायुद्ध के अंत तक आन्दोलन समाप्त हो चुका था। इस प्रकार प्रतिबिम्बवादी इस आन्दोलन का जीवन केवल दस वर्ष का है। प्रतिबिम्बवादी सिद्धांतों में कुछ ऐसी त्रुटियाँ थीं जिनके कारण वह अधिक समय तक समाज की काव्य-चेतना को संतुष्ट नहीं कर सकता था। किंतु यह मानना पड़ेगा कि प्रतिबिम्बवाद के कुछ कलात्मक निष्कर्षों का पूरा-पूरा उपयोग हुआ और कई साहित्यिक आज भी कुशलता से उनका निर्वाह करने में समर्थ हैं। लेकिन प्रतिबिम्बवादी आन्दोलन-जैसी वस्तु अब इतिहास के पृष्ठों तक ही सीमित रह गई है। हमारे हिन्दी-साहित्य के 'नई कविता' की ध्वजा उठाकर चलने वाले पश्चिमी विचारों के अनुवादक कवियों को आंग्ल-साहित्य की यह ऐतिहासिक घटना महत्त्वपूर्ण चेतावनी देती है।

प्रतिबिम्बवाद के प्रेरणा-सूत्रों के लिए मुख्य रूप से फ्रेंच प्रभाववादी चित्र-कला को समझ लेना होगा। वैसे प्रतिबिम्बवाद फ्रेंच क्लासिकल एवं ओरिएण्टल की मिली-जुली प्रेरणा है, किन्तु उसका प्रत्यक्ष जन्म प्रभाववादी चित्र-शैली से ही हुआ। अतः प्रभाववादी चित्र-कला को पृष्ठभूमि में रखते हुए प्रतिबिम्बवाद का अध्ययन करना तार्किक आवश्यकता है।

प्रभाववाद (Impressionism) का सूत्रपात फ्रेंच चित्र-कला द्वारा हुआ। 'प्रभाव' (Impression) शब्द कला-जगत् को क्लॉड मेनेट की एक चित्र-कृति द्वारा मिला, जिसमें उसने सूर्यास्त का दृश्य अंकित किया था। फ्रांस के रूढ़िवादी कला-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध इस चित्र का लेखन हुआ था, अतः आलोचकों द्वारा इसकी तीव्र समीक्षा हुई। किन्तु नवीन क्रांतिकारी विचारों वाले कलाकारों में इस नवीन कला-शैली का स्वागत हुआ और पिसेरो रेनॉयर डेगॉ-गॉगिन इत्यादि चित्रकारों ने उसका प्रयोग उत्साह के साथ आरम्भ किया। आंग्ल प्री-रेफेलाइट चित्रकारों और इन प्रभाववादी फ्रेंच चित्रकारों में यह मुख्य अन्तर था कि



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जब आंग्ल चित्रकार अपने सिद्धांतों की स्थापना एवं विरोधी शिविरों के आक्रमणों के लिए एक दृढ़ संगठन और मुखपत्र के साथ सुसज्जित थे तब ये प्रभाववादी चित्रकार असंगठित वैयक्तिक रूप से अपना कार्य कर रहे थे।

चित्रकला में प्रभाववादी शैली की प्रमुख विशेषता यही है कि वह वस्तु-जगत् के शाश्वत सत्यों की अपेक्षा क्षणिक परिवर्तनशील झलक को अधिक महत्त्व देती है। वह वस्तुओं को ठीक वैसा ही चित्रित करने के पक्ष में है जैसी कि वे प्रेरणा-क्षणों में दिखाई देती हैं। पूर्व-निश्चित धारणाओं के आधार पर उनकी मानी हुई रेखा-कृति और रंगों के उपयोग में उनकी रुचि नहीं। इन दो दृष्टियों में बहुत अन्तर है। दूर से घने हरे पेड़ की पत्तियाँ नीली दिखाई पड़ती हैं और छाया-प्रदेश भूरा-काला-सा न होकर अपने आस-पास उपस्थित पदार्थों के रंग का मिश्रित रूप होता है। इस विशेष दृष्टि से प्रभाववादी चित्रकार यथार्थ के आग्रही अधिक हैं, यद्यपि उनकी प्रेरणा-निर्देशन का सूत्र 'एपियरेंस' है। वे अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों के शुद्ध प्रकाशक हैं और पूर्व-निश्चित मूल्यों तथा परम्परागत मान्यताओं के भ्रम से अपनी कला को बचाने की चेष्टा करते हैं। प्रभाववाद वस्तुतः 'प्री-रेफेलीटिज़्म' की अधोमुखी सन्तुलित स्थिति है। 'प्री-रेफेलीटिज़्म' में दूर से दृष्टिगोचर न होने वाले अंगों को विस्तार दिया जाता है।

चित्र-कला का 'प्री-रेफेलीटिज़्म' से प्रभाववाद की ओर अग्रसर होने का अर्थ है (ऐतिहासिक दृष्टि से, तार्किक दृष्टि से नहीं) मध्ययुगीन कला-विधान का आधुनिक कला-विधान में परिणत होना—स्वच्छन्दतावाद से यन्त्र-संस्कृति की ओर—अति कल्पनाशील छायाभासों के भव्य चित्रांकन से उपयोगितावादी मूल्यों की ओर—शस्त्रों की खनक से कार-खाने की चिमनी के धुएँ की ओर। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रभाववादी रेखांकन में शौर्य या राजसी गौरव स्वीकृत नहीं; किन्तु यंत्र-युग में जन्म लेने के कारण वह शुद्ध यथार्थ की भूमि पर आधारित है।

प्रभाववादी चित्र-शैली का प्रभाव काव्य पर पड़ने का कारण कवि एवं चित्रकार दोनों के एक व्यक्तित्व में मिश्रित होना नहीं है (जैसा रोज़ेटी एवं मॉरिस के काव्य में हुआ था), किन्तु इसका कारण दोनों पक्षों की कला-वस्तु-विषयक समान विचार-दृष्टि थी। प्रभाव-वादी काव्य में साधारणतः स्पष्ट बाह्याकृतियों, अनुपात एवं रंगों की ताज़गी नहीं मिलती। इसके स्थान पर बहुधा उड़े हुए-से रंग, धुँधले आकार एवं अस्पष्ट छायाकृतियों का सम्मिलित रूप मिलता है।

आर्थर सिमन्स और अर्नेस्ट डेविडसन को ह्रासोन्मुख (decadent) कवि कहा जाता है। आर्थर सिमन्स में डेविडसन-जैसी उच्चकोटि की प्रतिभा नहीं थी, किन्तु उसमें प्रभाव-वादी शैली की अनुप्रेरणा मिलती है। 'डेज़ एण्ड नाइट्स' (पेटर को समर्पित एवं रोज़ेटी से प्रभावित) में स्पष्ट स्वाभाविक 'प्रभाव' मिलते हैं, हेनले के 'प्रभाव'पूर्ण शब्द-चित्र यथेष्ट आकर्षक हैं। 'लंडन वॉलेंटियर्स' में प्रभाववादी चित्रकारों की प्रेरणा स्पष्ट है। प्रकाश एवं छाया का आनुपातिक सन्तुलन, रेखाकृतियों के पुष्ट सबल उभार उसकी विशेषता हैं। डेविडसन की 'ऑल हालोज़ ईव' प्रभाववाद का श्रेष्ठ उदाहरण है। दूर से देखी जाने वाली वस्तुओं की अस्पष्ट धुँधली चित्रात्मकता एडिथ सिटवैल की इन पंक्तियों में देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Outside the dust of all the dead
Thick on the ground is spread
Covering the tinsel flowers
And pretty dove-quick hours,
And the round leaves, Cupid-small
Upon the trees so wise and tall.
O dust of all the dead, my heart has known
That terrible Gehenna of the love
Deserted by the flesh with death alone!

(The Hambone and the Heart)

किन्तु एडिथ सिटवैल का काव्य बहुधा चमकदार रंगीन-आकृतियों से सुसज्जित मिलता है। वह एक वस्तुपूर्ण संवेदनात्मक जगत् है, विचारपूर्ण नहीं। ए० सी० वार्ड ने लिखा है—

"Objects and scenes are often robbed of their visual quality, in order that they may be given a sensation quality. The reader is expected to receive an impression of objects not through descriptions that enable him to recognize them as things known by sight but by an application of epithets designed to revive the sensations previously experienced in contact with similar objects, or in similar circumstances."

(Twentieth Century Literature, P. 192.)

जब दृश्यात्मक गुण की उपेक्षा होती है तो काव्य में अधिक चित्रात्मकता नहीं रह जाती। तब वह जिस प्रभाव का प्रकाशन करती है वह बहुत साधारण कोटि का और कला-दृष्टि से असन्तोषजनक होता है। प्रभाववादी चित्रात्मकता का उल्लेखनीय रूप आसवर्ट सिटवेल के काव्य में मिलता है। इलियट के 'प्रिल्यूड्स' में उसकी चित्रांकन प्रतिभा का परिचय मिलता है।

प्रतिबिम्बवादी आन्दोलन द्वारा प्रभाववादियों का कार्य सुचारु रूप से आगे बढ़ा। प्रतिबिम्बवाद ने स्वच्छन्दतावाद की अपेक्षा शास्त्रीय पद्धति को मान्यता दी, बल्कि उन्हें स्वच्छन्दतावाद के विरोधी शिविर में रखना कहीं अधिक उचित होगा। उन्होंने काव्य में दृश्यात्मक प्रतिबिम्ब की संक्षिप्त एवं अनुशासित स्पष्ट अभिव्यक्ति का आग्रह करते हुए शास्त्रीय सिद्धान्तों का पक्ष लिया। इस आन्दोलन में सामान्य शब्दों को भी अर्थशुद्धता का आवश्यकता से अधिक ध्यान रखने को कहा गया, विषय-वस्तु के चुनाव की पूर्ण स्वतंत्रता मिली, कवि को अपनी भाव-विशेष की संवेदनाशील अवस्था को ध्वनित करने के लिए उपयुक्त नादात्मकता लाने का आदेश दिया गया, प्रतिबिम्बों के प्रकाशन में रूढ़ि से प्रभावित न होकर पूर्ण वैयक्तिकता का निर्वाह सुझाया गया। शब्द-चित्रों के शिल्प में शुष्क कठोरता द्वारा एकाग्र यथार्थ अंकन का उपदेश मिला और इस प्रकार एक शुद्ध वस्तुगत आकृति-सौन्दर्य के वैयक्तिक प्रकाशन को कड़े अनुशासन से सिखाया गया। उन्होंने मूल्यवादी जगत् से अपना नाता तोड़ लिया और टूटते हुए आदर्श एवं खण्डहर होती हुई रूढ़ियों के युग में पलायन को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग समझा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रतिबिम्बवाद द्वारा कला के आत्मपरक तत्त्व एवं उसके भावात्मक पक्ष की बहुत उपेक्षा हुई। प्रतिबिम्बवाद के प्रवर्त्तक हल्मे ने लिखा—

"Romantics cannot see that accurate description is a legitimate object of verse..............Poetry is no more nor less than a music of words, so great exactness is required for each one." (Speculation)

हल्मे काव्य में स्थूल पदार्थ चित्रण से ही संतुष्ट नहीं हुआ उसने विचारों के इंद्रिय-जनक, दृश्यात्मक रूप को प्रस्तुत करने का सुझाव दिया। वह लिखता है—

All emotions depend on real solid vision or sound. It is physical."

इजरा पाउंड ने एक कदम और आगे जाकर प्रतिबिम्बवादी कवियों को दार्शनिक या वर्णनात्मक काव्य लिखने से रोका तथा सूक्ष्म भाव-चित्रण के स्थान पर कठोर, दृढ़ और ठोस प्रतिबिम्ब को शब्दबद्ध करने को कहा। हल्मे के अनुसार काव्य-सृजन का एक महत्त्व-पूर्ण उपकरण यह भी है कि कवि अपनी कृति में कुछ असाधारण—अनोखा दृष्टिकोण प्रस्तुत करे, जो ठीक वैसे ही अभी तक प्रकाशित न हुआ हो। कवि को अपने 'प्रभाव' को इस भाँति अभिव्यक्त करना चाहिए कि पाठक को कवि की मौलिक भौतिक संवेदना की अनुभूति सुलभ हो सके। निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रत्येक कवि वैयक्तिक भावनाओं एवं अनुभूतियों के साँचे में अपनी स्वतंत्र भाषा का निर्माण करता है।

प्रतिबिम्बवादी सिद्धांत के अनुसार साधारणतः इंद्रिय-गोचर हुई वस्तु और उसके साथ उत्पन्न हुई भावनात्मक प्रतिक्रिया दोनों ही तथ्य उपेक्षणीय हैं। महत्त्व तो 'एक्यूरेट परसेप्शन' या शुद्ध आकृति-ज्ञान का है, जो क्षण-भर के लिए कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपने में केन्द्रीभूत करता है और फिर जिसका प्रकाशन यथातथ्य बिना गुणा-भाग या जोड़े-घटाए जैसा-का-तैसा होना आवश्यक है। अभिव्यक्ति में आकृति को पूरी सचाई के साथ चित्रित होना प्रतिबिम्बवादियों की सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त है, जिसके सम्भव होने पर उनके सिद्धांतों के अनुसार कवि को उसकी मौलिक कला-शैली और काव्य-भाषा मिल जाती है।

सभी 'प्रभाव', विशेषकर वे जो कि कवि को आत्मा को काव्य की संकल्पात्मक अनुभूति के ऊँचे धरातल पर उठाते हैं, क्षणिक होते हैं। उत्तेजित प्रेरणा के क्षणों का अल्पायु होना एक निर्विवाद सत्य है, अतः प्रतिबिम्बवादी व्याख्या के अनुसार लम्बी कविताएँ असम्भव हैं। इस प्रकार वर्णनात्मक, उपदेशात्मक, कथात्मक और व्याख्यात्मक काव्य को प्रतिबिम्बवादी स्वीकार ही नहीं करते। लघु कविताओं को ही काव्य मानते हैं। उनकी धारणा है कि होमर और मिल्टन ने लघु कविताओं को शृंखलाबद्ध रूप में लिखा है, जिसकी कड़ियाँ बीच-बीच में गद्य से जुड़ी हुई हैं। इस आश्चर्यजनक मौलिक निष्कर्ष की प्रबल सूझ की दाद देनी ही पड़ेगी। मुश्किल यह हुई कि बार-बार एलडिंग्टन रीड एवं इलियट ने जब उच्चकोटि की लम्बी कविताएँ लिखीं तो प्रतिबिम्बवादियों को अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी। 'लम्बी कविताएँ असम्भव' के जोशीले नारे को रोककर उन्होंने इस नियम की कठोरता को शिथिल किया।

इजरा पाउंड की दो पंक्तियों को प्रतिबिम्बवाद का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है—

"The apparition of these faces in the crowd
Petals on a wet black bough."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पंक्तियों के प्रेरणा-सूत्र स्पष्ट करते हुए इजरा पाउंड ने ला कांकर्ड स्टेशन पर देखे हुए कई व्यक्तियों के मुखों का उल्लेख किया है। क्रमशः एक सुन्दर मुख, फिर दूसरा, फिर तीसरा, ..........फिर सुन्दर शिशु का मुख और फिर अन्त में एक सुन्दर युवती का मुख। वह दिन-भर इस विषय पर सोचता रहा कि किस भाँति अपने भीतर उमड़ रहे 'प्रभाव' को अर्थ दे, किन्तु उसे वे शब्द ढूँढ़े न मिले जो उस आकस्मिक भावोद्रेक को उपयुक्त वाणी दे सकते। अन्त में सन्ध्यासमय अचानक ही उसे रंग के माध्यम से अभिव्यक्ति मिल गई। उस रंगीन नमूने में एकाएक उसे अपनी पूर्वानुभूति की झाँकी मिल गई।

ह्ल्मे की 'आटम' शीर्षक से लिखी गई कविता में विशुद्ध दृश्य-प्रभाव की क्षणिक अनुभूति का चित्रात्मक सौन्दर्य अपने पूर्ण उत्कर्ष पर है—

"A touch of cold in the autumn night
I walked abroad,
And saw the ruddy moon lean over the hedge
Like a red faced farmer.
I did not stop to speak, but nodded
And round about were the wistful stars
With white faces like town children."

हिल्डा डूलिटिल का काव्य प्रतिबिम्बवादी सिद्धान्तों को पूर्ण सन्तोष देता है। 'ईवनिंग' कविता में प्रकाश केन्द्रीभूत चित्र है, जिसके धुँधले होते हुए रंग धीमे-धीमे अन्धकार में घुलते जाते हैं। 'सी रोज़' में बाह्याकृति एवं आकार का शब्द-चित्र प्रशंसनीय हैं।

रिचर्ड एलडिंगटन प्रतिबिम्बवाद का कट्टर समर्थक कुछ ही दिनों रहा। अन्त में उसके कठोर अनुशासन से उसके स्वच्छन्द व्यक्तित्व का संघर्ष आरम्भ हो गया। उसके मन में ऐन्द्रिक एवं कल्पनात्मक संवेदनाओं में अन्तर्द्वन्द्व होने लगा। 'इमेजेज़' (१९१०-१५) में उपस्थित चिन्तन-धारा से यह स्पष्ट हो गया कि ऐन्द्रिक संवेदना के कलात्मक आकलन-मात्र से वह सन्तुष्ट नहीं। उसने प्रतिबिम्बवादी शैली के स्थूल पदार्थों की क्षणिक दृश्यात्मक अनुभूति का उपयोग लघु कविताओं के सृजन का मार्ग त्याग दिया। 'ऐपी ग्रेम्स' में ठोस पदार्थ-जगत् की 'प्रभाव'पूर्ण रेखाकृतियाँ नहीं हैं, फिर भी वह उसकी पहली कविताओं की अपेक्षा अधिक आकर्षक, चित्रात्मक गुणों से सुसज्जित है। विस्तृत प्रतिबिम्बों का शिष्ट संयोजित रूप उसकी विशेषता है।

एलडिंगटन को 'टिपीकल डिसइल्यूज़ एड रोमैंटिक' कहा जाता है। 'प्रतिबिम्ब' पर उसकी अनुरक्ति उसके रोमेण्टिक पद्धति से विद्रोह के कारण है। यद्यपि वह मध्ययुगीन अथवा प्राचीन दृष्टिकोण का समर्थक नहीं था, फिर भी वह बौद्धिक शंकाओं से लदी हुई यथार्थवादी पद्धति का प्रयोग प्रतिबिम्बवादी टेकनीक द्वारा सफलता से न कर सका। इन्द्रिय-जगत्, आकृति एवं रंगलेखन में उसे अपना काव्यादर्श न मिला। अपने बाद के शब्द-चित्र और स्केचों में, अपनी पूर्वरचित प्रतिबिम्बवादी कृतियों में उपेक्षित काव्य के आवश्यक तत्त्वों को उसने कुशलता से पकड़ा है।

सेसिल डे लेविस ने प्रतिबिम्बों (Images) को शब्द-चित्र कहा। ऐसे शब्द-चित्र; जिनका सौन्दर्यांकन कवि की कल्पना-शक्ति द्वारा होता है। चित्रण-पद्धति की स्पष्ट अभिव्यक्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कारण पाठकों की कल्पनात्मक दृष्टि उससे शीघ्र ही तादात्म्य स्थापित कर लेती है। कवि के अपने वैयक्तिक भाव-रंगों में डूबकर प्रेरणा-पदार्थ पाठक तक पहुँचता है। इस दृष्टि से यह प्रक्रिया त्रिपदीय है—(सबजेक्ट+ऑबजेक्ट+कला)। प्लेटो के अनुकृतिवादी सिद्धान्त का स्मरण इस स्थान पर हो आता है, जिसने साहित्य को दृश्य-जगत् की अनुकृति माना था।

प्रतिबिम्ब कितना भी सौन्दर्य-सम्पन्न क्यों न हो जब तक वह कविता के भावपक्ष को अभिव्यक्ति देने में सहायक नहीं होता और दूसरे प्रतिबिम्बों के साथ अनुभूतिमूलक सम्पर्क स्थापित नहीं करता तब तक वह कवि के लिए व्यर्थ हैं।

सिटवैल की कृतियों की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक अवसाद है, क्योंकि प्रचलित मान्यताएँ उनके विश्वास को बाँधकर नहीं रख सकीं और बाह्य जगत् से पलायन करके उनकी घोर निराशा अपने कल्पना-प्रसूत कला-जगत् में शरणार्थी बनी। जी० बुतो ने उनके विषय में लिखा है—

"Edith and Sacheverell Sitwell took refuse when war broke through in the phantastic manipulation of childhood recollections and warm untroubled images of art."

(Trend of Modern Poetry. P. 125)

सिटवैल अद्भुत रूप से वैयक्तिक दृश्यानुभूति और संवेदनाओं में लिप्त रहे, किन्तु यह कल्पना-प्रसूत पलायन-कक्ष स्पेंसर की भाँति मध्ययुगीन नहीं था, अपितु आधुनिक था, जिसमें 'केथोलिसिज़्म एण्ड पेगेनिज़्म', यन्त्र-सभ्यता और वायवीय परी-गाथा, सूक्ष्म चाइनीज़ रंग-सज्जा एवं ट्रॉपीकल भड़कीले रंग-लेखन की विचित्र अव्यवस्था थी। उनकी अभिव्यक्ति में प्रवाहयुक्त चित्र, खाके और ध्वन्यात्मकता का प्रयोग मिलता है, किन्तु वे किसी निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचने में असमर्थ हैं।

एडिथ सिटवैल के प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष एवं तत्क्षण प्रभाव का लक्ष्य लेकर चलते हैं, अतः वे सबल, पुष्ट एवं संक्षिप्त हैं और लम्बे तुलनात्मक अथवा समानान्तर विचारों के प्रकाशन में अपनी शक्ति व्यय नहीं करते। यहीं उसका स्वच्छन्दतावाद-विद्रोही चारित्रिक गुण मिलता है। स्वच्छन्दतावाद मूर्तिमत्तात्मक सौन्दर्य-चित्रों में उपमा एवं अलंकारों द्वारा विचारों को विस्तार का अवकाश मिलता था जो शब्दचित्र को भावनात्मक गतिशीलता देते थे, किन्तु सिटवैल की आज की नवीन काव्य-कला-पद्धति स्थिरता को महत्त्व देती है और पक्ष-विशेष तक स्वयं को सीमित करके तुलनात्मक विकास को रोकती है। अतः हमें 'डाग फर्ड स्ट्रावेरी लीव्ज़', 'अब्राहम बियर्डेड सन' और 'रोज़ शेप्ड हार्ट'-जैसी विचित्र उक्तियाँ मिलती हैं।

यह अतिवादी विकास आश्चर्यजनक परिणामों को जन्म देता है। एडिथ काव्य पर क्यूबिज़्म और दादाइज़्म का प्रभाव दिखाई देने लगता है, जो कभी-कभी चेतनाशील विचारों से शून्य मूर्तिमत्तात्मक चित्रों का कोरा मानसिक विलास लगता है। ऐसी अवस्था में काव्य अर्थहीन हो जाता है।

क्यूबिस्ट चित्रकारों की भाँति एडिथ सिटवैल ने वस्तु के विभिन्न ऐन्द्रिक पक्ष आकृति-सौंदर्य एवं परिमाण का विचित्र कलात्मक मिश्रण आरम्भ किया। उदाहरण के लिए, भूरापन, लम्बाई, गोलाईदार उभार, शक्ति एवं लहरों के गर्जन का व्यंजनात्मक प्रतीक 'एलीफेंट ट्रन्क्स ऑफ द वाटर' द्वारा अभिव्यक्त हुआ। एडिथ की इस चित्र-काव्य-शैली में प्रतिबिम्बों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



परस्पर सह-संपर्क-स्थापन की आयाससिद्ध उपमाओं को सफलता नहीं मिली है। उनका स्वर कुछ व्यंगात्मक हो गया है, क्योंकि कई स्थानों पर प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन उसने मानव-निर्मित वस्तुओं के माध्यम से किया है, जबकि प्रतिबिम्बों के सह-सम्पर्क के लिए और अधिक उपयुक्त उपमा स्वच्छन्दतावादियों की भाँति प्राकृतिक वस्तुओं में ही खोजी जा सकती थी, लेकिन तब शायद नई कविता का लेबल उस पर न लग सकता, जो युग की माँग थी। ऐन्द्रिक एकीकरण की अतिवादिता के कारण संवेदना भ्रामक हो गई है। शब्द एवं स्पर्श से रूपात्मक इंद्रियानुभूति को जागरूक करने का प्रयास मिलता है एवं रूप से नादात्मकता का; उदाहरण के लिए, 'स्वाईनिश हेयरी ब्रेस्ट्स ऑफ़ द रफ विन्ड', 'ब्ल्यू विण्ड', 'ग्रीन एयर्स' इत्यादि।

रूप, गंध एवं स्वाद के मिश्रित प्रतिबिम्ब सेशैवरैल सिटवैल की कविताओं में हैं जो एक अतिवादी दृष्टि का परिचय देते हैं। शब्द + रूप + रस + स्पर्श + गंध के अनुपातों में मात्रा को अधिक या कम करके अद्भुत संवेदनात्मक मिश्रण तैयार करने तक ही कवि-प्रतिभा सीमित हो गई। ऐसी अवस्था में की अचानक मृत्यु पर आश्चर्य प्रकट नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसके आन्दोलन में ही प्रतिबिम्बवाद उसके विनाश के बीज छिपे थे।

इस प्रकार अपनी-अपनी विभिन्न विचार-धाराएँ लेकर प्रतिबिम्बवाद के समर्थक कवि धीरे-धीरे अलग हो गए। दल में उपदलों का जन्म हुआ। 'वॉरटीसिज़्म', 'क्यूबिज़्म', 'दादाइज़्म', 'अनएनीमिज़्म', 'फेएटॉसिज़्म', 'सुररियलिज़्म' इत्यादि मार्गों द्वारा कवियों ने अपनी वैयक्तिक सनकों को सन्तुष्ट किया।

गद्य की नियम-स्वतंत्रता को देखकर उन्होंने उसे काव्य में लाने का उपक्रम किया; किन्तु काव्य के पीछे शताब्दियों की परम्परा थी, जिसको एकबारगी वे नष्ट नहीं कर सकते थे; अतः गद्य-पद्य-संघर्ष का उन्होंने एक रास्ता निकाला। उन्होंने गद्य को पद्य में और पद्य को गद्य के क्षेत्र में स्वीकृत किया और स्वतंत्र छन्द का निर्माण किया। शब्दों पर उनका आग्रह इतना अधिक बढ़ गया कि उनका अस्तित्व सूक्ष्मता को व्यक्त करने वाले बीजगणित के संकेत-चिह्नों से अधिक कुछ न रहा।

Imagism was essentially a conservative movement, though like so many conservative movements it sailed under a revolutionary flag.

—David Daiches

(Poetry and the Modern World P. 80)

'प्रतिबिम्बवाद यद्यपि एक शास्त्रीय आन्दोलन था किन्तु वह अन्य शास्त्रीय आन्दोलनों की भाँति एक क्रान्तिकारी ध्वज के नीचे चला।' प्रतिबिम्बवाद का प्रबल आक्रमण स्वच्छन्दतावाद को नष्ट न कर सका, यद्यपि उसने उसे पर्याप्त हानि पहुँचाई। प्रतिबिम्बवाद की प्रचण्ड बौद्धिकता को देखकर लोगों को कविता के भविष्य के विषय में शंकाएँ होने लगी थीं, किन्तु प्रतिबिम्बवाद अपने ही अस्त्र से मारा गया। स्वच्छन्दतावाद के विषय में फ्रांसिस स्कार्फ ने लिखा है—

"Romantic movement is yet not over.........Romantic movement was the logical outcome of a breakdown in a social and intellectual structure. Since then no new synthesis has been achieved...........Romanticism did not die with the revolution, because its revolutionary fervour was atonce

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



turned against the injustice of the machine age. It identifies itself alternatively with the new socialism or Anglo-Catholicism or with the new aestheticism, branches of the same tree."

(Auden and After. P. 184)

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिबिम्बवादी आन्दोलन में यद्यपि कुछ निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण थे फिर भी वह युद्ध-काल में उत्पन्न विषम परिस्थितियों की प्रतिक्रिया-मात्र था और युद्ध के समाप्त होते-होते एकाएक नष्ट हो गया। उसकी बौद्धिक प्रपत्तियों ने काव्य-क्षेत्र को मानसिक शब्द-विलास का साधन बना दिया था। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि प्रतिबिम्बवाद ने साहित्यिक अनुशासन का पाठ भी सिखाया। दस वर्ष का उन्मुक्त वैयक्तिक बुद्धि-विलास देखते हुए केवल इस पाठ के कारण आन्दोलन के उन्नायकों एवं समर्थकों को क्षमा नहीं किया जा सकता। शब्द-शिल्प एवं स्वतंत्र छन्द के प्रयोगों का आरम्भ जितनी सुन्दरता से हुआ उसका अन्त उतनी ही कुरूपता से। फिर भी इस आन्दोलन का ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं है। वह काव्य की एक शैली-मात्र था, जिसे स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के अनुकरण पर काव्य-दर्शन के उच्च पद पर आसीन कराने का बलात् प्रयास किया। शैली कलाकारों को विभिन्न वैयक्तिक व्याख्याओं का अवकाश देती है, किन्तु काव्य-दर्शन के सिद्धान्त इतने स्पष्ट होते हैं कि उनको मनमाने तौर पर मोड़ा नहीं जा सकता। स्वच्छन्दतावाद एक काव्य-दर्शन था जो आज भी काव्य को प्रेरणा देने में समर्थ है।

आंग्ल-साहित्य की यह घटना आज हिन्दी-साहित्य में भी घट रही है। हमें देखना यह है कि साहित्यिक इतिहास का परिच्छेद दुहराया जाता है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० सत्यदेव चौधरी शास्त्री

# संस्कृत-काव्य-शास्त्र और शृङ्गार रस

: १ :

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने शृंगार को अन्य रसों की तुलना में स्पष्ट शब्दों में सर्वोत्कृष्ट रस स्वीकृत किया है,[१] यहाँ तक कि मतिराम ने शृंगार रस निरूपक अपने ग्रन्थ को 'रसराज' नाम से अभिहित किया है और केशवदास ने शृंगार रस में अन्य रसों का समावेश दिखाने के लिए उपहासजनक एवं अशास्त्रीय प्रयास किया है,[२] पर संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने शृंगार रस को यद्यपि 'रसपति' अथवा 'रसराज' की उपाधि से विभूषित नहीं किया[३], पर अन्य रसों की अपेक्षा इसे सर्वोत्कृष्ट रस के रूप में काव्य-शास्त्र-निर्माण के आरम्भिक युग से ही घोषित किया जाता रहा है। भरत मुनि के शब्दों में संसार में जो कुछ भी पवित्र, विशुद्ध, उज्ज्वल और दर्शनीय है, उसकी शृंगार रस से उपमा दी जाती है।[४] रुद्रट के कथनानुसार शृंगार रस-जैसी रस्यता को कोई अन्य रस उत्पन्न नहीं कर सकता। इसी रस में ही आबाल-वृद्ध सभी मानव (केवल मानव ही क्यों, पशु, पक्षी, यहाँ तक कि लता-गुल्मादि भी) ओत-प्रोत हैं। इस रस के समावेश के बिना काव्य हीन कोटि का है। अतः इसके निरूपण में कवि के लिए विशेष प्रयत्न अपेक्षित है[५] और आनन्दवर्द्धन के शब्दों में शृंगार ही सर्वा-

---

१. उदाहरणार्थ—
केशवदास—सबको केसवदास कहि नायक हैं सिंगार। —रसिक प्रिया, १/१७
देव—भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल सिंगार। —भवानी विलास, १०
सोमनाथ—नव रस को पति सरस अति रस सिंगार पहिचानि। —रसपीयूष निधि ८/१
यशवन्तसिंह—नव रस में शृंगार रस लसत शिरोमणि रूप। —शृङ्गारशिरोमणि
पद्माकर—नवरस में सिंगार रस सिरे कहत कब कोय। —जगद्विनोद

२. रसिकप्रिया, १४वाँ प्रकाश।

३. हाँ, रूपगोस्वामी ने स्वसम्मत शान्त आदि पाँच भक्ति-रसों में से 'मधुर' रस को 'भक्ति-रसराज' अवश्य कहा है—
शान्तप्रीतिप्रेयोवत्सलोज्ज्वलनामसु उज्ज्वलापरपर्यायः भक्तिरसानां राजा मधुराख्यो रसः।—रसामृतसिन्धु

४. यत्किञ्चिल्लोके शुचि मेध्यं दर्शनीयं वा तच्छृङ्गारेणानुमीयते। ना० शा० ६/४५ वृत्ति

५. सर्वरसेभ्यः शृंगारस्य प्राधान्यं प्रविकटयिषुराह—
अनुसरति रसानां रस्यतामस्य नान्यः



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सन्दर्भ REFERENCE BOOK

धिक मधुर और परमाह्लादक रस है।[1]

उपर्युक्त स्थलों में शृंगार रस की अन्य रसों की अपेक्षा प्रमुखता घोषित की गई है। इधर आगे चलकर आचार्यों का सम्भवतः एक वर्ग ऐसा भी रहा होगा, जिसे अकेले 'शृंगार' रस को न केवल 'रस' का पर्याय मानना अभीष्ट होगा, अपितु इसे अन्य वीरादि रसों का आधार मानना भी स्वीकृत होगा। उपलब्ध स्रोतों के अनुसार केवल भोजराज और अग्नि-पुराणकार के ही एतत्सम्बन्धी मत को प्रमाणस्वरूप उपस्थित किया जा सकता है।

: २ :

भोज ने शृंगार, वीर आदि दस रसों के स्थान पर रस की संज्ञा केवल शृंगार को ही दी है।[2] शृंगार को इन्होंने अहंकार और अभिमान का पर्याय माना है—

**रसोऽभिमानोऽहंकार शृंगार इति गीयते। (स० कं० म० ५।१)**

भोज द्वारा प्रयुक्त 'अहंकार' शब्द मिथ्यागर्व अथवा उत्तेजनाजन्य अभिमान का वाचक न होकर मनुष्य के अपने प्रति सहज अनुराग का द्योतक है। इसी अहंभाव, आत्मानुराग के कारण वह अपने व्यक्तित्व का आभास करने लगता है। उदाहरणार्थ किसी कोमलांगी द्वारा स्निग्ध दृष्टि से देखे जाने पर एक पुरुष में जो आत्मज्ञान, आत्मविश्वास और आत्मानुराग की भावना जागृत होकर उसे सहज सुख में आत्म-विभोर कर देती है, वही 'अहंकार' की स्थिति है; और तभी उस पुरुष का मन-मयूर नाच उठता है, वह अपने-आप को धन्य, कृतकृत्य और स्नेहभाजन मानने लग जाता है—

**अहो अहो नमो मह्यम यदहं वीक्षितोऽनया।**
**मुग्धया त्रस्तसारंगतरलायतनेत्रया। शृंगार० प्र० (राघवन-संस्करण), पृष्ठ ४६४**

बस इसी अहंकार को रस कहते हैं। भोज के अनुसार रस की परिभाषा है—मनोनुकूल दुःख आदि भावों में आत्मगत सुखद अभिमान की प्रतीति।[3] इसी अहंकार का अपर नाम शृंगार है, क्योंकि यही भाव सामाजिक को शृंग अर्थात् सुख की चोटी ( पराकाष्ठा ) तक पहुँचा

---

**सकलमिदमनेन व्याप्तमाबालवृद्धम्।**
**तदिति विरचनीयः सम्यगेष प्रयत्नाद्**
**भवति विरसमेवानेन हीनं हि काव्यं॥ का० अ० १४/३८**

१. **शृंगार एव मधुरः परः प्रहलादनो रसः। ध्वन्या० २/**

२. **शृंगार-वीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य—**
**बीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्न:।**
**आम्नासिषु दशरसान् सुधियो, वयं तु**
**शृंगारमेव रसनाद्रसमामनाम: ॥ ( शृं० प्र० (रा०), पृ० ४७०**

३. **मनोनुकूलेषु दुःखादिषु आत्मनः सुखाभिमानः रसः।**
**उदाहरणार्थ—**
**दुःखदातापि सुखं जनयति यो यस्य वल्लभो भवति।**
**दयितनखदूयमानयो: विवर्धते स्तनयोः रोमांचः॥ (शृं० प्र० (रा०) पृ० ४६६)**

यह पुस्तक वितरित न की जाय NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देता है **येन शृंग रीयते (गम्यते) सश्रृंगारः (शृं० प्र० पृ० ४७७)**। अतः भोज को केवल अहंकार अथवा उसके पर्याय शृंगार को ही रस की संज्ञा देनी अभीष्ट है, अन्य तथाकथित रसों की नहीं।[१]

भोज के शब्दों में 'अहंकार' नामक एक मूल प्रवृत्ति प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ नहीं है। यह पुण्यात्माओं द्वारा पूर्व-जन्म के निर्मल कर्मों और अनुभवों से प्राप्त होती है। यही मनुष्य की आत्मा की सम्पत्ति है और श्रेष्ठ गुणों के उदय का कारण भी।[२] सहृदय, रसिक अथवा सामाजिक कहाने का अधिकारी भी केवल वही व्यक्ति है, जिसमें यही 'अहंकार' नामक प्रवृत्ति जागृत हो चुकी है। जिस व्यक्ति में अहंकार अथवा शृंगार का अस्तित्व है, वही रसिक कहाता है, अन्यथा वह व्यक्ति नीरस कहा जायगा।[३] अहंकारी, दूसरे शब्दों में शृंगारी, कवि अथवा सामाजिक ही जगत् को रसमय बना सकता है और काव्यानन्द प्राप्त कर सकता है।[४] अहंकारी अथवा शृंगारी व्यक्ति में ही रति, हास, उत्साहादि भावों का उदय होता है, न कि अनहंकारी, शृंगारी अथवा अरसिक व्यक्ति में। अतः भरतादि के अनुसार रत्यादि से रस की उत्पत्ति मानना उचित नहीं है; अपितु आत्मा के अहंकार-विशेष शृंगाराख्य रस से ही रत्यादि की उत्पत्ति मानना समुचित है।[५]

प्रस्तुत विषय की स्पष्टता के लिए इस प्रकरण में भोज-मतानुसार रत्यादि भावों, अहंकार (अथवा शृंगार) तथा रत्यादि के पारस्परिक सम्बन्ध और रसों की संख्या पर भी प्रकाश डालना अपेक्षित है।

भोज के मत में भरतादि के अनुसार रत्यादि आठ भावों को स्थायी, निर्वेदादि तेतीस

---

१. (क) स शृंगारः सोऽभिमानः स रसः।
(ख) रसः शृंगार एव एकः। (वही, पृ० ४७५)

२. सत्यात्मनाममलधर्म विशेषजन्मा
जन्मान्तरानुभवनिर्मितवासनोत्थः।
सर्वात्मसंपदुदयातिशयैकहेतुः
जागर्ति कोऽपि हृदि मानमयो विकारः॥ (वही, पृ ४६४)

३. शृंगारेति नाम ··· ··· ··· ··· आत्मनोऽहंकारविशेषः सचेतसा रस्यमानो रस इत्युच्यते, यदस्तित्वे रसिकोऽन्यथात्वे नीरस इति। (वही० पृ० ५१७)

४. तुलनार्थ—अग्निपुराणकार का 'शृंगारी' शब्द भी रसिक का ही वाचक है, न कि रतिप्रिय का—
शृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स चेत् कविर्वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत्॥ अ० पु० ३३९।८
(तुलनार्थ—ध्व० ३।४३ (वृत्ति), स० क० म० ५।३

५. 'न हि रत्यादिभूमा रसः' किं तर्हि शृंगारः। शृंगारो हि नाम············आत्मनोऽहंकारविशेषः ·········। रत्यादीनामयमेव प्रभवः इति। शृंगारिणो (अहंकारिणो) हि रत्यादयो जायन्ते, न अशृंगारिणः। शृंगारी हि रमते, रमयते, उत्सहते, स्निह्यतीति। (शृं० प्र० (रा०) पृ ४७०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भावों को संचारी[1] तथा स्तम्भादि आठ भावों को सात्विक नामों से पुकारना उचित नहीं है, क्योंकि ये सभी भाव परिस्थिति और समय के अनुसार स्थायी और संचारी भी बन जाते हैं तथा सत्त्व अर्थात् मन से प्रभूत होने के कारण ये सभी सात्त्विक भी कहलाते हैं।[2]

उपर्युक्त ४६ भाव मनुष्य के अहंकार तत्त्व से प्रकट होकर इसी अहंकार (अथवा शृंगार) ही को उस प्रकार प्रकाशित करते हैं, जिस प्रकार अग्नि से उत्पन्न ज्वालाएँ स्वयं अग्नि को ही चारों ओर से प्रकाशित करती हैं[3] अथवा, 'अहंकार' नृप के समान है और 'भाव' उसे सामन्तवर्ग के समान चारों ओर से घेरकर उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं।[4]

भोज के मत में उपर्युक्त सभी-के-सभी भाव न कि भरतादि के अनुसार केवल रत्यादि आठ (तथाकथित स्थायी) भाव, अहंकार के अनुप्रवेश के कारण विभावादि द्वारा प्रकृष्टावस्था को पहुँचकर आनन्दप्रद बन जाते हैं, और इन्हें यदि 'रस' नाम से पुकार भी लिया जाता है, तो केवल उपचार द्वारा ही। पर वस्तुतः ये प्रमुख रूप से 'भाव' ही हैं। इस मान्यता के दो कारण हैं—एक यह कि ये भाव भोज-सम्मत रस-परिभाषा—'मनोनुकूल दुःखादि में आत्मगत सुखाभिमान की प्रतीति'—की कसौटी पर खरे नहीं उतरते और दूसरा यह कि ये सब भाव अपने व्यापार द्वारा 'अहंकार' रूप रस को ही प्रकाशित करने के कारण 'रस' नहीं कहे जा सकते। भाव और रस में स्पष्ट अन्तर है—भाव भावना पथ पर आरूढ़ हैं, पर रस भावना पथ से अतीत है। इस प्रकार भोज को केवल एक ही अहंकार (शृंगार) रस स्वीकार्य है। हाँ यदि रत्यादि भावजन्य आनन्द-प्रदान को भी उपचार द्वारा 'रस' कहना है तो सभी भावों में आनन्द-प्रदान की क्षमता होने के कारण रसों की संख्या ४६ तक पहुँचनी चाहिए।[5]

---

१. भोज ने संचारी भावों की संख्या तो तेतीस मानी है, पर भरतादि सम्मत अपस्मार और मरण के स्थान पर उन्होंने ईर्ष्या और शम को गिनाया है। (वही, पृष्ठ ४५०, ५१७)

२. वही, पृष्ठ ४७१, ५१७।

३. रत्यादयोऽर्धशतमेकविवर्जिता हि
भावाः पृथग्विधविभावभुवो भवन्ति।
शृंगारतत्त्वमभितः परिवारयन्तः
सप्तार्चिषं द्युतिचया एव वर्धयन्ति॥ शृं० प्र० पृष्ठ ४६९

४. भावाः संचारिणो ये च स्थायिनो ये च सात्विकाः।
सविभावानुभावास्ते शृंगारस्य प्रकाशकः॥
प्रकृतिजमभिमानसंज्ञं सममनुभावविभाववर्गः।
स्वमवसरमुपेयिवानुपास्ते नृपतिमिवाधिकृतेषु नीतिवर्गः॥ (वही, पृ० ४७१)

५. (क) यच्चोक्तं 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् स्थायिनो रसत्वम्' इति तदपि मन्दम्, हर्षादिष्वपि विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगस्य विद्यमानत्वात्। तस्माद् रत्यादयः सर्व एवैते भावाः। शृंगार एव एको रस इति। तैश्च सविभावानुभावैः प्रकाशमानः शृंगारः विशेषतः स्वदते। (वही, पृ० ५१७)

(ख) यद्यपि शृंगार एव एको रसः, तथापि तत्प्रभवा ये रत्यादयः तेऽप्युद्दीपनविभावैरुद्दीप्यमानाः, तदनुप्रवेशादेव, संचारिणाम् अनुभावानां च निमित्तभावमुपयन्तः रसव्यपदेशं लभन्ते। (वही, पृ० ४७२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भोज ने 'रस' को तीन कोटियों में विभक्त किया है—रूढ़ाहंकारता अर्थात् मानव में अहंकार की अवस्थिति रस की प्रथम कोटि है; रत्यादि ४६ भावों की परप्रकर्षता को (उपचार-द्वारा) रस नाम से व्यपदिष्ट करना, दूसरी कोटि है; तथा रति, हास, उत्साह आदि भावों की प्रेम-रूप में परिणति रस की तीसरी (परम) कोटि है।[1] तीसरी कोटि को इन्होंने 'प्रेमन्' रस की भी संज्ञा दी है।[2] सम्भवतः यहीं से प्रेरणा प्राप्त करके कवि कर्णपूर ने भी 'प्रेमन्' रस में सब रसों का अन्तर्भाव स्वीकृत किया है;[3] और हिन्दी-आचार्यों में देव कवि ने भी यही धारणा प्रकट की है—

भूलि कहत नवरस सुकवि सकल मूल सिंगार।
तेहि उछाह निरवेद ले वीर सान्त संचार।। (भवानी विलास, १०)

: ३ :

भोज-सम्मत उपर्युक्त विवेचना का निष्कर्ष यह है कि रत्यादि सभी (४६) भाव, जो मानव के 'अहंकार' की उपज हैं, काव्य-नाटकादि में वर्णित अथवा दर्शित होने पर विभावादि की सहायता से रसिक के अहंकार को जाग्रत और पुष्ट करते हैं। उनके मत में 'अहंकार' शब्द 'रस' का पर्यायवाची भी है और 'शृंगार' का भी। निस्सन्देह भोज रस को 'अहंकार' शब्द का पर्याय मानकर मानव-हृदय की अतल गहराई तक पहुँच गए हैं। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' बृहदारण्यक उपनिषद् (२-४-५) के इस कथन के अनुसार मानव-हृदय द्वारा किसी के प्रति प्रकटित स्नेह, शोक, उपहास, उत्साह, क्रोध, घृणा, विस्मय, भय, निर्वेद आदि भाव उसके अपने ही सन्तोष के लिए होते हैं—इसी सन्तोष अथवा आत्मानुराग का वाचक ही भोज का पारिभाषिक शब्द 'अहंकार' अथवा 'अभिमान' है। 'अहंकार'

---

(ग) आभावनोदयमनन्याधिया जनेन
यो भाव्यते मनसि भावनया स भावः।
यो भावना पथमतीत्य विवर्त्तमानः
साहंकृतौ हृदि परं स्वदते रसोऽसौ।। (शृं० प्र०, पृ० ५२०)

ते (रत्यादयः) तु भाव्यमानत्वाद् भावा एव न रसाः। यावत्सम्भवं हि भावनया भाव्यमानो भाव एवोच्यते, भावनापथमतीतस्तु रसः। मनोऽनुकूलेषुदुःखादिषु आत्मनः सुखाभिमानो रसः। स तु पारम्पर्येण सुखहेतुत्वाद् रत्यादिभूमसु उपचारेण व्यह्रियते। अतो न रत्यादीनां रसत्वम्, अपितु भावनाविषयत्वाद् भावत्वमेव।
(शृं० प्र० (रा०), पृ० ५१७)

(घ) रत्यादीनामेकोनपंचाशतोऽपि विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् पर प्रकर्षाधिगमे रसव्यपदेशार्हता। (वही, पृ० ४५०)

१. शृं० प्र० (रा०), पृष्ठ ४६३; ५२७

२. रसन्त्विह प्रेमाणमेवामनन्ति सर्वेषामपि हि रत्यादिप्रकर्षाणां रतिप्रियो रणप्रियो ऽमर्षप्रियः परिहासप्रियः इति प्रेम्ण्येव पर्यवसानात्। (वही, पृ० ४६३)

३. उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रेम्ण्यखण्डरसत्वतः।
सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ।। (अलंकार कौस्तुभ, पृ० १४७-१४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रत्यादि भावों का जनक भी है और इनसे परिपोष्य भी। 'अहंकार' ही की जागृति और सुतृप्ति काव्य का चरम लक्ष्य है।

भोज का उपर्युक्त मौलिक चिन्तन काव्य-शास्त्र और मनोविज्ञान के लिए असन्दिग्ध रूप से एक अभूतपूर्व देन है—भरतादि का 'रस' अलौकिक आनन्द का वाचक था, पर भोज का 'सुखाभिमानः रसः' काव्यगत अलौकिक आनन्द (रस) के मूल कारण का भी द्योतक है। अतः प्रकारान्तर से 'अहंकार' को 'रस' का पर्याय मानना तो ठीक है, पर 'येन शृंगं रीयते (गम्यते)' इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'शृंगार' को चरमावस्थावाचक अहंकार और रस का पर्याय स्वीकार करना एक दृष्टि से समुचित होते हुए भी 'शृंगार' के परम्परागत रत्युत्कर्ष रूप अर्थ का उल्लंघक होने के कारण भ्रामक अवश्य है। वस्तुतः उस व्युत्पत्ति के मूल में पक्षपात की प्रवृत्ति कार्य कर रही है।

वस्तुतः भोज शृंगार को ही सर्वेसर्वा और सब रसों (भावों) का आधार मानने वाले आचार्यवर्ग से प्रभावित था। अतः एक ओर तो उसने इसे उपर्युक्त व्युत्पत्ति द्वारा व्यापक रूप से 'रस' का समानार्थक माना; और दूसरी ओर इसे 'प्रेमन्' का पर्याय मानकर सब रसों का आधार घोषित किया। उनके मत में रति ही भरतादि-सम्मत तथाकथित शृंगारादि रसों का मूल प्राण है। उदाहरणार्थ, रतिभावापन्न व्यक्ति रति-प्रिय है, तो युद्धोत्साह-सम्पन्न व्यक्ति रणप्रिय। इसी प्रकार क्रोध, हास आदि भावों से युक्त व्यक्ति क्रमशः अमर्ष-प्रिय और परिहासप्रिय हैं। स्पष्ट है कि शृंगार को सर्वभावाधार मानने के लिए ही वर्गगत पक्षपात के बल पर इसे इतना व्यापक रूप दे दिया गया है। इस प्रकार तो वीर रस का पक्षपाती भी कोई आचार्य रत्युत्साही, रणोत्साही, अमर्षोत्साही, परिहासोत्साही आलम्बनों की कल्पना कर सकता है। और फिर एक ही शृंगार शब्द को 'शृंगार : अहंकार : रस : प्रेमन् (रस की तीसरी कोटि)'—इन सबका समानार्थक मानना जितना मौलिक धारणा का सूचक है, उससे कहीं अधिक अव्यवस्था का उत्पादक और पक्षपात का द्योतक है।

भोज ने अहंकार रूप रस की तीन कोटियाँ मानी हैं—(क) रूढ़ाहंकारता; (ख) रत्यादि ४९ भावों की उपचार द्वारा रसव्यपदिष्टता; और (ग) भरतादि-सम्मत शृंगारादि रसों की प्रेमन् रस में अन्तर्भाविता। इन्होंने उक्त कोटियों में अन्य आचार्यों द्वारा प्रस्तुत रस-सम्बन्धी लगभग सम्पूर्ण विषय-सामग्री को अहंकाररूपक-प्रवृत्तिमूलक बनाकर यथासम्भव सीमित अवश्य कर दिया है, पर पहली दो कोटियों में 'अहंकार' तत्त्व के अतिरिक्त कोई विशेष नवीनता नहीं है। रूढ़ाहंकारता नामक प्रथम कोटि में 'रूढ़त्व' भाव भरतादि-सम्मत 'वासना' के ही समकक्ष ठहरता है। द्वितीय कोटि में विभावादि द्वारा प्रकृष्ट रत्यादि की 'भाव' रूप और उन भावों द्वारा जाग्रत अभिमान की 'रस' रूप स्वीकृति में लगभग वैसा ही पूर्वापर-सम्बन्ध है, जैसा कि भरतादि ने स्थायी भावों की व्यक्ति अर्थात् चर्वणा और चर्वणा के आस्वाद अर्थात् रस में माना है।[1] इसी दूसरी कोटि में भोज ने संचारी और सात्त्विक भावों की भी प्रकृष्टता को उपचार रूप से रस की संज्ञा दी है, पर उनकी यह धारणा भी नितान्त मौलिक नहीं है। भरतादि के मत में प्रधानता से व्यंजित संचारी भावों द्वारा प्राप्त

१. **व्यक्त स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रस : स्मृतः। का० प्र० ४/२८**
**व्यक्तिरचर्वणेति पर्यायः। काव्यप्रदीप टीका ४/२८**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आस्वाद की भी स्वीकृति हुई है, जिसे विषय-स्पष्टता के लिए 'रस' के स्थान पर 'भाव' की संज्ञा दी गई है। हाँ, सात्त्विक भावों की प्रधान रूप से व्यंजता को यद्यपि भरतादि ने अलग नाम से नहीं पुकारा, पर केवल अनुभाव-वर्णनात्मक स्थलों में विभाव और संचारी भावों के अध्याहार द्वारा रसास्वाद की प्राप्ति इन्हें भी स्वीकार्य है। अब शेष रही भोज-सम्मत रस की अन्तिम कोटि—प्रेमन् ( शृंगार ) में सब रसों का अन्तर्भाव। पर यह कोटि, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वर्गगत पक्षपात की ही अधिक परिचायक है। इसकी स्वीकृति में तो फिर संसार के किसी भी आभ्यन्तर अथवा बाह्य व्यवहार और कार्य-कलाप का वर्गीकरण व्यर्थ सिद्ध हो जायगा।

निष्कर्ष यह कि—

(१) 'अहंकार' निस्सन्देह सब मानसिक भावों का मूल और सब भावों से पोष्य माना जा सकता है। उसकी परिपुष्ट जागृति को 'रस' भी कह सकते हैं। 'येन शृंगं रीयते' इस व्युत्पत्ति के आधार पर शृंगार को भी व्यापक अर्थ में 'रस' अथवा 'अहंकार' का पर्याय खींच-तानकर मान सकते हैं।

(२) पर भोज के अनुसार शृंगार को प्रेमन् का पर्याय मानकर सभी रसों (भावों) का शृंगार में अन्तर्भाव करके शृंगार (अथवा रति) को आधारभूत रस मानना हमें स्वीकार्य नहीं है।

अन्त में यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि भोज ने शृंगार रस को अन्य रसों की अपेक्षा उत्कृष्ट रस सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया।

: ४ :

भोज से ही लगभग मिलता-जुलता सिद्धान्त अग्निपुराणकार का है—'आनन्द' परम ब्रह्म का सहजात है। आनन्द की अभिव्यक्ति 'चैतन्य-चमत्कार' अथवा 'रस' कहाती है; और चमत्कार अथवा रस का विकार (अभिव्यक्ति) 'अहंकार' कहाता है। अहंकार से 'अभिमान' की उत्पत्ति होती है; और अभिमान से 'रति' की। रति व्यभिचारी भाव आदि के संयोग से 'शृंगार' नाम से पुकारी जाती है; और अपने-अपने स्थायी भावों से परिपुष्ट हास्य आदि इसी (रति अथवा शृंगार) के ही भेद हैं।[१] भरत के समान शृंगार, रौद्र, वीर और अद्भुत नामक चार मूल रसों को मानते हुए भी अग्निपुराणकार ने रति को ही इन चारों का मूल माना है—रति के चार रूप हैं—राग, तैक्ष्ण्य, अवष्टम्भ और संकोच। इनसे क्रमशः शृंगार आदि चार रसों की उत्पत्ति होती है; और इन चारों से क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक की।[२]

भोज ने 'अहंकार' से रत्यादि सभी (४९) भावों की उत्पत्ति मानी थी; पर अग्नि-पुराणकार ने एक शृङ्खला और मान ली है—अहंकार से रति की उत्पत्ति होती है; और रति से अन्य रसों की। अग्निपुराणकार ने अहंकार और अभिमान में; तथा अभिमान और रति में उत्पादकोत्पाद्य सम्बन्ध का स्पष्ट उल्लेख किया है, पर भोज ने अहंकार, अभिमान और शृङ्गार को पर्याय मानते हुए भी अहंकार और शृङ्गार में प्रकारान्तर से ही उत्पादकोत्पाद्य-सम्बन्ध माना है—

१. २. अ० पु० ३३९।१-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आत्मस्थितं गुणविशेषमहंकृतस्य
श्रृंगारमाहुरिह जीवितमात्मयोनेः ।। [1]

दोनों आचार्यों के सिद्धान्त में एक अन्तर और भी है। भोज के मत में 'श्रृंगार' व्यापक अर्थ में 'रस' का पर्याय है, पर अग्निपुराणकार के मत में यह रस का एक प्रमुख भेद है, जिसके हास्यादि अन्य भेद हैं। पर रतिभाव से सब रसों की उत्पत्ति भोज को भी स्वीकृत थी, तभी प्रेमन् रूप में रस (श्रृंगार) की तृतीय कोटि का भी इन्हें निर्माण करना पड़ा। निष्कर्ष यह कि निरूपण-प्रकार के थोड़े-बहुत अन्तर के साथ भोज और अग्निपुराणकार श्रृंगार को ही अन्य रसों का उत्पादक मानते हैं।

: ५ :

जैसा कि ऊपर कहा गया है, संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने श्रृंगार रस को 'रसराज' की उपाधि से स्पष्ट शब्दों में भूषित न करते हुए भी इसे सर्वोत्कृष्ट रस अवश्य स्वीकृत किया है। भरत, रुद्रट और आनन्दवर्द्धन के कथन प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किये जा चुके हैं। भोज और अग्निपुराणकार का विभिन्न दृष्टिकोण सर्वांश रूप में मनस्तोषक और चित्तग्राही न होते हुए भी प्रकारान्तर से श्रृंगार को सर्वोत्कृष्ट रस अवश्य स्वीकार्य करा लेता है। इधर आगे के आचार्यों ने श्रृंगार की सर्वोत्कृष्टता-सिद्धि के लिए कुछ अन्य कारण भी उपस्थित किए हैं। हेमचन्द्र विद्याधर, रामचन्द्र-गुणचन्द्र आदि ने श्रृंगार को प्रथम स्थान इस आधार पर दिया है, कि "इसका सम्बन्ध न केवल मानव-जाति तक ही सीमित है, अपितु यह रस सकल-जाति-सामान्य, अत्यन्त परिचित, सकलमनोहारी है।[2] विश्वनाथ ने श्रृंगार रस की व्यापकता का प्रमाण इस आधार पर दिया है कि केवल एक यही रस है, जिसमें उग्रता, मरण और आलस्य को छोड़कर शेष सभी संचारीभावों, तथा जुगुप्सा को छोड़कर शेष सभी संचारी-भावत्वापन्न स्थायीभावों का समय अथवा परिस्थिति के अनुसार सम्बन्ध रहता है।[3] वस्तुतः देखा जाय तो उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा का भी श्रृंगार रस के साथ किसी-न-किसी रूप में सम्बन्ध-स्थापन हो ही जाता है। शारदातनय सभी संचारीभावों का श्रृंगार रस से सम्बन्ध स्वीकार करते हैं।[4] और फिर केवल स्थायी और संचारीभाव ही क्यों, अनुभाव और सात्विक भावों की सर्वाधिक स्थिति भी श्रृंगार रस के दोनों भेदों, संयोग और विप्रलम्भ, के साथ ही सम्भव है। विप्रलम्भ श्रृंगार के पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण और शाप-हेतुक—ये पाँच

१. श्रृं० प्र० (रा०) पृ० ५१३ भोज द्वारा 'अहंकार' और 'श्रृंगार' में उत्पादकोत्पाद्य सम्बन्ध की स्वीकृति करने पर भी इन दोनों शब्दों में समानार्थकता की स्थापना लाक्षणिक प्रयोग पर आधृत है।

२. तत्र कामस्य सकलजातिसुलभतयात्यन्तपरिचितत्वेन सर्वान्प्रति हृद्यतेति पूर्वं श्रृङ्गारः। (का० अ०, पृ० ८१; एकावली, पृष्ठ ९९, ना० द०, पृष्ठ १६३)

३. त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः। (सा० द० ३/१८६)

४. समप्रवर्णनाधारः श्रृंगारो वृद्धिमश्नुते। (भा० प्र०, पृष्ठ ९१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भेद; काम की चक्षुःप्रीति आदि बारह [१] तथा अभिलाष आदि दश अवस्थाएँ [२]; आलम्बन-विभाव के अन्तर्गत नायक, नायिका, सखी, दूती आदि का विस्तृत भेद-निरूपण; तथा नायक-नायिका के भाव, हाव, हेला आदि सत्त्वज अलंकार—ये सभी प्रकरण शृंगार रस की व्यापकता के साथ-साथ इसकी सर्वोत्कृष्टता भी घोषित करते हैं। रसों में केवल यही एक रस है जिसमें दोनों आलम्बनों ( तथाकथित आलम्बन और आश्रय ) की चेष्टाएँ एक-दूसरे को उद्दीप्त करती हैं। दूसरे शब्दों में अन्य रसों के आलम्बनयुगल परस्पर शत्रु अथवा उदासीन हैं, पर केवल इसी रस के ही आलम्बन परस्पर घनिष्ठ मित्र हैं। और फिर समय-समय पर विभिन्न आचार्यों द्वारा स्वीकृत सौहार्द, भक्ति, कार्पण्य आदि तथाकथित रसों का भी शृंगार रस की व्यापकता में अन्तर्भाव हो जाता है, अतः शृंगार रस की अन्य रसों की अपेक्षा सर्वोत्कृष्टता एवं रसराजता स्वतःसिद्ध है।

१. 'प्रतापरुद्रयशोभूषण', पृष्ठ २७१।
२. 'साहित्यदर्पण', ३/१९१।
३. 'रसतरंगिणी', पृष्ठ १२५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*रमाशंकर तिवारी*

# कवि की विशेषता

कविता 'सर्वाधिक आनन्दमयी घड़ियों की सर्वाधिक आनन्दमयी अभिव्यक्ति' कही गई है। मनुष्य अहर्निश अपने क्षुद्र प्रयोजनों की सिद्धि में व्यस्त रहता है। अतएव उसकी आनन्द-दृष्टि सीमित अथवा कुण्ठित हो गई होती है। जीवन की स्थूल आवश्यकताओं में ही उसे चरम सत्य एवं चरम सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। किसी कार्यालय-लिपिक के लिए सबसे बड़ा सत्य उसका कार्यालयाधीक्षक है, वही उसके लिए सबसे बड़ा सौन्दर्य भी है। किसी अध्यापक के लिए सबसे ज्वलन्त सत्य तथा सबसे आकर्षक सौन्दर्य उसके विद्यार्थी ही हैं। इसी प्रकार किसी श्रेष्ठ अधिकारी के लिए सबसे प्रबल सत्य एवं सबसे मोहक सौन्दर्य उसकी पत्रावलियाँ हैं। किसी राजमार्ग के कूल पर अवस्थित एक बुढ़िया भूरिशः विलाप कर रही है। लिपिक, अध्यापक और अधिकारी—तीनों त्वरापूर्वक उससे होकर निकल जाते हैं। उसके करुण-क्रन्दन में वह शक्ति नहीं है जो उनकी अन्तरात्मा को स्पर्श कर सके। उनका सत्य एवं सौन्दर्य उनके कार्यालयों अथवा कक्षभवनों में उपविष्ट है और उसमें इतनी कठोर, निर्मम वास्तविकता छिपी है कि वे उसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु या घटना की सत्ता से आकर्षित नहीं हो सकते। कदाचित् यह भी सही है कि उन्हें इतना अवकाश नहीं कि वे असम्बद्ध अथवा अनावश्यक एवं अनाकांक्षित वस्तुओं और तथ्यों की ओर दृष्टि-निक्षेप करें। लेकिन असली बात यह है कि उनकी चि वृत्तियों के ऊपर प्रयोजन के अनेक मोटे पर्दे पड़े हुए हैं, जिनसे उनकी चेतना की चिनगारी स्वार्थ की राख में आवृत तथा विलुप्त-प्राय हो गई है। रजस् और तमस् के बाहुल्य से सत्त्व का उद्रेक बन्द हो गया है। वर्ड्सवर्थ के शब्दों में कहा जा सकता है कि हम भौतिकता और सांसारिकता के कर्दम में अत्यधिक फँस गए हैं तथा हमें इस बात की अनुभूति नहीं होती कि हमारी परिचित दुनिया से आगे भी कोई दूसरी दुनिया है, हमारे ज्वलन्त तथ्यों के अतिरिक्त भी कोई अन्य ध्यातव्य तथ्य हैं, हमारे अपने कठोर सत्यों की परिधि के बाहर भी कोई अन्य मार्मिक सत्य है। एक शब्द में, हमारी अन्तश्चेतना हमारी अपनी आवश्यकताओं की संकीर्ण सीमाओं में ही बन्दिनी बन गई है, और सबसे बड़ी बात यह है कि उसे इस सीमा में ही आनन्द मिल रहा है। वह भूल गई है कि वह ससीम नहीं, असीम है; बन्दिनी नहीं स्वच्छन्द है। संकुचित स्वार्थों के मायावृत्त में नाचती हुई वह पर-दुःखकातरता, परानन्दविह्वलता तथा परानुभवसंवेद्यता से एकदम निर्लिप्त हो जाती है। कविता मानव-चेतना को प्रयोजन की इस कारा से उन्मुक्त करती है तथा उस धरातल पर उसे प्रतिष्ठित कर देती है, जहाँ उसकी संवेदना की विपंची के तार प्रत्येक संघात से झनझना उठते हैं और मनुष्य का प्रयोजन-जर्जर अन्तर्मन स्वर्गीय संगीत के माधुर्य से ओत-प्रोत हो



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जाता है। इसी दृष्टि से भारतीय आचार्यों ने काव्य के 'रमणीयार्थ प्रतिपादकत्व' की स्थापना में 'चिदावरणभंग' की बात कही है।

उपर्युक्त कथन के प्रकाश में विचार करने से ज्ञात होता है कि कवि सामान्य मनुष्यता की कक्षा से कुछ ऊपर का जीव है। जीवन-प्रयोजनों की पूर्ति की चिन्ता से अधिग्रस्त होने पर भी उसकी चेतना उनकी कारा में बन्दी नहीं है। उसकी संवेदनाएँ तीव्र, सशक्त एवं व्यापक होती हैं। वह अपनी अनुभूतियों को कृपण की नाईं संचित करता है और कर्ण की नाईं मुक्तहस्त एवं मुक्तहृदय से लोक को लुटा देता है। वह दूसरे मनुष्यों के अनुभवों की गहराई में भी प्रवेश करता है और उन्हें अपना बनाकर, लोकार्थ व्यक्त एवं वितरित कर देता है। प्रकृति की सुषमाओं और भव्यताओं, प्रकोपों एवं प्रचण्डताओं—सभी स्वरूपों में उसकी चेतना समान भाव से रमती है। कदाचित् उसे समय का अभाव भी उतना नहीं सताता। वह मार्ग में खड़ा होकर नवकुसुमों की मुस्कान का रस ले सकता है, विटपस्थ विहगों के मधुर कलरव से अपने कर्णकुहरों को भर सकता है, नदी-स्रोतों के मर्मर संगीत में अपनी आत्मा का संगीत मिला सकता है। विलापमग्ना बुढ़िया की अश्रुधार में वह अपने आँसुओं की धारा निमज्जित कर देगा, अनुराग-विह्वल प्राणियों की प्रणयलीलाओं में आकंठ निमग्न हो जायगा और उनकी वियोगवेदनाओं की आँच में स्वयं झुलस जायगा। बालकों के नर्तन-कीर्तन में अपने को गला-मिलाकर बालक बन जायगा, शूर-वीरों के सान्निध्य में रण-भेरी फूँकने लग जायगा। 'चरित्र' की दृढ़ता एवं स्थिरता का नहीं, अपितु 'व्यक्तित्व' की गतिशीलता का वह उपासक है।[1] इसी कारण कभी-कभी उसके जीवन में असंगतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं और वह लोक द्वारा विक्षिप्त समझा जाता है। शेक्सपीयर ने तो कवि को प्रेमी और पागल की कक्षा में स्पष्ट रूप से सन्निविष्ट ही कर दिया है। कीट्स ने अपने एक पत्र में अत्यन्त सुन्दर ढंग से 'काव्यात्मक स्वभाव' की यों व्याख्या की है—"**यह स्वयं कुछ नहीं है। इसकी अपनी कोई प्रकृति नहीं है। यह छाया एवं प्रकाश में आनन्द लेता है। उमंग अथवा मस्ती में वह निवास करता है, चाहे वह मस्ती सत् हो या असत्, श्रेष्ठ हो या हीन, निम्न हो या उदात्त, आयगो की दृष्टि में उसे उतना ही आनन्द मिलता है जितना इमोगेन की सृष्टि में। आचारशील दार्शनिक जिस वस्तु से स्तब्ध होता है उससे ही छिपकली के समान रँग बदलने वाला कवि प्रसन्न होता है। × × × कवि की अपनी कोई विशिष्टता नहीं होती। × × × जब मैं कभी किसी जनसंकुल भवन में रहता हूँ, जब कभी मैं अपनी मानसी सृष्टियों के ऊपर विचार में मग्न नहीं रहता हूँ, तब मैं अपने 'आत्म' को लेकर घर नहीं लौटता हूँ, अपितु भवन में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्टता से मैं अभिभावित हो जाता हूँ—इतना अधिक कि मेरा पूर्ण विनाश हो जाता है।**[2] ("I am in a very little time annihilated.")

इस उद्धरण से कवि-व्यक्तित्व की संवेदनशीलता पर यथेष्ट आलोक पड़ता है। इसे ही कीट्स ने एक अन्य पत्र में 'निष्क्रिय क्षमता' (Negative capability) कहा है।[3] 'पूर्ण

१. देखिए—मई, सन् १९५६, के 'साहित्यकार' में प्रकाशित लेखक का 'काव्य और व्यक्तित्व' शीर्षक निबन्ध।
२. देखिए—'Poetry and Criticism of the Romantic Movement,' P. 625.
३. देखिए—वही, पृष्ठ ६१८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विनाश' की बात में अर्थवाद की गंध आ सकती है। स्वयं कीट्स के सम्बन्ध में उसका कथन सोलह आने सत्य ठहरता है। जिस अनुपात में कवि अपने कथ्य विषय के साथ तादात्म्य स्थापित करता है, उसी अनुपात में वह सारस्वत-मार्ग का अधिकारी समझा जाता है। लेकिन यह समझना भ्रम होगा कि कवि का 'आत्म' सर्वथा विनष्ट हो जाता है। असलियत यह है कि कवि अपने 'आत्म' को ही प्रतिफलित एवं प्रसारित करने के लिए अभिव्यक्ति का अवलम्ब ग्रहण करता है। कबीर अपने 'लाल' की 'लाली' का प्रसार सर्वत्र देखने के अभिलाषी थे। कवि अपने 'आत्म' का आलोक सर्वत्र विकीर्ण करने की अदम्य आकांक्षा से अनुप्राणित होता है। संसार के सम्पूर्ण व्यापारों को वह अपने अन्तस् के रंग में रंग देता है, कारण कि जीवन और जगत् की निष्प्रभ वास्तविकताओं से उसकी भीतरी भूख तृप्त नहीं होती। सामान्य मनुष्य धरती से धान्य उत्पन्न कर अपनी क्षुधा की शांति करते हैं और उसके पेट से जल निकालकर अपनी प्यास बुझाते हैं। कवि की भूख और प्यास निराली होती है। अतएव उनकी परितृप्ति के लिए वह अपने 'आत्म' की धरती को ही खोदता और खोजता है। सत्त्वोद्रेक की अवस्था में—और सच्चा कवि जीवन की अधिकांश घड़ियों में इस अवस्था का अनुभव करता है—उसे जो भीतरी खाद्य अथवा पेय प्राप्त होता है वही उसके लिए अमृत बन जाता है जिसकी चर्वणा में वह नक्तंदिवा व्यस्त होता है। 'कवित्व-रस' में जो 'सब अंग' डूबने की बात कही गई है, वह अधिक गहरे अर्थ में सटीक एवं साभिप्राय समझी जानी चाहिए। सत्त्वोद्रेक की बात भारतीय आचार्यों ने ही कही हो, ऐसी बात नहीं है। सुप्रसिद्ध आंग्ल-कवि वर्ड्सवर्थ ने ऐसे आलोक-क्षणों (Moments of illumination) की प्रशस्ति गाई है जिसमें वह 'अनात्म' से मुक्त होकर विशुद्ध 'आत्म' बन जाता है और जगत् के अन्तर्जीवन की झाँकी उपलब्ध करता है—

"………that blessed mood,
In which the burthen of the mystery,
In which the heavy and weary weight
Of all this unintelligible world,
Is lightened;—that serene and blessed mood,
In which the affections gently lead us on—
Until the breath of this corporal frame
And even the motion of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
And become a living soul.
× × ×
We see into the life of things."

—'Tintern Abbey'

कीट्स भी कुछ अधिक सरस शब्दावली में यही तथ्य यों व्यंजित करता है—"I am certain of nothing but of the holiness of the Heart's affections, and the truth of Imagination. What the Imagination seizes as Beauty must be truth."

**"मैं हृदय के नैसर्गिक रागों को ही सर्वाधिक असंदिग्ध मानता हूँ और कल्पना-गृहीत सत्य ही को सबसे अधिक निश्चित समझता हूँ। कल्पना जिसे सौन्दर्य समझकर पकड़ लेती है, उसे अवश्य ही सत्य होना चाहिए।"**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कीट्स ने सुन्दर एवं सत्य के तादात्म्य की जो बात कही है, उसकी परीक्षा अभी हमें इष्ट नहीं है। यहाँ हमारा अभिप्राय इस तथ्य का निरूपण है कि कवि अपनी संवेदना की जागृतावस्था में सत्त्वोद्रेक का अनुभव करता है और उस समय उसका 'आत्म' पूर्णतया सजग एवं क्रियाशील होता है। जो वस्तु या घटना उसे आकृष्ट करती है, उस पर उसकी अन्तरात्मा का रंग चढ़ जाता है और वह वस्तु नवीन दीप्ति, नवीन संकेत, नवीन अर्थवत्ता से गर्भित हो जाती है। वर्ड्सवर्थ ने अपनी सुपरिचित कविता 'The Daffodils' में जिन नर्तनशील स्वर्णाभ कुसुमों का सौन्दर्य-गान किया है, उनमें असली फूलों से कुछ अधिक सुषमा समा गई है। पन्त ने 'नौका-विहार' में तन्वंगी गंगा के गोरे अंगों पर लहराने वाले जिस 'चंचल अंचल' का कथन किया है, उसमें वही सौन्दर्य नहीं है जो 'नीलाम्बर' में प्रायः हमें दृष्टि-गोचर होता है। दिनकर के 'हिमालय' में जिस 'मेरे नगपति ! मेरे विशाल !' का आह्वान किया गया है, वह हमारा परिचित नगाधिराज हिमालय नहीं है। प्रसाद ने 'कामायनी' में जिस 'इन्द्रजाल-जननी' मुग्धा रजनी-बाला की मूर्ति अंकित की है, उसमें और सामान्य विभावरी में सहृदयों के लिए बड़ा अन्तर पड़ जाता है। ये पंक्तियाँ इतनी रमणीय हैं कि इन्हें थोड़ा उद्धृत करने का मोह मैं संवरण नहीं कर सकता—

**"पगली ! हाँ सम्हाल ले कैसे**
**छूट पड़ा तेरा अंचल;**
**देख बिखरती है मणिराजी**
**अरी, उठो बेसुध चंचल।**
**फटा हुआ था नील वसन क्या**
**ओ यौवन की मतवाली !**
**देख अकिंचन जगत लूटता**
**तेरी छवि भोली-भाली।"** —'आशा'

कवि ने इन पंक्तियों में रजनी-रानी के यौवनागम का जो चित्र खींचा है, वह सामान्य मनुष्य की अनुभूति नहीं है। यह कवि की उस मनोदशा की प्रसूति है जिसमें वह 'आहार-निद्रा-भय-मैथुनं' के धरातल से ऊपर उठकर, अपने 'आत्म' की निर्बाध उपलब्धि करता है और सम्पूर्ण चराचर सत्ताओं के अन्तर्जीवन में सहज भाव से प्रवेश कर जाता है। जिसे हम 'आत्म' या 'अन्तरात्मा' कहते हैं, उसी की एक नैसर्गिक शक्ति 'कल्पना' है, जिसे पाश्चात्यों ने बड़ी प्रमुखता दी है। कवि अपने अन्तःकरण के माध्यम से दृश्य-जगत् के व्यापारों का ज्ञान प्राप्त करता है। यह ज्ञान निर्लिप्त अथवा ताटस्थ्य-जनित नहीं होता। इसमें कवि के 'आत्म' का अपना भीतरी रस सना हुआ होता है। पाश्चात्यों की भाषा में, उसमें कल्पना का आलोक मिला रहता है, जिससे पार्थिव वस्तु स्वर्गीय सुषमा से मंडित हो जाती है। आदि-कवि ने मैथुन-रत क्रौंच के युग्म में से एक के निर्मम वध पर जिस वाणी का निस्सरण किया, वह एक सामान्य घटना का सामान्य अनुलेख नहीं है। उसमें उसकी सत्त्वोद्रिक्त मनोदशा की तीव्र अभिव्यक्ति है, जब उसके अन्तश्चैतन्य पर से प्रयोजन का आवरण भंग हो गया है। कवि सूचना नहीं देता, वह काम किसी इतिहासवेत्ता अथवा राज्याधिकारी का है। कवि तथ्य का प्रतिअंकन नहीं करता, वह काम किसी गणना-शास्त्री का है। कवि वस्तुओं का विश्ले-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पण एवं सिद्धान्तों का स्थापन नहीं करता, वह काम किसी वैज्ञानिक का है। कवि विधियों का विधान एवं उपदेशों का व्याख्यान नहीं करता, वह काम किसी आचार-शास्त्री या धर्मशास्त्री का है। कवि वस्तुओं की हू-बहू नकल नहीं करता, वह काम किसी फोटोग्राफर का है। यह तो नहीं कह सकते कि इतिहासवेत्ता, दार्शनिक, वैज्ञानिक इत्यादि अपनी साधनाओं में तन्मय नहीं होते। अभीष्ट केवल इतना ही है कि वे सभी तथ्यों के प्रति तटस्थ रहने का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं और उनके परिश्रम की प्रसूतियों का महत्त्व उतने ही परिमाण में समझा जाता है जितने में वे इस ताटस्थ्य की रक्षा कर सकने में समर्थ हुए हैं। तटस्थ अथवा निर्लिप्त कवि की कल्पना नहीं की जा सकती।

ऊपर रजनी-वधू का जो चित्र उद्धृत किया गया है, उसे कोई कोरा तथ्यान्वेषी अंकित नहीं कर सकता। 'The Eve of St. Agnes' नामक प्रसिद्ध कविता में गहरी नींद में सोई प्रेमिका का कीट्स ने यों चित्रण किया है—

Soon, trembling in her soft and chilly nest,
In sort of wakeful dream, perplex'd she lay,
× × ×
Blinded alike from sunshine and from rain,
As though a rose should shut and be a bud again."

अन्तिम पंक्ति पर ध्यान दीजिए। प्रणय-स्वप्न में सोई हुई नवयुवती ऐसी शोभा दे रही है। मानो वह एक कुसुमित पाटल-प्रसून हो जो निमीलित होकर पुनः कलिका बन गया हो। खिला गुलाब का फूल बन्द हो जाय और फिर कली में परिणत हो जाय। वह नवयौवना प्रेमिका यौवन के समस्त मादक सौन्दर्य एवं मार्दव को जैसे समेटकर अर्धनग्न अवस्था में सोई पड़ी है। कवि की संवित् उसके प्राणों के मधु में निमज्जित हो उठती है, और यह सुन्दरी पाटल-प्रसूनों एवं मुकुलों से स्पर्धा करने लगती है। एक साधारण-सा तथ्य कवि-कल्पना की आँच में पिघल एवं परिष्कृत होकर विशुद्ध लोभनीय स्वर्ण बन गया है। 'विक्रमोर्वशीय' के प्रथम अंक में पुरुरवा रथ पर भय से आँखें बन्द कर पड़ी हुई उर्वशी से कहता है कि धीरज धरो, अब राक्षसों का भी भय जाता रहा, अतएव—

**"तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं निशावसाने नलिनीव पंकजम्"**

"तुम अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को वैसे ही खोलो जैसे रात बीतने पर कमलिनी अपना फूल खोल देती है।"

कीट्स और कालिदास के इन चित्रों पर विचार कीजिए। एक में गुलाब का खिला फूल कली बन गया है, दूसरे में कलिका फूल में परिणत हो रही है। 'इन्द्रियों के जीवन' से दोनों कवि-पुंगव समानरूपेण अभिभूत थे। और, इन्होंने जो सौन्दर्य-प्रतिमाएँ सृष्ट की हैं, वे कोरी 'निष्क्रियत्नमता' की प्रसूति नहीं है, अपितु 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा' अथवा प्रतिभा से व्युत्पन्न हुई हैं। सत्त्वोद्रेक की अवस्था, कवि के सम्बन्ध में अत्यन्त क्रियाशील होती है और वह अनायास ऐसे चित्र अंकित कर देता है, जो उसकी भीतरी भूखों को परितृप्त करने के साथ-साथ, सहृदय भावकों के अन्तःकरण की भूख को भी जगाता और साथ ही तृप्त भी करता है।

ऊपर हमने कहा है कि कवि की भूख और प्यास निराली होती है तथा उसकी शांति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के लिए वह 'आत्म' की धरती को खोजता और खोदता है। इस कथन से यह अभिप्राय ग्रहण करना उचित न होगा कि मैं यह मानता हूँ कि कवि इस धरती का प्राणी नहीं है। वास्तविकता यह है कि कवि जीवन एवं जगत् के व्यापारों का अपनी संवेदना के माध्यम से अनुवचन करता है। यह संवेदना उसका जागृत 'आत्म' ही है जिस पर से प्रयोजन का पर्दा हट गया रहता है। कवि जीवन का अनुवक्ता एवं व्याख्याता है। उसके लिए उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं का वही महत्त्व है जो किसी अर्थशास्त्री के लिए उसके अंकों या आँकड़ों का है, अथवा किसी राजनीतिक नायक के लिए लोकमत का है। यह दूसरी बात है कि कवि के ढुलमुल मनोवेगों (Vague emotions) का परित्याग ही श्रेयस्कर है। कवि अपने समाज एवं युग की धरती से ही उत्पन्न होता है, जैसे गुलाब का फूल धरती का पेट चीरकर बाहर प्रकाश करता है। किन्तु फूल के उद्भव और विकास के अपने निसर्गज नियम हैं। पुनः चमकने तथा सौरभ-दान करने में वह पूर्ण स्वायत्त है, किसी बाह्य प्रतिबन्ध का नियमन स्वीकार नहीं करता। उसी प्रकार कवि युग की मिट्टी से उत्पन्न होते हुए भी आत्म-प्रकाश में स्वतंत्र है। सचाई तो यह है कि वह उतना ही आलोक संसार को प्रदान कर सकता है जितना उसकी अन्तरात्मा में प्रतिफलित हुआ है तथा जितनी गहराई तक उसने मनुष्य एवं प्रकृति के रहस्यों के भीतर अपनी संवित् को निमज्जित तथा प्रक्षालित किया है। वाल्मीकि और व्यास, कालिदास और भवभूति, सूर और तुलसी, होमर और वर्जिल, दाँते और गेटे, शेक्सपीयर और शा—इन सभी की रचनाओं में युग का प्रतिबिम्ब या प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। लेकिन जिस महान् सौन्दर्य एवं सत्य का उन्होंने उन्मीलन किया है, वह उनकी युगसीमाओं का अतिक्रमण कर गया है—जितनी दूर तक उनकी दृष्टि प्रयोजन-रज्जु से बँधी थी, उतनी दूर तक वे युग की प्रसूति थे और जितनी दूर तक उनकी चेतना प्रयोजन-परिधि को लाँघकर आगे निकल गई, उतनी दूर तक वे युग-युग की मानवता के पथनिर्देशक बन गए। आंग्ल-कवि शेली ने इसी अर्थ में कवियों को 'मानव-जाति के मौन विधायक' (लेजिस्लेटर्स) कहा है, **"कवि एक बुलबुल है जो अंधेरे में बैठकर अपने एकान्त को प्रसन्न करने के लिए गाती रहती है। उसके श्रोता ऐसे व्यक्ति हैं जो अदृश्य गायक की मधुर स्वरलहरियों से मुग्ध, द्रवित या दीप्त होते हैं, लेकिन यह नहीं जानते कि वे कहाँ से और क्यों आ रही हैं।"** इस कथन में शेली ने कवि के आत्म-तत्त्व के महत्त्व की ओर ही संकेत किया है। कवि को 'परिभूः' एवं 'स्वयंभूः' मानने में यही तथ्य व्यंजित है कि वह परिस्थितियों को प्रसूति होते हुए भी आत्म-प्रकाश में पूर्ण स्वायत्त है।

अब तक हमने कवि की एक प्रमुख विशिष्टता का विवेचन किया है। वह थी उसकी असाधारण संवित्, असामान्य संवेदना, जो जीवन एवं जगत् के शासक रहस्यों को विश्वसनीय ढंग से उन्मीलित कर देती है। लेकिन कवि की दूसरी प्रमुख विशेषता है वाणी का वरदान, इसीलिए वह 'सरस्वती-पुत्र' कहा गया है। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में 'काव्य-पुरुष' की उत्पत्ति का वर्णन किया है। सरस्वती की पुत्र-कामना-जन्य तपश्चर्या से प्रसन्न हो-कर ब्रह्मा ने पुत्रोत्पत्ति का वरदान दिया। कुछ समय के पश्चात् सरस्वती को पुत्र-रत्न लाभ हुआ। पुत्र ने जनमते ही माता के चरणों को स्पर्श कर छन्दोबद्ध भाषा में उनका अभिवादन किया। इस प्रकार की छन्दोबद्ध वाणी को 'लौकिक संस्कृत' में सुनकर सरस्वती अत्यंत प्रसन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हुई और बड़े प्यार से उसे अंक में लेकर बोलीं—**पुत्र ! यद्यपि मैं समूचे वाङ्मय की माता हूँ तथापि तूने इस प्रकार की छन्दोबद्ध भाषा से आज मुझ पर भी विजय प्राप्त कर ली, यह अत्यन्त हर्ष की बात है। कहा जाता है कि पुत्र से पराजित होना द्वितीय पुत्र-जन्म के समान है। तुमसे पूर्वज विद्वानों ने गद्य की सृष्टि की है, पद्य की नहीं। इस छन्दोबद्ध वाणी के प्रथम आविष्कारक तुम ही हो। अतः तुम सचमुच प्रशंसनीय हो।**[1]

प्रस्तुत प्रसंग में कवि को छन्दोबद्ध भाषा का आविष्कर्ता बताया गया है, अर्थात् कवि के लिए छन्द का परिधान आवश्यक है। कवि तथा अ-कवि क्रमशः पद्य और गद्य को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं। गद्य और पद्य की तुला पर कवि की वाग्देवी को तोलने का अनुष्ठान अनुचित अथवा असंगत प्रतीत हो सकता है। वह वाणी, जो हमारे भीतर भाव-रस का संचार करती है, गद्य की शैली भी अपना सकती है और पद्य-परिधान में प्रस्तुत वाणी हमारे अन्तस् के किसी कोने को भी स्पर्श करने में असमर्थ रह सकती है। लेकिन छन्दोमयी वाणी का अपना विशिष्ट महत्त्व है। हमारी आत्मा जब आनन्द अथवा किसी प्रकार की उमंग या भावोद्वेलन से भर जाती है, तो उसका प्रकाश गति एवं लय के मार्ग से ही सम्पन्न होता है। गद्य हमारे प्रयोजनों की भाषा है, सामान्य विचार-विनिमय का माध्यम है। उससे हम जीवन की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। किन्तु हृदय की मधुर एवं मार्मिक हलचलों तथा उद्वेजनाओं को उसके सहारे अभिव्यक्त नहीं कर सकते। आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है—**"छन्द एक समूहगत शक्ति है, एक चित्त के अनुभव को अनेक चित्तों में अनायास संचारित करने वाला महान् साधन है। ××× छन्द भार-साम्य की रक्षा करता है, सन्तुलन नहीं बिगड़ने देता और नितान्त गद्यात्मक प्रयोजनों के भारीपन से भाव को मुक्त करता है। ××× समूची दृष्टि में ही एक प्रकार की छन्दोमयी गति है। काव्य का छन्द उस बृहत्तर सत्य के अनुरूप होने से ही महान् है। वह कलाबाजों द्वारा आरोपित काल्पनिक मुकुट पहनकर बड़ा नहीं हुआ है।"**[2]

साधारण मनुष्य के जीवन में भी गहरे आनन्द तथा गहरे विषाद की घड़ियाँ उपस्थित होती हैं। सम्भवतः वह भी ऐसे अवसरों पर भावों की सान्द्र उमड़न का अनुभव करता है और उसे अभिव्यक्त करने के लिए लालायित हो उठता है। लेकिन वह मूक रह जाता है, क्योंकि वाग्देवी की कृपा उसे प्राप्त नहीं है। वह अवसर हमारे लिए अत्यन्त कष्टदायक होता है। इस सम्बन्ध में मुझे कीट्स की प्रेमिका मैडेलाइन की दशा का सहसा स्मरण हो आता है, जो अपने प्रेमी के दर्शन स्वप्न में प्राप्त करने की कामना से दिन-भर उपवास कर, रात में शय्या पर सोने जा रही है। उस व्रत का विधान था कि प्रेमिकाओं को शयन का उपक्रम करते समय कुछ भी बोलना नहीं चाहिए, क्योंकि तब उन्हें स्वप्न में प्रिय-दर्शन नहीं होगा। मैडेलाइन दीपक बुझाकर शयन-कक्ष में प्रवेश करती है। उसका हृदय भावों के उद्वेलन से अशान्त है, लेकिन—

"No uttered syllable, or, woe betide!
But to her heart, her heart was voluble,

१. 'भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा'—नगेन्द्र, पृष्ठ १६५।
२. 'साहित्य का मर्म,' पृष्ठ ४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Paining with eloquence her balmy side;
As though a tongueless nightingale should swell
Her throat in vain, and die, heart-stifled, in her dell."

—'the Eve of St. Agnes.'

**"वह एक शब्द भी बोल नहीं सकती थी। तब उस पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता। लेकिन उसका हृदय स्वयं अपने से वाचाल था। उसकी मूर्खता से उस बाला के कोमल पार्श्व में घनी पीड़ा हो रही थी। मानो कोई जिह्वाविहीन बुलबुल अपने भावों को व्यक्त करने के लिए अपना कण्ठ विस्फरित करती हो और अन्त में अवरुद्ध अन्तस् के कारण, अपनी उपत्यका में उसके प्राण-विहग उड़ जाते हों।"**

सामान्य मनुष्य जीवन के कुछ अवसरों पर, कुछ स्थितियों में, प्रस्तुत प्रेमिका की-सी विवशता और विह्वलता का अनुभव करता है। अभिव्यक्ति का प्रसाद उसे प्राप्त नहीं है, क्योंकि वह समझता है कि सामान्य घिसी-घिसाई भाषा उसके हृदयस्थ रागों के प्रकाश के लिए असमर्थ है। वह ऐसा मूक बन जाता है जैसे उसने बोलना सीखा ही नहीं। वह अन्यथा वार्तालाप में प्रवीण हो सकता है, किन्तु जीवन की दो महती आवश्यकताओं या अनुभूतियों, प्रेम और मृत्यु,[1] की उपस्थिति में वह गूँगा बन जाता है। **"उसकी दशा उस आदमी के समान बन जाती है जो राजा के यहाँ भोजन के निमन्त्रण पर आया है। किन्तु जो दूकान अथवा सेवकों के विश्रामालय की भाषा ही जानता है। प्रेम, धर्म, देशानुराग अथवा एक पूर्णतर संसार की कामना इत्यादि जीवन के गहरे रागों का अनुभव करना राजा का अतिथि बनना है और राजा की भाषा परिष्कृत अर्थों में कविता है।"[2]**

सामान्य भाषा, जिससे हम जीवन के प्रयोजनों की पूर्ति किया करते हैं, हमारे हृदय की, हमारे स्वप्नों एवं अभिलाषाओं की, भाषा नहीं बन सकती। यही कारण है कि साहित्य के इतिहास में भाषा के अनेक प्रयोग मिलते हैं; नव-नव पद-समूहों, प्रतीकों तथा छन्दों के दर्शन होते हैं। किसी भी नवीन भाव-धारा को अभिव्यक्त करने के लिए कवि अपनी भाषा स्वयं गढ़ता है। लेकिन जब उसमें गतानुगतिकता आ जाती है, जब सभी छोटे-बड़े कवि उन्हीं भाषा-भंगियों को अपनाने लग जाते हैं, तब वह भाषा अथवा भाषा-शैली अपनी विच्छित्ति, अपनी ताजगी खो देती है। नवीन प्रतिभाओं का प्रादुर्भाव होता है और फिर उनके द्वारा नई भाषा गढ़ी जाती है, नये प्रयोग रचे जाते हैं। छायावाद की नई अनुभूतियाँ पुरानी भाषा में अभिव्यक्त नहीं हो सकती थीं। प्रगतिवाद के अनुभव छायावादी भाषा की छटा में प्रकाश नहीं कर सकते थे। विद्रोह घटित हुआ। अलंकार-मोह के बन्धन घोषित किये गए, छन्द और संगीत के मोहक आच्छादन को व्यर्थ बताया गया। आज प्रयोगवाद जिस लचर और घिसघिस भाषा का अवलम्ब ले रहा है, वह अकारण नहीं। सचाई यह है कि उसके पास कुछ गहरी अनुभूतियाँ नहीं हैं, व्यक्त करने के लिए कुछ ऐसी सारपूर्ण वस्तुएँ नहीं हैं जिनसे मनुष्य जीता है और जागता है। ऐसी अवस्था में यदि प्रयोगवाद साधारण गद्य की

१. **फ्रायड के अनुसार मनुष्य में दो प्रवृत्तियाँ अन्तर्निहित हैं—पहली Eros अर्थात् प्रेम या प्रजननवृत्ति और दूसरी Arakne अर्थात् विनाश या मृत्युवृत्ति।** —लेखक

२. Robert Lynd : Introduction to Methuen's 'Anthology of Modern Verse.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाषा का अवलम्बन कर रहा है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भाव के उत्कृष्ट होने पर ही भाषा उत्कृष्ट बनती है, भीतर के समृद्ध होने पर ही बाहर समृद्धि का दर्शन होता है। "**तऊ प्रकास करै तितो, भरियै जितो सनेह।**"

तो, कवि की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह अपने भावों और विचारों को वाणी द्वारा व्यक्त कर सकता है। वह भावों का धनी तो है ही, वाणी का सम्राट् भी है उसकी वाग्धारा में निमज्जित हो, साधारण तथ्य भी चमक उठता है। प्रसिद्ध कवि-आलोचक पोप ने इसी कारण कविता की परिभाषा में कहा था कि कविता वह सुपरिचित विचार है जो सुन्दर और आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त किया गया हो। आचार्य कुन्तक ने भी शब्द और अर्थ के शोभाशाली सम्मिलन को काव्य माना है।[1] बाणभट्ट के विषय में कथा प्रसिद्ध है कि अपने ग्रन्थ की समाप्ति के लिए चिन्तित हो, उसने अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर पूछा कि सामने क्या दिखाई पड़ रहा है? पहले ने उत्तर दिया—"**शुष्को वृक्षः तिष्ठत्यग्रे।**" दूसरे ने कहा—"**नीरसः तरुरिव विलसति पुरतः।**" बाणभट्ट ने दूसरे पुत्र को ही ग्रन्थ-समाप्ति के भार-वहन के योग्य समझा। यायावरीय राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी का कथन है कि किसी वस्तु का स्वरूप या स्वभाव नियत नहीं है, अर्थात् न वह गुणयुक्त है, न दोष-पूर्ण। कवि की उक्ति से ही वह सगुण अथवा निर्गुण बनती है—जो चन्द्रमा की स्तुति करना चाहता है, वह उसे 'अमृतांशु' कहता है और जो कवि उसकी निन्दा करना चाहता है, वह उसे 'दोषाकर' कहता है।[2] 'कुमारसम्भव' में कालिदास ने शिव के तपःशिखर पर अचानक प्रस्फुटित वसन्त-श्री का वर्णन करते समय लताओं और वृक्षों के परस्पर झूमने-मिलने का यों चित्रण किया है—

**"पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्यः।**
**लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥"** (३-३९)

**"वृक्ष भी अपनी झुकी हुई डालियों को फैलाकर उन लतावधुओं से लिपटने लगे जिनके पुष्पों के गुच्छों के रूप में बड़े-बड़े स्तन लटके हुए थे और नवकिसलयों के रूप में जिनके मनोज्ञ ओंठ हिल रहे थे।"** प्रकृति के रमणीय चित्रांकन के साथ कितना मधुर आसव इस चित्र की कटोरी में भर गया है।

स्नान करने के उपरान्त नारियाँ आँचल से अपना मुँह पोंछती हैं। यह साधारण-सी बात है और हम प्रायः ऐसा देखते हैं। लेकिन विद्यापति जैसा कोई कवि ही इसके मर्म-स्पर्शी सौन्दर्य की विवृति कर सकता है—

**"बदन पोछल परचूरे, माँजि धएल जनि कनक-मुकूरे।"**

अंचल से पोंछे गए मुख में माँजे गए स्वर्ण-दर्पण की कान्ति की खोज करना किसी कवि के लिए ही सम्भव हो सकता है। किंग लियर की मरणोत्तर दशा का शेक्सपीयर एक वाक्य में यों निवेदन करता है—

---

१. **"शब्दार्थौ सहितौ वक्र कविव्यापारशालिनि।**
**बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥"** —**'वक्रोक्तिजीवित', १-७**

२. **"वस्तुस्वभावोऽत्र कवेरतन्त्रो गुणागुणावुक्तिवशेन काव्ये।**
**स्तुवन्निबध्नात्यमृतांशुमिन्दुं निन्दंस्तुदोषाकरमाह धूर्त्तः॥"** —**'काव्यमीमांसा'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"After life's fitful fever, he sleeps well."

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि कवि की वाणी जीवन तथा जगत् के प्रत्येक कोने में प्रवेश करती है और उसके मार्मिक अर्थ या संकेत का प्रभावशाली ढंग से अनावरण करती है। भारतीय आचार्यों ने कवि के लिए प्रतिभा के साथ-साथ जो व्युत्पत्ति और अभ्यास पर बल दिया है,[१] वह इसी कारण कि भावसृष्टि में तब तक रमणीयता नहीं आती जब तक कि विस्तृत ज्ञान और अभ्यास के आधार पर भाषा में, कथन के ढंग में, मर्मस्पर्शी चमत्कार नहीं उतर आता। सुप्रसिद्ध विचारक इमर्सन का कथन है कि विश्व में भिन्न-भिन्न अभिधान वाले तीन बालकों का एक साथ जन्म हुआ। वे हैं— ज्ञाता, कर्ता और वक्ता ( the Knower, the Doer and the Sayer )। इनमें से पहला सत्यं का अनुरागी है, दूसरा शिवं का और तीसरा सुन्दरं का। यही तीसरा कवि है जो 'वक्ता' और 'नामधायक' (Namer) है। अतएव, कवि का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह कहता है, बोलता है, वस्तुओं को नाम और अभिधान देता है। शेक्सपीयर ने भी कवि का महत्त्वमय गुण यही बताया है—

"Gives to airy nothing a local habitation and a name."

**"कवि वायवी शून्य को स्थिति और संज्ञा प्रदान करता है।"**

फ़िलिप सिडनी ने कविता को 'बोलने वाला चित्र' कहा है। उसमें भी कवि की कथन-शक्ति को परोक्ष स्वीकृति मिली है।

भारतीय वाङ्मय में 'कवि' शब्द को उत्कट महत्त्व दिया गया है। 'ऋग्वेद' में आत्मा के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग हुआ है[२], गीता में आत्मा के सूक्ष्मतम एवं अमूर्त्ततम रूप को 'कवि' कहा गया है।[३] वहाँ आत्मा के विश्वविधातृ, अणोरणीयान, अचिन्त्य एवं आदित्यवर्ण प्रकाश-स्वरूप का कथन किया गया है। शुक्ल 'यजुर्वेद' में (४०/८) परमेश्वर के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है— **"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।"** श्रीमद्भागवत में (१/१/१) वेदों के प्रकाशक ब्रह्माजी को 'आदि कवि' माना गया है—**'तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवयो।"** कालिदास ने भी 'रघुवंश' में विष्णु को 'पुराना कवि' कहा है।[४] बाद को, ऋषि-महर्षियों तथा भिन्न-भिन्न शास्त्रों के रचयिताओं को भी 'कवि' की संज्ञा मिल गई थी। वैद्यों को आज भी 'कविराज' कहा जाता है। किन्तु जिस अर्थ में हम आज 'कवि' शब्द का प्रयोग करते हैं, उस अर्थ में सम्भवतः सर्वप्रथम वाल्मीकि के लिए 'आदिकवि' और श्री वेद-

---

१. **"नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥"—'काव्यादर्श'।
"मितयमिदं व्याप्तियते शक्तिव्युत्पत्तिरभ्यासः।" 'काव्यालंकार'।**

२. **"कवि केतु धासि भानुमग्रे।" (७/६/२)
"कवि कवित्वा दिवि रूपमास।" (१०/१२४/७)**

३. **"कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥"
—गीता, अध्याय ८, श्लोक ९।**

४. **"पुराणस्य कवेस्तस्य वर्ण-स्थानसमीरिता।
बभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती॥" —'रघुवंश', १०/३६।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



व्यास के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग किया गया है। रामायण को 'आदिकाव्य' तथा महाभारत को 'काव्य' का अभिधान स्वयं उनके प्रणेताओं द्वारा प्रदान किया गया है।

आत्मा के अमूर्त्त एवं अचिन्त्य स्वरूप के अतिरिक्त जिन अन्य प्रसंगों में 'कवि' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ उससे 'वर्णन करने वाला' का बोध ग्रहण किया गया है। 'कु' धातु के सम्प्रसरण 'कव्' का अर्थ है, वर्णन करना। अमरकोश में 'कवि' का अर्थ दिया गया है—"कवते श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा।" 'शब्दकल्पद्रुम' में 'वर्णन' के अतिरिक्त 'जानना' भी कवि का लक्षण बताया गया है—'**कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयतीति कविः।**" आप्टे ने अपनी प्रसिद्ध 'संस्कृत डिक्शनरी' में रूप, रंग इत्यादि की मूर्त्त अभिव्यक्ति को 'वर्णन' में गृहीत किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि कवि की प्रधान शक्ति के रूप में 'वर्णन करना' भारतीय वाङ्मय में स्वीकार किया गया है। उसे चौदह विद्याओं तथा चौसठ कलाओं का ज्ञाता माना गया है। कोशकार ने स्पष्टतया उसे सर्वज्ञ कहा ही है। लेकिन, यह बहुज्ञता अथवा सर्वज्ञता कवि का अतिरिक्त गुण है। प्रधान विशिष्टता यही है कि वह वर्णन करता है, कहता है, बोलता है, अज्ञात वस्तुओं को स्थिति और अभिधान की सीमा में लाकर उन्हें हमारे लिए गोचर तथा संवेद्य बना देता है। टाल्सटाय ने कविता का प्रमुख धर्म बताया है भावों एवं विचारों का सम्प्रेषण। उसका भी मन्तव्य कवि की कथन-क्षमता को ही महत्त्व देना है।

ऊपर हमने कहा है कि कवि के वर्णन में सामान्य कथन की अपेक्षा कुछ अधिक विच्छित्ति, कुछ अधिक चमत्कार—'तद्विदाह्लादकारित्व'—विद्यमान रहता है। लेकिन, जैसा पहले संकेतित है, स्पृहणीय आदर्श यही है कि अभिव्यक्ति को भाव की पीठिका से सम्बल प्राप्त होना चाहिए। किन्तु, विश्व के सम्पूर्ण साहित्यों के इतिहास में यह बात देखने में आती है कि अभिव्यक्तियों के रूप बदलते रहे हैं। आ० द्विवेदी ने 'कलाबाज़ों द्वारा आरोपित काल्पनिक मुकुट' की जो चर्चा की है, उससे कविता-कामिनी का शृंगार करने की भूयसी चेष्टा समय-समय पर सर्वत्र की गई है। "**चाहे जिस युग में, चाहे जिस जाति में, कविता के विकास का इतिहास एक ही रहा है। भाव की सरलतम अभिव्यक्ति से यह प्रारम्भ होता है और अन्य भावों को और भी अधिक सरलता से तथा कम लयात्मकता से, वह व्यक्त करती है। तब वह नाना प्रकार की कलाबाजियों का अवलम्ब लेती है, इतना अधिक कि उनकी अलंकृत छटाओं के भीतर काव्यसुलभ भाव लगभग विलुप्त हो जाता है। उसके बाद मानवता और कवि दोनों ही अचानक अत्यधिक समानता या गतानुगतिकता एवं कृत्रिमता से थक जाते हैं अथवा एक बार पुनः कविता सरलतर भावों की सरल अभिव्यक्ति बन जाती है।**"[1]

उपर्युक्त विवेचन में कई बार सत्य और सौन्दर्य का उल्लेख आ गया है। ये अर्थ-गर्भित शब्द हैं और इनकी विस्तृत परीक्षा के लिए प्रस्तुत स्थल उपयुक्त नहीं है। केवल एक बात निवेदनीय है, वह यह कि कवि की संवित् को जो आकृष्ट करे, वह उसके लिए सुन्दर है। कवि का मार्ग सुन्दरं का ही है, सत्यं का नहीं। सत्य के प्रबल दावेदार दार्शनिक, वैज्ञानिक और इतिहासवेत्ता हैं। प्लैटो ने सत्य के नाम पर ही अपने आदर्श जनतंत्र से कवियों को निष्कासित कर दिया था। वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा को उपग्रह बताकर उसका सौंदर्य तथा

१. **मैडाक्स फोर्ड**—'The March of Literature'.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संकेत नष्ट कर दिया है। इतिहासवेत्ता राम और कृष्ण को लौकिक पुरुष बताकर, हमारे भावों के एक बहुत बड़े आधार को ध्वंस करने का उपक्रम कर चुके हैं। कवि तथ्य का अन्वेषक नहीं है, वह सौन्दर्य की 'सर्जरी' नहीं करता। वह अपनी संवेदना के माध्यम से जीवन का अध्ययन करता है और यह अध्ययन कभी मिथ्या अथवा अविश्वसनीय नहीं होता। विशुद्ध कवि कथमपि बुरा नहीं होता, यद्यपि उसकी उत्तमता में परिमाण का अन्तर हो सकता है। नैतिकता की तुला पर उसका अनुभव ग्राह्य हो या त्याज्य, किन्तु हमारे लिए वह एक जागरण है, एक नवीन चेतना है। हम अपने से एक अधिक 'गिफटेड' व्यक्तित्व के सम्पर्क में आते हैं और जीवन की हमारी अनुभूति पहले से अधिक समृद्ध तथा गहरी बन जाती है। **"जीवन और जगत् के विषय में कवि जो 'रिपोर्ट' प्रस्तुत करता है उसी की सत्यता पर संसार जहाँ तक वह सुन्दर और रहने योग्य है, अवलंबित रहता है। हमारे लिए और उसके लिए इस सत्यता का प्रमाण वह स्वयं है।"**—मिडलटन मरी।

अर्थात्, कवि-मानस द्वारा गृहीत सौंदर्य ही उसके लिए सत्य है, सत्य की वह पृथक् साधना नहीं करता, अपितु सौंदर्य के मार्ग से सत्य की उपलब्धि करता है। इस दृष्टि से कवि सौंदर्य का साधक और सत्य का प्रतिष्ठाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवेन्द्र इस्सर

# चरित्र-चित्रण

जब भी कोई कहानी के भविष्य से नैराश्य प्रकट करता है तो उसकी शिकायत प्रायः यह होती है कि कहानी के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व कथावस्तु और चरित्र धीरे-धीरे चेतना-प्रवाह में बहते जा रहे हैं इशरवुड एण्डर्सन ने तो कथावस्तु को कहानी का विषय ही घोषित कर दिया है। लेकिन चरित्र के सम्बन्ध में इतना निर्णयात्मक दृष्टिकोण अभी सामने नहीं आया। क्योंकि जब तक कहानीकार पुनः पशु-पक्षी और ईंट-पत्थर के सम्बन्ध में कथा-कहानी लिखना शुरू नहीं कर देता, बल्कि मनुष्य के गिर्द ही कहानी का ताना-बाना बुनता रहता है, चरित्र-चित्रण की प्रकृति और उसके महत्त्व पर विवाद अनिवार्य है। चाहे वह चरित्र 'दुश्चरित्र' व 'चरित्र-हीन' ही क्यों न हो जाय, या यूँग का 'आर्की टाइप' बन जाय। क्योंकि दुश्चरित्रता और चरित्रहीनता से भी चरित्र के अस्तित्व का परिणाम मिलता है।

कुछ कहानीकारों के लिए चरित्र कथावस्तु का ही एक अंग होता है और उसके विकास में सहायक सिद्ध होता है। लेकिन कुछ कहानीकार कथावस्तु को मूलाधार न स्वीकार करके चरित्र-चित्रण को ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व समझते हैं। जब भी उनके सामने किसी कहानी की रूप-रेखा आती है तो वह कथावस्तु के रूप में नहीं, बल्कि चरित्रों के पारस्परिक सम्बन्धों के रूप में होती है। इन चरित्रों में कोई-न-कोई विशिष्ट गुण (Idiocsyncrasy) होता है। इन कहानी-कारों के विचार में ऐसे चरित्र कोई-न-कोई ऐसी क्रिया अवश्य करेंगे जो दूसरों से भिन्न और दिलचस्प होगी। कहानीकार का उद्देश्य इसी क्रिया के महत्त्व को कहानी के रूप में प्रस्तुत करना है। इसी कारण चरित्र-चित्रण के एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर विवाद आरम्भ हो जाता है। क्या कहानीकार चरित्र के प्रतिनिधि पहलू का चित्रण करता है या विलक्षण वैयक्तिक पहलू का? क्या प्रतिनिधि पहलू का चित्रण करते हुए उसके वैयक्तिक पहलू का चित्रण नहीं हो सकता? इस दशा में क्या वह चरित्र अपने प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त दूसरों का प्रतिनिधित्व भी कर सकता है? यदि वह दूसरों का प्रतिनिधित्व भी कर सकता है तो उसकी वैयक्तिक हैसियत कैसे कायम रह सकती है? मूल बात तो यह है कि क्या चरित्र के विशिष्ट और सामान्य पक्षों में संघर्ष अनिवार्य है या इसका समन्वय हो सकता है? विवाद चरित्र और व्यक्तित्व के भेद पर भी हो सकता है। कुछ आलोचक तो निश्चयात्मक चरित्र और 'नासत्या-त्मक चरित्र' प्रकार की परिभाषा का भी प्रयोग करते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि हमें निश्चयात्मक चरित्र प्रस्तुत करना चाहिए। इस विवाद को आगे बढ़ाने वाले आलोचक चरित्रों के कई टाइप निश्चित करते हैं। विवाद चरित्र के वस्तुगत और आन्तरिक पक्षों पर दोनों को पृथकत्व, संघर्ष, समानता और समन्वय पर भी हो सकता है। इस लेख में इन सब



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में से किसी एक पर भी विमर्श नहीं किया गया, बल्कि हमारे सम्मुख तो एक छोटी-सी बात उपस्थित है जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कथा-चरित्र-चित्रण से ही है। और वह बात यह है कि वास्तविक चरित्र और कथा-चरित्र पर प्रायः जो विचार-विमर्श होता रहता है उसकी प्रकृति और उसका महत्त्व क्या है। और यह प्रश्न यों भी आवश्यक है कि एक अच्छी-भली कहानी पर आपत्ति करते हुए तुरन्त कह दिया जाता है कि इसमें चरित्र वास्तविक नहीं (यद्यपि इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि वह अलौकिक है)।

यह बात तो हम सब स्वीकार करते ही हैं कि कहानी में जब भी कोई घटना होती है तो हम अवश्य पूछते हैं कि यह सब-कुछ किस पर बीत रहा है या किसके साथ यह घटना हुई है? बुद्धिमान पाठक इस प्रश्न में एक और प्रश्न भी शामिल कर लेता है कि फिर इस सब-कुछ होने का महत्त्व क्या है? वास्तव में वह उस चरित्र को इस विशिष्ट रूप में प्रस्तुत करने का महत्त्व मालूम करना चाहता है और फिर साधारणतया 'इस सब-कुछ का', जिसे जसे हम कहानी कहते हैं, मूल्य निश्चित करना चाहता है। मैंने यहाँ 'महत्त्व' की बात कही है, क्योंकि 'साहित्य' और 'असाहित्य' में इसी 'महत्त्व' का भेद है। अन्यथा कथावस्तु, चरित्र, कथा-निरूपण, घटनाएँ, विषयवस्तु, शब्द और वर्णन-शैली के तत्त्व तो प्रत्येक कहानी में शामिल होते ही हैं, चाहे वे साहित्यिक हों या असाहित्यिक।

यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि चरित्र-चित्रण का उल्लेख करते हुए 'मूल्य' की बात कहाँ से आ गई? वास्तव में 'मूल्य' की इस बात से मुझे यह सुविधा हो जाती है कि मैं बिना किसी अधिक विवाद के यह वाक्य लिखने के योग्य हो जाता हूँ कि सड़क पर चलते-फिरते व्यक्तियों और कथा-चरित्रों में अन्तर होता है। इसलिए बहस साहित्यिक कहानी में चरित्र की प्रकृति और उसके मूल्य पर केन्द्रित हो जाती है और चरित्र से तात्पर्य कथा-चरित्र से हो जाता है। जब हम कथा-चरित्र की बात कहते हैं तो कुछ आलोचक इसे वास्तविक के मुकाबले में काल्पनिक या 'पंचतंत्रीय' समझ लेते हैं। इस समय मेरा अभिप्राय उन चरित्रों से है जो कहानी या उपन्यास में प्रस्तुत किए जाते हैं और जो नित्यप्रति के जीवन में प्रायः दृष्टिगोचर होने वाले चरित्रों से विभिन्न होते हैं, क्योंकि कहानीकार का उद्देश्य चरित्र के गुह्य जीवन को व्यक्त करना है। मानवीय चरित्र की यह विशिष्टता है कि वह कहानी में हो या जीवन में, आनन्द-लिप्सा की निरन्तर खोज उसके जीवन के तत्त्व को निश्चित करती है। सुख और दुख मनुष्य के गुह्य जीवन से सम्बद्ध हैं। कहानीकार का लक्ष्य इस गुह्य जीवन को अभिव्यक्त करना है। गुह्य जीवन से आनन्द की प्रक्रिया कैसे सम्बद्ध है इस पर भी विमर्श हो सकता है। हक्सले के विचारानुसार, आनन्द या तो पाशविक स्तर पर या अलौकिक स्तर पर ही सम्भव है। लेकिन यदि हम इस विचार को स्वीकार करके चरित्र का निर्माण करेंगे, तो सपाट चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त कुछ प्राप्त नहीं हो सकता (यद्यपि हक्सले के पात्र सपाट नहीं)। लेकिन इससे यह अभिप्राय नहीं कि हम रहस्य प्रगट करने बैठे हैं कि सदाचारी मनुष्य के हृदय में कितना कपट है और दुराचारी मनुष्य में भी कितनी सुनीति है और तब कहानी में गुह्य जीवन को प्रस्तुत करते हैं। इस सम्बन्ध में नीतिशास्त्र की अपेक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता है।

कहानी में चरित्र का गुह्य जीवन ही महत्त्वपूर्ण है। उसका प्रगट जीवन कम दिलचस्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और कम महत्त्वपूर्ण होता है। यह सम्भव है कि किसी चरित्र की एक हरकत या क्रिया या अदा उसके गुह्य जीवन को व्यक्त कर दे, जोकि उसके नित्यप्रति के कर्म-कलाप या उसके जीवन की कर्मशूरता और घटनाएँ प्रस्तुत न कर सकें। उसके नित्यप्रति के जीवन में उसकी साधारण क्रिया को बहुत कम महत्त्व दिया जाता है लेकिन उसके हाथों से हुई हत्या को जो महत्त्व प्राप्त है उससे कई व्यक्ति और समाज प्रभावित होते हैं। कहानीकार इस घटना की ओर कोई ध्यान नहीं देगा यदि यह घटना उसके गुह्य जीवन से हमें परिचित नहीं करती। ऐसी रोमांच-कारी घटनाओं से सम्बद्ध चरित्र जासूसी उपन्यासों के चरित्र ही बन सकते हैं, साहित्यिक उपन्यासों के नहीं। इसलिए वे पाठक, जिनकी दृष्टि प्रकट पर है 'अन्तस्' पर नहीं, यह समझने में हमेशा असफल रहते हैं कि वास्तविक चरित्र और कथा-चरित्र में अन्तर है। इस प्रकार के यथार्थवादी पाठक की यह माँग प्रायः अनुचित होती है कि अमुक चरित्र अस्वाभाविक है। वैसे भी यदि आप कहानी में 'ज्यों-का-त्यों' चरित्र ही देखना चाहते हैं, जैसाकि आपने उसे वास्तविक जीवन में देखा है, उसकी उन अनुभूतियों और भावनाओं का चित्रण चाहते हैं जिनसे आपको नित्यप्रति वास्ता पड़ता है, तो फिर आप कहानी पढ़ने की अपेक्षा अपने इर्द-गिर्द दृष्टि डालें और पर्यवेक्षण करें। अनुभूतियाँ और भावनाएँ नई या अछूती नहीं होतीं बल्कि एक नये दृष्टिकोण में उनके मूल्य और महत्त्व को निश्चित करना ही कहानीकार की सफलता है।

कहानीकार का यह कर्त्तव्य है कि जिस चरित्र को आप वर्षों से जानते हैं, जिनके जीवन की घटनाओं से आप परिचित हैं उसके सम्बन्ध में ऐसी अन्तर्दृष्टि प्रकट करें जो उसके जीवन का वास्तविक तत्त्व व्यक्त कर देती है, लेकिन जो किसी मनोवैज्ञानिक या सामाजिक स्थिति के कारण व्यक्त नहीं होता। जिसे आप वास्तविक समझ रहे हैं, क्योंकि वह आपकी दृष्टि के सामने नित्यप्रति होता रहता है, वास्तव में कृत्रिम और अवास्तविक है। उनकी वास्तविकता इतनी है कि व्यक्ति प्राकृतिक अवस्था में जीवित नहीं रहता बल्कि सामाजिक बन्धनों में जकड़ा रहता है। इसलिए जब पाठक किसी कहानी के चरित्र को काल्पनिक और अस्वाभाविक घोषित कर देता है तो इसके दो कारण हो सकते हैं—

१—कि कहानीकार विश्वासात्मक विधि से चरित्र के तात्त्विक जीवन का चित्रण नहीं कर सका।

२—कि पाठक की अन्तःदृष्टि इतनी कमज़ोर है कि जिसे वह वास्तविक समझता है उसे वह अवास्तविक समझने के लिए तैयार नहीं।

कहानी-चरित्र के सम्बन्ध में आलोचक और पाठक हमेशा इस विवाद को जारी रखेंगे कि क्या यथार्थ है। जिसे कहानीकार यथार्थ समझता है वह पाठक की दृष्टि में अस्वाभाविक है और जिसे पाठक यथार्थ समझता है वह कहानीकार के लिए सत्य नहीं है। वैसे भी बेचारे लेखक से हर प्रकार की माँग की जाती है। कुछ माँगें तो अब लेखक को अपने पाठकों से भी करनी चाहिए। संगीत, नृत्य और ललित कला से आनन्दानुभूति के लिए कुछ बातों का ज्ञान अनिवार्य है। लेकिन साहित्य से आनन्दास्वादन के लिए केवल शब्दों का पढ़ लेना ही पर्याप्त समझ लिया गया है। यही कारण है कि साक्षर परन्तु अप्रशिक्षित पाठक की सन्तुष्टि के लिए कहानीकार कभी भी कोई चरित्र पूर्णरूपेण प्रस्तुत नहीं कर सकता। चरित्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चित्रण को सफल बनाने के लिए कहानीकार कुछ तो पाठक की यथार्थ दृष्टि को स्वीकार करेगा ताकि वह कहानी पढ़ सके और कुछ अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करेगा ताकि चरित्र में अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो। इस बात में खतरा यह है कि चरित्र विकृत न हो जाय और विकृत चरित्र वास्तव में अपूर्ण है तथा अपूर्ण चरित्र जीवन और कहानी दोनों के दृष्टिकोण में अवास्तविक है। सोमरसेट के विचारानुसार साहित्यकार यथार्थ की नकल नहीं करता। वह उससे जो ग्रहण करना चाहता है, कर लेता है। कुछ विशिष्ट बातें हैं जिन्होंने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। मानस का मोड़ है जिसने उसकी कल्पना को प्रेरित किया है। कहानीकार उनसे चरित्र का निर्णय करता है। इससे उसे कोई सरोकार नहीं कि चरित्र असल से सही समानता रखता है या नहीं। वह केवल अपने उद्देश्य को सहज तौर पर पूर्ण करने के लिए सम्भाव्य समानता पैदा करना चाहता है।

इस स्थान पर ऐलन के विचार भी स्मरणीय हैं—

**"प्रत्येक मनुष्य के दो पहलू होते हैं जो इतिहास और कहानी के लिए उचित होते हैं। वह सब-कुछ, जिसका कि व्यक्ति में पर्यवेक्षण किया जा सकता है, अर्थात् उसकी क्रियाएं और उसका आध्यात्मिक अस्तित्व, जोकि उसकी क्रियाओं से उद्धत किया जा सकता है, इतिहास के क्षेत्र में सम्मिलित है। लेकिन उसका आध्यात्मिक पक्ष विशुद्ध भावनाओं पर आधारित है, अर्थात् स्वप्न, अतिवेदना और स्वगत, जिसका वर्णन लज्जा के कारण नहीं हो पाता। मानव-प्रकृति के इस पहलू को प्रस्तुत करना उपन्यासकार के महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों में से एक है। इतिहासकार लिपि-बद्ध करता है जबकि उपन्यासकार के लिए सृजन करना आवश्यक है।**

कथा-चरित्र नित्यप्रति के जीवन से सम्पूर्ण और व्यापक रूप से समानता नहीं रखता, बल्कि वह उनसे अन्तर रखता है। जिस तरह साधारण जीवन में व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध और संघर्ष होते हैं, इसी तरह कहानी और उपन्यास में चरित्रों का अपना संसार और जीवन जन्म ले चुका होता है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध और संघर्ष कथावस्तु, वातावरण और दूसरे चरित्रों के पारस्परिक लगाव-अलगाव से निश्चित होता है। इसलिए नित्यप्रति के जीवन में चलते-फिरते व्यक्ति की कसौटी पर कथा-चरित्र की वास्तविकता को परखना सही नहीं। फ़ारेस्टर ने 'होमियो सेपियन' और 'होमो फिक्टस' के अन्तर का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि 'होमो फ़िक्टस' अर्थात् कथा-चरित्र जन्म लेता है, वह मर सकता है, वह कुछ खुराक और नींद चाहता है, वह मानवीय सम्बन्धों में घिरा हुआ है। हम उसके सम्बन्ध में अपने किसी भी दूसरे व्यक्ति से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि उसका स्रष्टा और वर्णनकार एक ही हैं।

फारेस्टर ने एक महत्त्वपूर्ण विचार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि कहानी एक कला-कृति है जिसके नियम नित्यप्रति के जीवन की तरह नहीं होते। इसलिए यदि चरित्र यथार्थ है तो उसको परखने की कसौटी नित्यप्रति का जीवन नहीं हो सकती, बल्कि कहानी का वह संसार है जिसमें कि वह पैदा हुआ है और विकास पा रहा है। कहानी में चरित्र-चित्रण की सफलता कहानी के वातावरण की अनुकूलता से ही निश्चित की जा सकती है, जो उस नित्यप्रति के जीवन से भिन्न है जोकि हम साधारण तौर पर बसर करते हैं। इसलिए जब कहानी पर बहस होती है तो इस बात को नज़रन्दाज़ कर दिया जाता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कहानी जीवन नहीं और न ही जीवन का स्थानापन्न है, अपितु जीवन की सत्यता पर एक नये जीवन का सर्जन है, एक नये संसार का निर्माण है, जिसके अपने भी कुछ नियम हैं जो चरित्र को प्रभावित करते हैं और जिनसे चरित्रों का जीवन नियमित होता है और उन नियमों के आधार पर ही यथार्थ की परख की जा सकती है। कहानी के चरित्र पर नित्यप्रति के जीवन के नियमों को लागू करके उसे अस्वाभाविक घोषित कर देना ज़ाहिर करता है कि पाठक को न तो जीवन की चेतना है और न ही कला का ज्ञान, अन्यथा वह इस चरित्र के यथार्थ को जानने में ग़लती न करता। जीवन के चरित्र और कहानी के चरित्र में कला की एक झिल्ली है जो चीन की दीवार नहीं लेकिन जीवन से सम्बद्ध होते हुए भी उसे जीवन के राज्य से कला के क्षेत्राधिकार में ले जाती है, जिसके कारण चरित्र, उसकी जीवन-विधि और नागरिकता के अधिकार बदल जाते हैं जबकि बहुत से मौलिक अधिकार समन्वित होते हैं। साधारणतया पाठक एक राज्य से दूसरे राज्य में अवैधानिक तौर पर प्रवेश करता रहता है जिसके कारण कला के लिए ज़ाबिते की बहुत सी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। सम्भव है कि कोई चरित्र हमसे समानता रखता हो, लेकिन यदि वह समानता नहीं रखता तो इस बात पर उसका व्यक्तित्व छिन नहीं जाता। कहानीकार को अपने सृष्ट चरित्र के सम्पूर्ण जीवन की चेतना अनिवार्य है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह उसके जीवन के प्रत्येक पहलू का वर्णन करे। यदि कहानीकार अपने चरित्र के सम्पूर्ण जीवन के बारे में सचेत हुए बिना किसी एक पहलू को बयान करता है तो वह न केवल अपूर्ण होगा बल्कि उसके यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व भी नहीं कर सकेगा। चरित्र के विभक्त व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत करने के लिए यह आवश्यक है। तुर्गनीफ़ के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह चरित्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसकी जीवनी तैयार करता था। प्रत्येक वह क्रिया, जो उसने की है और कहानी के शुरू होने तक उसके साथ घटी है, उसकी रूपरेखा तैयार करता था, उसी तरह जैसे किसी आदी अपराधी का रिकार्ड पुलिस तैयार करती है। इसलिए वह कहानीकार, जो अपने पात्र की सम्पूर्ण व्यापक चेतना रखता है, उसकी विशिष्टता का वर्णन कर सकता है जो प्रायः हमारी दृष्टि से ओझल रहती है। क्योंकि वह हमारे उस पर्यवेक्षण की परिधि से बाहर है जो आँख ने किया है इसलिए अवास्तविक है। कहानीकार की आँख में वह आँख तो शामिल है जो हम सबके पास है, लेकिन उसकी अन्तःदृष्टि में कल्पना की उड़ान और सहजप्रज्ञा की गहराई भी है। स्वाभाविक चरित्र पैदा होता है, खाना खाता है, सोता है, यौन-सन्तुष्टि प्राप्त करता है। हम यह देखते हैं और प्रस्तुत करके मौन हो जाते हैं। लेकिन ये समस्त क्रियाएँ किसी हद तक और कभी-कभी ही उसके यथार्थ जीवन को व्यक्त कर पाती हैं।

फ़ारेस्टर के विचारानुसार केवल पेचीदा चरित्र ही कुछ समय तक के लिए ट्रेजिक तौर पर चल सकते हैं और हमारी अनुभूतियों को प्रेरित कर सकते हैं, क्योंकि ऐसे चरित्र की यह कसौटी है कि वह हमें निश्चित रूप से विस्मित करने की क्षमता रखता है या नहीं। यदि वह कभी भी विस्मय उत्पन्न नहीं करता तो वह सपाट है। यदि वह निश्चित नहीं तो भी वह सपाट है जो पेचीदा बनने का भ्रम उत्पन्न कर रहा है।

चरित्र स्वाभाविक है या यथार्थ, वास्तविक है या काल्पनिक, निश्चयात्मक है या नासत्यात्मक, सपाट है या मिश्रित इत्यादि, कहानीकार के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चरित्र-चित्रण के लिए दृष्टिकोण बड़ा महत्त्व रखता है। दूसरा प्रश्न यह है कि कहानीकार उस चरित्र को कैसे प्रस्तुत करता है। कला के अतिरिक्त इसका आधार भी दृष्टिकोण पर है। कहानीकार चरित्र को निरपेक्ष वस्तुगत तरीके से उसके जीवन में अन्तःदृष्टि प्राप्त करके या अपने-आपको उसमें सम्मिलित करके प्रस्तुत करता है। चरित्र-चित्रण के इस पहलू पर विचार करने के लिए चरित्र के जीवन की चेतना आवश्यक है। चरित्र की सामाजिक पृष्ठभूमि क्या है? चरित्र की मनःस्थिति क्या है? इस चरित्र से सम्बद्ध तात्त्विक नैतिकता क्या है? कहानीकार का अपना व्यक्तित्व क्या है? चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में ये प्रश्न पर्याप्त महत्त्व रखते हैं।

कहानीकार के लिए आवश्यक है कि चरित्र की सामाजिक पृष्ठभूमि की चेतना प्राप्त करे। सामाजिक पृष्ठभूमि एक विशाल बात है जिसमें हम चरित्र के पालन-पोषण, उसके पारिवारिक जीवन, वातावरण और आर्थिक आधार को जानना आवश्यक समझते हैं। यह सम्भव है कि कहानी में इनमें से किसी बात का वर्णन न हो और प्रायः इनका वर्णन करना आवश्यक भी नहीं होता। लेकिन चरित्र से मिलते ही हम उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि से परिचित हो जाते हैं। सामाजिक पृष्ठभूमि की बात मैं किसी 'प्रगतिवादी' सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं कर रहा, बल्कि इसका अभिप्राय यह है कि चरित्र का कोई आधार अवश्य होता है जिस पर उसे निर्मित किया जाता है। कोई भी चरित्र शून्य से पैदा नहीं होता और उसे वायुलम्बित प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। सामाजिक पृष्ठभूमि को सामाजिक यथार्थवाद से गडमड नहीं करना चाहिए।

दूसरी बात चरित्र की मनःस्थिति है। इसमें उसकी गहन मनोवृत्ति का गहरा दख़ल है, यानी वह जीवन नहीं जो वह बसर करता नज़र आता है; वे हाव-भाव नहीं जो प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर होते हैं बल्कि उसका गुह्य जीवन, जिससे वह वेदना और आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है, जो व्यक्त होने के लिए हमारी बाह्य दृष्टि से परे अन्तर्दृष्टि की प्रतीक्षा में कहता है। हम कहानी में आकृति नहीं व्यक्तित्व चाहते हैं। हमें चरित्र की 'केस हिस्टरी' नहीं चाहिए और न ही उसकी चिकित्सा के लिए परामर्श की आवश्यकता है, बल्कि उसके तात्त्विक गुह्य जीवन में अन्तर्दृष्टि अनिवार्य है, जिसमें व्यक्ति व्यक्तित्व बनता है और एक व्यक्तित्व कथा-चरित्र बनता है। इसलिए इसे मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का स्थानापन्न नहीं समझ लेना चाहिए।

तीसरी बात उस चरित्र का मूल्य और महत्त्व है। इस मूल्य या महत्त्व का निर्णय किसी विशिष्ट परम्परावादी नैतिक नियम के अनुकूल नहीं बल्कि तात्त्विक नैतिकता से करना चाहिए, जो नैतिकता उसके चरित्र को पूर्ण करती है। इसलिए यह बहस कि चरित्र निश्चयात्मक है या नासत्यात्मक, ग़लत है। जिसे हम नासत्यात्मक कहते हैं यदि उसमें तात्त्विक नैतिकता का तत्त्व विद्यमान है तो वह चोर या लुटेरा होने के बावजूद निश्चयात्मक चरित्र है।

निश्चयात्मक से तात्पर्य प्रायः स्वस्थ चरित्र होता है। स्वस्थ किस दृष्टिकोण से—शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक? इस प्रकार की समीक्षा करने वालों के लिए यह बात समझना अत्यधिक कठिन है कि जिसे प्रायः नैतिक अपराधी कहा जाता है वह भी आध्यात्मिक रूप में स्वस्थ हो सकता है। अतः वह निश्चयात्मक चरित्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अन्तिम बात कहानीकार के अपने व्यक्तित्व की है, जो सामाजिक पृष्ठभूमि, मनोवृत्ति और तात्त्विक नैतिकता में तारतम्य और ऐक्य पैदा करता है। इसमें कहानीकार की कला और उसका स्वभाव शामिल हैं। इन समस्त वस्तुओं के सम्मिश्रण के बिना किसी उच्चकोटि की कहानी की रचना सम्भव नहीं। वस्तुगत चित्रण के भ्रम में हमें कहानीकार के व्यक्तित्व को दृष्टि से ओझल नहीं होने देना चाहिए। हेनरी जेम्स ने ठीक कहा है कि दूसरे व्यक्तियों के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अपने सम्बन्ध में हमारे ज्ञान से उद्धत होता है। फ्लावेयर ने क्या खूब कहा है कि मैं हर समय दूसरे व्यक्तियों के शरीर में शामिल हूँ जो मुझसे भिन्न हैं। कई बार कहानीकार या उपन्यासकार अपने व्यक्तित्व के विभिन्न अंशों को विभिन्न चरित्रों में शामिल कर देता है। इसलिए किसी एक चरित्र में कहानीकार के व्यक्तित्व की खोज करना निष्फल है। फ्लावेयर वास्तविक व्यक्तित्व है और उसके द्वारा सृष्ट चरित्र 'एम्मा' (मादामबोवेरी) कथा-चरित्र है, लेकिन फ्लावेयर ने लिखा है कि 'मैं एम्मा हूँ' और फ्लावेयर ने अपने शरीर में विष का असर महसूस किया, इसके बावजूद कि फ्लावेयर ने एम्मा की आत्महत्या की घटना वास्तविक जीवन से ली थी। तर्गनीफ का विचार था कि वह चरित्र निर्मित नहीं कर सकता जब तक कि वह अपनी कल्पना को किसी जीवित व्यक्ति पर केन्द्रित न कर दे। बिना किसी विशेष व्यक्ति के वह अपनी रचना को जीवन और विशिष्टता प्रदान नहीं कर सकता। बात वास्तव में यह है कि चरित्र-चित्रण में साहित्यकार का निजी व्यक्तित्व और कलात्मक व्यक्तित्व शामिल रहते हैं। बहुत से व्यक्ति एक चरित्र में सम्मिलित रहते हैं। चरित्र समन्वय है। हेनरी जेम्स ने लिखा है कि निजी परिस्थितियों के किसी चित्र की विषय-वस्तु अधिकतर उसके निर्माता के अपने मस्तिष्क की गहराइयों से उत्पन्न होती है।

एक वास्तविक चरित्र का कथा-चरित्र बनना और एक कथा-चरित्र का वास्तविक रूप धारण कर लेना ही चरित्र-चित्रण की कला का चमत्कार है। जीवन के वास्तविक चरित्रों को कला के कथाचित्रों में ढूँढ़ने की कोशिश में हम जीवन और कला दोनों खो बैठते हैं, परन्तु यथार्थ चरित्र की आत्मा को कहानी का रूप प्रदान करके उसे फिर वास्तविक चरित्र बना देने में हम जीवन और कला दोनों को ग्रहण कर लेते हैं।

○

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० देवराज

# प्रौढ़ता के स्तर

जीवन का लक्ष्य क्या है, इसके बारे में विभिन्न युगों तथा देशों के दार्शनिकों ने अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। इनमें से कुछ सिद्धान्तों की अनुभव द्वारा परीक्षा सम्भव है, और कुछ की नहीं। उदाहरण के लिए, जहाँ स्थितप्रज्ञता के आदर्श को न्यूनाधिक मात्रा में बरता और उसी अनुपात में आँका जा सकता है, वहाँ भारतीय मोक्षवाद के कतिपय तत्त्व एकदम ही अपरीक्षणीय हैं जिन्हें आज की वैज्ञानिक बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती। मानववादी दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जीवन का लक्ष्य व्यक्तित्व का सम्पूर्ण परिष्कार अथवा उसका प्रौढ़तम धरातल पर विकास है, ताकि उसकी प्रतिक्रियाएँ पूर्णतया प्रौढ़ (Mature) हो सकें। इस प्रकार की प्रौढ़ता व्यक्तिगत तथा जातीय दोनों प्रकार के जीवन का लक्ष्य समझी जा सकती है।

उक्त प्रौढ़ता की प्राप्ति थोड़े समय एवं श्रम द्वारा साध्य नहीं है, वह जीवनव्यापी साधना द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। जब तक कोई व्यक्तित्व विकासमान रहता है, तब तक वह लगातार प्रौढ़ता की दिशा में प्रगति करता रहता है। प्रश्न है, प्रौढ़ता की उपलब्धि की प्रक्रिया इतनी जटिल एवं कठिन क्यों है? क्या एक-दो महापुरुषों के सिद्धान्त-सूत्रों अथवा उपदेशों को जान लेने से हमारा काम नहीं चल सकता? क्या नैतिक क्षेत्र में बुद्ध, ईसा तथा गांधी के उपदेशों पर चलना काफी नहीं है? और क्या साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में भरत, वामन, मम्मट आदि धुरन्धर विचारकों के सिद्धान्तों एवं पैमानों की अवगति पर्याप्त नहीं है?

उक्त प्रश्नों के उत्तर में हम जोर देकर कहेंगे—नहीं। सम्भवतः बुद्ध आदि के नैतिक उपदेश कुछ महीनों में पढ़ लिये जा सकते हैं और साहित्यशास्त्रियों के सूत्र भी थोड़े समय में रटे जा सकते हैं, यदि इतने मात्र से प्रौढ़ व्यक्तित्व की प्राप्ति हो जाय तो वह क्रिया जीवन-व्यापी साधना नहीं रह जायगी।

बात यह है कि किसी भी सिद्धान्त अथवा उपदेश का एक लम्बा-चौड़ा सन्दर्भ होता है। यह सन्दर्भ लम्बे-चौड़े जीवन एवं समस्याओं की अनुभूति होती है जो विशिष्ट सिद्धान्त या उपदेश की पोषक साक्षी (Evidence) का निर्माण करती है। इस साक्षी के ज्ञान के अभाव में हमारा किसी सूत्र का ज्ञान नितान्त अपूर्ण रहता है और इस साक्षी को सूत्र के रचयिता की व्यापक दृष्टि से देख सकने की क्षमता उत्पन्न कर सकना लम्बे परिश्रम की अपेक्षा करता है। उदाहरण के लिए बुद्धजी के किसी उपदेश को पूर्णतया हृदयंगम करने का अर्थ है—उस समस्त अनुभूति से परिचित होना जिसने बुद्धजी के उपदेश-सूत्र को प्रति-



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पादित कराया। बुद्धजी के समस्त अनुभव को आत्मसात् किये विना हम उनके किसी सूत्र की पूर्ण शक्ति से परिचित नहीं हो सकते। यही बात आइन्सटाइन, रसेल आदि विचारकों के सिद्धान्त-सूत्रों के ग्रहण पर लागू है। किसी भी महापुरुष को ठीक से समझना लम्बी साधना की अपेक्षा करता है। इस साधना द्वारा हम धीरे-धीरे स्वयं महान् बनने लगते हैं। मौलिक रूप में महान् बनने के लिए यह भी जरूरी है कि हम अनेक महापुरुषों के निकटसम्पर्क में रहकर उनके अनुभवों की परिधियों से बाहर संक्रमण करें और इस प्रकार अनुयायियों की भूमिका से निकलकर अपनी निराली अनुभूतियों को महत्त्वपूर्ण बनाना तथा आँकना सीखें। जीवन तथा अनुभूति के विभिन्न क्षेत्रों में इस कोटि की प्रौढ़ता सम्पादित करना स्पष्ट ही एक जीवनव्यापी साधना का लक्ष्य एवं फल हो सकता है। व्यक्ति द्वारा ऐसी साधना प्रायः उसी देश में सम्भव हो सकती है जहाँ प्रौढ़ता का सामान्य वातावरण है। दूसरा तरीका यह है कि व्यक्ति अपने वातावरण की सीमाओं का अतिक्रमण करके अतीत के अथवा विदेशी विचारकों तथा शिक्षकों से प्रेरणा ले।

इतनी भूमिका के बाद अब हम प्रौढ़ता के विभिन्न स्तरों की चर्चा करेंगे जिसका सम्बन्ध मुख्यतः साहित्य से होगा। यहाँ याद रखना चाहिए कि किसी भी एक व्यक्तित्व में सर्वतोमुखी प्रौढ़ता का क्रियात्मक विकास सम्भव नहीं है। कोई भी एक व्यक्ति साहित्य, विज्ञान, इतिहास, दर्शन आदि भिन्न क्षेत्रों में समान रूप से प्रौढ़ दृष्टियाँ विकसित नहीं कर सकता। सर्वतोमुखी प्रौढ़ता एक सुसंस्कृत राष्ट्र के जीवन में ही प्रतिष्ठित हो सकती है—ऐसे राष्ट्र में जहाँ विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले बहुत से व्यक्ति मूल्यांकन अथवा विवेक के प्रौढ़तम पैमानों की चेतना एवं प्रयोग के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं।

अन्ततः प्रौढ़ता मानवीय जीवन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का धर्म है जिसकी अभिव्यक्ति ज्ञान-विज्ञान, समीक्षा, कला आदि में होती है। प्रौढ़ अनुभवात्मक प्रतिक्रिया एक खास अर्थ में सुगठित एवं सघन प्रतिक्रिया होती है। वह प्रतिक्रिया एक अकेले प्रयोजन से बँधी हुई और इसलिए पूर्ण रूप में संगत होती है। प्रौढ़-रचना की सर्वप्रथम पहचान यह है कि उसमें कहीं भी रचना की मूल प्रवृत्ति से असम्बद्ध ऐसे तत्त्वों का समावेश नहीं होता जो उस प्रवृत्ति को पल्लवित अथवा पुष्ट या प्रभावित करने वाले नहीं हैं। शब्दों तथा पद-समूहों के प्रयोग में प्रौढ़-लेखक पूर्णतया मितव्ययी होता है। इस मितव्ययिता का आवश्यक रूप में यह अर्थ नहीं है कि श्रेष्ठ लेखक विशेषणों आदि के प्रयोग में अनावश्यक कंजूसी से काम ले। फिर भी यह ठीक है कि अभ्यस्त एवं प्रौढ़-लेखक शब्दों का दुरुपयोग नहीं करता, वह ऐसी व्यंजनाओं के प्रयोग से बचता है जो रचना की प्रभाव-वृद्धि में उल्लेखनीय योग नहीं देतीं। शब्दों तथा शब्द-समूहों का प्रयोग प्रायः दो प्रयोजनों से होता है—अनुभूति के सही एवं प्रभावपूर्ण प्रकाशन के लिए अथवा उसे निकटवर्ती क्षेत्रों के चित्रों तथा संकेतों द्वारा अधिक समृद्ध बनाने के लिए। रोमांटिक काव्य-साहित्य में यह दूसरा प्रयोजन मुख्य रहता है। आधुनिक काव्य-साहित्य प्रायः पहले प्रयोजन को ज्यादा महत्त्व देता है। कवि कीट्स ने कहा है—"Poetry should surprise us by a fine excess", अर्थात् कविता को हमें एक मनोज्ञ अतिशयता द्वारा चकित या चमत्कृत कर सकना चाहिए। सम्भवतः आज के वैज्ञानिक समीक्षक विचारकों को यह मत अधिक ग्राह्य न होगा। स्थूल रूप में कहें तो बतलाना होगा कि प्रौढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रचना में कहीं भी भरती के शब्दों का समावेश नहीं होता। प्रौढ़ लेखक में अनुभूति अथवा विचारों की दरिद्रता नहीं रहती। वह अनुभव तथा चिन्तन के एक विस्तृत प्रदेश से रचना की सामग्री का चयनात्मक आदान करता है, इसीलिए उसे कभी प्रासंगिक चित्रों, भावों अथवा विचारों की कमी नहीं पड़ती। फलतः वह अपनी रचना में कहीं भी निरर्थक एवं प्रभावशून्य पदों तथा व्यंजनाओं का समावेश नहीं करता। उसकी रचना का प्रत्येक अंश सार्थक स्पन्दन जगाने वाला होता है, फिर चाहे वह स्पन्दन रागात्मक हो अथवा विचारात्मक।

उपरोक्त कोटि की प्रौढ़ता दूसरी कोटियों की प्रौढ़ता का आवश्यक आधार है। इस प्रकार की प्रौढ़ता के प्रतिफलन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अभिव्यक्ति अनुभूति किसी खास श्रेणी की हो; यह भी जरूरी नहीं है कि उस अनुभूति में दार्शनिकता अथवा विचारात्मक उच्चता का समावेश हो। ऐसी प्रौढ़ता साधारण मनोवृत्तियों के परिपूर्ण प्रकाशन में भी प्रतिफलित हो सकती है और असाधारण अनुभवों की अभिव्यंजना में भी अवश्य ही काव्यबद्ध अनुभूति में एक विशिष्ट कोटि का आकर्षण या चमत्कार रहता ही है। उक्त कोटि की प्रौढ़ता को 'औचित्य' के नाम से भी अभिहित किया जा सकता है। कतिपय प्राचीन साहित्यशास्त्रियों ने इस तत्त्व को विशेष गौरव दिया है।

महाकवि ग़ालिब के निम्नलिखित प्रत्येक पद्य में उक्त श्रेणी की प्रौढ़ता मिल सकेगी। वस्तुतः सभी भाषाओं तथा कोटियों के उत्कृष्ट काव्य में इस प्रकार की प्रौढ़ता आवश्यक रूप में निहित रहती है। ग़ालिब के निम्न शेर एक ही ग़ज़ल से लिये गए हैं—[1]

**१. हम से खुल जाओ बवक्ते मय-परस्ती एक दिन,**
**वर्ना हम छेड़ेंगे रख के उज़्रे मस्ती एक दिन।**
**२. धौलधप्पा उस सरापा नाज़ का शेवा नहीं,**
**हम ही कर बैठे थे ग़ालिब पेशदस्ती एक दिन।**
**३. क़र्ज़ की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ,**
**रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन।**
**४. नाल हाये ग़म को भी अय दिल ग़नीमत जानिये,**
**बेसदा हो जायगा यह साज़े हस्ती एक दिन।**

उक्त पद्यों को हमने विशेष प्रयोजन से उद्धृत किया है। दूसरे पद्य में प्रेमी के प्रेमिका से हाथापाई करने की बात है; जीवनोपभोग की समग्रता में सम्भवतः ऐसी हरकतों का भी समावेश है। अन्तिम पद्य में ग़ालिब ने एक मार्मिक दार्शनिक तथ्य का रागात्मक संकेत किया है; इस पद्य में एक दूसरी कोटि की प्रौढ़ता भी है। किन्तु हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि दूसरे तथा तीसरे पद्यों को किसी भी महत्त्वपूर्ण पैमाने के अनुसार अप्रौढ़ नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः ग़ालिब जैसे प्रौढ़ व्यक्तित्व की लेखनी से जो कुछ भी निःसृत

१. (१) शराबखोरी के अवसर पर एक दिन बेतकल्लुफ हो जाओ, वर्ना हम तुम्हें नशे का बहाना करके छेड़ेंगे। (२) सरापा नाज़=सर से पैर तक सुन्दर या सुन्दर भंगिमाओं से युक्त। पेशदस्ती=हाथ छोड़ना। (३) स्पष्ट है। (४) ग़म या वेदना के गीतों को भी ग्राह्य समझना चाहिए, क्योंकि अस्तित्व का यह वाद्य एक दिन स्वरहीन हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होता है वह सांस्कृतिक दृष्टि से अप्रौढ़ हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार विहारी अथवा सूर के शृंगार-काव्य को लेकर उन पर सांस्कृतिक लांछन लगाना समीक्षक की अप्रौढ़ता का ही द्योतक हो सकता है।

हमने कहा था कि प्रौढ़ता का प्रतिफलन अनुभूति की समंजस गठन एवं समृद्धि में होता है। एक गीत या पद्य की प्रौढ़ता हममें एक पूर्ण रागात्मक स्पन्दन जाग्रत होने का कारण होती है। एक महाकाव्य अथवा उपन्यास ऐसे स्पन्दनों के एक सम्बद्ध पुञ्ज को उत्पन्न करता है। प्रौढ़ता का चरम आधार सशक्त जीवन-स्पन्दन की सफल सृष्टि है। स्पष्ट ही एक प्रभावशील व्यक्तित्व का जीवन असम्बद्ध शक्त स्पन्दनों की परम्परा-मात्र नहीं होता; उस जीवन में विभिन्न स्पन्दन गम्भीर प्रयोजनमूलक सम्बन्ध-सूत्रों से आबद्ध रहते हैं। व्यक्ति के जीवन-व्यापारों की भाँति काव्यगत अनुभूति भी छोटे-बड़े अनेक प्रभाव उत्पन्न करती है। हम एक व्यक्ति के हँसने-मुस्कराने के ढंग से प्रभावित हो सकते हैं; हम उसकी असाधारण प्रतिभा अथवा कार्यदक्षता की लम्बी-चौड़ी अभिव्यक्ति से भी प्रभावित होते हैं। एक गांधी अथवा नेहरू के व्यक्तित्व में साधारण तथा असाधारण अनेक विशेषताएँ पाई जा सकती हैं। गीतिकाव्य का अपना महत्त्व है; प्रायः गीतिकाव्य का विषय सौन्दर्य तथा प्रेम होता है। प्रायः गीतकार कवि एक क्षेत्र से सम्बद्ध बहुत सी रचनाएँ प्रस्तुत करके हमारे मन पर छाप डालते हैं। बिहारीलाल, विद्यापति, उमरखैयाम, महादेवी, पन्त आदि इसी कोटि के कवि हैं। किन्तु किसी महाकाव्य अथवा उपन्यास में अनुभूति का जो आकलन होता है उसकी प्रौढ़ता केवल अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं होती। वह प्रौढ़ता अनुभूति के सम्बद्ध विस्तार एवं उसकी यथार्थमूलक दृष्टि की प्रखरता तथा सार्थकता से भी निरूपित होती है।

हमने कहा था कि अभिव्यक्तिगत प्रौढ़ता दूसरी कोटियों की प्रौढ़ता का आवश्यक आधार होती है। प्रश्न है, कालिदास जैसे महाकवि एवं टॉल्स्टाय जैसे उपन्यासकार की कृतियों में प्रतिफलित प्रौढ़ता किन कोटियों की है?

समस्त साहित्य जीवन से प्रेरणा लेता है। प्रौढ़ साहित्य, अन्तिम विश्लेषण में, प्रौढ़ जीवन-स्पन्दन की अभिव्यक्ति होता है। प्रौढ़ गीतिकाव्य एक प्रौढ़ व्यक्तित्व के राग-विरागों अथवा प्रतीतियों को वाणी देता है। कालिदास के काव्य की प्रौढ़ता का रहस्य यह है कि उन्होंने एक प्रौढ़ अथवा विकसित संस्कृति से सम्पन्न जाति के समग्र जीवन के सार्थक पहलुओं को प्रकाशित किया। एक जातीय जीवन में बहुत से तत्त्व होते हैं, एक समुन्नत जाति में विकसित सौन्दर्य-बोध, परिपक्व नीति-बोध एवं लम्बी अनुभूति से प्रमाणित जीवन का तत्त्व-बोध पाये जाते हैं। कालिदास तथा दूसरे महत्त्वपूर्ण संस्कृत कवियों में उक्त सभी कोटियों के बोध विकसित रूपों में प्रतिफलित हुए हैं। फलतः संस्कृत काव्य एक दूसरे महत्त्वपूर्ण अर्थ में प्रौढ़ है। इस प्रकार की प्रौढ़ता प्रायः विकसित जातियों के साहित्यकारों में ही पाई जा सकती है। इस दृष्टि से सूर और तुलसी का काव्य कालिदास, भवभूति आदि के काव्य का समकक्ष नहीं है। भारवि, माघ आदि कवियों में जिस परिपक्व कोटि का जीवन-विवेक (जिसमें राजनीतिक जरूरतों तथा मर्यादाओं का बोध भी सम्मिलित है) पाया जाता है वैसा मध्ययुगीन हिन्दी आदि के कवियों में नहीं। 'किरातार्जुनीय' के भीमसेन एक राजकुमार की मर्यादा के अनुरूप बातचीत तथा व्यवहार करते हैं; मध्ययुगीन तथा बाद के साहित्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमें भीमसेन जैसे वीरों के विकृत अतिरंजना करने वाले चित्र ही मिल सकते हैं। इन दृष्टियों से हिन्दी के प्रायः किसी भी नाटककार को हम प्रौढ़ लेखक नहीं कह सकेंगे। प्रसाद के एक नाटक में मातृगुप्त अथवा कालिदास का उल्लेख है, किन्तु वहाँ महाकवि की गरिमा का वैसे ही निर्वाह नहीं हो सका है जैसे कि 'रामचरितमानस' में रावण आदि के सम्राटोचित गौरव का।

जातीय संस्कृति एवं यथार्थ-दृष्टि से आगे मानवीय इतिहास के सत्य एवं यथार्थ का क्षेत्र है। स्वयं मानव-प्रकृति का विविध यथार्थ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। राष्ट्रों के सम्मिलन के इस युग में श्रेष्ठ कलाकार मानव-प्रकृति एवं इतिहास के यथार्थ को किसी एक जाति के सांस्कृतिक चश्मे को लगाकर नहीं देख पाता; अपनी प्रखर दृष्टि से वह उस यथार्थ को अपने प्रकृत रूप में पकड़कर व्यक्त करना चाहता है। आज का कलाकार जीवन का एक स्वतन्त्र द्रष्टा तथा अन्वेषक बनने को बाध्य हो गया है। आज उसकी दृष्टि अनेक ज्ञान-विज्ञानों के आकलन तथा इतिहास की विस्तृत जानकारी द्वारा गठित होती है। आज का प्रौढ़ उपन्यास-कार अथवा महाकाव्य-प्रणेता अपनी रचना में ऐसी दृष्टि को ही प्रकाशित एवं प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील होगा। इसका मतलब यह है कि आज के महत्त्वपूर्ण उपन्यास या महाकाव्य में एक प्रबुद्ध पाठक को अपने युग का समस्त उन्नत बोध प्रतिफलित होता दिखाई पड़ना चाहिए। यह युग-बोध आवश्यक रूप में किसी एक जीवन-दृष्टि को जन्म नहीं देता; उस युग-बोध की अनेक दिशाएँ एवं आयाम भी हैं। टॉल्स्टाय तथा दास्ताएव्स्की दोनों ही समकालीन युग-बोध को प्रकट करते हैं, यद्यपि उनके क्षेत्र अलग-अलग हैं।

ऐतिहासिक बोध एवं दृष्टि का प्रतिफलन अनेक रूपों में होता है—इस अवगति में कि नैतिक तथा दूसरी सांस्कृतिक परम्पराएँ अनेक एवं परस्पर-विरोधी हैं, इस प्रतीति में कि इतिहास में कुछ प्रेरणाएँ तथा शक्तियाँ ज्यादा महत्त्वपूर्ण रही हैं। ऐतिहासिक दृष्टि रखने वाला कलाकार ही एक गहरे अर्थ में नैतिक शिक्षा का कार्य सम्पन्न कर सकता है। ऐसा शिक्षण प्रायः स्थूल आदर्शों की दुहाई नहीं देता, वह पाठकों की यथार्थ दृष्टि का प्रखर विस्तार करते हुए ही उन्हें उच्च कोटि का जीवन-विवेक देता है।

अन्तिम विश्लेषण में जीवन-विवेक का अर्थ है—सुख-दुख से सम्बद्ध जीवन की विभिन्न सम्भावनाओं की अवगति और उन सम्भावनाओं के आपेक्षिक अथवा चरम महत्त्व की चेतना। इस प्रकार की अवगति एवं चेतना के उपकरण के रूप में ही इतिहास एवं दर्शन की जानकारी का उपयोग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## अध्ययन : भारतीय लेखक

प्रकाशचन्द्र गुप्त

# यशपाल के उपन्यास

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी-उपन्यास विविध दिशाओं में उन्मुख हुआ और नई धरती उसने गोड़ी। जैनेन्द्र जी ने मध्यम वर्ग के शहरी जीवन के अनेक कुशल चित्र खींचे, जिनमें 'त्याग-पत्र' सबसे सशक्त और मर्मवेधी था; श्री भगवतीचरण वर्मा ने इतिहास को आधुनिक विचारों के आलोक में देखा और चित्रित किया, तथा आज के संस्कारों का खोखलापन दिखाया; श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने पहले उपन्यासों में मानसिक विकारों और ग्रन्थियों का उद्घाटन किया, फिर बाद में प्रेमचन्द की सामाजिक परम्परा को अपनाया और समृद्ध किया; श्री 'अज्ञेय' ने व्यक्ति-मन की कुण्ठाओं का शिल्प से शृङ्गार किया। प्रेमचन्द के परवर्त्ती उपन्यासकारों में यशपाल ने ही सबसे अधिक तत्परता और लगन से राजनीतिक-सामाजिक उपन्यास लिखे और प्रेमचन्द की परम्परा के सबसे समर्थ उत्तराधिकारी वे कहे जा सकते हैं। इधर नये कथाकार ग्राम-जीवन का अंकन बहुत मनोयोग से कर रहे हैं; इस प्रवृत्ति का विकास हिन्दी-कथा-साहित्य के लिए अत्यन्त शुभ लक्षण है।

प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में भारतीय जीवन का जो वृहद्, विस्तृत और संश्लिष्ट अंकन हम पाते हैं, उसकी समता उनका परवर्त्ती उपन्यास-साहित्य नहीं कर पाता। इसका कारण यह हो सकता है कि प्रेमचन्द को जीवन से जो लगन थी, जिस प्रकार ग्राम-जीवन के अन्तरंग अंग वे बन गए थे, जितनी गहराई से वे जीवन में डूब सके थे, अहम् को त्याग चुके थे, वह आज के साहित्य-साधकों के लिए दुर्लभ है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के परवर्त्ती उपन्यास का विकास निरन्तर हो रहा है और अनेक नई दिशाओं में हिन्दी-उपन्यास को प्रेमचन्द के परवर्त्ती उपन्यासकारों ने समृद्ध किया है।

यशपाल राजनीतिक पृष्ठभूमि को अपने उपन्यासों में केन्द्रीय स्थान देते हैं। वे भारत के उस राजनीतिक दौर को अंकित करते हैं, जो १९३५-३६ से शुरू होता है, जब कांग्रेस में वामपक्षी दल सुदृढ़ हो रहे थे। 'प्रेमाश्रम' की पृष्ठभूमि में सन् १९२० का सत्याग्रह-आन्दोलन था और 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' और 'गोदान' के पीछे उग्र होते हुए किसान-आन्दोलनों की चेतना। यशपाल के उपन्यास इसी चेतना का उत्तराधिकार अपनाते हैं और आधुनिक भारत के नये परिच्छेदों को कथाबद्ध करते हैं।

यशपाल राजनीतिक आतंकवादी का जीवन बिताकर मार्क्सवादी साहित्यकार के जीवन में प्रविष्ट हुए। मार्क्सवादी दृष्टि से आपने जीवन और इतिहास को समझने और



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अंकित करने का प्रयास अपने कथा-साहित्य में किया। 'दादा कामरेड' में आप आतंकवाद में टूटती आस्था और मार्क्सवाद में दृढ़ होते हुए विश्वास की कथा कहते हैं। यह एक प्रकार से समकालीन आतंकवादी भारत का इतिहास है, क्योंकि इस काल में लगभग सभी आतंकवादी दल मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हो रहे थे।

'देशद्रोही' में यशपाल ने सन् १९४२ के संघर्षों का वर्णन किया है। 'देशद्रोही' की कथा अत्यन्त रोचक है। कांग्रेस की राजनीति से आन्दोलित दिल्ली में कथा का सूत्र शुरू होता है; सीमान्त पर वजीरियों के बीच, ग़ज़नी में और सोवियत में कथा का नायक खन्ना जाता है। इस लम्बी भूमिका के बाद खन्ना भारतवर्ष लौटकर मज़दूर-वर्ग के संगठन में जुटता है। यह सन् १९४२ का भारत है, जब कम्यूनिस्ट पार्टी की राजनीति कांग्रेस की राष्ट्रीय चेतना से टकरा रही थी। खन्ना मज़दूरों के बीच घायल पड़े हैं और मानो मुश्किल से ही उनके प्राण बचेंगे। उन्हें उनके मित्र स्वास्थ्य-लाभ के लिए पहाड़ ले जाते हैं। कथा का यह अन्त बहुत दुःखमय और हृदय-द्रावक है। यशपाल के कम्युनिस्ट नेताओं का अन्त बहुधा इसी प्रकार होता है। 'दादा कामरेड' का नायक शहीद हुआ; खन्ना बुरी तरह घायल पड़े हैं; 'मनुष्य के रूप' में भूषण बरकत की करौली से घायल होकर मरता है।

'देशद्रोही' में जो स्थल पाठक की स्मृति पर विशेष प्रभाव छोड़ते हैं, वे खन्ना की यात्राओं से और उसके प्रणय-सम्बन्धों से जुड़े हैं। राजनीति और यौन-सम्बन्ध यशपाल के उपन्यासों में परस्पर लिपटे रहते हैं। नारी के स्वतन्त्र जीवन के प्रति यशपाल के विचार महत्त्व रखते हैं। पुरुष-समाज नारी का युग-युग पर्यन्त शोषण करता रहा है; बिना आर्थिक स्वाधीनता के नारी का त्राण नहीं। पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण भी जीवन का मूल सत्य है, किन्तु जब यह यशपाल खतून को अतृप्त वासना से आक्रान्त दिखाते हैं, अथवा खन्ना को निरन्तर शरीर की वासना से अधीर और उद्वेलित पाते हैं, तब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या क्रान्तिकारी अपने यौन-सम्बन्धों में संयम और सन्तुलन के लिए संघर्ष नहीं करता? क्या इन समस्याओं का अधिक ऊँचे क्रान्तिकारी आधार पर हल सम्भव नहीं है? क्या यशपाल की दृष्टि इस सम्बन्ध में आतंकवादी दृष्टि प्रतीत होती है, कम्युनिस्ट दृष्टि नहीं? इसका तात्पर्य यह है कि कम्युनिस्ट विचारक सामाजिक सम्बन्धों में संयम और अनुशासन को महत्त्व देता है, किन्तु पुराने जीर्ण-शीर्ण सम्बन्धों को नष्ट करने की आतुरता में 'एनार्किस्ट' चिन्तक मर्यादा का कोई प्रश्न नहीं उठाता।

'देशद्रोही' के सम्बन्ध में एक बात और उठती है। इस उपन्यास के अनेक कल्पना-प्रधान वर्णन बहुत रोचक हैं; किन्तु किस हद तक वे यथार्थ का अंकन हैं, इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकते हैं। डॉ० महादेव साहा के मत से वजीरियों के जीवन के वर्णन अवास्तविक हैं। डॉ० साहा कहते हैं कि वजीरी बड़े ही सरल और निश्छल होते हैं। अपनी दो सोवियत यात्राओं के बाद यशपाल स्वयं समझ सकते हैं कि 'देशद्रोही' में सोवियत समाज का वर्णन कहाँ तक वास्तविक है।

'पार्टी कामरेड' में सन् १९४५ के आम चुनाव और बम्बई का नाविक विद्रोह उपन्यास की राजनीतिक पृष्ठभूमि हैं। इस उपन्यास की नायिका कम्युनिस्ट पार्टी का पत्र प्रचार-हेतु सड़कों पर बेचती है और चुनाव-फंड के लिए कोष-संग्रह के प्रयास में दुश्चरित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



धनिकों से भी अज्ञान-वश मित्रता कर लेती है। इस उपन्यास में यशपाल कांग्रेस की राजनीति का पर्दाफ़ाश करते हैं और दिखाते हैं कि उनके अनेक कार्यकर्त्ता काफी नीचे नैतिक स्तर पर उतर आते हैं। यशपाल कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रेरित होकर अपने उपन्यास लिखते हैं, साथ ही वे यथार्थ के अंकन में काफ़ी निष्पक्ष भाव से लिखने का प्रयास करते हैं। वे अपने कम्युनिस्ट पात्रों में अनेक चरित्रगत दुर्बलताएँ दिखाते हैं जो मानव-स्वभाव में अन्तर्हित हैं और जिन पर मनुष्य धीमे-धीमे विजय पाता जायगा।

'मनुष्य के रूप' में 'देशद्रोही' के समान एक बार फिर यशपाल ने घटना-प्रधान कथानक उठाया है। पहाड़ी गाँव की विधवा, सोमा, घटना-चक्र के प्राबल्य से अनेक रोमांचकारी अनुभव प्राप्त करती हुई अन्त में बम्बई के फ़िल्म-जगत् की 'हीरोइन' 'पहाड़न' बन जाती है। इस उपन्यास में पहाड़ों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है, कथा आकर्षक है और बम्बई की कोलाहलमय पूँजी-प्रधान दुनिया का बड़ा सजीव अंकन है। 'मनुष्य के रूप' में सामाजिक और आर्थिक ढाँचे पर कठोर प्रहार हैं, किन्तु मूल कथा यह है कि एक ग़रीब, निराधार लड़की, जिसे मनुष्य की वासना निरन्तर खा जाना चाहती है, फ़िल्मी 'हीरोइन' बन जाती है। ऐसी घटनाएँ कभी-कभी सच भी हो सकती हैं, किन्तु इन्हें जीवन का प्रतिनिधि चित्र नहीं कहा जा सकता। भारतीय जीवन का प्रतिनिधि सत्य यह है कि सोमा के समान असंख्य लड़कियाँ जीवन में घुट-घुटकर यों ही मर जाती हैं और फ़िल्मी दुनिया उनके लिए कल्पना के प्रासाद-मात्र रहती है। असंख्य भारतीय सोमाओं का प्रतिनिधित्व 'मनुष्य के रूप' की सोमा नहीं करती, वह अकेली, असामान्य और अ-प्रतिनिधि है।

'दिव्या' और 'अमिता' यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में भारत का अतीत इतिहास उपन्यासकार की कल्पना ने मूर्त्त किया है। इतिहास के ये चित्र बड़े भव्य और आकर्षक हैं, किन्तु इनमें हम मानो वर्तमान की गूँज भी सुन सकते हैं। प्राचीन भारत की समृद्ध संस्कृति का चित्र अंकित करते हुए भी यशपाल सामन्ती-समाज का वर्ग-शोषण, नारी की असमर्थता, दैन्य, ग़रीबी और युद्ध के संकट का वर्णन करना नहीं भूलते। मार्क्सवादी दृष्टि से इतिहास के ये विशद अध्ययन और अंकन हैं और यशपाल की सर्व-श्रेष्ठ रचनाओं के अन्तर्गत आते हैं।

'अमिता' में यशपाल ने अशोक की कलिंग-विजय की कथा उठाई है। इस उपन्यास में कथा की नायिका एक छोटी लड़की है, जिसकी सरलता और निश्छलता के सामने प्रबल पराक्रमी चण्डाशोक का अभिमानी मस्तक भी झुक जाता है। 'अमिता' का प्रवाह गंगा की धारा के समान निर्मल और हृदय-ग्राही है; किन्तु यह प्रश्न भी इस सिलसिले में उठता है कि उपन्यासकार कहाँ तक इतिहास के तथ्य और सत्य की रक्षा कर सका है? अमिता की बाल-सुलभ चपलता और सरलता के सन्मुख चक्रवर्ती अशोक का समर्पण अत्यन्त आकर्षक है, किन्तु असंख्य आहत और मृतकों के दयनीय, हृदय-द्रावक दृश्य से अशोक का पिघलना, जो इतिहास का सुपरिचित रूप पाठक जानता है, क्या अधिक मर्मस्पर्शी घटना नहीं कही जा सकती? इस सम्बन्ध में हम जो भी सोचें, अमिता का चित्रण उपन्यासकार यशपाल की निश्चय ही एक महान् सफलता और विजय है।

'दादा कामरेड' से 'अमिता' तक यशपाल आधे दर्जन उपन्यास लिख चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इनके अतिरिक्त कहानी को उनकी देन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। इन उपन्यासों में हमें भारतीय जीवन की वह विराट् महाधारा तो नहीं मिलती जो प्रेमचन्द की कृतियों में प्रवाहित हुई थी, किन्तु प्रेमचन्द की परम्परा को दृढ़ और सक्षम, समर्थ हाथों से अवश्य ही सँभाला गया है। यशपाल सामाजिक कल्याण की भावना से अनुप्राणित होकर साहित्य-रचना करते हैं और इस केन्द्रीय लक्ष्य से कभी नहीं डिगते। 'दादा कामरेड' की भूमिका में ही यशपाल ने अपने कला-सम्बन्धी विचार इस प्रकार प्रगट किये थे—

**"कला को कला के निर्लिप्त क्षेत्र में ही सीमित न रखकर मैं उसे भावों या विचारों का वाहक बनाने की चेष्टा क्यों करता हूँ?......क्योंकि जीवन में मेरी साध केवल व्यक्तिगत जीवन-यापन ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन की पूर्णता है, इसलिए कला से सम्बन्ध जोड़कर भी मैं कला को केवल व्यक्तिगत सन्तोष के लिए नहीं समझ सकता। कला का उद्देश्य है—जीवन में पूर्णता का यत्न। बजाय इसके कि कला का यत्न बहककर हवा में पैंतरे बदलकर श्रान्त हो जाय, क्या यह अधिक अच्छा नहीं कि वह समाज के लिए विकास और नवीन कला के लिए आधार प्रस्तुत करे?"**

अपने उपन्यासों के माध्यम से यशपाल भारत की क्रान्तिकारी सामाजिक शक्तियों को बदल देते हैं, साथ ही वे हिन्दी में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित नई कथा-शैली और कला का सृजन भी करते हैं। यशपाल ने मार्क्सवाद का अध्ययन सामाजिक विज्ञान के रूप में किया है, और इस विषय पर वे हिन्दी में एक अधिकारी पुस्तक के रचयिता भी हैं। उनके उपन्यास पढ़कर हिन्दी के अनेक पाठक मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट हुए हैं और क्रांतिकारी विचारों का उन्होंने वरण किया है। प्रेमचन्द की महान् मानवतावादी दृष्टि की तुलना में यशपाल की चेतना अधिक वैज्ञानिक अवश्य है, यद्यपि इससे यह तात्पर्य नहीं है कि वह चेतना अधिक क्रान्तिकारी है। भावना और बुद्धि दोनों के सम्मिलन और सन्तुलन से क्रान्तिकारी चेतना बनती है और प्रेमचन्द की चेतना दोनों ही तत्त्वों में गहरी और दृढ़ थी।

यशपाल की उपन्यास-कला का केन्द्रीय विषय है, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण से मनुष्य की मुक्ति। इसी आधारभूत समस्या को वे अपने ऐतिहासिक और आधुनिक जीवन से सम्बन्धित उपन्यासों में उठाते हैं। 'दादा कामरेड' में सुलतान अपनी सफाई मुकदमे में पेश करते हुए कहता है—**"हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम के फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित है, अन्याय है, अपराध है। यह समाज में निरन्तर होने वाली भयंकर हिंसा और डकैती है। इस हिंसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य रहा है, उसी के लिए हमने प्रयत्न किया है......।"**[१]

कांग्रेस पर पूँजीपति-वर्ग के प्रभाव का भी यशपाल ने अनवरत पर्दाफाश किया है। 'देशद्रोही' में वे बद्री बाबू और विश्वनाथ के चित्र अंकित करते हैं जो श्रमजीवी-वर्ग को त्याग और वर्ग-सहयोग की सीख देते हैं। 'पार्टी कामरेड' और 'मनुष्य के रूप' में भी वे पूँजीपति-वर्ग की काँग्रेस की नेताशाही से गाँठ-साँठ दिखाते हैं। अभिजात-वर्ग के समस्त छल-

१. पृष्ठ १७४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



छन्दों को उन्होंने सुतलीवाला के चरित्र में मूर्त किया है।

यशपाल अपने उपन्यासों में निरन्तर समाज द्वारा नारी का शोषण अंकित करते हैं। 'दिव्या' का केन्द्रीय विषय यही है। वर्ग-समाज केवल वेश्या की स्वतन्त्रता स्वीकार करता है, अन्यथा उसे पिता, पति, पुत्र अथवा स्वामी की आज्ञा की अनुगामिनी होना पड़ता है। अभिधर्म तक उसे संघ में अंगीकार नहीं करता, जब तक वह पिता, पति, पुत्र अथवा स्वामी की अनुमति से संघ में प्रवेश न कर रही हो। 'दादा कामरेड' में स्त्री की स्वाधीनता उपन्यास के कथानक का महत्त्वपूर्ण विषय है। शैल और यशोदा दोनों ही वास्तविक स्वतन्त्रता की खोज कर रही हैं। शैल की इस खोज का अन्त यह है कि वह घर से निकाल दी जाती है। यशोदा का पति उससे विमुख हो जाता है, यद्यपि उसकी खोज अभी पूर्ण नहीं हुई। राबर्ट कहता है—

**"जिस तरह पराई सम्पत्ति लेना पाप है उसी तरह दूसरे की औरत से बात करना भी पाप है। परन्तु औरत ऐसी सम्पत्ति है जिसके अपने हाथ-पैर और सिर हैं, इसलिए उसे समझाया गया कि अपने मालिक से चिपके रहने में ही तेरा कल्याण है, तू पतिव्रता बनी रहना !"**[1]

हरीश कहता है—**"स्त्रियाँ तीन तरह की होती हैं। एक किसान-मजदूर श्रेणी की औरतें, जो पति के बराबर ही काम करती हैं और पति की गुलामी करती हैं घाते में। दूसरी हैं, सफेदपोश लोगों की औरतें। ये घर का वह काम करती हैं जिसे आठ-दस रुपये माहवार का नौकर बखूबी कर सकता है, हाँ सन्तान पैदा करने के काम को अलग रहने दीजिए...... । तीसरी हैं अमीर श्रेणी की औरतें। पुरुष के मनबहलाव और सन्तान-प्रसव करने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं करतीं।"**[2]

यशपाल के अनुसार वर्ग-समाज में स्त्री की यही दयनीय स्थिति है, इसी प्रकार अपने उपन्यासों में यशपाल अनेक सामाजिक समस्याओं को उठाते हैं और रूढ़िगत संस्कारों पर तीव्र कुठाराघात करते हैं। वे पाठक के मौलिक चिन्तन की वृत्तियों को जगाने का प्रयास करते हैं।

कला की उपयोगिता में विश्वास रखते हुए भी यशपाल कला के शिल्पगत सौन्दर्य को कभी नहीं खोते। वे बड़ी साधना और लगन से अपनी रचनाओं को निखारते हैं और अनुपम साँचों में अपनी कला को ढालते हैं। उनके कथानक बड़े रोचक और आकर्षक हैं, अपनी मोहक कथाओं के कारण और अपनी निर्भीक शैली और चिन्तन के कारण ही यशपाल हिन्दी पाठकवर्ग में इतने लोकप्रिय हो सके हैं। उत्कृष्ट कला का मूल्य इस बात से अधिक आँका जाता है कि लेखक जीवन का मर्म कहाँ तक छू सका है, किन अतल गहराइयों में वह बैठा है, कितनी सूक्ष्म उसकी अनुभूति है, कितना प्रसार और कितनी व्यापकता उसकी दृष्टि में है। इस दृष्टि से रवि ठाकुर, शरतचन्द और प्रेमचन्द आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं, और प्रेमचन्द के परवर्त्ती उपन्यासकारों में बहुत ऊँचा स्थान यशपाल का है।

यशपाल की सबसे बड़ी सफलता यह है कि उन्होंने अगणित सजीव पात्र अपने उपन्यासों में गढ़े हैं। 'दादा कामरेड' के दादा हरीश, शैल और यमुना का चित्रण बहुत विशद

१. पृष्ठ ९९-१००।
२. पृष्ठ १००-१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है। इनमें से पहले तीन तो हिन्दी-कथा-साहित्य को अनुपम और अमर देन हैं। इनके सम्पर्क में आकर पाठक अधिक उन्नत और उदात्त बनता है। अपने बलिदान से हरीश और शैल मानवता के उच्चतम शिखर पर जा बैठते हैं। अपने सभी उपन्यासों में यशपाल ने इसी प्रकार के स्मरणीय पात्रों की सृष्टि की है—'देशद्रोही' में खन्ना और चन्दा, 'दिव्या' में दिव्या और मारिश, 'मनुष्य के रूप' में भूषण।

यशपाल व्यंग के प्रहार में विशेष दक्ष हैं। भारतीय जीवन के सड़े-गले अंगों के वर्णन में वे तीखे व्यंग का प्रहार करते हैं। पूँजीपतियों, नेताओं, पाखंडियों पर वे भरपूर वार करते हैं और शिकार तिलमिलाकर रह जाता है। आधुनिक जीवन से सम्बन्धित कथाओं में सबसे अधिक सफलता उन्हें अपने व्यंगपूर्ण चित्रण में ही मिली है। 'मनुष्य के रूप' में सिनेमा-संसार की अनैतिकता और खोखलेपन पर उन्होंने व्यंग के अस्त्र से मर्म-प्रहार किया है। इस दिशा में सुतलीवाला का चित्रण बहुत सफल है। 'देशद्रोही' और 'पार्टी कामरेड' के व्यंगात्मक स्थल भी इतने ही सफल हैं।

यशपाल का गद्य अति सुन्दर और मोहक है। उनकी भाषा अलंकृत और रूप-सज्जा में मधुर है। वे संस्कृत शब्दावली से अपनी शैली का शृङ्गार करते हैं। उनके प्रकृति के वर्णन विशेष हृदयग्राही हैं, जैसे 'मनुष्य के रूप' में धर्मशाला का वर्णन। 'दिव्या' में ऐतिहासिक वातावरण बनाने के लिए यशपाल ने अपनी शैली को संस्कृत शब्दावली से अधिक बोझिल बना दिया था, किन्तु 'अमिता' इस दिशा में अधिक सन्तुलित रचना है। कभी-कभी भाषा में गल्तियाँ भी रह जाती हैं, जैसे 'लक्ष्य' के लिए 'लक्ष' अथवा 'सम्वेदना' के लिए 'समवेदना'। वाक्यों के बीच में आप अर्द्ध-विराम के चिह्न देने भी भूल जाते हैं। किन्तु अपनी सीमाओं और दुर्बलताओं के बावजूद यशपाल की उपन्यास-कला प्रगतिशील कला में आगे बढ़ा हुआ एक महत्त्वपूर्ण कदम है और प्रेमचन्द की परम्परा को नई दिशाओं में विकसित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास है। यशपाल आधुनिक नागरिक जीवन के चित्रकार हैं, और भारत का सर्वहारा-वर्ग प्रथम बार आपके पात्रों में अपना विजयी स्वर उठाता है। मार्क्सवाद के वैज्ञानिक विचार-दर्शन को उपन्यास-कला में ढालने का भी पहला सफल प्रयास यशपाल ने किया है। इस विकास-क्रम में नागार्जुन, रांगेय राघव, अमृतराय और फणीश्वर नाथ 'रेणु' नई कड़ियाँ जोड़ रहे हैं।

पिछले वर्षों में यशपाल की कला की असन्तुलित प्रशंसा और निन्दा हुई है। अब वे प्रौढ़ और परिपक्व कथाकार हैं और अति-प्रशंसा और अति-निन्दा के थपेड़ों को आसानी से झेल सकते हैं। अब वह समय आ चुका है, जब यशपाल की कला की निष्पक्ष, स्पष्ट और सन्तुलित आलोचना हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मूल्यांकन

रामसिंह तोमर

## अपभ्रंश साहित्य

डॉ० हरवंश कोछड़ ने 'अपभ्रंश साहित्य' ग्रंथ लिखकर हिन्दी-जगत् में एक बड़े अभाव की पूर्ति करने का प्रयास किया है। गुलेरी जी ने 'पुरानी हिन्दी' में केवल कुछ ग्रंथों में उद्धृत अपभ्रंश पद्यों को ही हिन्दी-पाठकों के सामने रखकर सन्तोष किया था। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों में मानो इतिहास के प्रारम्भ को ठीक करने के लिए अपभ्रंश के कुछ कृतिकारों का चलता वर्णन मिल जाता है, इसके कारण हो सकते हैं—अपभ्रंश की कृतियों का अप्रकाशित रहना और हिन्दी के अन्वेषकों की संकीर्ण उदासीनता। पिछले तीन दशकों में अपभ्रंश पर अनेक विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रकाश डाला है। अनेक श्रेष्ठ कृतियाँ सुसम्पादित होकर प्रकाश में आ चुकी हैं, भाषा और साहित्य की दृष्टि से अपभ्रंश पर अच्छा कार्य हुआ है। अनेक नई कृतियों के अस्तित्व की सूचनाएँ मिली हैं। डॉ० कोछड़ आज गुलेरी जी की अपेक्षा अपभ्रंश के अनुसंधानकर्ता की दृष्टि से सुविधाजनक स्थिति में हैं और उनकी कृति से इसका अच्छा परिचय मिलता है। सम्पूर्ण ज्ञात सामग्री का अपने ग्रंथ में उन्होंने वर्णनात्मक परिचय देने का सुन्दर प्रयास किया है।

आकर्षक छपाई और जिल्द की इस ४५० पृष्ठ की पुस्तक में आमुख, प्राक्कथन, परिशिष्ट और अनुक्रमणिका को छोड़कर सत्रह अध्याय हैं। इन अध्यायों को लेखक ने तीन भागों में विभक्त किया है। पहले भाग में अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में प्राप्त उल्लेखों की चर्चा, उसका क्रमिक विकास, हिन्दी से सम्बन्ध और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। दूसरे भाग में सात अध्यायों में अपभ्रंश-साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया है और अन्तिम भाग में अपभ्रंश-साहित्य की छोटी कृतियों का परिचय देते हुए अपभ्रंश और हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

इस प्रकार लेखक ने सारी समस्या को काफी विवेचनापूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

अपभ्रंश-साहित्य को धार्मिक आधार पर विभाजित करना सुविधाजनक अवश्य है, किन्तु साहित्यिक और आलोचना की दृष्टि से यह विभाजन बहुत युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किन्तु लेखक ने इस पक्ष पर कहीं-कहीं इतना बल दिया है कि वह खटकता है। जैन-अपभ्रंश-साहित्य के विवरण के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर संकेत किये गए हैं कि उसमें धार्मिक भावना प्रधान है और इस तर्क से पाठक ऐसा समझ सकता है कि इन कवियों में काव्य-पक्ष गौण है, धार्मिक प्रचार की भावना प्रधान। स्वयंभू, पुष्पदन्त-जैसे श्रेष्ठ कवियों की कृतियों के साहित्यिक सौन्दर्य का पूरा परिचय डॉ० कोछड़ की महत्त्वपूर्ण कृति से नहीं मिल पाता। साथ ही स्वयंभू का जो उदार दृष्टिकोण है, उसका भी कोई उल्लेख नहीं किया। योगीन्द्र आदि मर्मियों की सारी संकीर्णताओं के ऊपर उठी हुई रहस्य-भावना का भी और विस्तृत उद्घाटन आवश्यक था।

लेखक ने कहीं यह सीमा नहीं निश्चित की कि अपभ्रंश कहाँ समाप्त होती है और आधुनिक भाषाएँ कहाँ शुरू हो जाती हैं। 'पृथ्वीराज रासो' भी अपभ्रंश कृति है और अनेक छोटे-छोटे स्फुट काव्य-ग्रंथ भी अपभ्रंश के ही अन्तर्गत आते हैं। महाकाव्य और खण्डकाव्य शीर्षकों में जिन कृतियों को विभाजित करके रखा गया है, वह भी बहुत युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। धनवाल की 'भविसयत्तकहा' क्यों महाकाव्य है ? और 'करकंड चरिउ' और 'पार्श्वपुराण' क्यों खण्डकाव्य हैं ? पाठक को सारी कृति में इस बात का कहीं सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता कि अपभ्रंश महाकाव्य, खण्डकाव्यों में संस्कृत के इस प्रकार के काव्य-रूपों से क्या भेद है ? और लौकिक और धार्मिक काव्यों की परख के अलग मान होने चाहिएँ या एक ही ?

लेखक ने अपनी कृति में अनेक प्रकार की स्थापनाएँ कल्पित की हैं, जो अनुचित हैं—हिन्दी-उपन्यासों का किसी भी प्रकार का पूर्वाभास अपभ्रंश के चरित-काव्यों में नहीं ढूँढा जा सकता, किन्तु पृष्ठ ५१ पर लेखक कहता है कि आगे चलकर हिन्दी में जिस उपन्यास-साहित्य का विकास हुआ, उसका आभास इन चरित-काव्यों में दिखाई पड़ता है। हिन्दी की प्रेमाख्यानक सूफ़ी कवियों द्वारा गृहीत कथाएँ जैन-चरित-काव्यों में भी मिल जाती हैं इतना तो ठीक है, किन्तु आधुनिक उपन्यासों का इन चरित-काव्यों से दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है।

'सन्देश रासक' को लेखक प्रबन्ध-काव्य कहने का भी साहस करता है ( पृष्ठ ५० ) और फिर उसे स्फुट-काव्य भी कहता है। उसी पृष्ठ पर लेखक कहता है कि विश्वनाथ के उल्लेख के आधार पर प्रतीत होता है कि अपभ्रंश-महाकाव्य संस्कृत-महाकाव्यों के ढंग पर ही लिखे जाते थे। विश्वनाथ का इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है; अपभ्रंश के विषय में विश्वनाथ का उल्लेख है, उसका अर्थ संगत तो यह होगा कि अपभ्रंश-काव्यों के सर्ग कडवकबद्ध ( कुडवक-विश्वनाथ ) होते हैं, जिसका कि लेखक ने आगे उल्लेख किया है।

लेखक का यह कथन कि जैनाचार्यों की बहुसंख्यक रचनाएँ सर्वसाधारण अशिक्षित-वर्ग के लिए थी, बहुत अत्युक्तिपूर्ण है।

कवियों की रचनाओं का परिचय देने के लिए लेखक ने एक ढाँचा-सा निश्चित कर लिया है—कथावस्तु का परिचय, भाषा और अलंकार के उदाहरणों के रूप में कुछ उद्धरण देना और कालादि का संक्षेप में उल्लेख कर देना। इस प्रकार के परिचय से पुस्तक एक प्रकार की विवरणात्मक पुस्तक-सूची-जैसी बन गई है। सारी पुस्तक पढ़कर एक निश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



धारणा पाठक नहीं बना पाता। प्रारम्भिक भाग और अन्त के भाग तो केवल शिष्टाचार के लिए पुस्तक को एक 'पूरा' रूप प्रदान करने के लिए लिखे गए हैं। प्राकृत और अपभ्रंश के विकास का, भारतीय विचार-धारा के साथ उनके सम्पर्क-जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न स्पष्ट नहीं होते। पुस्तक में 'जैनों, जैनियों'-जैसे कई एक शब्द के दो रूपों का प्रयोग हुआ है और कई प्रकाशित ग्रंथों, जैसे—शारंगधर पद्धति, डाकार्णव, सेकोद्देसटीका आदि के नामों का भी उल्लेख नहीं है।

उपरिनिर्दिष्ट तथा अन्य त्रुटियाँ मामूली हैं। आधुनिक भाषाओं की पृष्ठभूमि समझने के लिए अपभ्रंश का अध्ययन आवश्यक है और यह हर्ष का विषय है कि अब विद्वान् इस महत्त्वपूर्ण साहित्य के अध्ययन की ओर उन्मुख हो रहे हैं। डॉ० कोछड़ का ग्रंथ अच्छा प्रयास है और उससे हिन्दी के विद्वानों को प्रकाश मिल सकेगा। उनकी इस कृति का स्वागत होना चाहिए। कृति में अनेक उद्धरण हैं, जिनको पढ़कर साधारण पाठक भी अपभ्रंश-काव्य-रस का आनन्द ले सकता है।

*भानुदेव शुक्ल*

# उखड़े हुए लोग

राजेन्द्र यादव को सृजनात्मक साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किये एक दशाब्दी से ऊपर हो गया है किन्तु उनका मूल क्षेत्र कहानी का ही रहा है। प्रथम उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं'' की रचना द्वारा राजेन्द्र यादव ने उपन्यास के सृजन में भी हाथ लगाया। लगभग ४-५ वर्ष के अन्तर के उपरान्त उनका दूसरा उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' प्रकाशित हुआ है।

संघर्षशील मध्यवर्गीय जीवन की घुटन तथा इस स्थिति को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का चित्रण आधुनिक उपन्यास का मूल आधार बन गया है। देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक—सभी क्षेत्रों में मध्यवर्गीय समाज का जो महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है उसको ध्यान में लेने पर साहित्य द्वारा मध्यवर्गीय जीवन को प्रदत्त यह महत्त्व अस्वाभाविक नहीं ज्ञात होता। मध्यवर्ग की विभिन्न समस्याओं को लेकर, विभिन्न दृष्टिकोणों से उन पर विचार करते हुए तथा उनके विभिन्न हल प्रस्तुत करते हुए हिन्दी में बहुसंख्यक उपन्यासों की रचना की जा रही है। 'उखड़े हुए लोग' उपन्यास में जिन लोगों का चित्रण किया गया है वे एक ओर रूढ़ियों के कठोर पाशों से व्याकुल हैं तथा दूसरी ओर पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में निरन्तर लुटते रहने के कारण जम पाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं। इस दुतरफा संघर्ष में रत उखड़े हुए चेतन मध्यवर्गीय जीवन का एक पहलू प्रस्तुत उपन्यास में प्रकट हुआ है।

विवाह के रूढ़िवादी स्वरूप से विद्रोह करके एक युवक तथा एक युवती—शरद् तथा जया संघर्षमय संसार में निकल पड़े हैं। यह जोड़ा जीवन की विषम परिस्थितियों से प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपरिचित रहा है तथा इसीलिए वह अनुभवहीन है। यथार्थ जीवन की ठोकरें खाकर तथा निरन्तर आघात झेलकर उसे जब समझ आती है तब वह देखता है कि सपनों का निर्माण जितना आसान है उतना उनका पाना नहीं। संसार जैसा ऊपर से दीखता है वह वैसा ही नहीं है। देवतावत् मानकर जिनके पास शरद् विश्वास के साथ गया था, शील एवं सौम्यता के अवतार तथा त्यागमूर्ति देशबन्धु का वास्तविक स्वरूप वह पास रहकर ही देख सका। देवता का चेहरा लगाए शैतान पुज रहा था, यह शरद् पास जाकर ही देख सका। दूसरी ओर अपने व्यक्तित्व का स्वयं ही दमन करते हुए, परिस्थितियों से समझौता करने के प्रयास में कुढ़-कुढ़कर जीते हुए सूरज जी के प्रति शरद् प्रारम्भ में सहानुभूतिपूर्ण भाव नहीं जगा पाता। परिस्थितियों से जूझता हुआ शरद् देशबंधु, जो 'नेताभैया' के नाम से अधिक ख्यात हैं, के पास आशा के साथ जाता है। देशबंधु के सहृदय भाव से उत्साहित होकर वह अपनी प्रेयसी तथा जीवन-संगिनी जया को भी ले आता है। देशबंधु के सौजन्य एवं सौहार्द से दबकर वह अपनी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में स्पष्ट बातें करने में सकुचाता है तथा पीछे देशबंधु के बनावटी स्वरूप में छिपे शैतान का परिचय मिलने पर भी शरद् खरा बनने में अपने को असमर्थ पाता है। देशबंधु के व्यक्तित्व के सम्मुख उसका दुर्बल व्यक्तित्व दबकर रह गया है, कुछ सहमा-सा रहता है। जीवन की कटुता से परिचित सूरज जी देशबन्धु के वास्तविक स्वरूप को पहचानने में भूल नहीं करते हैं। शरद् को वास्तविकता का परिचय सूरजजी द्वारा ही मिलता है। सूरजजी के दबे व्यक्तित्व को उभारने के लिए जिस विस्फोटक परिस्थिति की अपेक्षा है वह देशबन्धु की 'सत्या मिल्स' के मजदूरों पर हुए गोली-काण्ड के समय उपस्थित हो जाती है। देशबन्धु के घातक पाश से वह छूट निकलते हैं और मुक्त भाव से शोषक वर्ग के विरुद्ध मोर्चे में सम्मिलित हो जाते हैं। शरद और जया भी 'स्वदेश महल' के विषाक्त वातावरण से घबराकर प्राण बचाकर भाग निकलते हैं।

जीवन की हर परिस्थिति व्यक्ति के अनुकूल हो, यह आवश्यक नहीं है, सम्भव भी नहीं है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रहने, न मिटने के लिए यह आवयश्क हो जाता है कि या तो इन परिस्थितियों को संघर्ष द्वारा बदल डाला जाय अथवा दूसरा तथा सरल मार्ग है कि उनसे समझौता कर लिया जाय। हर कदम पर तथा हर प्रतिकूल परिस्थिति से संघर्ष किसी भी रूप में संभव नहीं है। होता यह है कि हम अधिकांश परिस्थितियों से समझौता करते हुए चलते हैं। एक दृष्टि से यह उपयुक्त भी है, क्योंकि हर परिस्थिति सर्वथा प्रतिकूल नहीं होती। परिस्थितियों से समझौता करते-करते कभी ऐसा समय भी आता है कि अधिक झुकना असम्भव हो जाता है तथा इस अवसर पर व्यक्ति का दबा हुआ व्यक्तित्व फूट पड़ता है। परिणामस्वरूप सीधा संघर्ष होता है तथा या तो व्यक्ति परिस्थितियों को सर्वथा बादल डालता है या दुर्बल होने पर, स्वयं टूट जाता है।

'उखड़े हुए लोग' उपन्यास में शरद्, देशबन्धु तथा सूरज जी प्रमुख पुरुष पात्र हैं तथा जया, मायादेवी और पद्मा प्रमुख नारी पात्र। इनमें केवल देशबन्धु ही चारों ओर अनुकूल परिस्थितियों से घिरे हुए हैं; शेष पात्र उनके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ जुटाने में स्वयं पिसे जा रहे हैं। यह बहुसंख्यक शोषित वर्ग प्रतिकूल परिस्थितियों से समझौता करता हुआ संघर्ष को टाल रहा है। रूढ़ि-जर्जर बन्धनों से विद्रोह करके शरद् तथा जया प्रथम साहस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पूर्ण कदम रखते हैं तथा मनचाही दिशा की ओर अग्रसर होते हैं। द्विपक्षीय संघर्ष में एक मोर्चे पर उनका यह विजय-अभियान है। दोनों का सहजीवन उनकी सफलता का द्योतक है। संघर्ष का दूसरा स्थल 'स्वदेश महल' है जहाँ पूँजीवादी शोषण के शिकार विभिन्न पात्र एकत्र हैं। एक ओर शरद् और जया हैं, जो अपने पाँव पर खड़े होने का प्रयास कर रहे हैं तथा देशबन्धु का दिखावटी व्यक्तित्व अपने कुशल अभिनय द्वारा उन पर हावी हो जाना चाहता है। शरद् को मीठी बातों में ही लुभाकर देशबन्धु उससे काम निकाल लेना चाहता है। दूसरी ओर मायादेवी तथा पद्मा हैं, जो देशबन्धु की ऐन्द्रिय-लिप्सा का शिकार बनती हैं। मायादेवी भुलावे में आकर छली जाती हैं अपना सब-कुछ देशबन्धु को देकर ठगी जाती हैं। मायादेवी के धन से ही देशबन्धु का ऐश्वर्यशाली जीवन बना है। सब-कुछ लूटकर देशबन्धु मायादेवी को दूध की मक्खी की भाँति निकाल फेंकता है। निराश मायादेवी खीझकर पतन के मार्ग पर अग्रसर होती हैं, देशबन्धु को जलाने को किन्तु होता यह है कि स्वयं को ही वे जला रही हैं और अपने बेशर्म कृत्यों द्वारा वे अपनी पुत्री को ही भार बना रही हैं। जिस मानसिक पीड़ा का शिकार देशबन्धु को बनाने का प्रयास किया गया है उसका शिकार पद्मा होती है। पद्मा उपन्यास के समस्त नारी पात्रों में सर्वाधिक भावुक तथा कोमल भावनाओं से युक्त है, सबसे अधिक मानसिक पीड़ा से ग्रसित भी वही हैं। वह न तो जया की भाँति विद्रोह करने की सामर्थ्य रखती है और न मायादेवी की भाँति निर्लज्ज भाव से अपनी स्थिति पर विचार करना छोड़कर जिस भाँति तथा जहाँ से भी मिल सके वहीं से इच्छा-पूर्ति के साधन ही जुटा सकती है। उसका सारा जीवन एक करुण कहानी है तथा उसका अन्त भी करुण है। देशबन्धु की लिप्सा का शिकार बनने से बचने के लिए वह ऊपर से कूद पड़ती है। सूरजजी का व्यक्तित्व सबसे निराला है। उसमें कड़वापन है, प्रखरता है, दृढ़ता है तथा साथ ही सरलता एवं निश्छल व्यवहार भी उनके चरित्र के विशिष्ट अंग हैं।

उपन्यास के सभी प्रमुख पात्रों में देशबन्धु तथा सूरजजी के व्यक्तित्व सबसे प्रबल तथा महत्त्वपूर्ण हैं। देशबन्धु पूँजीपति हैं, नेता हैं तथा समाचार-पत्र के स्वामी भी हैं। मिल द्वारा हज़ारों मजदूरों का शोषण करके ऐश्वर्यशाली बने बैठे हैं; जन-नेता एवं राष्ट्रीय संघर्ष के सेनानी का बाना पहनकर वह अपने शोषक स्वरूप को ढाँककर जन-सेवक बने बैठे हैं। समाचार-पत्र उनके हाथ में है, जिसके द्वारा वे अपने त्यागी देशभक्त स्वरूप का भली प्रकार प्रचार भी कर लेते हैं। मुखाकृति बनाने तथा बातें गढ़ने में यह व्यक्ति अत्यन्त कुशल है तथा हर परिस्थिति में वह एकदम आवश्यक रूप धारण कर लेता है। वस्तुतः इस प्रकार के पूँजीवादी पात्र का निर्माण प्रस्तुत उपन्यास की विशेषता है।

देशबन्धु सफल व्यक्ति हैं। परिस्थितियाँ उनके इशारे पर नाचती हैं। सफलता की चरम सीमा पर पहुँचकर वे अब इस स्थिति में आ गए हैं कि अधिक ऊपर उठने की उनमें सामर्थ्य नहीं है, अब उनके लिए उतार ही शेष रह गया है। आश्चर्य नहीं कि वर्तमान से वे चिपके हुए हैं तथा उनके प्रयास वर्तमान को ही स्थायी बनाये रखने तक सीमित हैं। इसके विपरीत सूरज जी को सदैव असफलताएँ ही मिली हैं। हर समय की असफलता इस सशक्त व्यक्ति को तोड़ तो नहीं पाई किन्तु कुछ समय के लिए विरक्त अथवा जड़ अवश्य उसने बना दिया है। इस जड़ता को नष्ट करने के लिए जिस परिस्थिति की आवश्यकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वह गोली-कांड द्वारा निर्मित हुई है। इस प्रसंग द्वारा सूरज जी के मस्तिष्क पर जो ठोकर लगती है उससे तथा शरद् एवं जया के सहानुभूतिपूर्ण साहचर्य से, यह उनके शुष्क जीवन में नया अनुभव है, उनकी जड़ता मिट जाती है और एक न टूटने वाला सशक्त एवं अपराजित व्यक्तित्व जाग उठता है। परिस्थितियों से इस व्यक्ति का संघर्ष प्रारम्भ होता है कि उपन्यास समाप्त हो जाता है। भविष्य का संकेत अवश्य मिल जाता है। उपन्यासकार अन्तिम पृष्ठों में इस योद्धा को पूर्ण सजग तथा आत्मविश्वास से युक्त प्रकट करते हुए संघर्ष के लिए पूरी तरह तना हुआ दिखाकर उपन्यास को समाप्त कर देता है। स्पष्ट ही वर्तमान का स्वामी यदि देशबन्धु है तो भविष्य का निर्माता यह न टूटने वाला संघर्षशील वर्ग है जिसके प्रतिनिधि शरद् एवं जया हैं तथा जिसका नेता सूरजजी-जैसा दृढ़ व्यक्ति है। संघर्ष की अवस्था में है इसलिए यह वर्ग अभी उखड़ा हुआ ही है। यह तथ्य विलक्षण है कि समाज का विरोध करने वाला व्यक्ति शरद् दूसरे मोर्चे पर, पूँजीवादी शोषण के विरोध में प्रायः निर्बल-सा प्रकट हुआ। देशबन्धु के अनेक कार्यों के सम्बन्ध में शरद् के हृदय में विद्रोह-भावना का उदय होता है किन्तु किसी भी स्थल पर वह खुलकर विरोध नहीं कर सका है, मन में ही घुटकर रह जाता है। देशबन्धु के व्यक्तित्व की प्रबलता का यह उदाहरण है।

उपन्यास चरित्र-प्रधान है। इसमें कथानक चरित्र-विकास का हेतु-मात्र है। घटनाओं का संयोजन सर्वत्र विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि का हेतु होने से कथानक का विकास स्वाभाविक नहीं हो सका है, घटनाएँ स्वयं घटित न होकर उपन्यासकार के हाथ का खिलौना-मात्र बनकर रह गई हैं। घटनाएँ एवं वातावरण इसी लोक के होते हुए भी अनेक अवसरों पर अवास्तविक-से हो गए हैं। जो कार्य वर्षों की अवधि में नहीं हुए वे सब सप्ताह विशेष में ही एक साथ हो जाते हैं, यह थोड़ा अस्वाभाविक-सा दृष्टिगोचर होता है। जब कि उपन्यासकार सब पात्रों के चरित्रों को यथावत् स्वरूप में अंकित करने में सचेष्ट है वहीं पर देशबन्धु के चरित्र को वह विशिष्ट रूप से गढ़ने में प्रयत्नशील है जो कुछ अंशों में यथार्थ से भिन्न तथा अस्वाभाविक-सा बन गया है। उपन्यासकार की कुशलता है कि इस चरित्र के विकास में कहीं पर त्रुटि का अनुभव करते हुए भी इस पात्र के किसी कार्य में स्पष्ट अस्वाभाविकता का संकेत करने में पाठक को कठिनाई का अनुभव होता है। अन्य चरित्रों का विकास काफी स्वाभाविक है। नारी पात्रों में सबसे विकृत चरित्र मायादेवी के प्रति सम्भवतः पाठक पूर्ण न्याय न कर पाये तथापि निस्सन्देह ही यह चरित्र सर्वाधिक दयनीय है। सब-कुछ लुटा देने वाली नारी के रूप में उसने जीवन प्रारम्भ किया किन्तु निराश होकर तथा असफलता से खीझकर जिस मार्ग को उसने ग्रहण किया है वह नकारात्मक (Negative) है। यहाँ प्रथम जीवन को भूल स्वीकार कर उस में संशोधन का प्रयास न मिलकर उसकी असफलता से खीझकर अपने को ही मिटा देने का प्रयास है। मायादेवी परिस्थितियों से संघर्ष करने के स्थान पर स्वयं अपने व्यक्तित्व से संघर्ष करके उसको फुसलाने में प्रयत्नशील हैं। उनके चरित्र का यह स्वरूप भी सम्भवतः उनके लिए अधिक स्वाभाविक है, तथापि उनके प्रति कोई निश्चित धारणा बनाने से पहले पाठक को अपेक्षाकृत सहृदयता से विचार करना होगा।

बौद्धिक विचारणा की दृष्टि से उपन्यास पर्याप्त स्पष्ट और खरा है। कुछेक स्थलों पर जहाँ उपन्यासकार ने भावुकतापूर्ण अभिव्यंजना का प्रयास किया है, वहाँ वह सफल नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पाया है। इस प्रकार के अवसर कम हैं तथा बौद्धिक तर्क-वितर्क एवं सैद्धान्तिक विश्लेषण ही उपन्यास में प्रमुख हैं। साफ-सुथरी और प्रवाहपूर्ण शैली के कारण यह बौद्धिकता भारी नहीं लगती।[1]

त्रिलोचन

## गीत-फ़रोश, नई चेतना और सूर्य का स्वागत

आधुनिक हिन्दी कविता अनेक प्रेरणाओं और दृष्टिकोणों को समाहित करती है। उसकी यह विशेषता 'गीत-फ़रोश', 'नई चेतना' और 'सूर्य का स्वागत' को देखकर स्पष्ट प्रतीत होती है। ये तीनों कृतियाँ काव्य-संग्रह हैं, जिनमें क्रमशः भवानीप्रसाद मिश्र, महेन्द्र भटनागर और दुष्यन्तकुमार की कविताएँ संकलित हैं। ये तीनों ही कवि अनेक रूप में एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। काव्य के विषय में उनकी मान्यताओं और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोणों में बहुत अन्तर है। सामान्य दृष्टि से देखने पर भवानीप्रसाद मिश्र और महेन्द्र भटनागर में कुछ बातों की समानता दिखाई देती है। दोनों ही कवि काव्य के सामाजिक लक्ष्य पर जोर देते हैं। कविता उनके लिए जन-जीवन के अनेक स्पन्दनों और आशा-आकांक्षाओं को व्यक्त करने वाली वस्तु है। वे उसमें ऐसे भाव सँजोना चाहते हैं जो केवल उनके नहीं, जन-जन के हैं, और उन्नायक हैं। मनुष्य और मनुष्य के बीच वे समानता के हामी हैं। इसी प्रकार कला-पक्ष में वे ऐसी भाषा और कथन-शैली का प्रयोग करना चाहते हैं जो बोल-चाल की भाषा के समीप और सहज बोधगम्य है। किन्तु इसके पश्चात् उनमें अन्तर है। काव्य में बाहरी सिद्धान्तों का नाम लेना बहुधा खतरनाक होता है, किन्तु सामान्यतः भवानी मिश्र गांधीवादी हैं और महेन्द्र भटनागर प्रगतिवादी। गांधीवाद को मिश्र जी ने सरलता, सचाई, सहानुभूति और अहिंसा के रूप में ग्रहण किया है, और भटनागर जी के लिए प्रगतिवाद वह वस्तु है जो समाज से शोषण को मिटाकर एक नये साम्यमूलक समाज की स्थापना करेगा। मंगला-कांक्षी, उत्साही और आशावादी दोनों हैं, किन्तु मिश्र जी का काव्य जहाँ कोमलता और प्रेम से ओत-प्रोत है, वहाँ भटनागर जी का काव्य संघर्ष की दुर्निवार कठोरता और विद्रोही की सारगर्भित घृणा से परिपूर्ण है। 'नई चेतना' की कविताएँ प्रधानतः एक ही मूल भाव को प्रशस्त करती हैं और 'गीत-फ़रोश' का अभिव्यंजना-पट अधिक विविध और विशाल है। प्रथम कृति कवि के व्यक्तित्व के स्पर्श से अछूती प्रतीत होती है और दूसरी कृति उससे परिपूर्ण है। प्रथम कवि सामयिकता और मनुष्य के आगे प्रकृति की ओर विशेष नहीं बढ़ते, जबकि द्वितीय उसके विविध रूपों में मंत्र-मुग्ध होकर उल्लसित और तल्लीन होते हैं।

'सूर्य का स्वागत' और उसके कवि का धरातल उपर्युक्त कृतियों से नितान्त भिन्न है।

१. **उखड़े हुए लोग—राजेंद्र यादव; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यहाँ भी आक्रोश और बेचैनी है, किन्तु वह सामाजिक संघर्ष के कारण उतनी नहीं, जितनी आन्तरिक द्वंद्व के परिणामस्वरूप है। कवि की सबसे बड़ी और सम्भवतः एक-मात्र आकांक्षा आत्म-प्रकाशन है। मन के अन्दर कुछ छटपटाता है, जो निरूपित नहीं है, किन्तु रूप पाने के लिए विकल अवश्य है। एक तीखी कड़ुआहट और दर्द है, किन्तु वह विनाशक नहीं, मूल्यवान है; उससे अभिनव शिवम् का जन्म होगा। कवि बहुत पीड़ित है, किन्तु निराशावादी नहीं। इस कृति में केन्द्र सामाजिकता नहीं, किन्तु स्वयं कवि का आत्म और इस प्रकार व्यक्तिवादिता है।

'गीत-फ़रोश' में भवानीप्रसाद मिश्र की १९३० से १९४५ तक की कविताएँ संकलित हैं। इनमें से अनेक विविध कवि-सम्मेलनों में इस प्रकाशन के बहुत पूर्व ही प्रसिद्ध हो चुकी हैं। 'सन्नाटा', 'राजपथ' और 'सतपुड़ा के जंगल' ऐसी ही कविताएँ हैं। कवि-सम्मेलनों में मिश्र जी काव्य-पाठ की अपनी विशेष शक्ति का भी उपयोग कर पाते हैं। तब उनकी रचनाएँ अधिक सजीव और शक्ति-सम्पन्न हो जाती हैं। भाषा को उन्होंने इस प्रकार सँवारने का प्रयास किया है कि वह पूर्णतया सहज और अनगढ़ प्रतीत हो। सरलता की साधना में उन्होंने अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया है, जो स्थानीय होने के कारण सर्वत्र प्रचलित नहीं, किन्तु जानने वालों के लिए जो अधिक भावनात्मक अर्थ रखते हैं।

संग्रह की प्रथम कविता 'कवि' में ही उन्होंने अपने कवि-लक्ष्य को स्पष्ट कर दिया है—

**क़लम अपनी साध,**
**और मन की बात बिलकुल ठीक कह एकाध।**
..................................................
..................................................

**टेढ़ मत पैदा करे गति तीर की अपना,**
**पाप को कर लक्ष्य कर दे झूठ को सपना।**
**विन्ध्य, रेवा, फूल, फल बरसात या गरमी,**
**प्यार प्रिय का, कष्ट-कारा, क्रोध या नरमी,**
**देश या कि विदेश, मेरा हो कि तेरा हो**
**हो विशद विस्तार, चाहे एक घेरा हो,**
**तू जिसे छू दे दिशा कल्याण हो उसकी,**
**तू जिसे गा दे सदा वरदान हो उसकी।**

अर्थात् कवि का मुख्य लक्ष्य अपने मन की बात कहना है, विषय कोई भी हो, किन्तु उसकी गति सदा शिवम् की ओर होनी चाहिए। सत्य का वह पुजारी है और सत्य उसके लिए शिवम् के साथ सदा सम्बद्ध है।

उनकी आरम्भिक कुछ कविताएँ किसी प्रेम-प्रसंग का संकेत रखती हैं। इसकी परिणति विरह में हुई है। कवि ने अपने उद्गारों को बहुत संयम के साथ व्यक्त किया है। उनकी दो प्रसिद्ध कविताएँ 'सन्नाटा' और 'राजपथ' अपनी अधिकांश शक्ति इस तथ्य से प्राप्त करती हैं कि एक तटस्थ वस्तु के अन्दर उनमें प्रेम की भावना सँजोई गई है। यह प्रेम विरुद्ध शक्तियों से टकराकर मिलन की परिणति तक नहीं पहुँचता, किन्तु उसकी गहराई में कोई कमी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आती। 'सन्नाटा' में कवि रानी और बाँसुरी वाले पागल के प्रेम को एक अनुभूति का सम्मोहन-रूप प्रदान करता है—

**पर कभी-कभी जब पागल आ जाता है,**
**लाता है रानी को, या गा जाता है;**
**तब मेरे उल्लू, साँप और गिरगट पर**
**अनजान एक सकता-सा छा जाता है।**

ये पंक्तियाँ 'सन्नाटा' को सामान्य से विशेष में बदल देती हैं तथा व्यक्तित्वहीन को व्यक्तित्व प्रदान करके निर्जीव को सजीव बना देती हैं।

मिश्र जी की भावना केवल अपने ही दायरे में बँधकर कभी नहीं रही। उन्होंने पारिवारिक स्नेह और वात्सल्य के भी बहुत सुन्दर चित्र खींचे हैं। उनकी भावुकता और स्नेहशीलता ऐसी कविताओं को सुनाते समय सहज ही उनकी आँखें नम कर देती है। 'बाहिर की होली' इसी श्रेणी में आती है। आत्म और परिवार के आगे मानव-जगत् में उन्हें सबसे प्रिय किसान है। 'लुहार से' कविता में कवि एक तलवार बनवाना चाहते हैं। वह कैसी हो और उसका उपयोग क्या होगा, वह निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है—

**मुझे एक तलवार बना दे,**
**हवा की जो लहरों पर दौड़े**
**इतनी हलकी धार बना दे।**
**लम्बाई उसकी कितनी हो?**
**पूरी बढ़ी फसल गेहूँ की,**
**बढ़ते-बढ़ते तक जितनी हो;**
**..................................**

**मूठ बनाते चित्र खींचते**
**थके हुए भूखे किसान का**
**उस पर माँ का प्यार सींच दे।**

स्पष्ट ही फसल उगाने वाले थके और भूखे किसान तथा माँ के प्यार के समन्वय में कवि जीवन का सबसे बड़ा मूल्य देखता है। तलवार हिंसा की वस्तु है, किन्तु उसे भी वह निर्माण, परिश्रम और प्रेम का प्रतीक बना देना चाहता है। सम्भवतः जीवन की गहरी अनुभूतियों को कवि एक-दूसरे से अलग नहीं मानता, चाहे वह सावन का उल्लास हो या बाढ़ का सम्मोहक आतंक, सृजनशील किसान के प्रति आदर-मिश्रित आसक्ति हो या माँ के स्नेह का मृदुल आश्वासन, जो कुछ उसके मन को गहराई में जाकर छूता है वह सब एक ही धरातल की वस्तु है और उनके समन्वय से कवि की काव्यानुभूति निर्मित है।

इस प्रकार की मानवीय रुचि वाला कवि प्रकृति का भी पुजारी है। यथार्थवाद के इस युग में प्रकृति-चित्रण या तो मिलता नहीं या प्रकृति किसी सिद्धान्त-निरूपण के लिए प्रतीक बनकर उपस्थित हो पाती है। किन्तु भवानी मिश्र सतपुड़ा के जंगलों और घाटियों तथा नर्मदा की गोद में पले हुए हैं। उनका यह जगत् उनके मन में गहरी अनुभूति जगाने की क्षमता रखता है। नर्मदा के दृश्यों और सतपुड़ा के जंगल के चित्रण में उसने इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वस्तुओं को सजीव और स्पन्दनशील बना दिया है। सतपुड़ा के जंगल सघन और अंधकारपूर्ण, ऊँघते और अनमने, रहस्यमय और भयानक हैं। किन्तु यहाँ भी कवि मनुष्यता का समावेश करता है—

इन वनों के खूब भीतर,
चार मुर्गे चार तीतर,
पाल कर निश्चिन्त बैठे,
विजन वन के बीच पैठे,
झोंपड़ी पर फूँस डाले
गोंड तगड़े और काले
जबकि होली पास आती,
सरसराती घास गाती,
और महुवे से लपकती,
मत्त करती बास आती,
गूँज उठते ढोल इनके,
गीत इनके गोल इनके !

प्रकृति सामान्यतः उनमें उल्लास की भावना उत्पन्न करती है। ऋतुओं में सबसे अधिक प्रिय उन्हें वर्षा प्रतीत होती है। इस संग्रह में ही सावन पर चार गीत हैं। इसके अतिरिक्त आषाढ़, पहला पानी इत्यादि कुछ और इसी प्रसंग की कविताएँ हैं।

इन समस्त कविताओं में अनुभूति विशेष है। कवि स्वयं आदर्शवादी हैं, किन्तु उनके आदर्श बहुधा काव्य का रस भंग करते हुए उपस्थित नहीं हुए हैं। वे मानव-प्रेम, सहयोग और शान्ति की भावना से प्रेरित हैं, यह उनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है। पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व कवि को प्रौढ़ता की ओर अग्रसर होने का अवसर मिला है और इससे उनकी क्षति नहीं, उन्हें लाभ ही हुआ है। अपनी काव्य-साधना वे अधिक मनोयोग और मौलिकता के साथ कर सके हैं। अभी यह कहना कठिन है कि अग्रिम विकास में कवि किस प्रकार की वस्तु हमें देगा किन्तु उसकी मूल आस्थाओं और भावभूमि में परिवर्तन का कोई कारण दिखाई नहीं देता। निश्चय ही हिन्दी-काव्य में अभिव्यंजना की सरलता की ओर जो गति दिखाई देती है, उसके मिश्रजी सफल साधक हैं।

'नई चेतना' में महेन्द्र भटनागर की १९५० से १९५३ तक की रचनाएँ संकलित हैं, 'प्राक्कथन' में उन्होंने मुख्य बातें प्रस्तुत की हैं। प्रथम यह है कि **"जीवन में वैयक्तिक और सामाजिक संघर्षों के बीच जब-जब मुझसे न रहा गया और अवकाश मिला मैंने अपने भावों को कविता में व्यक्त किया।"** दूसरी बात में वे इसका विरोध करते हैं कि कतिपय समीक्षक उनकी प्रगतिशीलता को बलात् साम्यवाद की श्रेणी में रख देते हैं। सम्भवतः वे यह कहना चाहते हैं कि वे वर्तमान शोषण पर आश्रित समाज के विरोधी और नए साम्यमूलक समाज के आकांक्षी अवश्य हैं किंतु इनके काव्य में अभिव्यंजना उनकी अनुभूति पर आश्रित है, किसी सिद्धान्त पर नहीं।

सामाजिक संघर्ष में भटनागर जी की सहानुभूति उस वर्ग के साथ है जो दमित और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पीड़ित है। यह सहानुभूति विषाद की भावना न जगाकर एक सामूहिक संकल्प को जन्म देती है जिसमें स्वयं कवि भी सम्मिलित है। इस संकल्प के पीछे क्या शक्ति है ? कवि उसे इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

**हमारे पास केवल**
**विश्व-मैत्री का**
**परस्पर प्यार का संदेश है,**
**हमारा स्नेह**
**पीड़ित ध्वस्त दुनिया के लिए अवशेष है !**
**हमारे हाथ**
**गिरतों को उठायेंगे,**
**........................**

यह संघर्ष बहुत प्रखर है। वह शोषकों के लिए भयंकर अंत की भूमिका है,

**नकली दीवारो ! नहीं रुकेगी नई हवा,**
**बस कर दो राह कि बचने की है यही दवा !**
**जर्जर संस्कृति के रक्षक भागो ! आज लगी !**
**इन अंगारों से तो लपटों की धार जगी !**
**इसको और हृदय से चिपटाना घातक है,**
**आसक्ति, तुम्हारी ही काया की भक्षक है।**

बन्धन क्या हैं ? हमारे ही अन्ध विश्वास, जर्जर रूढ़ियाँ और परम्परा। किन्तु उनकी शक्ति भी अब आगे काम नहीं देगी, क्योंकि खरा सत्य अब सामने आ गया है—

**नवीन स्वर नहीं सुना ?**
**नया स्वरूप भी नहीं दिखा ?**
**बदल गया जहान**
**सत्य आ गया खरा !**
**कहाँ गई परंपरा, परंपरा, परंपरा ?**

इन रचनाओं में सबसे बड़ी विशेषता है कवि का उत्साह और नए जीवन की अवतारणा में पूर्ण विश्वास। वह नए विहान की कल्पना करता है और अपने काव्य में उसे प्रत्यक्ष बनाता है। इस वस्तु की अभिव्यञ्जना में उसकी भाषा अतिशय सरल है किन्तु शक्ति से वंचित नहीं। इस संग्रह की समस्त रचनाएँ एक ही मूल भाव पर आश्रित हैं जिसके कारण उसकी वक्तव्य वस्तु में प्रसार और परिपूर्णता की कमी का भान होता है परन्तु अपनी सीमित परिधि में यह रचना पर्याप्त भावोत्तेजक है।

'सूर्य का स्वागत' इसी वर्ष का प्रकाशन है। इसकी कविताओं में विशुद्धतः कवि का व्यक्तित्व ही मुखर है। यह व्यक्तित्व कैसा है ? अभी वह अनिरूपित है, कुण्ठाग्रस्त और पीड़ित है, उसमें दर्द और घुटन है, क्षोभ और जलन है, किन्तु सम्भावनाओं से वह विहीन नहीं। उस पर अभी निर्णय नहीं दिया जा सकता; क्योंकि बार-बार पराजित होकर भी कवि वास्तव में पराजित नहीं है। वह पुनः संघर्ष की तैयारी करता है और अपनी अन्तिम विजय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर उसे पूर्ण विश्वास है—

अगर इस लड़ाई में मेरी साँसें उखड़ गईं,
मेरे बाज़ू टूट गए,
मेरे चरणों में आँधियों के समूह ठहर गए
मेरे अधरों पर तरंगाकुल संगीत जम गया,
या मेरे माथे पर शर्म की लकीरें खिंच गईं,
तो मुझको पराजित मत मानना,
समझना—
तब और भी बड़े पैमाने पर
मेरे हृदय में असंतोष उबल रहा होगा,
..........................................

मेरी प्रगति या अगति का
यह माप-दण्ड बदलो तुम
मैं अभी अनिश्चित हूँ।

इस प्रकार की जो कविताएँ आज प्रकाशित हो रही हैं उनकी तुलना में उपर्युक्त पंक्तियाँ अधिक सशक्त हैं यद्यपि इनमें भी प्रवाह की कमी और गद्यात्मकता की गहरी छाप है। इस कविता में प्रयुक्त कल्पना-चित्र केवल नूतनता के लिए नहीं किन्तु भावाभिव्यंजन के लिए प्रयुक्त हैं। कवि का विश्वास है कि पीड़ा से ही प्रगति का जन्म होता है। दिन निकलने से पहले, कविता में यही भाव इस प्रकार निरूपित हुआ है—

"अपने को सँभालो मित्र !
अभी ये कराहें और तीखी,
ये धुवाँ और कड़ुआ,
ये गड़गड़ाहट और तेज होगी
मगर इनसे भयभीत होने की जरूरत नहीं,
दिन निकलने से पहले ऐसा ही हुआ करता है।"

उपर्युक्त छन्द में छन्द की एकता पुनरावृत्ति पर निर्भर है। कुछ रचनाएँ किसी क्षण-विशेष की अनुभूति को व्यक्त करती हैं। 'सूर्यास्त : एक इम्प्रेशन' ऐसी ही कविता है। सबसे अधिक उल्लेखनीय तथ्य कवि का विश्वास है। उनकी प्रस्तुत कृति पाठकों के मन में भी कुछ आशा उत्पन्न करती है। सापेक्ष दृष्टि से भाषा का परिमार्जन आकर्षक है, किन्तु निश्चित कुछ करने के पूर्व यह आवश्यक होगा कि दुःख और पीड़ा के सामान्य चित्रण के अतिरिक्त कवि अपनी अनुभूतियों के विशेष रूप को प्रस्तुत करे तथा पाठकों और समीक्षकों को उसकी भावभूमि के अधिक व्यापक और विविध चित्रपट देखने का अवसर मिले।[1]

---

१. गीत-फ़रोश—लेखक भवानीप्रसाद मिश्र, प्रकाशक—नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद; नई चेतना—लेखक महेन्द्र भटनागर, प्रकाशक—श्री अजन्ता प्रेस ( प्राइवेट ) लि०, पटना-४; सूर्य का स्वागत—लेखक दुष्यन्तकुमार, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देवेन्द्र सत्यार्थी

# बाँसरी बज रही

'बाँसरी बज रही' जगदीश त्रिगुणायत का प्रथम लोक-गीत-अध्ययन है। इस अध्ययन की अपनी विशेषताएँ हैं। अध्ययन का जो प्रतिमान यहाँ प्रस्तुत किया गया है, लेखक की वर्षों की साधना का फल है। भारतीय लोक-साहित्य के संग्रह तथा अध्ययन में संलग्न विद्वानों एवं लोक-वार्त्ता-शास्त्र के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त मनीषियों के निष्कर्षों से लेखक सुपरिचित है और तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा को आगे बढ़ाने में पूरी तरह समर्थ है। उसे मुण्डाओं का आत्मीयतापूर्ण ज्ञान है, और वह जानता है कि मुण्डा-जीवन में पूर्ण रूप से ममता उँडेले बिना यह सम्भव नहीं कि उनके संगीत और काव्य की बारीकियों में जा सके। पुस्तक का नाम अतिशय सार्थक है।

बाँसुरी के लिए मुण्डारी भाषा का शब्द है 'रुतु': 'बाँसरी बज रही' का मुण्डारी पर्याय 'रुतु सड़ितना' पुस्तक के मुख पृष्ठ पर उपनाम के रूप में स्वीकार किया गया है। आदिवासी जीवन में वंशी-स्वर के अस्तित्व को लेखक ने बड़े उदात्त स्वर में स्थापित किया है: **"आदिवासियों ने आनन्द और मनोरंजन के विकेन्द्रित और स्वावलम्बी तत्त्व को गीत के रूप में पहले से पा लिया है। उनके जीवन का स्वर जैसे-जैसे ऊपर उठेगा, इन मनोरंजनों का स्तर भी उठेगा। और यदि वे कहीं इस तत्त्व को भूल गए तो जंगलों की पत्तियाँ मुरझा जायँगी, पहाड़ों के झरने सूख जायँगे, वनों में पक्षियों के पंख झड़ जायँगे और वृक्षों की छाया में बाँसुरी के स्वर मौन हो जायँगे।"**[1]

बड़े आकार के ४२२ पृष्ठों की यह पुस्तक दो खण्डों में विभक्त की गई है। पहले खण्ड में तीन विवेचनात्मक अध्याय हैं: (१) आदिवासी लोक-साहित्य का अध्ययन (१-३२), (२) मुण्डा लोक-गीतों का अध्ययन (३३-४१), (३) काव्य-कला (४१-६२)। दूसरे खण्ड (६३-४०३) का शीर्षक है 'गीत (सानुवाद)' जिसमें 'जदुर' 'ओर जदुर', 'जेना', 'करमा', 'जरगा', 'जापी', 'जतरा' और 'अड़न्दी' के कुल मिलाकर ३५७ गीत दिये गए हैं। पुस्तक के आरम्भ में श्री शिवपूजन सहाय द्वारा लिखित प्रकाशकीय 'वक्तव्य' और लेखक के 'पूर्वाभास' के अतिरिक्त इस पुस्तक के सम्बन्ध में भी सुमित्रानन्दन पन्त और श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की आशीर्वाद स्वरूप लघु सम्मतियाँ दी गई हैं। और पुस्तक के परिशिष्ट भाग में हैं गीत-अनुक्रमणिका (४०७-१२), 'मुण्डारी के कुछ शब्द' (४१३-२१), और 'सहायक पुस्तकें' (४२२)।

'बाँसुरी बज रही' का स्वागत सबसे पहले इसके विवेचना खण्ड के लिए होना चाहिए। इसमें बुद्धि, तर्क और भावना के सुन्दर सन्तुलन द्वारा पहले लोक-साहित्य का परम-मूल्य और उसका विधिवत्, वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और फिर इस अध्ययन-पट पर अनुभूतियों और बारीकियों में जाने वाली सामर्थ्य द्वारा मुण्डा लोकगीतों का शुद्ध मानवीय स्वरूप स्थापित किया गया है; नृत्य और पर्वोत्सव किस प्रकार मुण्डा-काव्य को उदात्त स्वर प्रदान करते हैं और किस प्रकार मुण्डा सांस्कृतिक परम्परा सौन्दर्य-बोध की रंग-

१. **'बांसुरी बज रही', मुण्डा लोकगीतों का अध्ययन, पृ० ४२।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्थली में शक्तिपूर्ण, चित्रात्मक और प्रतीकमयी काव्यधारा को प्रवाहित करने में सफल होती है, इसकी विवेचना करते हुए लेखक ने जिस गद्य का आश्रय लिया है, उसमें न केवल शब्दों की मितव्ययता उल्लेखनीय है, बल्कि उसकी उपलब्धि में लेखक का मुण्डाओं के साथ निकट सम्पर्क पूरी तरह ढल गया है।

सम्पादकीय वक्तव्य में बताया गया है, "**जगदीश त्रिगुणाय, साहित्यरत्न, उत्तरप्रदेश के देवरिया ज़िले के निवासी हैं। आप बहुत दिनों से बिहार राज्य के राँची ज़िले में हाई-स्कूल के अध्यापक हैं।**" इस वक्तव्य से यह भी ज्ञात होता है कि बिहार सरकार इस पुस्तक की पाण्डुलिपि पर पुरस्कार दे चुकी है, और इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए बिहार-सरकार के जन-कल्याण-विभाग से मिली धनराशि से बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इसे प्रकाशित किया है। सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं: "**श्री त्रिगुणायत जी ने अत्यन्त अध्यवसाय के साथ इस कार्य का सम्पादन किया है।......इन लोक गीतों के पढ़ने से अवश्य ही एक नई प्रेरणा का स्रोत आज के काव्य-जगत् में प्रवाहित हो सकता है, जिससे हिन्दी की काव्य-चेतना में नवीन स्फूर्ति, हार्दिकता, माधुर्य तथा स्वाभाविकता आ जायगी।**" सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखते हैं।:"......**अनुवाद से भाषा समझ में आ जाती है। भाव बड़े हृदयहारी हैं।**"

'पूर्वाभास' में लेखक ने अपनी गतिविधि पर प्रकाश डालते हुए लिखा है: "...**गीतों के संग्रह के सिलसिले में मुझे अनेक बार मुण्डा क्षेत्र के जंगलों के झुरमट में छिपे पहाड़ों की छाया में बसे हुए गाँवों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैं इस विषय में भाग्यशाली रहा हूँ कि इन गीत-पुष्पों को प्रकृत रूप में जीवन की डालों पर झूमते हुए देख सका हूँ। इस क्षेत्र के प्रायः सभी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता मेरे मित्र हैं। अपने कार्यक्षेत्र में पारिवारिकता, का इतना प्रसार होना किसी भी अध्येता के लिए सौभाग्य की बात है।**" अपनी प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए लेखक आगे लिखता है: "**सभ्यता और शिक्षा की बाढ़ में बह जाने से बचाने के लिए आदिवासियों के सांस्कृतिक उपकरणों—गीतों, कहानियों आदि—को ले भागने की प्रवृत्ति मेरे मन में कभी नहीं आई। मुझे लगता है कि यदि आदिवासियों के हृदय में अपने सांस्कृतिक उपकरणों के प्रति मिली हुई आस्था को बचाया न जा सका, तो केवल उन उपकरणों को मृतक की भाँति स्पिरिट की बोतलों में बन्द कर रखने का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। इसलिए, केवल अनुलेखन की अपेक्षा उन्हें समुचित ढंग से प्रस्तुत कर सकने की प्रवृत्ति ने मुझे अधिक प्रेरित किया है। अनेक नृतत्त्व शास्त्रियों का यह मनोभाव कि जो हो रहा है, वह होकर रहेगा; सशक्तता का चिह्न नहीं है। कठिनाइयों के साथ समझौता कर के मानव-विज्ञान की विद्याएँ मानवता का अधिक उपकार नहीं कर पायेंगी। यदि इन विद्याओं का काम वस्तुओं की यथा-तथ्य विवेचना मात्र कर देना है, तो फिर मानव के उज्ज्वल भविष्य के प्रति विश्वास और बेचैनी लेकर जीवन के उन मूल भूत तत्त्वों की रक्षा करना किस का काम है, जिनके जीवित रहने पर जंगलों में फूल खिलते हैं, डालों पर कोयल कूकती है, बाँसुरी से स्वर फूटता है, मनुष्यों में प्रेम जगता है और जिसके मिट जाने पर धरती बाँझ हो जाती है तथा उसके स्तनों का दूध सूख जाता है।**"

भारतीय लोक-वार्त्ता के संग्रह तथा अध्ययन में टेम्पल, थर्स्टन, रिज़ले, इन्थोमेन और रसल इत्यादि विदेशी विद्वानों के कार्य पर जगदीश त्रिगुणायत के वक्तव्य पर दो मत नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो सकते : "वास्तव में इन विद्वानों की साधना का पानी अंग्रेज़ी राज की जड़ों के पोषण के लिए था, लोक-जीवन को हरा-भरा बनाने के लिए नहीं था। यद्यपि भारतवासियों की सेवा के लिए इन विद्वानों के भी आदर्श उतने ही ऊँचे थे, जितने अंग्रेज़ी राज के आदर्श।" आगे चलकर लेखक कहता है : "तो भी यहाँ लोकवार्ताओं और लोकगीतों का जो अध्ययन हुआ है, उसे हमें महत्त्व देना चाहिए। इससे कम-से-कम भविष्य का मार्ग प्रशस्त हो चुका है।"

विशेष रूप से आदिवासियों के लोकगीतों से सम्बन्धित अब तक के कार्य पर दृष्टिपात करते हुए लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि अध्ययन के भिन्न-भिन्न उद्देश्य रहे हैं। लेखक को शिकायत है कि इस अध्ययन में प्राय: "विशुद्ध मानवी दृष्टिकोण का प्रयोग कम किया गया है।" लेखक उन नृत्तत्त्व-शास्त्रियों से सहमत नहीं जो लोकवार्त्ताओं का मात्र-मनोरंजन लिए ही उपयोग करते हैं और आदिवासियों के गीतों को 'म्यूज़ियम की सामग्री' समझते हैं। लेखक को सुधारवादी दृष्टिकोण भी पसन्द नहीं। संग्रह, लिपि और अनुवाद-सम्बन्धी समस्याओं को भी सामने लाया गया है। अनेक विदेशी विद्वानों ने मौलिक गीतों को छोड़ दिया और "पाश्चात्य तथा अंग्रेजी पढ़े-लिखे पाठकों की ही दृष्टि से।" अंग्रेज़ी अनुवाद ही प्रस्तुत किये। बहुतों ने अंग्रेज़ी छन्द में अनुवाद किये। फिर वैरियर, एलविन और डब्ल्यू० जी० आर्चर-जैसे विद्वानों ने अंग्रेज़ी छन्द में अनुवाद का मार्ग छोड़कर मौलिक गीतों के सौन्दर्य और सरल अभिव्यक्ति को ज्यों-का-त्यों उतारने का यत्न किया जिसके लिए प्रत्येक पंक्ति के पृथक्-पृथक् सरल, गद्यात्मक अनुवाद की वैज्ञानिक शैली ही उपयोगी सिद्ध हुई।

एलविन और आर्चर की चर्चा करते हुए लेखक ने कहा है: "विशेषकर मौलिक गीतों के संग्रह, अनुवाद और विश्लेषण जहाँ तीनों के सन्तुलन की आवश्यकता है, इन विद्वानों का महान् प्रयत्न भी अधूरा ही रह जाता है। एलविन ने अपने संग्रहों में गीतों के अनुवादों को ही स्थान देना पर्याप्त समझा है और सिद्धान्ततः मौलिक गीतों के संग्रह की आवश्यकता स्वीकार कर के भी उनका वैज्ञानिक पीछे पड़ गया है। उधर आर्चर ने मुण्डा, उराँव, हो, सन्थाल आदि के हज़ारों-हज़ार गीतों के मूल रूप का संग्रह किया और नागरी लिपियों में किया; मगर अनुवाद और व्याख्या से उन मोटी जिल्दों को वंचित रखा। केवल उराँव गीतों के लिए उनकी एक अलग पुस्तक 'दि ब्लू ग्रोव' है, जिसमें थोड़े गीतों का अनुवाद है और सुन्दर विश्लेषण है; मगर यहाँ गीतों का मूल ही ग़ायब है। आदिवासी गीतों के ये सबसे बड़े दो आचार्य राहु और केतु के समान दो टुकड़ों में बँटे हुए हे और उनमें प्रत्येक इस प्रकार अधूरा है जो आपस में मिलकर भी पूर्ण नहीं हो सकते ।······फिर भी वे निश्चित रूप से सबसे बड़े आचार्य हैं और उनका पथ-प्रदर्शन अमूल्य है। हमें सच्चे हृदय से इनका कृतज्ञ होना चाहिए। यह तो भारतीय विद्वानों का काम है कि वे न केवल इनके अधूरे काम को पूरा करें, वरन् इनकी अपूर्ण प्रणाली को भी पूर्णता प्रदान कर उसे पूर्ण कलात्मक, वैज्ञानिक तथा जीवनानुकूल बनायें।"

विशेष रूप से मुण्डा लोकगीतों की खोज के सम्बन्ध में लेखक ने यह स्वीकार किया है कि सर्वप्रथम फादर हाफ मन ने ही दो सौ गीतों का संग्रह किया था, और उन्होंने 'दि मैमायर्स आफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल' में मुण्डा लोकगीतों की विशेषताओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


की चर्चा की थी। फिर स्वर्गीय शरतचन्द्र राय ने जहाँ अपनी पुस्तक 'दि मुण्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' में प्रमाण और उद्धरण स्वरूप स्थान-स्थान पर मुण्डा गीतों का प्रयोग किया, विशेष रूप से मुण्डा लोकगीतों की व्याख्या के सिलसिले में बीस-बाईस गीतों का प्रयोग किया। "विद्वान् लेखक ने अंग्रेज़ी छन्दों में अनुवाद किया है, वहाँ अधिकांश मुण्डा गीतों का काया-कल्प हो गया है। उन में मुण्डा गीतों के सरल सौन्दर्य से अधिक शरत् बाबू की विद्वत्ता प्रकट होती है। उन अनुवादों में शरत् बाबू ने अपनी ओर से नये भाव, नये प्रयोग और नये अर्थ जोड़े हैं और अंग्रेज़ी के बड़े-बड़े कवियों फ्रांसिस सैम्पेल, जेम्स रसल लावेल, टेनिसन और वर्डस्वर्थ आदि की कविता से मुण्डा गीतों की भाव-भूमि की तुलना की है।"

जगदीश त्रिगुणायत ने अपनी यह स्थापना सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिये हैं। 'दि मुण्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' [१] में एक गीत की बानगी देने से पूर्व गीत का प्रसंग प्रस्तुत करते हुए शरत् बाबू लिखते हैं : "जहाँ मुण्डा अपने सगे सम्बन्धियों से मिलने पर उदार और सन्तुष्ट होता है, वहाँ अपने उत्पीड़कों और शत्रुओं को देखकर अकथनीय घृणा और नफरत से आगबगूला हो जाता है। उसके गाँव में आने वाले हिन्दू और मुसलमान, व्यापारिक और महाजन तथा बाहरी ठेकेदार, जागीरदार या नीला-मदार मुण्डाओं की आँख में अत्यधिक खटकने वाले हैं। व्यापारी और साहू-महाजन अपने स्वार्थ के लिए उनका सिर मूड़ा करते हैं और बाहरी 'दिकु' उन की अपने गाँव की जमीन की मलकीयत से पदच्युत करके उन्हें केवल लकड़हारा और पनभरा बना छोड़ते हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं मुण्डा गीत-कार घृणापूर्वक उनकी तुलना खून चूसने वाले चील, लोभी गृद्ध, गोपशकुनी कौवे, हठी-जिद्दी उल्लू और छद्मवेश वाले मोर से करते हैं।"

अब शरत् बाबू द्वारा उद्धृत मुण्डा लोकगीत लीजिए जिसे उनकी रोमन अक्षरों में दी गई प्रतिलिपि से उतारा गया है :

नाकु नाकुजा दारोमदा
कुड़िद को लपालुड़िया गा
नाकु बाकुजा आगा मारी को
गेयोन गेयोना।
उदूबाकोपे जोजो को जुम्बलाए
उदूबो कोपेगा।
चुण्डूला कोपे उली को अम्बरांए
चुण्डूला कोपेगा।
काको सुकु जान
जोजो को जुम्बलाए
काको सुकुजान गो।
उली को अम्बरांए

शरत् बाबू ने इस गीत का यह अँग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है :

१. पृ० ५३८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Those kites have hither winged their way,
Athirst for water clear ;
These greedy geese with graceful swing,
Thus wend their way up here.
Oh ! take them where you tam'rind tope,
Doth stand, do take them there;
Point out to them yon mango grove,
O, let them there repair.
The tam'rind tope they do not like
It does not please them so
Yon mango grove these geese mislike,
Ill pleas'd are they, I trow.

अर्थात्—'ये चील यहाँ पर अपने रास्ते से उड़कर आये हैं। साफ है कि पानी के लिए प्यासे हैं। ये लोभी हंस सुन्दर उड़ान के साथ ऊपर चक्कर काट रहे हैं। उन्हें वहाँ जहाँ इमली का पेड़ खड़ा है, ले जाओ; वहाँ उन्हें पहुँचा दो। उन्हें उस अमराई को बता दो जहाँ वे आश्रय प्राप्त करें। इमली का सिरा उन्हें पसन्द नहीं आया, वह उन्हें, प्रसन्न नहीं कर सका। उस अमराई को इन हंसों ने नापसन्द किया। मुझे विश्वास है कि वे अप्रसन्न हैं।'

यह तो रहा शरत् बाबू द्वारा किए गए अनुवाद का अर्थ। अब इस मुण्डा लोकगीत का जगदीश त्रिगुणायत द्वारा किया गया अनुवाद लीजिए :

'देखो, देखो, पानी का स्वागत करने वाले चील पंख हिला रहे हैं। देखो, देखो, घाँटो के दल उड़े जा रहे हैं। इमली का झुण्ड बता दो ( जहाँ जाकर बैठें ) आम का बाग दिखा दो (जहाँ जाकर उतरें)। उन्होंने पसन्द नहीं किया। इमली का झुण्ड उन्होंने पसन्द नहीं किया।' [1]

जगदीश त्रिगुणायत लिखते हैं :

"वास्तविकता यह है कि इस गीत का शरत् बाबू की व्याख्या से कोई सम्बन्धी नहीं है। यह एक साधारण प्रकृति का वर्णन मात्र है, उन पक्षियों के स्वभाव का चित्रण ! चील के बारे में मुण्डाओं की कोई बुरी भावना नहीं और घाँटो तो सारी मानव जाति की तरह उन्हें भी प्रसन्न करने वाले पक्षी हैं।

"पहली पंक्ति में 'दारोमदा' का अर्थ है पानी की अगवानी करने वाले। चील का उड़ना पानी आने की सूचना समझा जाता है, लेकिन, श्री राय लिखते हैं— 'साफ है कि वे पानी के लिए प्यासे हैं।' आगे की पंक्ति में सीधे घाँटो पक्षियों की सीधी उड़ान का वर्णन है; किन्तु श्रीराय घाँटो को हंस बनाते हैं, उनके साथ लोभी का विशेषण लगाते हैं और 'चक्कर काटने' की क्रिया प्रदान करते हैं। मज़ा यह कि हंस मुण्डाओं की किसी नफरत का पक्षी नहीं हैं।"

शरत्चन्द्र राय की पुस्तक 'दि मुण्डाज एण्ड देयर कन्ट्री' सर्वप्रथम सन् १९१२ में

१. बांसुरी बज रही,' पृ० २४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रकाशित हुई थी। इसकी भूमिका में श्री ई० ए० गैट [आई० सी० एस०] ने बल पूर्वक यह बात कही है: 'The author is one of the few persons, other than missionaries, who can speak the language of Mundas, and he is well acquainted with their manners and customs' (मिशनरियों को छोड़कर, लेखक उन थोड़े से लोगों में से है जो मुण्डाओं की भाषा बोल सकते हैं; और वह उनके रीति-रिवाजों से भली प्रकार परिचित है।)

सन् १६३८ में, जब मैं स्वयं मुण्डाओं और छोटा नागपुर की अन्य आदिवासी जातियों के लोकगीतों का अध्ययन करने के सिलसिले में राँची गया था, मैंने स्वर्गीय शरत्-चन्द्र राय के दर्शन किये थे। छोटा नागपुर के आदिवासियों के सम्बन्ध में नृशास्त्र-सम्बन्धी उनका कार्य प्रामाणिक माना जाता है। इस दिशा में उनकी तपस्या के बारे में दो मत नहीं हो सकते। लोक-वार्ता-शास्त्र की बाइबल 'दि गोल्डन बाउ' के लेखक जे० जे० फ्रेज़र ने 'दि मुण्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' की आलोचना करते समय लिखा था: "the translations of Poetry are charming" (कविता के अनुवाद सुन्दर हैं।) मेरा अपना विचार है, सारी भूल उस समय हुई, जब शरत् बाबू ने लोकगीत के अनुवाद के लिए अंग्रेजी छन्द की शरण ली। एक बार छन्द की शरण में जाकर लेखक के लिए वस्तुतः लोकगीत के प्रति अधिक-से-अधिक सच्चा और खरा रहना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है, क्योंकि छन्द अपनी पूर्ति के लिए मनमानी गुलामी कराता है, और इस स्थिति में यदि लेखक लोकगीत से कहीं अधिक पाठक के मनोरंजन को ही लक्ष्य बनाकर चलने लगे, तो वह सचाई से बहुत दूर जा पड़ता है। वार्तालाप के दौरान में शरत् बाबू ने स्वयं स्वीकार किया था कि मुण्डा लोकगीतों के अनुवाद में उन्होंने अंग्रेजी छन्द में अनुवाद करने की प्रवृत्ति अपनाकर अच्छा नहीं किया था, और उन्होंने मेरा ध्यान अपने बाद के ग्रन्थों की ओर दिलाया था, जिनमें वे लोकगीत का अनुवाद करते समय छन्द की गुलामी को एकदम ठुकराकर चले हैं। उनकी 'दि ओराओज आफ छोटा नागपुर'[1] 'दि रिलिजियन एण्ड कस्टम आफ दि ओराओंज', 'दि बिरहोरज़'[2] 'दि हिल भुइयाँज़ आफ उड़ीसा', 'प्रिन्सिपल्स एण्ड मैथड्स आफ फिज़िकल एन्थ्रो पालोजी' और अपने सुपुत्र रमेशचन्द्र राय के साथ मिलकर लिखी 'दि खड़ियाज़'[3] में लोकगीत के अनुवाद में छन्द की गुलामी से मुक्त होने की बात अपनी आँखों से देख सकते हैं। 'दि मुन्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' में दिये गए मुण्डा लोकगीतों की व्याख्या में त्रुटियाँ रह जाने का एक कारण यह भी हो सकता है कि इस क्षेत्र में यह शरत बाबू का प्रथम प्रयास था।

पर जहाँ तक 'दि मुण्डाज़ एण्ड देयर कन्ट्री' में दिये गए लोकगीतों के अनुवाद का सम्बन्ध है, जगदीश त्रिगुणायत का स्पष्टीकरण उल्लेखनीय है: **"ऐसे अनुवादक दुर्भाग्यवश इस तथ्य को भूल गए कि लोकगीतों का सौन्दर्य उनकी सरल अभिव्यक्ति में है, उनकी निरीह निःसंकोचता में है, और उनके भोलेपन में है। किन्तु महान् अनर्थ तो तब हुआ,**

१. १६१५
२. १६२५
३. १६३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जब उन्होंने अपनी विद्वत्ता पर लांछन लगने के डर से, जिनमें रुखड़ापन मिला, उन पर पालिश लगाई और गीतों के (अपनी समझ में) रिक्त कलेवर को नवीन अर्थों से ज़बरदस्ती भर दिया। श्री शरत्चन्द्र राय ने 'मुण्डाज़ एण्ड देयर कण्ट्री' के एथना ग्रोफी खण्ड में लगभग बीस-बाईस गीत मूल और छन्दोबद्ध अनुवाद सहित प्रस्तुत किये हैं। उनमें केवल दो-तीन को छोड़कर प्राय: सभी उपर्युक्त कथन के ज्वलन्त प्रमाण है।"[1]

मुण्डा लोकगीतों का सबसे बड़ा संकलन है देवनागरी लिपि में प्रकाशित 'मुण्डा दुरङ' (१९४२), जिसे डब्ल्यू० जी० आर्चर ने स० अ० बि० दिलबर हंस और सामुएल हंस के सहयोग से युनाइटेड प्रेस लिमिटेड पटना से मुद्रित कराया था। इसमें कुल मिलाकर १६४१ गीत और 'कहानी' शीर्षक से ३८० मुण्डा पहेलियाँ दी गई हैं। पुस्तक शरत्-चन्द्र राय (जन्म १८७१, मृत्यु १९४२) को समर्पित करते हुए डब्ल्यू० जी० आर्चर ने उस महान् नृ-तत्त्व शास्त्री के प्रति आदर जताया है। यह उल्लेखनीय है कि इस संकलन में डब्ल्यू० जी० आर्चर द्वारा अंग्रेजी में लिखित दो पृष्ठ का Preface दिया गया है जिसमें ग्रन्य-तथ्य-चर्चा और आभार स्वीकृति के अतिरिक्त यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है कि इस संकलन में वे २०० गीत भी आ गए हैं जिनका संग्रह सन् १९३० में फादर हाफमन ने किया था। इस संकलन के सम्बन्ध में जगदीश त्रिगुणायत लिखते हैं :

"........कलेवर के हिसाब से निस्सन्देह वह मोटी पुस्तक है और उन बहुसंख्यक बिखरे हुए गीतों को बचाकर लिख रखने का प्रयत्न सराहनीय है; किन्तु इसके अतिरिक्त और किसी उद्देश्य की पूर्ति उससे नहीं होती। उस विद्वान् और प्रतिभाशाली लेखक के लिए दो पृष्ठ की छोटी-सी भूमिका पर सन्तोष कर लेना उचित प्रतीत नहीं होता।

"अधिकांश गीत टूटे-फूटे हैं। बहुधा तीन पदों के गीतों की रचना करने वाले मुण्डाओं के गीतों के एक या डेढ़ पद हड़प्पा की खुदाई में मिले ठीकरों के संग्रह के समान जान पड़ते हैं। निस्सन्देह यह बड़ा काम हुआ; किन्तु यदि इतना महत्त्वपूर्ण काम केवल उन कर्मचारियों के भरोसे ही नहीं छोड़ दिया गया होता तो, सम्भवत: कुछ और अच्छे परिणाम सामने आये होते ?"[2]

'बाँसरी वज रही' के विवेचना-खण्ड में लेखक ने मुण्डा संगीत और काव्य के अनुभवी मार्ग-दर्शक का दायित्व निभाया है। "जंगल के वातावरण का सूना एकान्त मुण्डाओं के लिए भावों का उद्दीपक बन जाता है।....निर्झर का किनारा, कोई सूनी चट्टान, एकान्त खेत, सुनसान रास्ता—ये ऐसे वातावरण प्रस्तुत कर देते हैं; जिनसे गीतों का फूट पड़ना स्वाभाविक है।"[3] "उनका सारा जीवन ही संगीतमय है। वह संगीत जब मौन होता है, तब भी उनके प्राणों की गत बजाता है। वह उनके कर्मों में सुरुचि और लगन भरता है, उनके जीवन की प्रत्येक साँस को अपनी सुरुचि से सँवारता है..........तन्मयता बनकर एक-एक अनुष्ठान को पूर्ण कराता है और वही संगीत ताल बनकर उनके नृत्यों की शिंजिनी बजाता है। और जब मुखर होता है तब आकाश में काली घटाएँ छा जाती हैं, वसन्त की ठण्डी हवा

१. बांसुरी बज रही, पृ० ७
२. 'बांसरी बज रही', पृष्ठ २५
३. पृ० २६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


में पत्तियों के पायल बज उठते हैं, वृक्षों की सूखी डाल पर कलियाँ फूट पड़ती हैं और उसके स्वर की धारा में दुःखों के पहाड़ डूब जाते हैं।"[१] "मौसम के अनुसार मुण्डा-गीतों के बहुत-से भेद हो गए हैं। और सब के लय-ताल आदि अलग-अलग हैं। सभी गीत अपने ही मौसम-विशेष में गाये जाते हैं। एक मौसम का गीत दूसरे मौसम में गाया जाना वर्जित है ……मुण्डाओं का सबसे प्रमुख और प्राचीन गीत जदुर है, जो बसन्त-गीत है। और इनका सबसे प्रमुख पर्व सहुल है, जो वसन्तोत्सव है।"[२] "माघ में मनाये जाने वाले 'मागे' पर्व के बाद जदुर का मौसम प्रारम्भ हो जाता है………जदुर गीतों की संख्या सबसे अधिक है………दो जदुर गीतों के बाद 'बोना' गाया जाता है, जो जदुर नृत्य की ताल को थोड़ी देर के लिए बदल देता है………'ओर जदुर' भी जदुर के पूरक हैं और जदुर के विशाल वृक्ष की बाहर निकली हुई टहनी के समान जान पड़ते हैं। इनके लय और छन्द जदुर से कुछ भिन्न होते हैं, किन्तु गाने का समय, मौसम और उपयोग वही है…सरहुल की समाप्ति में से ही करमा गीतों का प्रारम्भ होता है। मुण्डा लोग सरहुल की अन्तिम सन्ध्या आने के पहले ही उसी दिन के धुँधलके प्रभात में दो-चार करमा गीत गाकर करमा के महान् मौसम का स्वागत करते हैं। और फिर, इन गीतों का क्रम नित्य बदलते रहने वाले वातावरण में अपना रूप बदलता हुआ आश्विन के अन्त तक चलता है। भादों की एकादशी को करमा-पर्व मनाया जाता है और उस पर्व से भी सम्बन्धित बहुत-से गीत हैं; किन्तु दरअसल करमा-गीत पर्व की सीमाओं में बँधे हुए नहीं हैं………करमा पर्व मुण्डाओं का अपना पर्व नहीं है। इसे उन्होंने दूसरों से सीखा है। किन्तु, उसमें अपना रंग मिलाकर उसे और भी रसमय बना लिया है। अस्तु, पर्व के लिए भी बहुत-से गीत बने हैं। करमा के अलग नृत्य हैं और बाजों के अलग लय-ताल हैं।"[३] "करमा के बाद 'जरगा' गीतों का मौसम आता है जो कार्तिक की सीमा से लेकर 'मागे' पर्व की सीमा तक गाये जाते हैं। 'मागे' फसली पर्व है। यह खेती-बारी के सारे काम समाप्त हो जाने के बाद—जब अनाज घर में आ जाता है और जब ये लोग काम-धाम से थोड़े दिनों के लिए छुट्टी पा जाते हैं तब मनाया जाता है। मागे पर्व अन्न की प्रसन्नता में तृप्ति का पर्व है और जरगा गीत अपने मौसम के अनुसार शान्त भावों के गीत हैं………'जापी' शिकार के गीत हैं………ये उन शिकार के आयोजनों में, जो होली और सरहुल पर्वों के उपलक्ष्य में होते हैं, गाये जाते हैं………प्रत्येक पर्व और आनन्द के अवसर पर इन नृत्य-प्रेमियों के बहुत-से गाँवों का जो सम्मेलन हुआ करता है उसे 'जतरा' कहते हैं………युवक-युवतियों के लिए ये जतराएँ महापर्व हैं।"[४] "विवाह के गीतों में………कुछ गीत दूल्हा-दुलहिन के लिए आशीर्वाद स्वरूप भी हैं और कुछ सम्बन्धियों के स्वागत के प्रसंग में भी।"[५] "मुण्डा गीतकार अपने अमर क्रान्तिकारी और पथ-प्रदर्शक नेता बिरसा भगवान् को कैसे भूल सकता है? बिरसा भगवान् इनकी स्वतन्त्रता के

१. पृ० २८।
२. पृ० २९।
३. पृ० ३०-३१।
४. पृ० ३२।
५. पृ० ३३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उज्ज्वल प्रतीक हो गए हैं तथा उनके त्याग, संघर्ष और बलिदान की कहानी से सारी मुण्डा जाति अपने को आज भी गौरवान्वित समझती है। बिरसा भगवान् के आन्दोलन, उनकी प्रचण्ड शक्ति, उनकी युद्ध-भूमि डुम्बारी पहाड़, उनका अमर बलिदान इन गीतों के विषय हैं।"[१] "कुछ गीतों में राष्ट्र-पिता की याद में भी मुण्डा-गीतकारों ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है और भारत माता के मन्दिर में अपनी जाति की वन्दना भी स्वरित की है…… समय की महिमा, जीवन का आदर्श, अतिथि-सत्कार, घटनाओं में परोक्ष रूप से भाग लेने वाले देवता, परदे के पीछे छिपा हुआ भाग्य, सिंगबोंगा (सूर्य), माता, पृथ्वी आदि विषयों पर भी छुटपुट गीत हैं।"[२]

विवेचना खण्ड में जगदीश त्रिगुणायत ने प्रतीक-उपमान-आलम्बन की विशेष रूप से चर्चा की है। फूल, लताएँ, वृक्ष, पक्षी, पशु और अन्य प्राकृतिक तत्त्व मुण्डा गीतकार के लिए कहीं प्रतीक बनकर आते हैं, कहीं उनसे मनोहर उपमाएँ उपलब्ध हुई हैं; कहीं प्रेम-विरह अथवा मिलन की भावभूमि पर प्रकृति के इन उपादानों ने उद्दीपन का रंग उत्पन्न किया है। श्री त्रिगुणायत का यह निष्कर्ष परम सत्य पर आधारित है : "इनफूलों, पक्षियों और पर्वत-घाटियों के वातावरण से परिचित हुए बिना हम गीत की भावना नहीं समझ सकते और गीतकार की अनुभूतियाँ हमसे दूर रह जायँगी।"[३]

मुण्डा काव्य-कला की विवेचना करते हुए 'उपमा और रूपक', 'आलम्बन और उद्दीपन', 'चित्र-विधान', 'अत्युक्ति', 'अभिव्यंजना', 'बिम्ब-ग्राहिता या गुणात्मकता', 'पुनरावृत्ति', 'कथोपकथन', 'प्रधान विशेषता', 'छन्द-विधान', 'गीतकार', 'बाह्य प्रभाव', 'प्रभाव और उपयोगिता', 'अध्येताओं के लिए,' और 'उपसंहार' इन सभी प्रसंगों पर विचार किया है। गीतों का अध्ययन करते समय हम श्री त्रिगुणायत के इस निष्कर्ष से सहमत हुए बिना नहीं रह सकते : "मुण्डा गीतों में ऐसे सरल और स्वाभाविक उद्गार हैं जो इनके सारे रस और आनन्द को खोलकर रख देते हैं। कलाकार की अभिव्यक्तियाँ परिभाषाओं की घोड़ी पर चढ़कर नहीं चलतीं, वे अपने-आप स्वाभाविक रूप में प्रकट होती हैं।"[४] मुण्डा गीतों में प्रतीक विधान पर प्रकाश डालते हुए श्री त्रिगुणायत बताते हैं : "हरि-बा" और "सिसि-बा" [ दो फूल ] जदुर खेलने जाते हैं। 'कारे' और 'भीरू' ( दो पक्षी ) पुरानी कोपलों के सूख जाने पर बिलख-बिलख कर रोते हैं। ( दो मित्र अपने हमजोलियों के बिछुड़ जाने पर रो रहे हैं), 'सालू' और 'सुग्गा' [ दो पक्षी—दो मित्र ] नाचते जाते हैं। तराई और टाँड़ के रहने वाले 'दोवा' और 'आसाकल' पक्षी लासा लगाकर पकड़े जाते हैं। ( दो युवतियाँ प्रलोभनों से फँसा ली जाती हैं। मनुष्यों की एक कुरूप लगने वाली जोड़ी एक बच्चे के लिए 'बण्डा कुत्ता' और 'नटरी सूअर' बन जाती है। 'विशी' और 'चाडू' नाच देखने जाते हैं। लेकिन घर के पीछे-पीछे 'बाज' और 'सिकरा' बैठे हुए हैं। दो लड़कियाँ नाचने जाना चाहती

१. पृ० ३७।
२. पृ० ३८।
३. पृ० ३८।
४. पृ० ४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**हैं; पर घर के पीछे माँ-बाप बैठे हुए हैं।"**[1]

हमें जगदीश त्रिगुणायत से एक ही शिकायत है, यही कि उन्होंने मुण्डा-गीतों के प्रतीक-विधान पर बहुत कम प्रकाश डाला है। कदाचित् उनका यह विचार रहा हो कि इन थोड़े-से संकेतों के बल पर पाठक आगे अपनी कल्पना और सूझ की गाड़ी ठेल ले जायगा। इस दिशा में पाठक के सामने ऐसे प्रत्येक स्थल पर, जहाँ भी प्रतीक का आधार लिया गया है, लेखक को प्रतीक का स्पष्टीकरण करना चाहिए था।

एक शिकायत और भी है। पुस्तक के द्वितीय खण्ड में ३५७ गीतों के अनुवाद देकर ही लेखक ने छुट्टी ले ली। यह ठीक है कि गीतों का अपना रस है, और इस रस'धारा में डुबकी लगाना किसी भी दृष्टि से अनुपयोगी नहीं। पर लेखक का यह सोच लेना कि विवेचना खण्ड की सभी बातें पाठक के सामने रहेंगी, और उन संकेतों के बल पर पाठक प्रत्येक गीत का घूँघट उलटकर इसकी वास्तविकता तक पहुँच सकता है, प्रत्येक अवस्था में ठीक नहीं कहा जा सकता। अच्छा होता, यदि लेखक ने गीत-खण्ड में प्रत्येक विभाग की भावमयी भूमिका दी होती और गीतों के साथ-साथ संक्षिप्त परिचयात्मक वार्ता का सहारा भी लिया होता, जैसा कि हम डब्ल्यू० जी० आर्चर की 'दि ब्लू ग्रोव' और वैरियर ऐलविन की 'फोकसौंग्स आफ छत्तीसगढ़' में देखते हैं। भले ही ऐसा करने के लिए लेखक को विवेचना-खण्ड को थोड़ा संक्षिप्त करना पड़ता, या फिर गीत-खण्ड के लिए और पृष्ठ लेने पड़ते।

सबसे अन्तिम शिकायत यह है कि जहाँ लेखक ने गीत-खण्ड में अधिकांश स्थानों पर मूल गीत देने के बाद पंक्तिवाद अनुवाद देने की पद्धति अपनाई है ( जो पाठक की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है, और वैज्ञानिक भी ) वहाँ कुछ स्थलों पर वह पद्धति खटाई में पड़ जाती है, क्योंकि मूल गीत और अनुवाद की पंक्तियाँ गिनती में बराबर बराबर नहीं रहीं। और किसी-किसी स्थान पर[2] लेखक ने गीत के तीन अंशों का अनुवाद तीन गड्ड-मड्ड पैराग्राफों के रूप में दिया है। कहने का भाव यह नहीं कि अर्थ में गड़बड़ी हुई है; अलग-अलग पंक्तिवाद अनुवाद न रहने से पाठक की सुविधा जाती रही और साथ ही कविता का रूप भी गद्यात्मक हो गया।

पर ये शिकायतें 'बाँसुरी बज रही' की रस-माधुरी में आस्था न जम सकने के कारण नहीं ( क्योंकि जिस रंगस्थली में मुण्डा बाँसुरी बज रही है, वहाँ तो हम आ पहुँचे हैं ); ये शिकायतें तो इसलिए हैं कि हम लेखक से अधिक पथ-प्रदर्शन की अपेक्षा रखते थे; और शायद लेखक ने यही उचित समझा कि बाँसुरी की टेर द्वारा दूल्हा-दुलहिन को समीप लाकर छोड़ दिया जाय, फिर बीच में कोई न रहे, और दूल्हा-दुलहिन स्वयं पहचान करें और एक-दूसरे के होकर आगे चलें। यह आशा की जानी चाहिए कि जगदीश त्रिगुणायत अपने अध्ययन की जयपताका समूचे छोटा नागपुर प्रदेश पर फहरायँगे। 'बाँसरी बज रही' के अन्तिम गीत में प्रतीक रूप से आदिवासी जीवन की कठिनाइयाँ बोल उठी हैं :

**रास्ते का डिम्बू का फूल, रास्ते का डिम्बू का फूल !**
**हे माँ, फूल खोंस लेने की इच्छा होती है।**

१. पृ० ४२
२. पृ० ६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हे मां, फूल खोंस लेने की इच्छा होतो है !
खोंसने को तो खोंस लेंगे, खोंसने को तो खोंस लेंगे
(लेकिन) हे मां हम दोनों के पास फूल का दाम नहीं है।
हे मां, हम दोनों के पास फूल का दाम नहीं है।
खोंसने को तो तुम खोंस लोगे;
खोंसने को खोंस लोगे।
(लेकिन) हे बेटा ! दिकू सिपाही पकड़ेंगे !
हे बेटा ! राजा के सिपाही पकड़ेंगे !

हो सकता है कि कुछ पाठकों को गीत के उत्तरार्ध तक पहुँचते धचका-सा लगे कि यह क्या हो गया—हमने तो सोचा था कि फूल खोंसने की इच्छा वाली कोई लड़की होगी, पर यह तो लड़का निकला:—पर यथार्थ यही है कि मुण्डा युवक छैला बना रहता है और फूल खोंसने में वह किसी युवती से पीछे नहीं रहता। परन्तु गीत में 'डिम्बू का फूल' जीवन की समस्त सुख-सुविधा का प्रतीक है।

'बाँसुरी बज रही' का प्रकाशन मुण्डा लोक-गीतों के प्रांगण में ही नहीं, भारतीय लोक-गीतों की रंगस्थली में एक महत्त्वपूर्ण घटना है।[1]

●

*महादेवप्रसाद शर्मा*

## राजनीति और दर्शन

पुस्तक के नाम से प्रतीत होता है कि इसमें राजनीति और दर्शन के सम्बन्ध का विवेचन होगा, परन्तु ऐसा नहीं है। लेखक के शब्दों में इसका मूल विषय है, 'दार्शनिक राजनीति-शास्त्र' अथवा 'राजनीतिक दर्शन' जिसे उन्होंने 'सरलता के विचार से', 'राजनीति और दर्शन' शब्दों द्वारा व्यक्त किया है ( भूमिका पृष्ठ २ )। अतः पुस्तक का नाम उसके विषय का ठीक परिचय नहीं देता।

लेखक का कथन है कि प्लेटो, अरस्तू तथा अन्य यूरोपीय दार्शनिकों की राजनीति के प्रति भी महान् देन थी, परन्तु भारतीय दार्शनिकों की "संप्रभुता, विधि, न्याय, राज्य आदि पर—कुछ उल्लेखनीय देन नहीं है—जिन अर्थशास्त्रकारों और स्मृतिकारों—कौटिल्य, कामन्दक, शुक्र, मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने राजनीति पर विचार किया है, वे कोई महान् दार्शनिक नहीं थे—हमारे देश में—दार्शनिक, राजनीति-शास्त्रवेत्ताओं की नितान्त कमी है" ( पृष्ठ क : भूमिका )। यह अनुमान असंगत न होगा कि लेखक का प्रस्तुत प्रयत्न इस कमी को पूरा करने और 'पूर्वीय तथा पाश्चात्य विचारधारा के आधार पर' एक नये 'राजनीति-

१. **'बांसुरी बज रही' : मुण्डा लोक-गीत, लेखक—जगदीश त्रिगुणायत; प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शास्त्र प्रणयन' ( पृष्ठ १५१ ) का है।

यह नवीन राजनीति-शास्त्र, दार्शनिक राजनीति-शास्त्र ही है। इसकी प्रक्रिया पर निम्नलिखित उद्धरणों से प्रकाश पड़ता है—

"'दर्शन के हमने दो अर्थ स्वीकृत किये हैं (१) कृत्स्न ज्ञान······ (२) मानव के नैतिक और आध्यात्मिक स्वरूप का ग्रहण।" ( पृ० १९-२० )।

"दार्शनिक अध्ययन का तात्पर्य विभिन्न 'शास्त्रों' के द्वारा वर्णित वस्तुओं और घटनाओं का कैवल्य अवस्था में दिव्य दर्शन करना नहीं है, किन्तु इनके क्रमबद्ध पारस्परिक अन्तः सम्बन्धों का परिदर्शन ही।" ( पृ० ४ )।

"दर्शन का मुख्य लक्ष्य व्यापक मौलिक सम्बन्धों का निर्माण ही है" ( पृ० ५ )।

"इतिहास, प्राचीन मानवोत्पत्ति-शास्त्र, निवास-शास्त्र आदि के द्वारा अनुमोदित सिद्धान्तों के सहारे ही हम उस व्यापक राजनीति-शास्त्र की स्थापना, जो समग्रतः और तत्त्वतः राज्य की पूर्ण समीक्षा कर सके।" ( पृ० १९ )।

"अनेक शास्त्रों के द्वारा ज्ञात सिद्धान्तों के समन्वय का उपक्रम ही दार्शनिक प्रयास है।" ( पृ० १५१ )।

"प्रस्तुत पुस्तक में समन्वयात्मक पद्धति का अवलम्बन होगा—( हम ) अन्य सामाजिक शास्त्रवेत्ताओं के विचारों के आलोचन में भी प्रवृत्त होंगे······मानव के नैतिक और आध्यात्मिक स्वरूप में हम मूलतः भारतीय संस्कृति के संदेशवाहकों से प्रभावित हैं।" ( पृ० २० )।

लेखक ने जो दार्शनिक समन्वय किया है, उसका कुछ परिचय इन उद्धरणों से ही मिल जाता है। एक ओर तो दर्शन को 'कृत्स्न ज्ञान' बतलाया है, परन्तु दूसरी ओर दार्शनिक पद्धति को विभिन्न शास्त्रों के 'क्रमबद्ध पारस्परिक अन्तः सम्बन्धों का परिदर्शन', 'व्यापक मौलिक सिद्धान्तों का निर्माण' आदि मात्र कहा है, जो वैज्ञानिक पद्धति का लक्षण है। भारत की कौन कहे, यूरोप में भी दर्शन और दार्शनिक पद्धति का यह संकुचित अर्थ ग्रहण नहीं किया गया है। प्लेटो, अरस्तू, हेगेल, काण्ट आदि ने राजनीति की दार्शनिक मीमांसा में उसके और अन्य शास्त्रों के अन्तः सम्बन्धों मात्र पर प्रकाश नहीं डाला है, किन्तु सचराचर विश्व की योजना में मानव तथा उसकी राजनीतिक प्रवृत्तियों के स्थान तथा उद्देश्य की विवेचना की है। दर्शन यदि कृत्स्न ज्ञान है, तो उसमें 'मानव के नैतिक और आध्यात्मिक स्वरूप' के ग्रहण का स्वतः ही समावेश हो जाता है। इसे अलग से जोड़ने की आवश्यकता तभी पड़ती है, जब 'कृत्स्न ज्ञान' के यथार्थ अभिप्राय के विषय में भ्रम हो। अतः दर्शन के भारतीय, पूर्वकालीन, यूरोपीय विचारकों तथा आधुनिक यूरोपीय तथा अमेरिकन विचारकों वाले अर्थों के समन्वय की समस्या का समाधान करने का लेखक ने प्रयत्न नहीं किया। इसी प्रकार का दूसरा उदाहरण हमें राज्य और धर्म के सम्बन्ध के विषय में मिलता है। लेखक ने आजकल प्रचलित 'धर्म-निरपेक्ष' राज्य को मान्यता दी है ( पृ० ५५२-५३ )। जिसका आधार है धार्मिक सहिष्णुता या सहनशीलता। पृ० १९ पर लिखा है कि भारतीय मनीषियों ने 'सर्व धर्म समभाव' को सहिष्णुता से अधिक उत्कृष्ट कहा है। पर इस तथ्य का धार्मिक तथा धर्मविरोधी राज्य की कल्पनाओं के समन्वय में उपयोग न करके लेखक ने 'धर्म-निरपेक्षता'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ही को मान्यता दी है, सर्व-धर्म-पोषक राज्य को नहीं। इसका कारण कदाचित् यह है कि अधिक उत्कृष्ट होने पर भी सर्व-धर्म-समत्व के भाव को 'पूरी रीति से समझने के लिए पश्चिम को कुछ वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ेगा।' ( पृ० १६ )।

इस प्रकार, पुस्तक में जो कुछ समन्वय पाया जाता है, वह वही है जो पाश्चात्य विचारकों ने पहले से ही कर रखा है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है, वह यह है कि विभिन्न विषयों पर पाश्चात्य और जहाँ सम्भव हुआ है वहाँ भारतीय ग्रन्थों से भी उद्धरण दे-देकर कहीं एक मत को ग्राह्य बतलाया है, कहीं दूसरे को। इसे समन्वय नहीं कह सकते। समन्वय का अर्थ विरोधी बातों का साथ-साथ उल्लेख करके किसी को ग्राह्य और किसी को अग्राह्य बतला देना नहीं, किन्तु एक ऐसे व्यापक सत्य की स्थापना करना है, जिसमें उन विरोधी मतों के विरोध का उपशम हो जाय।

लेखक द्वारा मान्य अथवा प्रणीत दार्शनिक राजनीति-शास्त्र के स्वरूप के परिचायक कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं—

"प्राचीन भारतीय शास्त्रों में दण्डनीति का बड़ा ही प्रकृष्ट वर्णन है······किन्तु इस दण्डवादी राजनीति को हम घोर या उग्र राजनीति ही समझते हैं······दार्शनिक समीक्षा के अनुसार दण्ड की व्यवस्था राजनीति का प्रकृष्ट पुरुषार्थ नहीं है, किन्तु साधन है। राजनीति-शास्त्र का लक्ष्य सन्तुष्ट, उन्नति-पथ-गामी, श्रेयान्वेषी समाज को स्थापित करना है।" ( पृ० ४-५ )।

"हिंसापूर्ण दण्ड का एकाधिकार राज्य को समाज से पृथक् करता है।" (पृ० १३१)।

"राज्य की उत्पत्ति के विषय में ऐतिहासिक या विकासवादीय विचार ही संगत मालूम पड़ता है।" ( पृ० १३५ )।

"राज्य को हम श्रेयानुसन्धान का बाह्य साधन मानते हैं।" ( पृ० १६२ )।

लेखक के राजनीति तथा राज्य-विषयक नमूने के तौर पर लिखे गए ये कुछ निष्कर्ष निर्विवाद हैं, परन्तु ये सब-के-सब परम्परागत हैं, किसी मौलिक नवीन सिद्धान्त के परिचायक नहीं। हज़ारों वर्ष पूर्व अरस्तू ने कहा था कि राज्य की उत्पत्ति जीवन की आवश्यकता मात्र के लिए होती है, पर उसके अस्तित्व के निरन्तर बने रहने का उद्देश्य उत्तम प्रकार का जीवन—श्रेय का अन्वेषण—है। भारत में राजनीति का प्राचीन नाम दण्डनीति है तो, परन्तु यह समझना भूल होगी कि दण्डनीति 'दण्ड' को राज्य का प्रकृष्ट पुरुषार्थ मानती थी। कौटिल्य ने दण्डनीति की परिभाषा यों दी है कि 'दण्डनीतिः अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षिणी, रक्षित विवर्धिनी'। यहाँ दण्डनीति को केवल दण्डदायिका नहीं माना है और राजा के विषय में तो 'राजा प्रकृति रंजनात्' प्रसिद्ध है। 'दण्ड' वास्तव में राजशक्ति का प्रतीक है, दण्ड देना मात्र नहीं। फिर लेखक को भी 'हिंसापूर्ण' दण्ड के एकाधिकार को राज्य का विशिष्ट लक्षण मानना पड़ा है, तो राजनीति को यदि भारत में दण्डनीति कहा गया, तो अनौचित्य कहाँ है? राज्य विकसित हुआ है, यह आजकल सभी मानते हैं तथा राज्य श्रेयानुसन्धान का बाह्य साधन है, यह ग्रीन का मत है।

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक की विशेषता कोई मौलिक समन्वय या सिद्धान्त-निरूपण नहीं है। भूमिका में यह अवश्य लिखा है कि लेखक के कुछ अन्य ग्रन्थ अमेरिकन तथा रूसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



'महाध्यापकों' द्वारा बर्टाण्ड रसेल के ग्रन्थों से भी उत्कृष्टतर बतलाये गए हैं। यह भारतीयों के लिए प्रसन्नता व सन्तोष की बात है, परन्तु विद्वान् लेखक की उस उत्कृष्ट, मौलिक प्रतिभा के दर्शन हमें प्रस्तुत ग्रन्थ में तो नहीं होते।

परन्तु यदि इस बात को छोड़ दें, तो पुस्तक मैक आइवर, मेरियम आदि के ग्रन्थों की भाँति व्यापक दृष्टिकोण से लिखी गई है। हिन्दी भाषा में राजनीति विषय पर इस ढंग की यह कदाचित् प्रथम ही पुस्तक है। लेखक का राजनीति सिद्धान्तों का अध्ययन विस्तृत व गम्भीर है और पुस्तक में विभिन्न विचारकों के मतों का बहुमूल्य एकत्रीकरण तथा मूल्याङ्कन है। इन सभी दृष्टियों से हिन्दी-जगत् में यह अभिनन्दनीय प्रयत्न है और उसके राजनीति-साहित्य में बहुमूल्य वृद्धि करती है। राजनीति के गम्भीर अध्ययन के इच्छुक सभी लोगों के लिए यह पठनीय है। पुस्तक की भाषा संस्कृतनिष्ठ है जो उचित ही है, परन्तु पाश्चात्य पारिभाषिक शब्दों के कुछ अनुवाद आवश्यकता से अधिक लम्बे और क्लिष्ट हैं। जैसे—'ऐन्थ्रोपोलोजी' को 'प्राचीन मानवोत्पत्ति शास्त्र' न कहकर उसके लिए प्रचलित शब्द 'मानव-शास्त्र' का ही प्रयोग किया जाता तो कोई हानि न होती। पुस्तक की छपाई आदि उत्कृष्ट है।[1]

●

*महादेवप्रसाद शर्मा*

## राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त

प्रस्तुत पुस्तक में राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्तों का विवेचन है। जैसा लेखक ने कहा है, सार्वजनिक वित्त-शास्त्र के अध्ययन में अभी तक राजकीय आय पर ही अधिक ध्यान दिया गया है और व्यय पर कम। इसका कारण इस विषय की अन्तर्हित जटिलताएँ या कठिनाइयाँ हैं। उनमें कुछ का संकेत प्रथम अध्याय में किया गया है। व्यक्तिगत व राजकीय व्यय का मुख्य अन्तर है कि राजकीय व्यय में जो व्यय करने वाले हैं, वे दूसरों के धन को 'थातीदार' के रूप में व्यय करते हैं। इसी कारण राजकीय व्यय-प्रबन्ध को अनेक नियमों, उपनियमों से जकड़कर रखना पड़ता है, जिससे करदाताओं के हित की रक्षा हो सके। पुस्तक के शेष सात अध्यायों में व्यय का शासन, आय व्यय के शीर्षक, बजट निर्माण व आय-व्यय का सन्तुलन, व्यय-सम्बन्धी असाधारण स्थितियाँ, आय-व्यय पर जनता के प्रतिनिधियों के नियन्त्रण की यथार्थता, व्यय की प्रणाली और उसका नियंत्रण तथा अंकेक्षण की क्रम से चर्चा की गई है। लेखक अपने विषय के अधिकारी हैं और ३७ पृष्ठों की पुस्तक में जितनी ठोस सामग्री भरी जा सकती थी, उन्होंने भर दी है। पर इसे पढ़ लेने पर पाठक की इच्छा होती है कि पुस्तक कुछ अधिक बड़ी होती और उसमें कुछ अन्य भी महत्त्वपूर्ण विषयों—जैसे बजट का

१. **राजनीति और दर्शन, ले० डॉ० विश्वनाथप्रसाद वर्मा, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, १९५६।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आर्थिक तथा सामाजिक महत्त्व, असंतुलित बजट के उपयोग, जन-लेखा-समिति की कार्य-प्रणाली आदि का भी विवरण होता, तो अच्छा होता।

पुस्तक की भाषा कई स्थलों पर अशुद्ध है, उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्य—

"उसके कारण एक व्यापक नियंत्रण तथा नियम-प्रणाली की आवश्यकता है, जिसका प्रत्येक अंग परस्पर एक-दूसरे पर नियंत्रण-प्रणाली पर एक काक-दृष्टि उनके व्यौरेवार विवरण के पहिले लाभदायक होगा" (पृ० १२)।

कुछ तथ्यगत अशुद्धियाँ भी हैं। जैसे पृ० २१ पर कहा गया है कि "सब माँगों पर बहस पन्द्रह दिन के भीतर समाप्त होनी चाहिये।" यह पुरानी ब्रिटिश राज्यकालीन व्यवस्था थी, जिसे १९५० या ५१ में छोड़ दिया गया। अब ब्रिटेन की भाँति ही भारत में भी माँगों पर बहस के लिए २६ दिन दिये जाते हैं।[1]

प्रेमशंकर

## भारतीय कविता : १९५३

'भारतीय कविता : १९५३' एक राजकीय प्रकाशन है। साहित्यिक प्रकाशन का कार्य राज्य-द्वारा संचालित होना चाहिए अथवा नहीं, यह एक विवादास्पद विषय है। किन्तु इतना निश्चित है कि राज्याश्रय साहित्य के स्वाभाविक विकास के लिए अधिक हितकर नहीं सिद्ध होता। अकबरी दरबार के नौ रत्न राज्य-सभा की शोभा भले ही बढ़ाएँ किन्तु जनता के जीवन से क्रमशः उनका सम्पर्क छूटता चला जाता है, और वे लोक-स्वर को वाणी देने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि राज्य साहित्यिक प्रकाशन के क्षेत्र में आना ही चाहता है, तो उसे चाहिए कि पहले प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण प्रस्तुत करे। कालिदास की रचनाओं का सुन्दर अनुवाद हिन्दी में कहाँ है? अन्य भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि पुस्तकों को भी इसी प्रकार अनूदित किया जा सकता है। सामयिक साहित्य के प्रकाशन की अपेक्षा यह कार्य अधिक हितकर होगा। प्राचीन भारत सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक अखण्ड था। विभिन्न प्राचीन प्रादेशिक साहित्यों के प्रकाशन से 'उनमें पारस्परिक सहयोग की भावना को अधिक प्रोत्साहित किया जा सकता है।' बंगला, मराठी और गुजराती का हिन्दी-साहित्य से निकट सम्बन्ध रहा है। राजनीतिक कारणों से प्रादेशिक साहित्य कालान्तर में एक-दूसरे से किंचित् दूर हो गए किन्तु देश की सांस्कृतिक अखण्डता उन्हें पुनः समीप ला सकती है।

संकलन, सम्पादन का कार्य हिन्दी में प्रायः विश्राम के क्षणों का सहज कार्य समझा जाता है। पुस्तक-सम्पादन के विषय में यह सत्य अधिक चरितार्थ होता है। अनेक संकलनों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो मणि-मंजूषा के साथ सीप-घोंघे भी एक स्थान पर

१. **राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त—ले० श्री गोरखनाथ सिंह, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, १९५५।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संग्रहीत कर दिए गए हैं। किन्तु सम्पादक अथवा संकलनकर्ता को एक मौक्तिक-माल का संग्रथन करना पड़ता है, जिसमें उसे बड़ी कुशलता से चयन करना होता है। उदार-निष्पक्ष दृष्टि, परिष्कृत रुचि सफल सम्पादन के लिए अपेक्षित हैं। सम्पादन में सम्पादक का व्यक्तित्व सन्निहित रहता है। प्रस्तुत पुस्तक समग्र रूप में इस व्यक्तित्व से वंचित है, यद्यपि अनेक ख्यातनामा विद्वानों ने इसका संचयन किया है और अन्त में साहित्य अकादेमी की कार्यकारिणी ने अपनी अन्तिम सम्मति से प्रकाशन किया है। किन्तु इस विरल व्यक्तित्व के अभाव की पूर्ति कविताओं की विविधता द्वारा हो जाती है। एक साथ अनेक प्रकार की भावनाएँ पाठक को देखने को मिल जाती हैं। एक ओर यदि तेलुगु कवियों की आस्तिक और भक्ति-समन्वित वाणी है तो दूसरी ओर आसाम के कवि महेश्वर नेओग का स्वर है—

**देवता से वर माँगते हो 'देहि-देहि', किसने 'देहि' ?**
**अपाणिपाद देवता, क्या देगा ?**

मलयालम की कविताओं में स्थानीय रंग है। उनमें 'महाबलि' का आह्वान है, जो 'रामराज्य' के प्रतीक हैं। शिल्प के क्षेत्र में भी यह विविधता दिखाई देती है। संस्कृत की कविताओं के अतिरिक्त तॅलुगु की कविताएँ भी प्राचीन-संस्कृत-शैली के समीप हैं। पि० गणपति शास्त्री ने अपनी कविता 'मणि-दीपिका' में जो वन्दना की है, वह परम्परगत ही है। तेलुगु के अन्य कवि रामकृष्णमूर्ति की कविता 'अमृतकेतकी' के शब्द-योजना बाण-भट्ट भी कादम्बरी का स्मरण कराती है। कन्नड़ की कविताएँ भाव-भाषा सभी में नवीन हैं। अम्बिकातनयदत्त ने 'राह की कुतिया' पर लिखा है। संग्रह की सभी कविताओं में एकसूत्रता तभी लाई जा सकती थी जब वे एक ही प्रकार के विषयों से सम्बद्ध होतीं। किन्तु ऐसी स्थिति में उनमें एकरसता आ जाने का भय था। संकलन की सार्थकता इसीमें है कि प्रादेशिक साहित्य का प्रतिनिधि स्वर हमें सहज सुलभ हो। सामयिक प्रवृत्तियों की एक रूप-रेखा हमारे समक्ष आ जाती है। अनुवाद एक कठिन कार्य है और वह भी कविता का! महान् कविता के प्रत्येक शब्द से एक अर्थ विशेष का बोध होता है। वे सार्थक शब्द होते हैं। उन्हें अन्य भाषा में उसी सार्थकता के साथ प्रस्तुत करने के लिए केवल शब्द-कोष की सहायता से काम नहीं चलाया जा सकता। सम्भवतः इसी कारण भावानुवाद काव्य के लिए अधिक उपयुक्त है। अनेक स्थानों पर मूल शब्दों को अनुवाद में उसी प्रकार रख दिया गया है। हिन्दी कविता का शब्द भण्डार इससे समृद्ध हो सकता है, किन्तु अनुवादक की विवशता के कारण काव्य-सौन्दर्य पाठक तक नहीं पहुँच पाता। अनेक कविताओं में तत्सम शब्दों का बहुल प्रयोग कविता के भाव को स्पष्ट नहीं होने देता। तेलुगु कविता 'जीवन-संगीत' में नव-मृद्वीकमकरन्द-सुरभितानंदैकमन्दानिल-इन्दिदरो' की समासान्त पदावली को उसी प्रकार रख दिया गया है। अनुवाद की दृष्टि से सर्वोत्तम अनुवाद बंगला, मराठी, असमिया और उड़िया के हैं। कविता के अनुवाद के सम्बन्ध में फ़िट्ज़राल्ड को यदि एक आदर्श स्वीकार कर लिया जाय तो यह मानना होगा कि मूल और अनुवाद के आनन्द में अधिक अन्तर न होना चाहिए। विश्व वन्द्योपाध्याय की बँगला कविता 'कालपक्षी' का एक अंश द्रष्टव्य है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रतिदिन एक पक्षी उड़कर आता है।
और वापिस लौट जाता है।
मनुष्य की आयु
दो चंचल डैनों के बीच थर-थर कांपती है।
महा चेतना के गोल गवाक्ष में बैठकर
नित्य ही देखता हूँ,
क्यों ये आते हैं ?
ऐसा कौन-सा काम है ?
और क्यों वापिस चले जाते हैं ?

कविताओं का संचयन संकलनकर्ताओं के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखता है, इस कारण उनके गुण-दोष की विवेचना विस्तार से करना समीचीन नहीं प्रतीत होता। संकलन की दृष्टि से सबसे अधिक दुर्बल रचनाएँ हिन्दी की हैं।......चिराग़ तले अँधेरा ! पुराने खेवे के कवि मिलिन्दजी की कविता 'कवि और मानव' में भाषण-शैली का प्राधान्य हो गया है, जो प्रवचनकर्ताओं के अधिक उपयुक्त है। बच्चन जी के गीत को देखकर ऐसा लगता है मानो उनकी सम्भावनाएँ (साहित्यिक) निश्शेष हो चुकी हैं। यदि हिन्दी के इस सरस खैय्यामी गीत-कार ने अपने पुराने गीतों के स्वर दुहराए होते तो भी इससे बेहतर होते। नवीनजी की कविता 'अहो मन्त्र-द्रष्टा, हे ऋषिवर' उच्चकोटि के शब्द-शिल्प का परिचायक नहीं बन पाई। महादेवी जी के साधारण गीतों में संकलित गीत की गणना की जायगी। हमारे पुराने कवि यदि चाहें तो आज भी अपनी समर्थ वाणी से गौरवपूर्ण रचनाएँ हिन्दी को दे सकते हैं। दिन-कर जी की रचना नवीनजी की ही भाँति है। 'मेरे नगपति मेरे विशाल' से 'किसको नमन करूँ मैं' की तुलना करने पर ज्ञात होगा कि एक की अनुभूत राष्ट्रीय भावना प्रबल है, पर दूसरे की नहीं। 'नया हिमालय' कविता तो बाल-साहित्य के अधिक उपयुक्त है और मार्चिंग-साँग के रूप में काम आ सकती है। हिन्दी खण्ड की कविताएँ अन्य प्रादेशिक भाषाओं की संकलित रचनाओं में उत्कृष्टतम के समीप नहीं रखी जा सकतीं। हिन्दी-कविता की इस अवस्था का समस्त दायित्व केवल संकलन की भूल पर नहीं डाला जा सकता। ऐसा करना एक प्रकार का कछुआ-धर्म होगा—सत्य से आँखें मूँद लेना। हिन्दी-काव्य-जगत् में जो श्रेष्ठतम है उसे प्रकाश में लाते हुए भी नए कवि को अधिक जागरूक होकर काव्य-सृजन में तत्पर होना पड़ेगा। इस साहित्यिक अनुष्ठान में आलोचक को भी अपना योग-दान करना होगा। पूर्वग्रह और पक्षपात दोनों से उसे ऊपर उठना होगा।

पन्तजी की कविता 'गीत' शीर्षक से प्रकाशित है। इसमें एक प्रौढ़ कवि का चिंतन प्रति-फलित है और यदि इसे किसी अन्य शीर्षक से प्रकाशित किया जाता तो अधिक स्पष्टता आ जाती। कविता की प्रेरणा सामयिक है। विनाश का जो वातावरण सर्वत्र छाया हुआ है, उसीको कवि ने समर्थ वाणी दी है। तीव्र मानवीय संवेदना से परिचालित पन्तजी का कवि भावी मानवता के प्रति पूर्ण आस्थावान है। अज्ञेयजी की बहु-विज्ञापित कविता 'यह दीप अकेला' व्यक्ति का समाज में पर्यवसान-मात्र नहीं है। वह एक विशिष्ट व्यक्तित्व का सामाजिक जीवन-धारा में प्रवहमान हो जाना है। कविता का संग्रथन और शब्द चयन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



द्रष्टव्य है—

**यह सदा द्रवित, चिर-जागरूक, अनुरक्त नेत्र,**
**उल्लम्ब बाहु यह चिर-अखण्ड अपनाया**
**जिज्ञासु प्रबुद्ध सदा श्रद्धामय,**
**इसको भक्ति को दे दो।**

जानकीवल्लभ शास्त्री एक सफल गीतकार हैं। एक ही माध्यम के निरन्तर प्रयोग से उन्होंने उसमें सफलता प्राप्त कर ली है। निराला जी की परम्परा में उन्होंने योग दिया है। उनकी छाया में वे आगे बढ़े हैं। प्रस्तुत गीत 'अन्विति' में नये भावों में नैतिकता का आग्रह अधिक है, इस कारण गीत में दार्शनिकता का पुट आ गया है। अंचल का गीत 'ओ नभ में मँडराते बादल बे-बरसे मत जा' अनुनयपूर्ण है। अनुभूति में यदि और अधिक सत्य होता तो पंक्तियों को बल मिल जाता……।

प्रादेशिक भाषाओं को अकारादि क्रम से रखा गया है। प्रथम स्थान असमिया का है। सभी कविताओं का मूल स्वर मानवीयता है। उन्हें हम धरती की प्रेरणा कह सकते हैं। दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' में जो 'मिट्टी का राग' है, कुछ-कुछ वैसा ही। अब्दुल मलिक सैयद की कविता 'जारज', जीवकान्त बरुआ की कविता 'सहस्र मृत्यु के बाद' तथा नवकान्त बरुआ की कविता 'क्षण' एक ही भावभूमि पर प्रतिष्ठित हैं। उनका स्वर यही है कि धरती का अनुराग ही सर्वोपरि है। आस्था और विश्वास की इन कविताओं में भावनामयता है। बीरेन बरकटकी की कविता 'अहल्या पृथिवी' में भी यही स्वर है। वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य की रचना 'विष्णु रामा, अब कितनी रात है' जीवन-संघर्ष का साधारण आभास देती है। महेन्द्र बरा की कविता 'मुन्शी शैले की चिट्ठी' की अभिव्यक्ति नितान्त नवीन है। उसमें करुणा है और व्यंग्य भी। 'कल तो इतवार, तो भी काश पोस्टमैन आता।' पावर हाउस की घरघराहट, टेलीफोन की रिङ्-रिङ् नये युग के प्रतीक हैं। हेम बरुआ की कविता 'जाड़े के दिनों का स्वप्न' सबसे सशक्त रचना है—

**शीत के अन्त में फिर आएगा निर्लज्ज फागुन। बहागी बिहु,**
**रंगीले दिन। फूलों के बगीचे। कोयल और काकातुआ गान की भेंट।**
**फिर आएगी दिलों में बाढ़। साथी, डर किसके लिए?**
**पहली रात की अपरिचिता पत्नी की तरह पृथ्वी काँप रही है।**

उड़िया की कविताएँ प्रगतिशील हैं यद्यपि उनमें कोई राजनीतिक वाद आग्रह नहीं है। अनन्त पट्टनायक की कविता 'आया हूँ, मैं आया हूँ' में क्रान्ति का आह्वान है। कविता में गर्जन-तर्जन भी पर्याप्त मात्रा में है। कुंजविहारीदास की रचना 'तूफान की सहस्र पद-ध्वनि' अधिक संयत और गम्भीर है। उसमें आवेश का स्थान चिन्तन को प्राप्त हुआ है। उसकी विशिष्ट कल्पनाएँ अनुभूति से मिलकर मार्मिक हो गई हैं—

**जीवन के सभी सिंगार**
**उसने तुम्हारे लिए छोड़ दिए**
**तुम्हारे घर को फूलों की सुगन्ध से सुवासित करके**
**स्वयं दुर्गंध बनकर रह गया।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



खुद होकर छन्दहीन
उसने तुम्हारे जीवन को छंदमय बनाया।

× × ×

उसके पसीने के सागर से तुमने उसकी लक्ष्मी का हरण किया
और वह तुम्हारी वीणा में वाणी भरकर
स्वयं मूक हो गया।
उसकी कोई शिलालिपि नहीं, कोई पद चिह्न नहीं
वह परिचयहीन परिचय है !

'भूखा है भगवान्' में तथा 'मूर्ति और मन्दिर' कविताओं में परम्परागत भक्ति-भावना पर आक्रमण है। दुर्गाचरण की छोटी कविता 'त्रयी' अपने में सर्वथा पूर्ण है। सरलतम शब्दों और चिरपरिचित प्रतीकों के माध्यम से कवि ने सुन्दर भाव प्रकट किये हैं—

दुर्मद नदी की भँवरों में
छलाँग लगाता है एक फूल
एक तेजस्वी फूल, वह साहस का फूल !
उन्मत्त प्रभंजन के होठ चूमता है
एक पत्र
एक हरित पत्र, वह पत्र प्रत्यय का !
अधिकार की वल्लरी पर
अंकुरित एक कली
वह कली आलोक की !

छोटी कविताओं में जो कसावट, प्रत्यत्न चित्रात्मकता चाहिए, वह इसमें विद्यमान् है। उड़िया के कवि विनोदचन्द्र नायक की कविता 'ग्राम-पथ' सम्पूर्ण संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचना है। कवि का इस ग्राम-पथ से घनिष्ठ परिचय है। इसीलिए वह पूरी ईमानदारी और सचाई के साथ अपनी बात कह सका है, जो महान् कविता की प्रमुख आवश्यक शर्त है। जीवन से तादात्म्य स्थापित करके जब कवि किसी वस्तु विशेष को अपनी चेतना से एकाकार कर लेता है, तभी अभिव्यक्ति रस-सृष्टि में सफल होती है। 'ग्राम पथ' का कवि केवल वस्तुओं के नाम-मात्र गिनाकर नहीं रह जाता। वह उन्हें सम्पूर्ण रागात्मकता में प्रस्तुत करता है। कविता का समस्त 'कैनवास' ग्रामीण जीवन को उसके आदिम रूप में ही सामने नहीं लाता, वरन् उसे जीवन्त भी बनाता है। कविता के चित्र जड़ अथवा अमूर्त नहीं हैं। वे मूर्त मांसल और सप्राण हैं। कास के फूल, खास से घनीभूत बंजरभूमि के साथ ही मामा का गाँव-चित्र को मानव-सम्पर्क में ले आता है। लोक-जीवन भी अंकित है—

यहाँ पर नई दुलहिन माँजती है अपने पैरों की पायल
और खुली हुई वेणी को मेथी लगाकर धोती है,
ननद उसकी बड़ी चतुर है
वह अपने गालों में हल्दी लगाकर देखती है
प्रकंपित पानी में अपनी मुख छवि !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कवि जब प्रकृति और मानव को एक-दूसरे में संग्रथित कर देता है, उनके अन्तर और विभेद की खाई को अपनी मानवीय संवेदना से पाट देता है, तब काव्य में एक असाधारण गरिमा आ जाती है। इसके लिए चिन्तन का आश्रय लेना पड़ता है। विनोदचन्द्र नायक ने भावों को अतिशय उदात्त बनाया है। ग्रामवधू का चित्र है—

**उसी पथ में जब ग्रामवधू सवेरे अकेली नहाकर**
**सजल चरण-चिह्न-रेखा अंकित कर लौटती है,**
**एक बार माँ कहकर बुलाने को जी चाहता है,**
**पृथ्वी के समान सहनशीला वह**
**असीम करुणावती,**
**आँखों में उसकी युग-युग की वेदना छिपी हुई है।**

प्राचीन प्रतीकों को नये सन्दर्भ में कवि ने प्रस्तुत किया है। किसी परम्परागत प्रतीक को नए अर्थ से समन्वित करने में प्रतिभा की जो आवश्यकता होती है, उसे प्रस्तुत कविता के स्रष्टा में देखा जा सकता है। जायसी ने नागमती के वियोग-वर्णन में कौए को नए सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। पद्मावत के दोनों प्रसिद्ध दोहे सूफी कवि की मौलिकता के प्रमाण हैं। 'ग्राम-पथ' के कवि ने एक लोक-प्रचलित परम्परा को नया मोड़ दिया है। जन-श्रुति है कि जब कौवा काँव-काँव करता है तब वह किसी के आगमन की सूचना देता है, किन्तु ग्राम-पथ की ओर निहारती हुई नवविवाहिता पत्नी को 'खाने का लोभी कौवा' न जाने क्या सन्देश देता है। गोल्डस्मिथ की कविता 'डेज़र्टेड विलेज' में ग्राम के प्रति जो असाधारण ममता है, उसका एक अधिक परिष्कृत रूप इस कविता में मिलता है। कविता के अन्त में कवि जीवन की समाप्ति पर इस ग्राम-पथ से जाना चाहता है। कविता में कल्पना का वैभव है, जो इस चीज में देखा जा सकता है—

**नीलांबर में मनोरम छाया-पथ की भाँति**
**श्यामल प्रांतर के अंक में नग्न शिशु की तरह यह पथ सोता है**
**गाँवों के निर्झर को लाँघकर यह पथ स्वर्ग की सीमा के पास दौड़ता है**
**जैसे कि संयासी अपनी करुणा का धन बाँधकर जा रहा हो।**

उड़िया की अन्तिम कविता सबुज की 'आवारा कुतिया' है, जिसमें पशु को भी मानव के परिवार में सम्मिलित करने का सन्देश है।

कन्नड़ की कविताएँ अति नूतन शैली में लिखी गई हैं, नूतनता का यह मोह इस सीमा तक बढ़ गया है कि जी० एस० शिवरुद्रय्य ने शिशु को क्रान्तिकारी रूप में चित्रित किया है। गोपाल कृष्ण अडिग की लम्बी कविता 'गड़बड़ नगर' शेक्सपियर के मैकबेथ की पंक्तियों से आरम्भ होकर 'Call no man happy till he dies' में समाप्त होती हैं। बी० एच० श्रीधर की कविता 'नव्य जीवन' नई कविता के विरोधियों पर व्यंग्य है, बस। इस प्रकार की प्रतिक्रियामूलक रचनाएँ कभी महान् साहित्य नहीं बन सकतीं, क्योंकि सुन्दर साहित्य सृजनात्मक अधिक होता है, विध्वंसात्मक कम। दो-तीन कविताओं को छोड़कर कन्नड़ की अधिकांश कविताएँ साधारण हैं। असाधारणता तो दुर्भाग्यवश किसी में नहीं मिलती। यदि असाधारणता है तो प्रदर्शन की, जो उत्कृष्ट काव्य की संज्ञा नहीं पा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गुजराती खण्ड की कविताएँ सन्तोषजनक हैं। गनी दही वाला की कविता 'भिखारिन का गीत' अनुभूति और अभिव्यक्ति का विरोध स्पष्ट करती हुई भिखारिन की दयनीय अवस्था का संकेत करती है। भिखारिन गीत गाती है कि 'मेरे प्रभु! सोने-चाँदी की गगरियाँ मँगा दे, किन्तु उसके हाथ में केवल टूटा भिक्षा-पात्र है आदि। जयंत पाठक की कविता 'मुझे लगता है' में नई विचारणा और सूझ है। पति अपनी रूपहीन नारी को प्रेम करने के लिए बालक से प्रेरणा पाता है। गुजराती खण्ड की महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं—निरंजन भगत की 'हार्नबी रोड' बम्बई, (१९५१) तथा बालमुकुन्द दुवे की 'सहज संगम'। 'हार्नबी रोड' के मित्र किसी सीमा तक औपन्यासिक कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनमें विस्तार है। नई सभ्यता के प्रतीक बम्बई की आत्मा को स्पष्ट करने के लिए कवि ने नए उपमान जुटाए हैं। क्लाक टावर, नियोग फानूस, ट्राम की पटरियाँ वर्णन को विश्वसनीय बनाते हैं। टाइपिस्ट गर्ल्स, कारकुन सब बम्बई के जीवन का अंग है। बालमुकुन्द दवे की कविता 'सहज संगम' दो अज्ञात हृदयों के मिलन से आरम्भ होती है। यथार्थ की भावभूमि से गुजरती हुई यह कविता 'जीवन के मेले' के चित्र प्रस्तुत करती है—

**सखी, देख तो इस विश्व वट के नीचे**
**ऋणानुबन्ध के कारण कैसा बहुरंगी**
**मेला आ लगा है……**

सुन्दर जी बेटाई की कविता 'अपने वतन की बातें' अपनी सादगी में बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। सारल्य के साथ बाल्यकाल की स्मृतियाँ कही गई हैं।

तमिल कविताओं में सबसे अधिक मर्मस्पर्शी है कोत्तमंगलम् सुब्बु की कविता 'कूकने वाली कोयल।' यह एक लोक-प्रचलित कथन है कि कोकिल अपना अण्डा कौए के नीड़ में छोड़ आती है। कवि ने इसीको आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कोकिल अपनी करुण कथा स्वयं कहती है। कमलतालाबवाली कोयल तथा आम के पेड़ वाली कोकिल के संसर्ग से कोकिल-शिशु का जन्म हुआ। माँ ने लोक-लज्जा के भय से उसे कौए के एक नीड़ में रख दिया, जहाँ उसका पालन-पोषण हुआ। अन्य बच्चों से विभिन्न स्वर वाले इस पक्षी को एक दिन अलग कर दिया गया, और तब से कोकिल भटक रही है—

**किस गाँव में किस देश में**
**कहां कहां ढूंढूगी मैं ?**
**सुता को यों तरसाने वाली**
**माँ से कभी मिलूंगी मैं ?**

तिरुलोक सीताराम की कविता 'सान्त्वनादायिनी' की राष्ट्रीय भावना नीरस और शुष्क नहीं है। वह औपचारिक न होकर रस-सम्पन्न हैं। कावेरी नदी का मानवीकरण चित्रों को सजगता प्रदान करता है। भारतीदासन् की कविता 'मलय पवन' की उक्ति अनूठी है। 'लाभ-कार्य', 'एकता की भेरी' आदि कविता साधारण हैं। सोमु की कविता 'एक वरदान' का अन्त पठनीय है, जिसमें भगवान् से वरदान माँगा गया है—

**"जड़-तन्द्राग्रस्त मानव में चैतन्य**
**जगाने में समर्थ एक कवि हमें दो।"**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तेलुगु की कविताओं का व्यक्तित्व संपूर्ण संकलन में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। कविताओं के विषय परम्परागत ही हैं। किसी सीमा तक उनका निर्वाह भी पूर्णतया परम्परा-मुक्त नहीं कहा जा जकता। ऐसा प्रतीत होता है मानो संस्कृत-काव्य की उसमें प्रबल प्रेरणा है। आस्तिकता और भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं। मि० गणपति शास्त्री की कविता 'मणिदीपिका' सरस्वती-वंदना है। अप्पल वीर वेंकट जोगय्य शास्त्री की ताजमहल पर लम्बी रचना भावविभोर होकर लिखी गई है। उसमें भावुकता का प्राबल्य है। जीवन-संगीत शरद-वसर, द्वैराज्य, परिणति, केतकी आदि कविताओं में प्रकृति-प्रेम, भक्ति-भावना दिखाई देती है। कहीं-कहीं संस्कृत की अलंकृत शैली स्पष्ट हो गई है। इस भव्य-प्रदेश में ललित कला-लतांगी अपने सुविलास-लसनावहेय किंकिणी-कलितपदद्वयीचलन-कल्पित-सुन्दर नाट्य वैखरी विलास प्रदर्शित करके नेत्रों के लिए प्रीति- भोज प्रस्तुत करती है।' आज जब प्रायः नए की ओर कवियों की रुचि हैं, तैलुगु साहित्य में क्लासिकल साहित्य का अधिक आग्रह दिखाई देता है, जो भाव और अभिव्यक्ति दोनों में स्पष्ट है।

बंगला की कविताएँ संकलन की सुन्दर रचनाओं में से हैं। इनमें नवीनता है— भाव और शिल्प दोनों दृष्टियों से। पर इनमें नए कवियों का-सा प्रदर्शन, अराजकता अथवा असंयम नहीं है। बंगला की ये नई कविताएँ स्थिरता और प्रौढ़ता का परिचय देती हैं। उनमें वह वैशिष्ट्य है कि केवल 'नई कविता' कहकर उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। सभी कविताएँ अनुशासन की सीढ़ियों से गुजरी हुई जान पड़ती हैं। अनुभूति और विचार का समन्वय इन कविताओं की विशेषता है। अजित दत्त की कविता 'ऊर्ध्वबाहु' में एक विचार को मूर्त किया गया है। 'स्वर्ग कभी धरती के पास नहीं आता तो भी धरती आकाश को छूने के लिए दोनों हाथ बढ़ाती ही रहती है।' 'शीशमहल' में भी एक विचार संग्रहीत है। जिस प्रकार गीत में एक विशेष मनःस्थिति को बंदी किया जाता है उसी प्रकार नया कवि एक विचार (जो विशेष क्षणों की ही सृष्टि है।) को लिपिबद्ध करता है। प्रमथनाथ विशी की कविता 'अनिर्वचनीया' नई उपमाओं से भरपूर है। 'पक्षियों के संगीत पर पैर रखता-रखता आलोक आता है।'—

**फिर कभी आलोक आता है चुपके-चुपके,**
**साँय-साँय करती दोपहर की**
**उनींदी निस्तब्धता की लय पर,**
**और अचानक उसके सिर पर**
**बादलों की पूनी से**
**चांद के करघे पर बुना हुआ**
**मयूरकण्ठी वस्त्र पहना देता है**

सम्पूर्ण कविता कवि की कल्पना से परिचालित है। एक चित्र और है—

**चांदनी रात में आलोक**
**सफेद मोर के पंख फैलाए आता है,**
**उस क्षण गिरिमाला जैसे लीन हो जाना चाहती है**
**निस्तब्ध निर्जन पृथ्वी ऐसी लगती है**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मानो चन्द्रलोक का ही कोई प्रांतर हो।
वन के गहरे काले रंग के ऊपर
अविश्वास की सफेद चादर पड़ गई है।

चित्रों का बाहुल्य इस कविता को सुन्दरतम कविताओं में ले आता है। मनीन्द्रराय की कविता 'असम्पूर्ण' सामाजिक विषमता को उदात्त रूप में प्रकट करने में समर्थ हुई है। उसका प्रगतिशील स्वर साधारण भाषणकर्ताओं का-सा नहीं है। आश्विन, ग्रीष्म, चैत्र, शरद आदि ऋतुएँ प्रतीक रूप में प्रयुक्त की गई हैं। इसी कारण कवि पौष लक्ष्मी की प्रतीक्षा करता है।

फसल की आशा चाहे जितना बहकाए
अभी भंडार से तो वह दूर ही है;
इसलिए भराभर आश्विन की गोद में भी
इसी प्रश्न की आग में जलता रहता हूँ
कि पौष-लक्ष्मी कब बुझायेगी मेरी प्यास।

संजय भट्टाचार्य की कविता 'स्मरण' प्रेम के परम्परागत आदर्शवादी दृष्टिकोण की अस्वीकृति है। सुधीन्द्रनाथ दत्त की कविता 'उल्टा रास्ता' चिन्तन-प्रधान है। हरप्रसाद मित्र की कविता 'व्याध' भी प्रतीक के माध्यम से विचार-प्रकाशन है। बंगला की लगभग सभी कविताएँ विचारोत्तेजक हैं। उनमें नए प्रतीकों और उपमानों के सहारे किसी विचार को मूर्तिमान करने का प्रयास किया गया है और इस दृष्टि से दार्शनिक कविता से उसका अन्तर स्पष्ट है। अभिव्यक्ति सर्वथा नवीन है। उदाहरणार्थ 'व्याध' कविता का एक अंश—

दिन का आलोक चुक जाता है,
और रात में रह जाता है
केवल फैला हुआ आकाश
जिसमें झिलमिलाते हुए
कामदनी के से सितारे टँके जान पड़ते हैं,
अथवा लगता है
तारों फूलों से भरा कोई मैदान हो।

मराठी की कविताएँ शिल्प की दृष्टि से बंगला कविताओं से बहुत दूर नहीं हैं। कुछ मराठी कविताएँ संक्षिप्त अवश्य हैं। ना० ध० देशपांडे की कविता 'कब होगा मिलन ?' बिन्दा करन्दीकर की कविता 'कूजन करता शुभ्र कबूतर', मंगेश पांडेगाँवकर की कविता 'प्रतीक्षा' संक्षिप्त है। इनमें कुछ तो स्नैपशॉट-जैसी हैं, और किंचित् विवेचना-गुण इनमें मिल जाता है। कहीं-कहीं सूक्तियों में कवि ने मन्तव्य को प्रकट करना चाहा है। बसन्त बपट ने अपनी कविता 'बबूल का पेड़' में प्रतीक का सहारा लिया है। मराठी कविताओं की भाव-भूमि में विविधता है, यद्यपि सभी में नवीन दृष्टि है। कुसुमाग्रज की कविता 'कोई दिन' एक विशेष मनःस्थिति का सफल अंकन है, जिसमें सर्वथा नवीन उपमाएँ हैं—

उच्छ्वास भरता, अंगड़ाइयां लेता
आज का दिन जगा
उदय गिरि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**नीले तकिये पर**
**विषण्ण मस्तक से झुका हुआ**
**किसी सुन्दर स्वप्न का उसका टूटा धागा।**

मलयालम की कविताएँ पर्याप्त पुष्ट हैं। स्थानीय प्रभाव के कारण उनमें विशिष्ट व्यक्तित्व आ गया है। केरल की समस्याएँ उनमें प्रतिफलित हुई हैं। पी० कुञ्जिरामन् नायर की कविता 'पुल्लुव बाला' में सर्प देवता को प्रसन्न करने के लिए घर-घर घूमकर सर्पगीत गाने वाली एक जाति-विशेष का वर्णन है। धरती का राग कवि का प्रिय विषय है। पूर्ण राग के साथ नागकन्याओं की गीत-माधुरी को अंकित किया गया है। एन० गोपाल पिल्लै की कविता 'केरल-मनोरथ' में अपनी भूमि का गुण-गान है। का० मा० पणिक्कर की कविता 'छोटा पक्षी बड़े पक्षी के प्रति' की व्यंजना द्रष्टव्य है—

**तुम आकाश के उच्चतम स्थान का सन्धान करके वहाँ पहुँच जाओ :**
**हम दीन-हीनों को भुला दो; तब हे गृध्र श्रेष्ठ, हम भी तुम्हारी**
**प्रशस्ति गायेंगे कि पक्षिवर्ग में सर्वोत्तम तुम हो!**

गोपाल कुरुप्पु वेणिक्कुलम् की कविता 'कन्हैया की मुसकान' में एक वन्ध्या स्त्री की करुण दशा अंकित है। माँ बनने की लालसा के मनोवैज्ञानिक सत्य को स्वीकार किया गया है। वल्लतोल् की कविता 'मरुभूमि नहीं', नालांकल् की कविता 'इन्द्रजाल' बालामणियम्मा नालपाट्टु की कविता 'क्या करें?' इन सभी में चिन्तक का आध्यात्मिक स्वर है।

अन्य प्रादेशिक भाषाओं में संस्कृत की कविताएँ परम्परागत ही हैं। महालिंग शास्त्री की कविताओं में, जो 'कुछ व्यंग्योक्तियाँ' नाम से प्रकाशित हुई हैं, कुछ नवीनता अवश्य है। उर्दू की अधिकांश कविताएँ साधारण हैं। अली सरदार जाफ़री की इससे अच्छी कविता दी जा सकती थी। ग़ज़लों में 'जोश' मलस्यानी और 'अर्श' मलस्यानी की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। राही मासूम रजा की कविता 'चिराग़ जल रहा है' आस्था से भरी है, जो उर्दू काव्य के लिए परम्परा पालन ही है और इक़बाल को याद दिला देती है। कश्मीरी कविताओं में यत्र-तत्र प्रकृति की छाया है। ज़िन्दा कौल मास्टर जी की कविता 'ना तैयारी' इसमें सर्वोत्तम है। पंजाबी कविताओं में रूमानी स्वर हैं। उनमें सौन्दर्य, प्रेम की प्रधानता है। मोहनसिंह की कविता 'प्रतीक्षा' में कुछ नए उपमान हैं।

प्रस्तुत संकलन की कविताओं पर एक विहंगम-दृष्टि डालने पर भारतीय भाषाओं में होने वाले विभिन्न प्रयोगों का एक चित्र प्राप्त हो जाता है। अधिकांश भाषाओं में स्थानीय रंग है। पर इस अन्तर के अतिरिक्त कुछ ऐसी समान प्रवृत्तियाँ भी हैं, जो समस्त भारतीय कविता को एक-दूसरे के समीप लाकर प्रस्तुत करती हैं। कविताओं में आशा, विश्वास, जागृति और आस्था के प्रबल स्वर हैं। नये जागरण ने सभी प्रमुख कवियों को दायित्वपूर्ण साहित्य-सृजन में नियोजित किया है। इसमें कुण्ठा, अहं, निराशा और व्यक्तिवाद को स्थान नहीं है। राष्ट्रीय भावना से परिचालित सभी कविताएँ उत्कृष्ट नहीं बन पड़ी हैं, किन्तु वे इस सत्य का उद्घाटन करती हैं कि आज की राष्ट्रीयता और विगत राष्ट्रीयता में अन्तर है। कल तक कवि का स्वर आक्रोश का था, आज उसमें नवनिर्माण का संकल्प है। यही कारण है कि अधिकांश श्रेष्ठ कविताएँ धरती की ममता और मानवीय संवेदना से परिचालित हैं। भाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भूमि की यह समानता विभिन्न प्रादेशिक काव्यों को एक-दूसरे के निकट लाती है। साहित्य अकादेमी ने इसे सुलभ बनाया है, इसके लिए उसे बधाई। शिल्प के जो विभिन्न प्रयोग देखने को मिलते हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि काव्य परम्परा और प्रगति के दो विरोधी ध्रुवों पर न जाकर एक समन्वयात्मक मार्ग ग्रहण करेगा, जिसमें नवीन जीवन-दृष्टि होगी, किन्तु संयम और अनुशासन से शासित! आशा है इस संकलन से भारतीय काव्य की विभिन्न शाखाएँ एक-दूसरे के समीप आ सकेंगी।[1]

डॉ० भगीरथ मिश्र

## 'काव्य निर्णय' और 'आचार्य भिखारीदास'

आचार्य भिखारीदास का नाम हिन्दी-साहित्य के काव्य-शास्त्र के आचार्यों में अग्रगण्य है। जिस प्रकार पूर्व-रीतिकाल में आचार्य केशवदास का प्रभाव रहा, उसी प्रकार उत्तर-रीतिकाल में आचार्य भिखारीदास का सम्मान था और उनका ग्रन्थ 'काव्य निर्णय' हिन्दी-काव्य-शास्त्र के ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण रहा। 'काव्य निर्णय' की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें कुछ तो हस्तलिखित हैं और कुछ मुद्रित हैं। इन प्रतियों में पाठ-भेद भी है, जो स्वाभाविक ही है। परन्तु वह अधिक नहीं है। उनके परवर्ती विद्वान् कवियों पर दास जी का प्रभाव पड़ा था। 'काव्य निर्णय' की तीन-चार मुद्रित प्रतियाँ उपलब्ध हैं और तेरह-चौदह हस्तलिखित प्रतियाँ। इन सबको समेटकर 'काव्य निर्णय' का एक प्रामाणिक संस्करण तैयार करने की आवश्यकता थी, जिसमें कि इस ग्रन्थ से सम्बन्धित समस्त ज्ञान को एकत्र देखा जा सके। श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'काव्य निर्णय' में इसी प्रकार का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थ की कुछ और विशेषताएँ हैं। प्रथम तो यह कि सम्पादन में एक प्रति का यथार्थ पाठ देकर पाद-टिप्पणी में अन्यत्र उपलब्ध प्रतियों के पाठान्तर दे दिये गए हैं। दूसरी विशेषता है कि 'काव्य निर्णय' में दासजी के लक्षणों के साथ यथावश्यक स्थानों पर—रसलीन, अजान, मतिराम, जसवन्तसिंह, पद्माकर, दूलह आदि के लक्षणों को देकर तुलनात्मक विशेषता का संकेत किया गया है। तीसरे, उदाहरणों में भी दास के उदाहरणों के साथ समान भाव रखने वाले अन्य कवियों—जैसे नन्ददास, विहारी, चिन्तामणि, पद्माकर, लछिराम, रत्नाकर आदि के उदाहरणों को देकर लक्षण के स्पष्टीकरण और कवित्व की तुलना के लिए सामग्री प्रस्तुत कर दी गई है। चौथी विशेषता यह है कि लक्षणों और उदाहरणों का संस्कृत के आधारभूत लक्षणों और उदाहरणों से मिलान किया गया है। इन ग्रन्थों में 'काव्यादर्श', 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश', 'काव्यालंकार', 'सार-संग्रह', 'चन्द्रालोक', 'कुवलयानन्द', 'साहित्यदर्पण', 'अमरुशतक' आदि प्रमुख हैं। कहीं-कहीं सुन्दर उदाहरणों

१. **भारतीय कविता : १९५३। प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से मेल खाते हुए उर्दू के शेर भी उद्धृत किये गए हैं। जो 'काव्य निर्णय' की काव्य-शास्त्रीय विवेचना की एकरसता को कम करते हैं।

'काव्य निर्णय' के लक्षणों तिलक अथवा उदाहरणों के बाद विशेष व्याख्या द्वारा उनकी विशेषता, गूढ़ता अथवा सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न भी किया गया है। यह विशेष व्याख्या, यद्यपि पूर्ववर्ती टीकाकारों और 'काव्य निर्णय' के सम्पादकों की सूचनाओं का आधार लिये हुए है; फिर भी यह बहुत-कुछ रोचक है और सम्पादक की काव्य-रसिकता का ही प्रमाण है।

इतना होते हुए भी सम्पादक ने 'दास' के प्रत्येक लक्षण और उदाहरण का सरलार्थ नहीं दिया है। 'काव्य निर्णय' की पूरी टीका नहीं की गई है। मेरी दृष्टि से वह आवश्यक है। 'दास'जी-जैसे लेखकों को यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि ये तो यों ही पढ़कर समझे जा सकते हैं। बिहारी, केशव और तुलसीदास के समान इनके ग्रन्थों और विशेषतया 'काव्य निर्णय' की पूर्ण व्याख्या करने वाली टीका या उसका भाष्य आवश्यक है। यह कार्य सरल नहीं है; क्योंकि अनेक छन्दों के अर्थों में न केवल मतभेद है, वरन् गूढ़ता भी है। यदि चतुर्वेदीजी 'काव्य निर्णय' के अगले संस्करण में यह कार्य भी पूरा कर दें, तो वे काव्य-शास्त्र के पाठकों की सहायता ही करेंगे।

इस सम्बन्ध में मैं एक उदाहरण लेकर अपना विचार प्रकट करूँगा। चित्रालंकार के प्रसंग में 'नागफाँसोत्तर' का उदाहरण है—

**कहा चंद, को स्यांम, छत्रिन को गुँन कौन कहि।**
**कहा संयतै नाम, पारसीक वासी कहैं॥**
**कहा रहै संसार, बाँहन कहा कुबेर को।**
**चाहे कहा भुवार, 'दास' उतर दिय सरसजन॥**

इसके उत्तर लक्षण के संकेतानुसार सम्पादक ने सस, रस, रज, सन, जस, जन और सरसजन के रूप में दिए हैं। इसमें प्रथम प्रश्न ( कहा चन्द ) कोई प्रश्न नहीं है और फिर उसका उत्तर 'सस' जिसका अर्थ 'शशक' या खरगोश होता है। शशि के अर्थ में लेना उचित नहीं। इसी प्रकार 'को स्याम' प्रश्न और इसका उत्तर 'रस' ( शृंगार रस ) महत्त्व-पूर्ण नहीं। इन दोनों को मिलाकर केवल एक प्रश्न बनता है—'कहा चंद को स्याम' चन्द्रमा का कालापन क्या है? उसका उत्तर 'सस' अर्थात् शशक अधिक संगत और उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त 'दास'जी के लक्षण के हिसाब से 'इक इक अन्तर तजि वरन, द्वै द्वै वरन मिलाइ' का नियम भी इसमें नहीं लग पाता। अतः 'को स्याम' अलग प्रश्न नहीं और न इसका उत्तर रस ही अपेक्षित या नियमानुकूल है। इसी प्रकार 'बाहन कहा कुबेर को' का उत्तर जन-जन न होकर 'नर' होना चाहिए, जो कि नियमानुकूल है। 'सरसजन' में अलग-अलग पाँच वर्ण के पाँच और पूरा मिलाकर छः प्रश्न होते हैं। अतः छः ही प्रश्न और उनके उत्तर अपेक्षित जान पड़ते हैं। चतुर्वेदीजी की इस व्याख्या का आधार 'काव्य निर्णय' की 'मालवीय' जी वाली व्याख्या है। उसमें भी ऐसा ही है।

इस प्रकार अन्य अर्थों और व्याख्याओं में मतभेद और विचार-विमर्श की अपेक्षा है। यह सब होते हुए भी 'काव्य निर्णय' का यह संस्करण काव्य-शास्त्र के अध्येताओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



029554 127

लिए उपादेय है।

दूसरी पुस्तक इसी विषय से सम्बन्धित 'आचार्य भिखारीदास' है। दोनों का दृष्टिकोण भिन्न है। यह आचार्य भिखारीदास की जीवनी, रचनाओं, कवित्व और आचार्यत्व का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली पुस्तक है। इसके लेखक हैं, डॉ० नारायणदास खन्ना और यह उनकी पी-एच० डी० डिग्री के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध है। निश्चय ही इसे विद्वानों और विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त है। उत्तर-प्रदेश की सरकार भी इस ग्रन्थ को पुरस्कृत कर चुकी है। ये सब बातें इस ग्रन्थ के महत्त्व के स्वतः प्रासंगिक प्रमाण हैं।

पुस्तक चार खण्डों और अनेक प्रसंगों में विभाजित है। प्रथम खण्ड जीवन-वृत्त का है, जिसमें भिखारीदास की जीवन-सम्बन्धी अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य से प्राप्त सामग्री की विचारपूर्वक विवेचना की गई है। इसी प्रसंग के अन्तर्गत 'दास' के व्यक्तित्व और उनकी साहित्य-साधना का भी उल्लेख है। परन्तु इनमें कोई तथ्यात्मक सामग्री न होने के कारण ये प्रसंग महत्त्वहीन लगते हैं।

द्वितीय खण्ड 'साहित्य-रचना' का है। इस खण्ड में समकालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में 'दास'जी की रचनाओं का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें विभिन्न स्रोतों से भिखारीदास पर प्राप्त सामग्री का विवरण और परीक्षण है। मेरे विचार से उनकी अप्रामाणिक कही जाने वाली रचनाओं की ओर अधिक सूक्ष्म एवं विशद विवेचना अपेक्षित थी।

तृतीय खण्ड 'काव्य-कला' में भिखारीदास के काव्य-शिल्प (Poetic technique) सम्बन्धी विचार सर्वप्रथम दिये गए हैं। इसके उपरान्त भाव-व्यञ्जना, कल्पना-तत्त्व, भावपक्ष के अन्तर्गत रखे गए हैं। शैली-पक्ष में भाषा-विवेचन, विविधता, मुहाविरे, दोष आदि का कथन है। परन्तु लगता है कि जैसे कला-सम्बन्धी सम्यक् विवेचन इस प्रसंग में नहीं हो पाया। इस खण्ड में सबसे अधिक खटकने वाली बात है 'भक्तिभावना और नीति' के प्रसंग को काव्य-कला के अन्तर्गत रखना। इस प्रकार १४-१४ पृष्ठ लिखे गए हैं। इस प्रसंग को भाव और विचार नामक अलग अध्ययन में जाना चाहिए था। कला-पक्ष के भीतर इसका रखना समीचीन नहीं जान पड़ता।

चतुर्थ खण्ड 'आचार्यत्व' का है। इस खण्ड में लेखक ने काव्यांग काव्य-प्रयोजन, काव्य के कारण, गुण-निर्णय, पदार्थ-निर्णय, ध्वनि-विवेचन, गुणीभूत व्यंग्य, तुक-वर्णन, छन्द-निरूपण, काव्य-दोष, रसविवेचन, नायिकाभेद वर्णन, अलंकार विवेचन आदि प्रसंगों में दास के आचार्यत्व की विवेचना है। दास के आचार्यत्व के मूल्यांकन में लेखक ने 'काव्यादर्श', 'काव्यलंकार सूत्र', 'ध्वन्यालोक' वक्रोक्तिजीवितम्, 'काव्यप्रकाश', 'रस गंगाधर', 'चन्द्रा-लोक', 'नाट्य-शास्त्र', 'काव्यानुशासन' आदि ग्रन्थों से इन प्रसंगों के आधार और प्रामाणिकता का परीक्षण किया है। ये प्रसंग लेखक के परिश्रम का प्रमाण हैं। एक-आध स्थल पर दासजी के तात्पर्य को पूर्णतया स्पष्ट न कर सकने के कारण लेखक कुछ विद्वानों के आक्षेपों का उत्तर नहीं दे पाया। उदाहरण के लिए उपादान लक्षणा का इनका उदाहरण है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**जमुना जल को जात ही डगरी गगरी जाल।**
**बजी बाँसुरी कान्ह की, गिरीं सकल तेहि काल॥**

इस पर विवेचन करते हुए लेखक ने लिखा है—दूसरी पंक्ति में दासजी ने 'कान्ह' के बजाने का गुण बाँसुरी में आरोपित माना है। परन्तु वास्तविकता यह है कि बाँसुरी के बजाने में मुख्यार्थ बाधित नहीं है। इसी प्रकार का भ्रम तीसरी तथा चौथी पंक्ति में भी है। इसी कारण इस सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि उपादान लक्षणा लीजिए। इसका लक्षण भी गड़बड़ है और उसी के अनुरूप उदाहरण भी अशुद्ध है। "वास्तव में यहाँ न लक्षण गड़बड़ है और न उदाहरण ही अशुद्ध है। जहाँ पर मुख्यार्थ पूर्ण बाधित न होकर अंशतः बाधित होता है और उसमें दूसरे के गुण का या अर्थ का ग्रहण किया जाय, वहाँ पर उपादान लक्षणा मानी गई है। गगरी चल नहीं सकती अतः मुख्य अर्थ बाधित है और इन पर गोपिकाओं के अर्थ का ग्रहण है। गगरी का अर्थ गगरी लिये हुए गोपिकाएँ। इसी प्रकार बाँसुरी बज नहीं सकती बजाई जाती है। अतः इसके बजाने में कृष्ण के द्वारा बजाए जाने (कर्त्तापन) के अर्थ का ग्रहण है। इस प्रकार अपने अर्थपूर्ण त्याग किये बिना अन्य अर्थ के ग्रहण से उपादान लक्षणा है जिसके उदाहरण में ये उपयुक्त ही हैं।

उपसंहार में लेखक ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। दास पर मिश्रबन्धुओं द्वारा किये गए आक्षेप का कि उन्होंने श्रीपति के 'काव्य-सरोज' से भावापहरण किया है, तर्कपूर्ण निराकरण किया है। यद्यपि लेखक की यह धारणा सत्य नहीं है कि मिश्रबन्धुओं के आधार पर अन्य इतिहासकारों ने भी दास पर भावापहरण का आक्षेप लगाया है। वास्तव में दास को बड़े-बड़े पूर्ववर्ती हिन्दी आचार्यों के ग्रन्थों का आधार प्राप्त था। इस सुविधा को पाकर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। इसमें उनकी हीनता ध्वनित नहीं होती। फिर भी यह तर्कपूर्ण निराकरण बहुत ठीक है। इस प्रसंग में अन्य कवियों से भावसाम्य, [illegible]करण और वैज्ञानिक विवेचन, नवीन उद्भावनाएँ और उनकी हिन्दी-साहित्य में विशिष्ट स्थिति आदि विषयों पर तथ्यपूर्ण विचार प्रकट किये गए हैं। पुस्तक परिश्रम से लिखी गई और उपादेय है।[1]

विश्वविद्यालय पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

---

१. काव्य निर्णय : सम्पादक—जवाहरलाल चतुर्वेदी; प्रकाशक—ज्ञानवापी वाराणसी। आचार्य भिखारीदास—डॉ० नारायणदास खन्ना; प्रकाशक—लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दक्षिण-भारत के प्रथम हिन्दी उपन्यासकार

श्री 'आरिगपूडि'

की अनुपम मूल हिन्दी रचना

**खरे-खोटे** मू० ५)

दक्षिण-भारत के ग्राम्य-जीवन का अनुपम एवं सजीव चित्रण अत्यन्त ही सरल व रोचक भाषा में।

हिन्दी-जगत् के सर्वप्रसिद्ध उपन्यासकार

श्री गुरुदत्त की नवीन अन्यतम रचना

**पत्रलता** मू० ७)

सातवीं शताब्दि के भारत-खण्ड के इतिहास की पृष्ठ-भूमि पर।

भारती साहित्य सदन

३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली–१


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकमल

श्री देवराज, मैनेजिंग डाइरेक्टर, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली के लिए
श्री गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

81 125

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri